54924

बुंदेलखंड में स्त्री

संपादक
आनन्द प्रकाश त्रिपाठी

बुंदेलखंड में स्त्री

(स्त्री विमर्श)

बुंदेलीपीठ, हिंदी विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय,
सागर (म.प्र.) के लिए प्रकाशित

सामयिक प्रकाशन

केन्द्रीय हिंदी संस्थान,
मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार
द्वारा सम्मानित प्रकाशक

बुंदेलखंड में स्त्री

संपादक :

आनन्दप्रकाश त्रिपाठी

सामयिक प्रकाशन
नई दिल्ली-110002

ISBN : 978-81-7138-262-0

प्रकाशक :

सामयिक प्रकाशन

3320-21, जटवाड़ा, नेताजी सुभाष मार्ग
दरियागंज, नई दिल्ली-110002

संस्करण : प्रथम, 2012 ₹ 695

© संपादक, बुंदेलीपीठ, हिंदी विभाग,
डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)

आवरण : निर्दोष त्यागी

कम्प्यूटर कम्पोजिंग : कल्याणी कम्प्यूटर सर्विसेज,
नई दिल्ली

मुद्रक : अजीत प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली

BUNDELKHAND MEIN STREE *(Stree-vimash)*
Ed. by ANANDPRAKASH TRIPATHI

Published By : **SAMAYIK PRAKASHAN**
3320-21 Jatwara, Netaji Subhash Marg,
Daryaganj, New Delhi - 110002 (INDIA)
Tel. : (011) 2328 2733, Fax : 2327 0715
Mob.: 09811607086, 09868934715
E-mail : samayikprakashan@gmail.com

बुंदेलीपीठ की भूतपूर्व सचिव
प्रो. राजमति दिवाकर
की पुण्य स्मृति
को सादर समर्पित

अनुक्रम

भूमिका	*आनन्दप्रकाश त्रिपाठी*	9

इतिहास और समाज

गुप्त, कलचुरि एवं चंदेल काल में स्त्री	*नागेश दुबे*	19
परमार एवं बुंदेला काल में स्त्री	*वीरेन्द्र बहादुर खरे*	41
आल्हखंड में स्त्री	*जितेन्द्र बिसारिया*	48
बुंदेलखंड की स्त्री	*श्यामसुंदर दुबे*	59
बेड़िनें	*नीरू*	70

लोक और साहित्य

लोकगीतों में स्त्री	*रमेशदत्त दुबे*	79
लोककाव्य में स्त्री जीवन का यथार्थ	*आनन्दप्रकाश त्रिपाठी*	86
लोककथाओं में स्त्री	*दुर्गेश दीक्षित*	107
लोकगाथाओं में स्त्री	*ओमप्रकाश चौबे*	117
व्रतकथाओं में स्त्री	*शरद सिंह*	125
कहावतों में स्त्री	*राजेन्द्र चंद्रकांत राय*	139
बुंदेली गारियां	*सुधा गुप्ता*	149

संस्कृति और कला

स्त्री सर्जना के स्वत्व लोकनृत्य	*वसंत निरगुणे*	165
बुंदेलखंड की लोक देवियां	*सुधा गुप्ता*	172

स्त्री लोकपर्व नौरता	*रामकिशोरी गुप्त*	182
लोक चित्रकला में स्त्री	*हरीमोहन पुरवार*	193
प्राचीन स्थापत्य और कला में स्त्री	*नागेश दुबे*	202
चंदेल कला में स्त्री	*शरद सिंह*	211
स्त्री की विशेषभूषा और आभूषण	*प्रतिभा अवस्थी*	232
बालिकाओं के पारंपरिक खेल	*वर्षा सिंह*	241

व्यक्तित्व और कृतित्व

रानी दुर्गावती	*सुरेश मिश्र*	253
मस्तानी बाजीराव	*भगवानदास गुप्ता*	262
रानी लक्ष्मीबाई	*क्षमाशंकर पाण्डेय*	275
वीरांगना झलकारीबाई	*अनिता भारती*	285
वीरांगना मानवती	*मीरा चंद्रा*	292
रानी अवंतीबाई	*ब्रजेश कुमार श्रीवास्तव*	298
रानी लड़ई सरकार	*मशकूर अहमद कादरी*	307
क्रांतिकारी ताईबाई	*कुमारेन्द्र सिंह सेंगर*	312
बुंदेलखंड की अन्य वीरांगनाएं	*रामनारायण शर्मा*	317
महारानी गणेश कुंवरि	*रामचरण हयारण 'मित्र'*	329
प्रवीण राय	*साधना जैन*	333
रानी कमल कुंवरि	*गंगाप्रसाद बरसैंया*	340
बुंदेली की महिला फागकार	*क्षमाशंकर पाण्डेय*	347
ध्रुपद गायिका असगरीबाई	*गुणसागर 'सत्यार्थी'*	353
लोकगायिका रामकली रैकवार	*सुंदरम शांडिल्य*	362

परिशिष्ट

सुभान	*अंबिका प्रसाद दिव्य*	367
रानी बखत कुंवरि	*उदय शंकर दुबे*	369
बुंदेलबाला	*सुमन राजे*	373
वनमाला भवालकर	*आलोक कुमार पांडेय*	377
सहोद्राबाई राय	*महेश तिवारी*	382

भूमिका

आज के उत्तर आधुनिक समय में छोटे-छोटे अस्मिता समूहों के उदय के फलस्वरूप जब स्त्री, दलित, आदिवासी हमारे विमर्श एवं अध्ययन के केंद्र में हैं, तब विकास और विमर्श की दृष्टि से बुंदेलखंड जैसे पिछड़े अंचल के इतिहास, समाज और संस्कृति में स्त्री के अस्तित्व एवं अस्मिता की पहचान एक सार्थक पहल है। वीरप्रसूता भूमि बुंदेलखंड, जहां आल्हा-उदल, मधुकर शाह, वीरसिंह देव, चंपत राय, छत्रसाल, पारीछत, बखतबली सिंह, मर्दन सिंह जैसे प्रतापी राजाओं के समानांतर दुर्गावती, लक्ष्मीबाई, अवंतीबाई आदि रानियों के शौर्य और पराक्रम की गाथाएं जनमानस को आज भी आंदोलित करती हैं, के सुदीर्घ इतिहास में स्त्री की पारिवारिक-सामाजिक अवस्थिति तथा राजनीतिक-प्रशासनिक व सांस्कृतिक परिक्षेत्रों में उसकी भूमिका का मूल्यांकन इसी का उपक्रम है। इतिहास के परंपरागत दृष्टिकोण से अलग हटकर देखें तो बुंदेलखंड में स्त्री की गौरवपूर्ण व सशक्त उपस्थिति मुख्यतः तीन स्तरों पर रही है—राजकुल की स्त्रियां,

कला-साहित्य को समर्पित स्त्रियां एवं प्रजा वर्ग की सामान्य स्त्रियां, जबकि इतिहास ग्रंथों में प्रायः उन्हीं विशिष्ट स्त्रियों को जगह मिली है, जिन्होंने राजहित और लोकहित में उल्लेखनीय कार्य किया है। इनमें वीरांगनाओं की लंबी शृंखला के साथ महारानी गणेश कुंवरि, मस्तानी बाजीराव, प्रवीण राय और रानी कमल कुंवरि के नाम प्रमुख हैं। सामान्य स्त्रियों के जीवन संघर्ष, आस्था-विश्वास एवं आशा-आकांक्षाओं का विवरण लोक साहित्य की विभिन्न विधाओं (लोकगीत, लोककथा, लोकगाथा, व्रतकथा) एवं काव्य रूपों में मिलता है, जिसमें इतिहास विश्रुत स्त्रियों का इतिवृत्त भी शामिल है।

प्राचीन बुंदेलखंड में राजपरिवार की स्त्रियों की सामाजिक-राजनीतिक आर्थिक क्षेत्र में अहम भूमिका थी। राज-काज या प्रशासन में अभिरुचि रखने वाली रानियों की सलाह-मशविरे पर गौर किया जाता था। गुप्तकालीन शासक बालादित्य की मां के आदेश पर बंदी हूण शासक मिहिरकुल को बंधनमुक्त करने की घटना इस बात का प्रमाण है। इतिहासकार अलबरूनी ने 'तहकीक ए हिन्द' में लिखा है, "प्रत्येक पारिवारिक व्यवस्था और असाधारण स्थितियों में स्त्रियों का परामर्श बड़ी निष्ठा से लिया जाता था। उनकी राय का महत्त्व होता था। उन्हें शिक्षा दी जाती थी। शिक्षित की मर्यादा समाज में स्थापित थी। तत्कालीन नारी की एक महती विशेषता उसकी राजभक्ति थी।" स्त्रियों के लिए सैन्य शिक्षा का विधान था ताकि आपातस्थिति में वे राज्य की रक्षा का दायित्व निर्वहन कर सकें।

अपने सद्गुणों एवं श्रेष्ठ आचरण से पतिगृह की प्रतिष्ठा में अभिवृद्धि करने तथा दो कुलों को जोड़ने वाली स्त्री बुंदेलखंड में आदर्श मानी गई। प्रतिव्रत धर्म का पालन उसके लिए अभीष्ट था। एरण के एक अभिलेख में समुद्रगुप्त की पत्नी दत्ता देवी की श्री संपन्नता और पवित्रता का उल्लेख है। एक अन्य साक्ष्य में राजा जयसेन की शीलवान पुत्री गोया की तुलना उस नदी से की गई है, जो तीनों लोक को पवित्र करती है। राजकुल में रानियों की अपनी निजी संपत्ति होती थी, जिसे 'स्त्रीधन' कहा गया और जिसका उपयोग वे दान-दक्षिणा, मंदिर निर्माण आदि धार्मिक-सामाजिक कार्यों में करती

थीं। कल्चुरि शासक युवराजदेव की पत्नी नोहला और वीरवर्मन की पत्नी कल्याणी देवी द्वारा मंदिर बनवाए जाने का प्रमाण मिलता है।

बुंदेलखंड के इतिहास के सभी समय समाज में सती प्रथा कमोबेश विद्यमान रही। प्रत्येक युग के समाज में यह प्रथा बनी रही, पर प्राचीन युग की खास बात यह थी कि पति की मृत्यु के उपरांत स्त्री का सती होना बाध्यकारी नहीं था। सती होना उसकी इच्छा पर निर्भर था। सती प्रथा के मूल में एक धारणा यह भी थी कि सती के त्याग और प्राणोत्सर्ग से उसके पति के पाप नष्ट हो जाते हैं। मध्ययुग में मुस्लिम आक्रमणकारियों के आतंक एवं सामाजिक-धार्मिक जड़ मान्यताओं के कारण यह प्रथा अधिक प्रबल हुई। बुंदेलखंड में विभिन्न स्थलों पर मिलने वाले अधिसंख्य सती स्तंभ इस प्रथा के ऐतिहासिक साक्ष्य हैं। ध्यातव्य है कि बुंदेला वंश और उनके सहयोगी पड़िहार, पंवार, धंधेर, राजपूतों की स्त्रियों के बीच यह प्रथा 'सतीव्रत' के रूप में प्रचलित थी। ओरछा के महाराज मधुकर शाह प्रथम की मृत्यु पर उनकी धर्मपत्नी महारानी गणेश कुंवरि इस व्रत के पालन हेतु सती हो गई थी। सदियों से चली आ रही यह प्रथा ब्रिटिश काल तक आते-आते एक क्रूर प्रथा में बदल गई, जिस पर पहली बार अंकुश एक स्त्री शासक ने ही लगाया। सन् 1847 में ओरछा राज्य की रीजेंट महारानी लड़ई सरकार ने अपने राज्य में सती प्रथा निषेध कानून लागू कर बुंदेलखंड में सती प्रथा को समाप्त करने का संकल्प लिया था।

चंदेलकाल में बुंदेली समाज का जीवन मूल्य वीरता थी, अतः राजवंश और सामान्य परिवार की स्त्रियों का राजभक्ति से अनुप्राणित होना स्वाभाविक था। प्रश्न चाहे राजसत्ता का हो या जातीय स्वाभिमान का, इस युग की स्त्रियां वीर पुरुषों के समान अपने प्राण न्योछावर करने को तत्पर रहती थीं। इतिहासकार फरिश्ता ने 'तारीख ए फरिश्ता' में लिखा है, "हिन्दू वीरांगनाओं ने अपने जवाहरात बेच डाले, अपने स्वर्णाभूषण गला डाले और धर्मयुद्ध के संचालन के लिए उन्होंने दूरस्थ प्रदेशों से भी अपनी सहायता भेजी।" महाकवि जगनिक कृत 'आल्हखंड' को प्रमाण मानें तो चंदेलकालीन स्त्रियों का यह उज्ज्वल पक्ष सामने आता है। महोबा नरेश परिभर्दिदेव (परमाल) की

रानी मल्हना की राजनीतिक अंतर्दृष्टि एवं सतीत्व, आल्हा-ऊदल की मां देवल दे की अतुलनीय देशभक्ति, नैनागढ़ की राजकुमारी सुनवां की वीरता व दृढ़ता, पृथ्वीराज चौहान की पुत्री बेला का पतिव्रत धर्म व एकनिष्ठ प्रेम, युवराज लाखन की पत्नी कुसुम दे का जौहर उस युग की स्त्रियों के साहस और बलिदान का सबूत है।

परमार एवं बुंदेला काल में राजपरिवारों की बुद्धिमान व दृष्टिसंपन्न स्त्रियों को भले ही महत्त्व मिला, किंतु सामंतवादी व्यवस्था की विकृतियों के चलते स्त्री सामान्यतः प्रेम व भोग की वस्तु समझी गई। तत्कालीन राजाओं के अंतःपुर में रहनेवाली उपपत्नियों और रखैलों की लंबी फेहरिस्त थी। ओरछेश मधुकर शाह की छह रानियों तथा वीर सिंह की तीन रानियों का उल्लेख मिलता है। उस समय तक राजकुल में बहुपत्नी विवाह, गंधर्व विवाह, अनमेल विवाह की परंपरा बनी हुई थी। दूसरी ओर जनसाधारण की स्त्रियों की स्थिति प्रायः सामान्य रही। सामाजिक-आर्थिक दृष्टि से कमजोर इन स्त्रियों की सक्रियता कृषि, पशुपालन, कुटीर धंधे तथा जातिगत व्यवसाय तक सीमित थी।

बुंदेलखंड पर मुगलों के आक्रमण और यहां की राजसत्ता में बढ़ते दखल के कारण राजाओं, सामंतों और सामान्य जनता के सम्मुख स्त्री की सुरक्षा का प्रश्न उठ खड़ा हुआ। स्त्री का घर की चारदीवारी से बाहर निकलना कम हो गया। उच्चकुल की स्त्रियों में पर्दा प्रथा को बढ़ावा मिला, जबकि सामान्य परिवारों में स्त्रियों के प्रति अपेक्षाकृत कम चिंता थी। मानो गूजरी और मथुरावली की लोकगाथाएं सामान्य स्त्री के स्वाभिमान और अस्मिता का आख्यान हैं। मानो गूजरी और मथुरावली का अत्यंत रूपवती होना ही मुगल सैनिकों से उनकी असुरक्षा का कारण है, जो उन्हें अपहृत कर बेआबरू करना चाहते हैं। मानो गूजरी की रक्षा के लिए उसका पति शत्रु सैनिकों की हत्या कर देता है, किंतु मथुरावली तंबू में आग लगाकर आत्मदाह कर लेती है। इसी तरह 'बिजौरी की कुंवरि की गाथा' की नायिका बेला मुगल सैनिकों से आत्मसम्मान (प्राण की नहीं) की रक्षा के लिए सखियों सहित कुएं में समा जाती है। 'धर्मासांवरी की गाथा' की नायिका धर्मा सुलतान की कैद से अपनी मुक्ति के लिए संघर्ष करती

है। 'गहनई लोकगाथा' में भी स्त्री को मुसलमान सैनिकों से अपने स्वत्व-रक्षा के लिए जूझना पड़ा था। चरागाही समाज के राजू गूजर की बेटी ऐलादी को डांड़ (दंड) स्वरूप मांगे जाने पर गढ़राझौर के राजा और उसके पिता में लड़ाई होती है, जिसमें ऐलादी बच निकलती है। सोलहवी शती में चंदेरी की क्षत्राणियों के सामूहिक जौहर की घटना प्रकारांतर से आक्रमणकारियों की कट्टरता और कामुकता के खिलाफ अहिंसक विरोध था। कहना न होगा कि अपहरण, बलात्कार और खरीद-फरोख्त की घटनाएं तत्कालीन युग में बुंदेली स्त्री के जीवन की सबसे बड़ी त्रासदी थी। इन परिस्थितियों में स्त्री होना स्त्री की नियति बन गई।

बुंदेलखंड में स्त्री की रक्षा के लिए पुरुष का शत्रु से युद्ध करना मात्र वीरता का लक्षण नहीं अपितु सामाजिक दायित्व भी था। पत्नी, पुत्री या बहन के लिए उसके पति, पिता या भाई का लड़ना तो स्वाभाविक जान पड़ता है, किंतु एक बेड़िनी (नर्तकी) के लिए युद्ध बुंदेलखंड के इतिहास की अनूठी घटना है। मधुकर शाह की अतिप्रिय बेड़िनी चंदा का जब अंग्रेज सैनिकों ने अपहरण कर लिया तो उन्होंने क्षुब्ध होकर अंग्रेजों के खिलाफ युद्ध का मोर्चा खोल दिया, जो बाद में जनविद्रोह में तब्दील हो गया।

ओरछा दरबार की राजनर्तकी और महाराजा इंद्रजीत की प्रेमिका प्रवीण राय, जो उन्हें अपना पति मानती थी, बुंदेली स्त्री के पतिव्रत धर्म और एकनिष्ठ प्रेम की अद्‌भुत मिसाल है। प्रवीण राय के अपूर्व सौंदर्य, नृत्य कौशल एवं काव्य प्रतिभा की चर्चा से अभिभूत होकर बादशाह अकबर उसे अपने दरबार में हाजिर होने का संदेश भेजता है। इस बात से नाराज राजा इंद्रजीत को अपने प्रेम का भरोसा देकर प्रवीण राय दिल्ली दरबार में पहुंचती है और वाक्‌पटुता एवं तर्कों से अकबर को पराजित कर लगभग धिक्कारती हुई कहती है—

विनती राय प्रवीण की सुनियो शाह सुजान।
जूठी पातर भखत हैं बारी बायस स्वान।।

यह प्रसंग उस बुंदेली स्त्री की चारित्रिक दृढ़ता और समर्पण का द्योतक है, जिसके प्रेम की टेक थी—'जामें रहे प्रभु की प्रभुता अरु मोर

पतिव्रत भंग न होई।' ठीक इसी प्रकार एक निम्नवर्गीय परिवार में जन्मी तथा पन्ना नरेश छत्रसाल द्वारा पालित, असाधारण सौंदर्य की धनी मस्तानी का पेशवा बाजीराव के प्रति जाति-धर्म के बंधन से मुक्त पवित्र प्रेम और बलिदान बुंदेली स्त्री के उदात्त प्रेम का अनोखा उदाहरण है।

भारत में अंग्रेजी राज के विरुद्ध 1857 के स्वातंत्र्य समर में बुंदेलखंड की स्त्रियों की अविस्मरणीय भूमिका रही। इनमें अधिकांश स्त्रियां राजाओं एवं जागीरदारों की पत्नियां थीं, जिन्होंने अवसर मिलने पर युद्धभूमि में शौर्य और पराक्रम का परिचय देते हुए अपने प्राणों का उत्सर्ग कर दिया। यद्यपि युद्धभूमि में जाने का मौका इन्हें वैधव्य काल में मिला, क्योंकि राजा के जीवित रहते यह कतई मुमकिन नहीं था। यदा-कदा सामान्य परिवार की स्त्रियों ने इन रानियों के साथ युद्ध में भाग लिया। 1857 की क्रांति में सर्वप्रथम झांसी की रानी लक्ष्मीबाई का नाम आता है। उनकी स्त्री सेना 'दुर्गादल' में झलकारीबाई, मोतीबाई, काशीबाई, सुंदर, मुंदर, जूही एवं मानवती प्रमुख सेनानी थीं। अन्य वीरांगनाओं में जालौन की ताईबाई, ग्वालियर की बैजाबाई सिंधिया, बांदा की शीला रानी, नन्ही रानी और रानी भवानी ने अपनी जान की बाजी लगाकर अंग्रेजी सेना से युद्ध किया और वीरगति को प्राप्त हुई। रामगढ़ की रानी अवंतीबाई ने अंग्रेजों के खिलाफ कई मोर्चों पर जमकर लोहा लिया था।

बुंदेलखंड में जब प्रतापी, शीलवान, न्यायप्रिय और प्रजावत्सल राजाओं का शासन रहा, परिवार और समाज में स्त्री सम्मान व आदर पाती रही, किंतु दुर्बल राजाओं के कुशासन एवं अराजकता के दौर में स्त्री सर्वाधिक अपमानित हुई। स्त्री के कारण कुल में दाग न लगे, पितृसत्तात्मक समाज द्वारा निर्धारित इस नियम की वजह से परवर्ती काल में कुलीन स्त्रियों की अपेक्षा सामान्य स्त्रियां अधिक लांछित व उत्पीड़ित हुईं। यह बात 'कजरियन कौ राछरो' की इस पंक्ति से स्पष्ट है—'हांत काऊ के परियों नईं, लग जैहें कुल में दाग।' सामंती परिवेश में कन्या का जन्म इसीलिए अभिशाप मान लिया गया। पैदा होते ही कन्या पलंग के पाए से दबा दी जाती थी। कन्या का विवाह भी

माता-पिता के लिए एक समस्या थी, दहेज जिसकी एक मुख्य वजह थी। लोकगीत की पंक्ति है—'जिन घर रैहैं पिया की कुंआरी, उस घर काहे की नींद भले जू।' बाल विवाह एवं अनमेल विवाह स्त्री की दुर्दशा के अन्य कारण थे। यौन शुचिता के प्रति पुरुष के दुराग्रह तथा झूठी मर्यादा के नाते ही वह अपमानित होती थी। विधवा का दुःखमय जीवन स्त्री समाज से जुड़ा अहम मुद्दा था। उच्च जातियों में विधवा विवाह वर्जित था, किंतु गौड़, सोर जनजाति और दलित जातियों में विधवा विवाह संपन्न होते थे।

बुंदेलखंड में बेड़िया जाति की स्त्रियों का अपना संघर्षमय अतीत है। वाचिक एवं लिखित इतिहास के अनुसार पृथ्वीराज चौहान के सैनिकों की वंशज इस घुमंतू (खानाबदोश) जाति की स्त्रियों ने परिवार की आर्थिक जरूरतों को पूरा करने के लिए 'सिर ढंकने की प्रथा' अर्थात् रखैल बनना स्वीकार किया और देह व्यापार की ओर मुड़ गईं। 'राई' नृत्य को इन बेड़िनों ने पेट पालने का साधन बनाया। आगे चलकर 'राई' को इनकी कला और इन्हें 'नचनारी' के रूप में राष्ट्रीय स्तर पर ख्याति मिली। बुंदेलखंड के पथरिया बेड़िनी, हवला, लिधौरा, फतेहपुर गांव बेड़िनियों के स्थायी निवास हैं। समाजसेविका चंपा बहन द्वारा स्थापित 'सत्य शोधन आश्रम' एवं मध्य प्रदेश सरकार के कतिपय प्रयासों से शिक्षा और आर्थिक सहायता पाकर आज बेड़िनों की नयी पीढ़ी की जीवन शैली में काफी बदलाव आया है।

बुंदेलखंड के वर्तमान परिदृश्य का अवलोकन करें तो शहर और गांव में बंटे बुंदेली समाज की संरचना में जो अंतर आया है, वह स्त्री के जीवन संसार में सहज लक्षित किया जा सकता है। फैशनपरस्त दुनिया की चकाचौंध में जहां शहरी स्त्री बुंदेली संस्कार व परंपराओं से दूर हुई है, वहीं ग्रामीण स्त्री ठेठ देसी ताने-बाने में रीति-रिवाज व धार्मिक परंपराओं का समर्पित भाव से पालन करते हुए पुरखों की अनमोल थाती को सहेजे हुए है, किंतु, विडंबना यह है कि पितृसत्ता की कैद में गरीबी-भुखमरी का दंश झेलते हुए वह 'पति परमेश्वर' पुरुष के घरे-गृहस्थी को संवारने की खातिर आजीवन दुःख भोगती है और एक दिन चुपचाप संसार से विदा हो जाती है। इसी क्रम में

बुंदेलखंड के गांव एवं शहरों में रहने वाली निम्नवर्गीय समाज की स्त्रियां आती हैं जो कृषि, मजदूरी, बीड़ी उद्योग आदि काम-धंधों में सक्रिय रहने के बावजूद बदहाल जिंदगी बसर करती हैं। बुंदेली स्त्री के समग्र विकास हेतु आज इनकी शिक्षा, स्वास्थ्य, आर्थिक आत्मनिर्भरता आदि दिशाओं में ठोस सरकारी प्रयास बेहद जरूरी है।

संस्कृति और कला के विस्तृत फलक पर अपनी नाना छवियों के साथ बुंदेली स्त्री की उपस्थिति अत्यंत मोहक एवं गरिमामयी है। सौंदर्य और मांगल्य के प्रतिरूप बुंदेलखंड के लोकनृत्य स्त्री सर्जना के स्वत्व हैं। इनमें स्त्री की पारंपरिक प्रतिभा, प्रज्ञा और संज्ञान का सृजनात्मक परिचय ही नहीं, उसकी दैहिक-आत्मिक ऊर्जा तथा कलाबोध का अभिज्ञान होता है। प्राचीन बुदेलखंड के स्थापत्य एवं कलाओं में स्त्री का सौंदर्य चित्रण अभूतपूर्व है। महलों-मंदिरों की मूर्तियों, बाहरी-भीतरी दीवारों, भित्तिचित्रों, स्तंभों, सिक्कों-मुहरों में विभिन्न देवियों व साधारण नारियों के जीवन के अनेक पहलुओं का अंकन स्त्री वैभव का सुंदर निदर्शन कराता है। चंदेल कला की विश्वप्रसिद्ध धरोहर खजुराहो के मंदिरों में उत्कीर्ण देवियों, अप्सराओं, कामकला एवं विविध ललित कलाओं में पारंगत स्त्रियों, योद्धा-आखेटक, क्रीड़ाप्रिय एवं साक्षर स्त्रियों की मूर्तियां बुंदेली स्त्री के अनुपम सौंदर्य का विलक्षण उदाहरण है। बुंदेलखंड में विभिन्न पर्व-उत्सवों पर बनाए जाने वाले भित्तिचित्रों एवं आलेखनों में नारी के मां, बहन, पत्नी, पुत्री रूपों के अलावा लोक देवियों का चित्रांकन भी मिलता है। अपने साज-शृंगार के लिए बुंदेली स्त्रियां जिन पारंपरिक वस्त्र-आभूषणों को धारण करती हैं, वह उनकी रूप राशि में न केवल शोभापरक प्रतीत होते हैं वरन् बुंदेली स्त्री-संस्कृति की झलक देते हैं। बुंदेली बालिकाओं के पारंपरिक खेल भी इस संस्कृति का अभिन्न अंग हैं, जो स्त्री जीवन के आरंभिक पाठ की भूमिका निभाते हैं।

सदियों से शक्ति उपासना के केंद्र रहे बुंदेलखंड के प्रायः प्रत्येक गांव में मातृशक्ति के रूप में प्रतिष्ठित लोक देवियों की पूजा-अर्चना विभिन्न मांगलिक अवसरों पर अलग-अलग जाति के लोगों द्वारा परंपरानुसार की जाती है। परिवार की सुख-समृद्धि और

सामाजिक समरसता व सौहार्द की कामना से युक्त होकर बुंदेली स्त्री जब इन देवियों की उपासना करती है तो उसे अभावों, कष्टों एवं विपरीत परिस्थितियों से जूझने की शक्ति मिलती है। बुंदेलखंड में धार्मिक अनुष्ठान के रूप में पढ़ी-सुनी जाने वाली व्रतकथाएं स्त्री की धार्मिक आस्था और विश्वास का प्रेरणास्रोत हैं। अपने पति, संतान व परिवार के कल्याण की आकांक्षा से प्रेरित स्त्रियां ही इन व्रतकथाओं को बांचती हैं। इनमें अलग-अलग देवियों की महिमा का बखान तथा स्त्री के अच्छे-बुरे आचरण व परिणाम की कथा होती है, जिसे सुनकर स्त्री अपने आचरण को उदात्त बनाने की सीख लेती है तथा संकट से उबरने की क्षमता अर्जित करती है। अश्विन मास में नौ दिन चलने वाला शक्ति आराधना का पर्व 'नौरता' भी बुंदेलखंड के ग्रामीण अंचल की कुंवारी कन्याओं के जीवन का आकर्षण है, जिसके प्रति उनके मन में अटूट श्रद्धा, उमंग एवं उत्साह आज भी कायम है।

'बुंदेलखंड में स्त्री' विषय पर काम करने का विचार बीते बरस बुंदेली पीठ के लिए 'जनकवि ईसुरी' पुस्तक संपादित करने के पश्चात सहसा आया। बुंदेलखंड के इतिहास एवं बुंदेली लोक साहित्य में स्त्री के स्वरूप व अवदान पर मेरे कुछ अनुसंधानपरक आलेख पूर्व में प्रकाशित हो चुके थे, अतएव इस पुस्तक की योजना बनाने में खास परेशानी नहीं हुई। विस्तृत रूपरेखा बनाकर बुंदेलखंड के इतिहास, समाज, साहित्य, कला, संस्कृति के विशेषज्ञ लेखकों से संपर्क किया। कुछ लोगों ने नए विषय सुझाए तो कुछ ने दूसरे लेखकों का पता बताया। अधिकांश ने वादे के मुताबिक आलेख भेजकर सहयोग किया। डॉ. ओमप्रकाश चौबे ने 'चौमासा' पत्रिका के पुराने अंक उपलब्ध कराए, जिनमें से चार लेख यहां प्रस्तुत किए जा रहे हैं। तब जाकर यह आयोजन मूर्त रूप ले सका है। इसमें 'इतिहास और समाज', 'लोक और साहित्य', 'संस्कृति और कला', 'व्यक्तित्व और कृतित्व' एवं 'परिशिष्ट' खंड के अंतर्गत संपूर्ण सामग्री को संयोजित किया गया है। बुंदेलखंड की स्त्री पर एकाग्र यह पुस्तक स्वतंत्र रूप से उसके सामाजिक-सांस्कृतिक इतिहास होने का दावा नहीं करती,

किंतु इतिहास के विभिन्न कालखंडों में बुंदेली स्त्री के सामाजिक यथार्थ को जिस वस्तुपरक ढंग से विश्लेषित करती है, उसे समेकित प्रयास के रूप में देखना उचित होगा।

यह आयोजन सुधी लेखकों के रचनात्मक सहयोग से आखिरकार संपन्न हुआ है, उनके प्रति हार्दिक कृतज्ञ हूं। विश्वविद्यालय के माननीय कुलपति प्रो. एन.एस. गजभिये, कुलसचिव प्रो. एन.के. जैन एवं वित्त अधिकारी प्रो. जे.के. जैन, सहायक कुलसचिव श्री विवेक बिसारिया का विशेष आभारी हूं। सामायिक प्रकाशन के प्रबंधक श्री महेश भारद्वाज का दिल से शुक्रगुजार हूं, जिनके आत्मीय स्नेह-सौजन्य एवं तत्परता से यह पुस्तक समय पर प्रकाशित हो रही है। सहधर्मिणी बिंदुमती त्रिपाठी का सत्संग हर छोटे-बड़े आयोजन में संबल रहा है, यह मेरा सौभाग्य है। प्रियवर सुंदरम के ईमानदार सुझावों ने पुस्तक की योजना से लेकर उसके संयोजन-संपादन तक आनेवाली कई मुश्किलें आसान कर दीं, उसे मेरा आशीष और अशेष शुभकामनाएं।

'बुंदेली अध्ययन माला' के सोलहवें पुष्प के रूप में बुंदेलखंड की स्त्री पर केंद्रित यह ग्रंथ पाठकों को सौंपते हुए बुंदेली पीठ गर्व का अनुभव कर रही है। उम्मीद है जब कभी बुंदेली स्त्री का जिंदगीनामा लिखा जाएगा, यह ग्रंथ संदर्भ कोश की मानिंद उपयोगी सिद्ध होगा।

आनन्दप्रकाश त्रिपाठी

गुप्त, कलचुरि एवं चंदेलकाल में स्त्री

◆ *नागेश दुबे*

प्राचीनकाल में 'बुंदेलखंड' नाम की किसी राजनीतिक इकाई के अस्तित्व का उल्लेख नहीं मिलता। गुप्तकाल में यह प्रदेश एक पृथक प्रशासनिक इकाई के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। सागर जिले में ग्राम एरण में गुप्त वंशीय सम्राट बुधगुप्त के अभिलेख में सम्राट बुधगुप्त के सामंत राजा सुरश्मिचंद्र के यमुना और नर्मदा के मध्यवर्ती भू-भाग के अधिपति होने का उल्लेख है। पांचवी शताब्दी ईसवी के अंतिम वर्षों तक बुंदेलखंड का भू-भाग गुप्त साम्राज्य में सम्मिलित रहा। गुप्तों के पश्चात कलचुरियों, चंदेलों, परमारों, मुस्लिमों, गौड़ों, मुगलों, बुंदेलों और अंग्रेजों की सत्ता इस भू-भाग पर विभिन्न युगों में स्थापित हुई। इन युगों में इस भू-भाग को विविध नामों से जाना गया, जैसे चेदि देश, दशार्ण देश, चंद्रावती, जुझौती, जजाहुति, जैजाकभुक्ति, जुझारखंड तथा विंध्येलखंड और अंततः बुंदेलखंड।

गुप्तकाल में स्त्री

290 ई. से लेकर 400 ई. तक समूचा बुंदेलखंड गुप्त शासकों के अधीनस्थ था। समुद्रगुप्त ने गणपति नाग तथा नागसेन को पराजित कर उनसे एरण का

भू-भाग छीन लिया और एरण पर अपनी राजसत्ता स्थापित की।[1] उसने वृद्धावस्था में अपनी राजमहिषी दत्तादेवी, अपने पुत्रों तथा पौत्रों के साथ एरण में आनंदपूर्वक विश्राम किया तथा एरण को 'स्वभोग नगर' की संज्ञा प्रदान की।[2] समुद्रगुप्त के पश्चात् रामगुप्त, चंद्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य, कुमारगुप्त, स्कंदगुप्त, बुधगुप्त, भानुगुप्त, बालादित्य गुप्त शासकों के शासन काल में बुंदेलखंड गुप्त साम्राज्य में सम्मिलित रहा।

गुप्तकालीन बुंदेलखंड में प्रशासनिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्रों में स्त्रियों का विशेष योगदान रहा है। गुप्तकालीन बुंदेलखंड में राजकुल की स्त्रियों ने प्रशासन में पर्याप्त योगदान किया था। वे प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से माता, पत्नी और पुत्री के रूप में अपने पुत्रों एवं पतियों को राजकाज में समुचित परामर्श दिया करती थी। ह्वेनसांग के अनुसार 'हूण शासक मिहिरकुल' पराजित होने पर बंदी बनाकर जब गुप्त नरेश बालादित्य के सामने लाया गया, तब उसको बालादित्य ने अपनी माता के कहने पर मुक्त कर दिया था। उक्त घटना से स्पष्ट होता है कि बालादित्य की माता निश्चित ही प्रशासनिक नीतियों की ज्ञाता तथा कूटनीति को समझने वाली स्त्री रही होगी। वह प्रशासन में परामर्श दिया करती थीं। राजपरिवार की स्त्रियों को सैन्य शिक्षा भी दी जाती थी ताकि आवश्यकता पड़ने पर वे आत्मरक्षा तथा युद्ध में भाग ले सकें। प्रशासनिक व राजनीतिक क्षेत्रों में जनसामान्य स्त्रियों का उल्लेख नहीं मिलता है।

गुप्तकाल में पत्नी गृहलक्ष्मी मानी जाती थी। कालिदास ने अपनी रचनाओं में उसे पति के साथ धर्माचरण करने के कारण सहधर्मचारिणी कहा है।[3] ऐसा कहा गया है कि सभी आदर्श स्त्री में पाए जाते हैं। विद्या का आदर्श सरस्वती में, धन का लक्ष्मी में, शक्ति का दुर्गा में, सौंदर्य का रति में, पवित्रता का गंगा में, इतना ही नहीं उसे सर्वव्यापी ईश्वर की भी जगत जननी के नाम से सुशोभित किया गया है। इसी प्रकार गुप्त अभिलेखों में रानियों के लिए महादेवी, यज्ञी, भट्टिनी, भट्टारिका, परमभट्टारिका श्रीसंपन्नता, श्रीमती इत्यादि उपाधियों का प्रयोग किया गया है। समुद्रगुप्त के एरण अभिलेख में सम्राट समुद्रगुप्त की भार्या दत्तादेवी की श्री संपन्नता तथा पवित्रता उल्लिखित है।[4] गुप्त राजाओं के सिक्कों पर भी उनकी पत्नियों की आकृतियां अंकित की गई हैं। चंद्रगुप्त प्रथम के सिक्कों पर कुमार देवी एवं समुद्रगुप्त के सिक्कों पर दत्तादेवी की आकृति अंकित है, जो गुप्तकाल में पत्नी की श्रेष्ठ सामाजिक स्थिति का द्योतक है। समुद्रगुप्त के एरण (जिला-सागर)

में प्राप्त अभिलेख में उसकी राजमहिषी दत्तादेवी के ऐश्वर्य व गुणों का उल्लेख किया गया है।

गुप्तकालीन बुंदेलखंड में बहुपत्नीक विवाह के अतिरिक्त अनमेल विवाह एवं गंधर्व विवाह प्रथा भी विद्यमान थी। चंद्रगुप्त द्वितीय ने अपनी पत्नी होते हुए भी ध्रुवदेवी से विवाह किया। कालिदास ने दुष्यंत-शकुंतला के गंधर्व विवाह का उल्लेख किया है। एरण अभिलेख में मातृविष्णु के लिए कहा गया था कि राजलक्ष्मी ने उसका वरण स्वेच्छा से किया था।[5]

गुप्तकालीन बुंदेलखंड में पर्दाप्रथा प्रचलित नहीं थी। गुप्तकालीन सिक्कों पर रानियों की आकृति, यज्ञों में भाग लेना एवं शासन कार्य में सहायता देना आदि ऐसे तथ्य हैं, जिनसे अनुमानित होता है कि पर्दाप्रथा नहीं विद्यमान थी। गुप्तराजाओं की पत्नियां राजसभा में बिना घूंघट के आती थीं। गुप्तयुग की स्त्री प्रतिमाओं तथा चित्रों में घूंघट का कहीं भी चित्रण नहीं है। स्त्रियां बिना पर्दे के सामाजिक उत्सवों में भाग लेती थीं।

गुप्तकाल में, राजपरिवार की स्त्रियों की अपनी व्यक्तिगत संपत्ति होती थी, जिसे वे स्वतंत्रतापूर्वक दान करती थीं। उनके द्वारा अनेक प्रकार के धार्मिक तथा जनकल्याण के कार्य संपन्न किए जाते थे। एरण अभिलेख में दत्तादेवी को स्त्रीधन प्रदान किए जाने का वर्णन है। दत्तादेवी हाथी, अश्व, धन-धान्य की स्वामिनी थी।

गुप्तकालीन बुंदेलखंड में स्त्री कन्या व पत्नी के रूप में तो सम्मानित थी, किंतु माता के रूप में उसका विशेष सम्मान था। गुप्त अभिलेखों में भी माताओं के नाम का उल्लेख है। समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति में लिच्छवि दौहित्र अर्थात् लिच्छवि राजकुमारी का पुत्र और बाद में सभी गुप्त शासकों के अभिलेखों में उसका यही विशेषण प्रयुक्त हुआ है।[6] स्कंदगुप्त के अभिलेखों में भी उसके तीन पूर्वजों की माताओं का उल्लेख है।[7] माता की सेवा करना, भरण-पोषण एवं उसकी आज्ञा का पालन करना पुत्र का कर्तव्य था। बुद्धगुप्त ने एरण में अपने माता-पिता की पुण्यवृद्धि के लिए ध्वज स्थापित करवाया था।

गुप्तकालीन बुंदेलखंड में विधवा की स्थिति श्रेष्ठ थी। उसका दर्शन अमांगलिक नहीं माना जाता था। वह समाज में अनादृत नहीं थी। विधवाएं, धार्मिक और आध्यात्मिक कार्यों में रत रहकर जीवनयापन करती थीं। वे उत्सवों एवं मंगलमय कार्यों में सम्मिलित होती थीं। विधवा विवाह का प्रचलन कम था। चंद्रगुप्त द्वितीय ने अपने भाई की विधवा पत्नी ध्रुवस्वामिनी के साथ विवाह किया था। ध्रुवस्वामिनी की स्थिति किसी विवाहित पत्नी से कम प्रतीत नहीं होती है।

सतीप्रथा का अस्तित्व भी गुप्तकालीन बुंदेलखंड में मिलता है, परंतु इस प्रथा की समाज में मान्यता नहीं थी। पति की मृत्यु के उपरांत स्त्री को सती होने के लिए बाध्य नहीं किया जाता था, वरन विधवाओं की इच्छा पर छोड़ दिया गया था। वे चाहें तो आत्मदाह करें अथवा साध्वी बनकर जीवनयापन करें। सतीप्रथा का उल्लेख कालिदास, वात्स्यायन आदि ने अपने ग्रंथों में किया है, परंतु केवल बृहस्पति तथा विष्णु स्मृतियों में मृत पति के साथ विधवा के सती हो जाने का विधान किया गया है।[8] कुछ सामाजिक एवं धार्मिक मान्यताओं के फलस्वरूप सती प्रथा जोर पकड़ने लगी। यह धारणा प्रबल हो गई थी कि सती के त्याग और प्राणोत्सर्ग से उसके पति के पाप नष्ट हो जाते हैं और वह स्वर्ग में अपनी पत्नी के साथ आनंद और सुख के साथ रहता है। गुप्तकालीन बुंदेलखंड में इस प्रथा के अनेक उदाहरण मिलते हैं। एरण से प्राप्त 510 ई. के एक गुप्तकालीन अभिलेख की लिपि ब्राह्मी तथा भाषा संस्कृत है। इस अभिलेख में उल्लेख है कि भानुगुप्त का सेनापति गोपराज हूणों के साथ एक युद्ध में मारा गया। उसके साथ उसकी पत्नी भी सती हो गई थी।

धर्म में अधिक रुचि होने के कारण गुप्तवंश की स्त्रियां दान एवं मंदिरों के निर्माण का कार्य संपन्न करती थीं। उनकी धारणा थी कि दान करने से स्वर्ग प्राप्त होता है।[9] एरण से प्राप्त अभिलेख के अनुसार समुद्रगुप्त की पत्नी दत्तादेवी ने स्वभोगनगर एरण को बसाया था तथा वहां एक मंदिर का निर्माण कराया।[10] गुप्तकाल में स्त्रियां सच्चे अर्थों में सहधार्मिणी थीं। पत्नी की उपस्थिति के बिना पति कोई भी धार्मिक अनुष्ठान संपादित नहीं कर सकता था। पत्नी की उपस्थिति प्रत्येक शुभकार्य के लिए आवश्यक मानी जाती थी। गुप्तकाल में स्त्रियां विभिन्न व्रत करती थीं। पति के विरह में पत्नी 'विरहव्रत' और उसके अप्रसन्न होने पर 'प्रियसादन व्रत' करती थीं। 'विरह व्रत' में पत्नी समस्त आभूषण त्याग देती थी। वह शृंगारविहीन रहती थी, एक वेणी धारणा करती थीं, वेणी वियोग के दिन बंधती और वियोग की समाप्ति पर खोली जाती थी।[11] 'प्रियसादन व्रत' के दौरान स्त्रियां पुष्प तथा चंदन से चंद्रकिरणों की पूजा करती थीं तथा मिष्ठान्न का नैवेद्य लगाती थी, वे ब्राह्मणों को मिष्ठान्न भेंट करती थीं। इस व्रत की समाप्ति चंद्र और रोहिणी के संयोग को देखकर की जाती थी। स्त्रियों द्वारा 'रत्नषष्ठि व्रत' किए जाने का उल्लेख मिलता है। इसी अवसर पर वे उपवास रखती थीं और ब्राह्मणों को दान में आभूषण देती थीं। अन्य विशिष्ट त्योहारों पर भी स्त्रियां व्रत रखती थी। माताएं पुत्र की दीर्घायु एवं कल्याण

की कामना के लिए 'पुत्रपिंडपालन' व्रत धारण करती थीं। यह व्रत चतुर्थी के दिन किया जाता था। माताएं योग्य ब्राह्मण को प्रतिदिन अपनी सामर्थ्य के अनुसार दान करती थीं। 'मालविकाग्निमित्रम' में महारानी धारिणी के द्वारा वसुमित्र के लिए स्वर्ण परिमाण की दक्षिणा ब्राह्मणों को दिए जाने उल्लेख हैं।

कलचुरि काल में स्त्री

कलचुरियों का अभ्युदय उत्तरी बुंदेलखंड में स्थित कालंजर तथा दक्षिणी बुंदेलखंड डाहल क्षेत्र में गुप्तों के पश्चात हुआ। आठवीं शताब्दी ईस्वी के लगभग कलचुरियों की त्रिपुरी शाखा का उदय हुआ। इस कलचुरि शाखा को चेदि कलचुरि भी कहा जाता है। इनका आधिपत्य चेदि प्रदेश (बुंदेलखंड के डाहल क्षेत्र) पर रहा। डाहल क्षेत्र पर लगभग पांच शताब्दियों तक चेदि कलचुरियों ने शासन किया। कलचुरि अभिलेखों में त्रिपुरी को चेदि कलचुरियों की राजधानी कहा गया है।[12] कलचुरियों की राजधानी त्रिपुरी प्राचीन डाहल में स्थित थी। उत्तरी बुंदेलखंड में भी कलचुरि शासन का अभिज्ञान हुआ है।[13] इस तरह बुंदेलखंड पर कालंजर तथा त्रिपुरी की कलचुरि शाखाओं ने शासन स्थापित किया। बुंदेलखंड पर त्रिपुरी के कलचुरियों का विशेष प्रभाव रहा।[14] लक्ष्मणदेव, गांगेयदेव, कर्ण, गयाकर्ण, नरसिंह देव, जयसिंह देव आदि शासकों के शासनकाल को कलचुरियों की स्मृद्धि का काल माना गया।

बुंदेलखंड के कलचुरिकालीन समाज तथा परिवार में स्त्रियों की स्थिति संतोषजनक थी। कलचुरि अभिलेखों के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि पितृगृहों में पुत्रियों की स्थिति काफी सम्मानजनक थी। अपने माता-पिता के लिए एक अच्छी पुत्री गौरव का प्रतीक मानी जाती थी। कलचुरिकालीन दानपत्रों में कभी दानकर्ता के नाम के साथ उसकी पुत्रियों का नाम भी लिखा हुआ मिलता है, जिससे इस बात की पुष्टि होती है कि कलचुरिकाल में पुत्री के रूप में स्त्रियों का अपने पितृगृह में एक प्रतिष्ठित स्थान सुरक्षित था।[15]

कलचुरि शिलालेखों में वर्णित है कि स्त्रियां अपने अच्छे गुणों के कारण सुंदर प्रतीत होती हैं। स्त्रियों के अच्छे आचरण और पति के प्रति उनके समर्पण की भावना के लिए कलचुरि अभिलेखों में महाकाव्यों एवं पुराणों के सदृश लोकप्रिय साहित्यों में तुलना के निमित्त प्रशंसा के शब्द लिए गए थे।[16] कन्या के रूप में स्त्री जहां माता-पिता के लिए गौरव का प्रतीक रही, वहीं उनका स्थान उपेक्षापूर्ण भी रहा। एक आदर्श स्त्री अपने सद्गुण, शुद्धता एवं सुंदर आचरण के

कारण पतिगृह की प्रतिष्ठा में वृद्धि करने वाली तथा दोनों कुलों को जोड़ने वाली मानी गई। कलचुरि अभिलेख में जयसेन की शीलवान पुत्री गोया की तुलना उस नदी से की गई है, जिसने तीनों लोकों को पवित्र किया था। 'विद्वशालभंजिका' में मृणालवति का उल्लेख पुत्र की भांति हुआ है। पुराणों में पुत्री का जन्म शुभ तथा समाज में सम्माननीय रहा है। मत्स्यपुराण, महापुराण, पद्मपुराण में कन्या को रत्न से श्रेष्ठ, विनयशील, सर्वगुण संपन्न तथा परिवार में प्रिय माना गया है।

तत्कालीन अन्य साहित्यिक साक्ष्य इसके विपरीत उदाहरण प्रस्तुत करते हैं, जिनमें पुत्र की तुलना में पुत्री का स्थान निम्न आंका गया है। तद्नुसार पुत्री का जन्म दुःख एवं संताप का कारण माना गया है। पुत्री की अपेक्षा पुत्र का जन्म अधिक आवश्यक तथा प्रसन्नता का सूचक था, जिसकी पुष्टि अन्य साक्ष्य भी करते हैं। समाज में कन्या का कुल भी महत्त्वपूर्ण था। उच्चकुल की कन्याएं निम्न कुल की अपेक्षा अधिक सम्माननीय हुआ करती थीं, जिनके नाम का यत्र-तत्र दानकर्ताओं के नामों के साथ उल्लेख हुआ है।[17]

पत्नी के रूप में स्त्रियां परिवार का प्रमुख अंग रही हैं। वह पुरुष की अर्द्धांगिनी कही जाती थीं। धार्मिक यज्ञादि कार्यों में उनकी उपस्थिति अति आवश्यक होती थी। पुराणों में स्त्री को बिना पुरुष के अपूर्ण माना गया है। स्त्री के मातृत्व (पालन-पोषण), मैत्री, पत्नी (संयोग), सखी (सहायककरण), भाभी (स्नेह) एवं वेश्या (शयन सुख) इत्यादि रूपों का स्मरण किया गया है। समाज में सर्वगुण संपन्न स्त्रियां जहां सम्मान की पात्र होती थीं, वहीं दुर्गुणों से युक्त स्त्रियों की अवहेलना की जाती थी। गुणी पत्नी, पति की प्रिय होती थी। सुलक्षणवर्मन के अभिलेख में मालव्यदेवी को सर्वगुण संपन्न महारानी कहा गया है।

अभिलेखों में राजवंश की पत्नियों के लिए 'रानी', 'महारानी', 'राजमहिषी', 'पटरानी' इत्यादि सम्मानसूचक शब्द प्रयुक्त हुए हैं। मूर्तिकला में पत्नी के विविध पहलुओं का चित्रण हुआ है।[18] इस प्रकार समाज के उच्च कुल में पत्नियों की स्थिति तो ठीक ही रही, लेकिन बहुपत्नी-प्रथा एवं सती प्रथा के चलते उनकी स्थिति को ठीक नहीं कहा जा सकता। सामान्य घरों की नारियां आर्थिक दृष्टि से कमजोर थीं।

भारतीय संस्कृति मातृप्रधान रही है। माता को देवतुल्य मानते हुए समाज में कहीं-कहीं पिता की अपेक्षा माता को अधिक सम्माननीय कहा गया है। साहित्य में माता के लिए 'अम्बा', 'अम्बि', 'अम्बालिका', 'अम्बिका', 'प्रसू', 'जानि' एवं 'जननी' इत्यादि शब्द प्रयुक्त हुए हैं। वैदिक काल से लेकर पूर्व-मध्यकाल तक

विभिन्न कालक्रमों में उसके त्याग, तप एवं प्रेम, गौरव का उल्लेख मिलता है। पुराणों में वह तीनों लोकों की कल्याणकारी, मंगलकारी, महादेवी, यशस्विनी, जगत-जननी, महाशक्तिशाली, जगदंबा कही गई है। स्त्रियां समाज में वीर पुत्रों की माताएं कहलाने में गौरव का अनुभव करती थीं।

मूर्तिकला के दृश्यांकनों में माता का मातृत्व व वात्सल्य रूप दिखाई देता है। कहीं वह बच्चों के साथ अठखेलियां करती, शिक्षा देती, कहीं उनकी सुरक्षा करती, कहीं असीम प्यार करती, कहीं बच्चों को गोद में लिए हुए, कहीं अपनी गोद में बैठाने का प्रयास करती हुई आदि रूपों में दिखाई देती है। ऐसे ही चित्रण बिलहरी की कलचुरिकालीन प्रतिमाओं में देखने को मिलते हैं। इस प्रकार कलचुरिकालीन समाज में माताओं का स्थान देवतुल्य तथा पूजनीय माना गया है।

विधवा नारी की स्थिति प्राचीन काल से ही अत्यंत शोचनीय रही है। पूर्व मध्यकालीन अनेक ग्रंथों में उनकी स्थिति एवं उनके साथ किए जाने वाले दुर्व्यवहार पर प्रकाश पड़ता है। कलचुरिकालीन समाज में विधवा नारी के लिए दो विकल्प थे—पति के साथ अनुमरण (सती होना) अथवा आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए संपूर्ण जीवन व्यतीत करना। विधवा स्त्री के लिए समाज में अनेक कठोर नियम होते थे, जिनका पालन करना आवश्यक होता था। 'वृद्धहारिती' में उल्लेख है कि विधवाओं को साज-शृंगार व बाल संवारने का अधिकार नहीं होता था, उन्हें संयमपूर्ण जीवन जीने के लिए बाध्य किया जाता था और ऐसा न करने पर राजा द्वारा उन्हें घर से निकाल दिया जाता था तथा उनकी संपत्ति की रक्षा भी राजा ही करता था। कलचुरि अभिलेखों में भी विधवाओं के दुःखी जीवन की झलक मिलती है।[19]

तत्कालीन पुराणों में विधवा को 'अमांगलिक', 'मंदभागिनी' अथवा 'दुर्भाग्यशालिनी' एवं 'अशुभ' आदि शब्दों से संबोधित कर उसके साथ उपेक्षित व्यवहार करने की जानकारी प्राप्त होती है। उन्हें यज्ञ, हवन आदि शुभकार्यों से निष्कासित कर तथा नरकगामिनी कहकर अपमानित किया जाता था। उपर्युक्त उदाहरणों से ज्ञात होता है कि अत्यधिक कठोरपूर्ण जीवन न जीने की आदी स्त्रियां पति की मृत्यु के पश्चात अधिकांशतः सती होना अधिक श्रेयष्कर मानती थीं। समाज में सती होने के दो रूप प्रचलित थे, सहगमन (पत्नी का पति की मृत्यु पर पति के शव के साथ जलकर प्राण-त्यागना) तथा अनुमरण (पति की मृत्यु अन्य स्थान पर होने पर उसकी भस्म अथवा पादुका लेकर पत्नी का अग्नि में प्रवेश कर प्राण त्यागना)। यदाकदा साहित्य में ऐसे भी वर्णन मिलते हैं, जिनमें पत्नियां पति की मृत्यु पूर्व ही सती होने की इच्छुक होती थीं।

सती प्रथा का प्रारंभ प्राचीनकाल में हो गया था, पर संभवतः समाज में उसे बहुत मान्यता प्राप्त नहीं हुई थी। केवल बृहस्पति[20] और विष्णु[21] ने मृत पति के साथ विधवा के सती हो जाने का विधान किया है। कलचुरिकाल में भी सती प्रथा प्रचलित थी। कलचुरि अभिलेखों में भी इस प्रथा का उल्लेख है। यशःकर्ण के खैरहा ताम्रपत्रों में गांगेय देव की सभी सौ पत्नियों के वट वृक्ष के निकट जलकर मरने (अर्थात् सती होने) का जिक्र है।[22] इसी प्रकार जाजल्ल देव द्वितीय के शिवरीनारायण शिलालेख (चेदि संवत 919) में कहा गया है कि जब त्रिपुरी के जय सिंह देव के साथ युद्ध में अल्हणदेव की मृत्यु हो गई, तब उसकी तीनों पत्नियों ने सती के रूप में प्राण त्याग दिए।[23] इस संदर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि इस प्रथा का पालन कलचुरिकाल में स्त्रियों के लिए आवश्यक नहीं था। उदाहरणस्वरूप अल्हणदेवी एवं गोसलदेवी के समान विधवा रानियां अपने पतियों की मृत्यु के पश्चात् जीवित ही नहीं रहीं, बल्कि अपने परामर्श से अपने पुत्रों को राजकाज में सहायता भी करती रहीं।

ऐसा विदित होता है कि सती प्रथा का प्रभाव सामान्य स्त्री की अपेक्षा राजपरिवारों की विधवा स्त्रियों पर अत्यधिक रहा। विधवा स्त्रियों द्वारा सती होना उनकी इच्छा पर निर्भर करता था। इसकी पुष्टि धर्मशास्त्र भी करते हैं। अरब यात्री सुलेमान ने भी कहा है कि समाज में सती होना विधवा स्त्री की इच्छा पर निर्भर करता था। गर्भवती विधवा स्त्री के लिए सती होना अनुचित था। समाज में ऐसी विधवा स्त्रियों के भी उदाहरण हैं, जिन्होंने अपने अल्प वयस्क पुत्रों के अभिभावक के रूप में पालन-पोषण किया और सती होना त्याग दिया। गोसलदेवी और अल्हण देवी ऐसी ही स्त्रियां थीं, जो सौभाग्य-सूचक वस्तुओं एवं चिह्नों का परित्याग कर श्वेतवस्त्र धारण करती थीं। उन्हें अत्यंत साधारण व कठिन जीवन जीना पड़ता था। विधवा स्त्री का पुनर्विवाह उचित नहीं माना जाता था, जबकि स्मृतिकारों ने विधवाओं को पुनर्विवाह की अनुमति तो दी है, लेकिन धार्मिक कृत्यों की नहीं।[24]

इस प्रकार पूर्व मध्यकालीन साहित्य एवं पुरातात्त्विक साक्ष्यों से कलचुरिकालीन समाज में नारी के कन्या, पत्नी, माता एवं विधवा रूपों में परिवर्तन दिखाई देता है। समाज में स्त्री को उक्त रूपों में सम्मानजनक स्थान प्राप्त है, परंतु तथ्य यह है कि समाज में उच्च कुल की नारी की स्थिति तो संतोषजनक रही, किंतु निम्नकुल की नारी की नहीं।[25]

कलचुरि काल में स्त्रियां काफी शिक्षित हुआ करती थीं। इस दृष्टि से स्त्रियों की स्थिति सुदृढ़ थी। इस बात के प्रचुर प्रमाण भी उपलब्ध हैं। कर्ण के सारनाथ

शिलालेख (कलचुरि संवत् 810) में स्त्रियों की शिक्षा के प्रति प्रेम का संकेत मिलता है, जिसमें यह कहा गया है कि महायान बौद्ध धर्म की अनुयायी मामका ने 'अष्टसाहस्रिकाप्रज्ञापारमिता' की एक प्रति महाबोधि महाविहार के प्रतिष्ठित भिक्षु को प्रदान करने के लिए लिखवाई थी। राजशेखर के अनुसार शिक्षा एवं ललितकला में प्रशिक्षण की सुविधा सभी वर्ग की स्त्रियों के लिए उपलब्ध थी। राजेशखर के नाटकों में राजदरबार की स्त्रियों एवं रानी की सखियों को संस्कृत एवं प्राकृत श्लोकों की रचना में पूर्णतया सक्षम बताया गया है। नृत्य, संगीत एवं चित्रकला स्त्रियों के प्रिय विषय थे और इस संदर्भ में राजशेखर ने कई उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। 'काव्यमीमांसा' में नृत्य के प्रशिक्षण से संबंधित एक दृश्य प्रस्तुत किया गया है। स्त्रियों की नियुक्ति सशस्त्र सुरक्षाकर्मियों के रूप में की जाती थी और उनमें से कुछ सैन्य शिविर के साथ युद्धभूमि में भी जाती थीं। स्पष्ट है कि स्त्रियों को अस्त्र-शस्त्र संचालन का शिक्षण अवश्य दिया जाता था।

जहां तक मदिरापान की आदत का प्रश्न है, अनेक कलचुरि अभिलेखों में मदिरापान के प्रति स्त्रियों का अनुराग मिलता है। इस काल के अभिलेखों में महुआ के पेड़ (मधुक का वृक्ष) का उल्लेख प्रायः मिलता है, जिसके फूलों से मदिरा बनाई जाती थी।[26] ग्रंथों में नायिकाओं पर मदिरापान का प्रभाव, मदिरापात्र में स्त्रियों के द्वारा मदिरा डालने आदि का उल्लेख प्राप्त होते हैं। उस समय संभवतः एक बहुत बुरी आदत प्रचलित थी, जिसमें प्रेमी अपने मुंह की मदिरा का कुल्ला प्रेमिका के मुंह में डालता था, इसका संकेत 'काव्यमीमांसा' में मिलता है। इस ग्रंथ में इस बात का संकेत है कि मदिरा की दुर्गंध छिपाने एवं श्वास में मिठास (सुगंध) भरने के लिए स्त्रियां पान एवं काली मिर्च का उपयोग करती थीं।[27]

कलचुरि काल में स्त्रियां सूती एवं रेशमी वस्त्र पहनती थीं।[28] रेशमी वस्त्र, निःसंदेह राजघराने एवं उच्च वर्ग की स्त्रियों का मनपसंद वस्त्र था। 'विद्वशालभंजिका' में चीन से रेशम के आयात का उल्लेख है। सभी वर्गों की स्त्रियां सूती वस्त्रों का उपयोग करती थीं, इस बात का प्रचुर प्रमाण राजशेखर की कृतियों में उपलब्ध है। स्त्रियां सामान्यतः दो प्रकार के वस्त्र—उत्तरीय एवं अधोवस्त्र पहनती थीं। इनके अतिरिक्त वे दो अन्य वस्त्रों अर्थात चोली एवं ओढ़नी का भी उपयोग करती थीं। स्त्रियां साड़ी पहनती थीं। साड़ी, धोती की तुलना में अधिक लंबी होती थी, क्योंकि इसे टखने तक ढंकना पड़ता था। मूर्तियों के अध्ययन से पता चलता है कि धोती के समान ही साड़ी भी स्त्रियों के शरीर के ऊपरी भाग को नहीं ढंकती थी। इसके

निमित्त वे उत्तरीय (ओढ़नी) का इस्तेमाल करती थीं। साधारणतः उनका वक्ष चोली अथवा स्तन-पट्ट से ढंका रहता था। कतिपय उद्धरणों में चोली स्त्रियों के शरीर के नाभि से ऊपर के भाग एवं दोनों बांहें को ढंकती थी। स्त्री एवं पुरुष दोनों के वस्त्रों पर बेलबूटे अथवा विविध अलंकरण बने होते थे।[29]

उपर्युक्त वस्त्र सामान्य दिनों में ही पहने जाते थे। विशेष अवसरों—जैसे पर्व-त्योहार, धार्मिक अनुष्ठान आदि के साथ ही विभिन्न ऋतुओं में विशिष्ट प्रकार के वस्त्र पहने जाते थे। इसका उल्लेख 'काव्यमीमांसा' में हुआ है। लक्ष्मणराज द्वितीय के कारीतलाई शिलालेख में स्त्रियों द्वारा पर्व के अवसर पर पहने जाने वाले वस्त्रों की एक झलक मिलती है। सोमेश्वर की पत्नियों के द्वारा उपयोग में लाए गए विशेष प्रकार के वस्त्रों के बारे में एक अभिलेख में वर्णित है, ''पर्वों के अवसर पर उनकी पत्नियों के वस्त्राभूषण इस प्रकार के थे—विशेषरूप से आकर्षक, पर असाधारण, जिसमें करधनी (मेखला) के स्थान पर मूज्ज की रस्सी बंधी हुई थी, चोली (अंगिया) सहित रेशमी वस्त्र के स्थान पर सूती वस्त्र पहना गया था।''

स्त्रियां विविध प्रकार के आभूषणों से अपने आपको सुसज्जित करती थीं। कलचुरि अभिलेखों में कमरधनी, चार लड़ियों का कंठहार, मोतियों का हार, कर्णाभूषण, चूड़ी, बाजूबंद सदृश आभूषणों का उल्लेख है। इन बहुमूल्य आभूषणों में रत्न जड़े रहते थे, जिनमें मोती, लाल रत्न, विभिन्न रंगों के हीरे एवं जवाहरात थे। इन सभी का उल्लेख कलचुरि अभिलेखों में हुआ है।[30]

वस्त्र किस प्रकार पहने जाते थे अथवा शरीर का कितना भाग नग्न रहता था, इस संबंध में मूर्तियों के आधार पर अनुमान करना अधिक उपयुक्त प्रतीत नहीं होता, अर्थात् यह नहीं कहा जा सकता है कि स्त्रियां अपने संपूर्ण शरीर को अथवा शरीर के कुछ भाग को ढंकना नहीं चाहती थीं। समाज में इस प्रकार की वेशभूषा का प्रचलन नहीं रहा होगा। स्त्रियां शृंगारप्रिय अवश्य थीं, किंतु शृंगारिकता का मापदंड आधुनिक युग की भांति नहीं था। वे अपने शरीर को वस्त्रों तथा आभूषणों से पूर्णतया ढंके रहती थीं।

अभिलेखीय एवं साहित्यिक साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि इस काल में सौंदर्य प्रिय स्त्रियों के द्वारा अपने शरीर एवं चेहरे को सजाने-संवारने के निमित्त विभिन्न प्रकार के सौंदर्य प्रसाधनों पर ध्यान दिया जाता था। केसर का लेप, सुगंधित पदार्थ, अंजन, चंदन का लेप, सिंदूर, कर्पूर का चूर्ण, हरिताल आदि के इस्तेमाल का संकेत कलचुरि अभिलेख में मिलता है। कुछ कलचुरि अभिलेखों में दर्पण का

भी उल्लेख है।[31] शृंगारशाला का उल्लेख नरसिंहदेव के भेड़ाघाट शिलालेख में हुआ है। राजशेखरकृत काव्यमीमांसा में विभिन्न ऋतुओं में व्यवहृत प्रसाधनों की विस्तृत सूची दी हुई है।[32]

नदी, झील एवं सरोवर में जलक्रीड़ा विवाहित एवं अविवाहित स्त्रियों की उनकी मनपसंद क्रीड़ा थी। विजयसिंह देव के रीवा शिलालेख (कलचुरि संवत 944) में उन स्त्रियों का उल्लेख हैं, जो अपने पतियों के साथ सरोवर में क्रीड़ा करती थीं। उसी अभिलेख में एक और जलक्रीड़ा का उल्लेख है, जिसके अनुसार विवाहित युवतियां एवं उनके पति पिचकारियों से एक-दूसरे को भिगोते थे। राजशेखर ने उल्लेख किया है कि नर्मदा में स्नान करती हुई अंतःपुर की सुंदर स्त्रियां अपने पतियों पर पिचकारियों से जल की बौछार करती थीं। नृत्य, संगीत, राग, गायेन, चित्रकारी तथा झूला झूलना स्त्रियों के मनोरंजन के अन्य प्रमुख स्रोत थे। कलचुरिकाल में लिखे गए नाटकों में राजशेखरकृत विद्धशालभंजिका का उल्लेख विशेष रूप से किया जा सकता है।[33]

वस्तुतः कलचुरिकालीन समाज तथा परिवार में स्त्रियों की स्थिति पूरी तरह सम्मानजनक थी। आधुनिक युग की दृष्टि से कलचुरिकालीन स्त्रियां पूर्ण स्वतंत्र न थीं। पुरुष सत्तात्मक व्यवस्था में उनके पूर्ण मानवीय व्यक्तित्व का विकास नहीं हो पाया था। अपवादों को छोड़ दिया जाए तो वे स्त्रियां प्रायः तत्कालीन व्यवस्था में उपेक्षित थी। सतीप्रथा के नाम पर उनके प्रति अत्याचारपूर्ण व्यवहार होता था।

चंदेलकाल में स्त्री

प्रतिहार साम्राज्य के पतन के पश्चात बुंदेलखंड की भूमि में चंदेलवंश की स्वतंत्र राजनीतिक सत्ता प्रारंभ हुई। चंदेलों का समय नवमी शताब्दी ई. से तेरहवीं शताब्दी तक माना जाता है। इस वंश की स्थापना 831 ई. के लगभग नन्नुक नामक व्यक्ति ने की थी। वह एक वीर शासक था। इसके बाद उसका पुत्र वाक्पति राजा हुआ। इसके पुत्र जयशक्ति और विजयशक्ति ने मिलकर प्रतिहार नरेश महेन्द्रपाल को राष्ट्रकूट तथा बंगाल के पाल नरेश के विरुद्ध युद्ध में सक्रिय सहयोग दिया था। जयशक्ति निःसंतान था। इसलिए विजयशक्ति का पुत्र राहिल शासक बना। इसके पुत्र हर्ष ने 915 ई. से 920 ई तक शासन किया। हर्ष ने प्रतिहारवंश की अंतर्कलह में भाग लेकर अपने सहयोगी महिपाल को सिंहासनरूढ़ कराने में सहयोग किया तथा चंदेलवंश की प्रतिष्ठा में वृद्धि की। हर्ष के मरणोपरांत यशोवर्मन सिंहासन पर बैठा

और 925 से 950 ई. तक राज्य किया। यशोवर्मन के पुत्र धंग ने 950 ई. से 1102 तक शासन किया। चंदेलों की वास्तविक स्वतंत्रता का जन्मदाता यही नरेश था। धंग ने चंदेलवंश की कीर्ति को सुदूर तक फैलाया। धंग इतना शक्तिशाली राजा था कि कौशल, विदर्भ, कुंतल और सिंहल के शासक बड़े विनीत भाव से उसका आदेश सुनते थे और कांची, आंध्र, राठ और अंग के राजाओं की रानियां उनके कारागृहों में चिरकाल तक पड़ी थीं।

धंग के पश्चात उसके पुत्र गंडदेव ने सन् 1002 ई. से 1019 ई. तक शासन किया। गण्डदेव का पुत्र विद्याधर राजा हुआ और 1019 ई. से 1029 ई. तक शासन किया। इसके बाद क्रमशः विजयपाल (1040 ई. से 1050 ई. तक) कीर्तिवर्मन, सल्लक्षण वर्मा, जय वर्मा, पृथ्वी वर्मा, मदन वर्मा, यशोवर्मन, परमार्दि देव, त्रिलोकवर्मन और आगे चलकर अनेक चंदेलवंशीय शासक हुए। परवर्ती शासकों के कारण ही चंदेलवंश का गौरव लुप्त हुआ। भारत में मुस्लिम राज्य की स्थापना से भी इस वंश को भारी आघात लगा। इन राजाओं की विलासिता भी चंदेल वंश के पतन का कारण बनी।

चंदेलकालीन बुंदेलखंड में स्त्रियों की स्थिति श्रेष्ठ थी। सामाजिक प्रथाओं के अंतर्गत पर्दा-प्रथा के प्रमाण नहीं मिलते हैं। इसका समर्थन अबुजैद नामक अरब यात्री भी करता है। उसके अनुसार भारत के अधिकांश राजा अपनी रानियों को दरबार में उपस्थित होने की अनुमति देते थे।[34] खजुराहो की मूर्तियों में स्त्रियों के सिर पर चुनरी नहीं दिखाई गई।[35] सामाजिक एवं धार्मिक कार्यों में स्त्रियों को पूर्ण स्वतंत्रता थी। वे सामाजिक समारोहों एवं धार्मिक कार्यों में भाग लेती थीं। विवाह सजातीय होते थे। समाज में बहुपत्नी विवाह भी होते थे। चंदेल अभिलेखों से इसकी पुष्टि होती है। धंग के खजुराहो अभिलेख से विदित होता है कि हर्ष ने सवर्ण जाति की (चाहमान वंश) सुयोग्य कन्या कंचुका से विवाह किया।[36] यशोवर्मन की पत्नी पप्पादेवी भी श्रेष्ठ परिवार की थी।[37] विद्याधर की रानी सत्यभामा भी क्षत्रिय गोपाल की पुत्री थी।[38] वीरवर्मन की महारानी कल्याणदेवी दधीचि वंश से संबंध रखती थी।[39] उपर्युक्त संदर्भों से स्पष्ट होता है कि समाज में सवर्ण विवाह की प्रतिष्ठा थी।

अनुलोम तथा प्रतिलोम विवाह भी समाज में प्रचलित थे, किंतु इसके अभिलेखीय साक्ष्य प्राप्त नहीं होते हैं। साहित्यिक साक्ष्य ही उपलब्ध हैं। 'प्रबोधचन्द्रोदय'[40] में अहंकार नामक पात्र कहता है कि, "हे मूर्ख! सुनो, हमारी मां उतने ऊंचे कुल

की न थी, किंतु हमने श्रोत्रिय की कन्या से विवाह कर लिया है, अतः मैं पिताजी से बड़ा हूं।'' इसी प्रकार प्रतिलोम विवाह के संबंध में अलबेरूनी[41] लिखता है कि किसी मनुष्य को अपने से उच्च वर्ग की स्त्री से विवाह करने की आज्ञा नहीं है। अलबेरूनी के कथन की पुष्टि भारतीय धर्मशास्त्रों से भी होती है।[42]

बहुविवाह प्रथा समाज में विद्यमान थी, किंतु अभिलेखीय साक्ष्य उच्च वर्ग, विशेषकर राजपरिवारों में बहुविवाह पर प्रकाश डालते हैं। मदनवर्मन के मऊ-शिलालेख से विदित होता है कि कीर्तिवर्मन के मंत्री अनन्त की दो पत्नियां थीं।[43] एक अन्य अभिलेख में देवगण की भी दो पत्नियों का उल्लेख है।[44] मदनवर्मन के भारत कला-भवन पत्र से उसकी तीन रानियों—महारानी बल्हना देवी, लक्ष्मणदेवी और रानी चंदनदेवी के नाम ज्ञात होते हैं।[45] साहित्यिक साक्ष्यों से भी इसकी पुष्टि होती है। अलबरूनी लिखता है कि स्त्रियों में से यदि कोई एक मर जाए तो पुरुष दूसरी ले आ सकता है, किंतु उसे इससे आगे न जाना चाहिए।[46] 'प्रबोध चन्द्रोदय' में भी उल्लेख है कि देवगण की दो पत्नियां प्रवृत्ति तथा निवृत्ति थीं।[47] अनेक अभिलेखीय साहित्यिक साक्ष्यों से स्पष्ट होता है कि चंदेल काल में बहुविवाह संपन्न होते थे और ये सभी राजघरानों एवं उच्चवर्गीय समाज से सम्बद्ध हैं। साधारण समाज में बहुविवाह प्रचलन की जानकारी अभिलेखों से नहीं प्राप्त होती है।

राजाओं की स्त्रियां अपने पतिव्रत धर्म को निभाना अच्छी तरह से जानती थीं। यशोवर्मन के वि.स. 1011 अभिलेख[48] में हर्ष की पत्नी कंचुका को पतिव्रत धर्म में अरुंधती से बढ़कर बताया गया है। यशोवर्मन की पत्नी पप्पादेवी की तुलना इंद्र की रानी शुचि से की गई है।

पति की मृत्यु के उपरांत पत्नी को विधवा का जीवन व्यतीत करना पड़ता था। अलबरूनी विधवा विवाह का विरोध करते हुए कहता है कि यदि मृत्यु के कारण स्त्री का पति न रहे तो वह दूसरे पुरुष से विवाह नहीं कर सकती थी। सिंदूर सुहागिन स्त्रियों का प्रतीक होता है। अतः स्पष्ट होता है कि विधवा स्त्री इसका उपयोग नहीं कर सकती थी। यशोवर्मन के खजुराहो अभिलेख[49] से विदित होता है कि विधवा स्त्रियों के लिए सिंदूर तथा आभूषण आदि वर्जित थे।

प्राचीन काल से ही पुरुषों ने स्त्रियों के कर्तव्यों एवं अधिकारों को निर्धारित करने का दायित्व स्वयं अपने अधिकार में ले रखा था। उसके जीवन को पति के अस्तित्व-अनस्तित्व से जोड़ दिया गया है। संभवतः इसी से सती जैसी कुप्रथाओं का उद्भव हुआ।

सती प्रथा के संबंध में अभिलेखों से प्रकाश नहीं पड़ता है। तत्कालीन साहित्य में इसका वर्णन मिलता है। अलबरूनी[50] कहता है कि विधवा स्त्री को केवल दो बातों में से एक चुननी पड़ती है या तो वह आजीवन विधवा रहे या अपने को जला डाले। सती प्रथा को ही अच्छा समझा जाता है; क्योंकि विधवा के रूप में स्त्री जब तक जीती है, उसके साथ बुरा व्यवहार किया जाता है। राजाओं की भार्याओं के विषय में, चाहे उनकी इच्छा हो या न हो, अपने को जला देने की रीति है। इसमें अपवाद वे केवल प्रौढ़ अवस्था की या बच्चे वाली स्त्रियों को ही बनाते थे, क्योंकि पुत्र अपनी माता का जिम्मेदार रक्षक है।[51] डॉ. अल्तेकर[52] के अनुसार सती प्रथा केवल राजवंश तक ही सीमित नहीं थी, उसका प्रचार जन-साधारण में भी था।

देवदासी प्रथा पर चंदेल काल के अभिलेखों से प्रकाश पड़ता है। मर्दन वर्मन् के कालंजर अभिलेख[53] में नीलकंठ मंदिर में नाचने वाली महानर्तकी पद्मावती का उल्लेख है। इस तथ्य से विदित होता है कि चंदेलकाल में देवदासी प्रथा का अस्तित्व था और इस प्रथा को राजाओं का खुला समर्थन प्राप्त था। तत्कालीन साहित्य में भी देवदासी प्रथा की पुष्टि होती है। अलबरूनी[54] लिखता है कि वेश्यावृत्ति को दंडित करने में हिन्दू उतनी कड़ाई से काम नहीं लेते थे, परंतु इनमें दोष राजा का है, जाति का नहीं। यदि नहीं है तो कोई भी ब्राह्मण या पुरोहित अपने मंदिरों में उन स्त्रियों को सहन न करे, जो गाती, नाचती तथा क्रीड़ा करती हैं। राजा उन्हें केवल आर्थिक कारणों से अपने नगर के आकर्षण और अपनी प्रजा के प्रमोद का साधन बनाते हैं। अलबरूनी के कथन से यह स्पष्ट होता है कि देवदासी प्रथा इस समय थी, किंतु उसने वेश्या और देवदासी में स्पष्ट अंतर नहीं किया।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि पूर्वकाल की अपेक्षा चंदेलकाल में स्त्रियों की अवनति हुई। इस काल में मुसलमानों के आक्रमण होने लगे थे, जिससे नारी की स्थिति प्रभावित हुई।

खजुराहो की मूर्तियों एवं तत्कालीन साहित्य से स्त्री की वेशभूषा, अलंकरण व सौंदर्य प्रसाधनों की जानकारी मिलती है। चंदेलकाल में नारी वस्त्रों में साड़ी, चुनरी व चोली का प्रचलन था।[55] साड़ी स्त्रियों का प्रमुख वस्त्र था, लेकिन उस समय साड़ी को पेटीकोट की तरह पहनते थे। गांठ सामने की तरफ रहती थी। उस समय चोली या कुचबंध (जो कपड़े की एक संकरी पट्टी होती थी) का प्रयोग वक्षस्थल के मध्य भाग को ढंकने के लिए किया जाता था। इस काल में कलात्मक

वस्त्रों, परिधानों का प्रचलन था। चोली की तरह चुनरी भी एक संकरी पट्टी की तरह होती थी, जिसे बाजुओं के नीचे से लेकर दोनों कंधों के ऊपर डाला जाता था, जो सिर के पीछे की तरफ लहराती या उड़ती रहती थी।

स्त्रियों के पहनावे के संबंध में अलबरूनी का कथन है कि कुर्त्तकों (बाहों वाली छोटी कमीज, जो कंधों से शरीर के मध्य तक होती है) की काट दाएं-बाएं दोनों ओर होती है।[56] स्त्रियां बहुधा रंगीन वस्त्र पहनती थीं।[57] 'प्रबोधचन्द्रोदय' से भी इसकी पुष्टि होती है। उसमें नारी को रंग-बिरंगे कपड़ों से सजाने की कल्पना की गई है।[58]

केश सज्जा के संबंध में अभिलेखीय साक्ष्य पर्याप्त जानकारी नहीं देते हैं। परमर्दि देव के बटेश्वर अभिलेख[59] से विदित होता है हवन की अग्नि का धुआं ऐसा तेजस्वी था कि बहुत ही साफ-साफ रेखाओं में विभक्त होने के कारण ऐसा मालूम पड़ता था कि ये उन स्त्रियों के गुंथे केशों की वेणी वक्षस्थल के ऊपर लटकती हुई शोभा को प्राप्त होती थी। प्रस्तुत तथ्य से विदित होता है कि स्त्रियां केशों को गूंथकर वेणी बनाती थीं। प्रायः केश लंबे ही होते थे।

इसके अतिरिक्त खजुराहो कला में दो प्रकार के केश विन्यास के दर्शन होते हैं—प्रथमतः बालों में नीचे की ओर कंघा करके बालों को एक साथ इकट्ठा करके, उन्हें लपेटकर, पीछे एक बड़ी गांठ लगा देते थे। दूसरे प्रकार के केश विन्यास में बालों को ऊपर की ओर कंघा करके लपेटा जाता था। इस लंबी चोटी को सिर के ऊपर अर्द्ध चक्राकार तवे के आकार में रखते हैं तथा बालों को बालों के बीच गोलाकार रखते हैं।[60]

सौंदर्य प्रसाधनों के संबंध में चंदेल अभिलेखों से प्रत्यक्ष रूप से जानकारी प्राप्त नहीं होती है। विवाहित स्त्रियों के लिए सिंदूर इस समय का प्रमुख प्रसाधन था। अभिलेखों में विजेता राजा को प्रायः पराजित राजाओं की पत्नियों के सिंदूर का अपहर्ता कहा गया है। वि.सं. 1011 खजुराहो अभिलेख[61] में उल्लेख है कि राजा को अपने शत्रु राजा की पत्नी के सिंदूर (सौभाग्य सूचक) के प्रयोग से वंचित करने वाले के रूप में वर्णित किया गया है। 'प्रबोधचन्द्रोदय' में भी राजा कहता है कि प्रभो, दानवों की पत्नियों के भाल स्थल में सिंदूर रूपी संध्या को दूर करने में सूर्य के समान हैं।[62] इसी प्रकार महोबा प्रस्तर अभिलेख में शिव की पूजा के निमित्त कुमकुम, कपूर एवं पुष्पों का वर्णन आया है।[63] अतः संभवतः ऐसा प्रतीत होता है कि इनका प्रयोग स्त्रियां भी अपने सौंदर्य के लिए करती होंगी। कुमकुम का प्रयोग इस युग में सामान्य प्रचलन में था। 'प्रबोधचन्द्रोदय' में कुमकुम का उल्लेख है।[64]

अलबरूनी ने भारतीय स्त्री के कानों में बालियां, हाथों में चूड़ियां, हाथ व पैरों में सोने की अंगूठियां व छल्ले पहनने का उल्लेख किया है।[65] 'प्रबोधचन्द्रोदय' में भी विविध स्थलों पर आभूषणों की चर्चा है; जैसे खनखनाते हुए मणि के मुक्ताहार, सोने के चरणालंकार, कुमकुम के राग, सुगंधित पुष्प, विभिन्न मालाएं इत्यादि।[66] इन संदर्भों से स्त्रियों के विविध आभूषणों की जानकारी मिलती है। चंदेलकालीन कला में शृंगारपरक वस्त्रालंकरणों से सुसज्जित स्त्रियों का रोचक अंकन देखने को मिलता है। चंदेलकालीन मूर्तिकला में शारीरिक संरचना के साथ-साथ कलाकृतियों को अलंकारों से सौंदर्ययुक्त बना दिया गया है। अलंकरण, रचना विन्यास, केशसज्जा के मनोहारी स्वरूप इस काल की कला में कीर्तिमान है। प्रेमी युगल, नायक-नायिकाओं, अप्सराओं, सुर-सुंदरियों, शाल भंजिकाओं को विविध आकर्षक मुद्राओं के साथ-साथ सौंदर्य प्रसाधनों के साथ प्रदर्शित किया गया है। पैरों में रंग लगाने, आंखों में अंजन लगाने, दर्पण के सामने छवि का अवलोकन करते हुए स्त्रियों को आकर्षक भाव-भंगिमाओं के साथ प्रस्तुत किया गया। इससे ज्ञात होता है कि चंदेलकाल में वस्त्राभूषणों, अलंकरणों, केशसज्जा, वेणी-गुंफन, वस्त्र विन्यास आदि का रोचक समन्वय था और तत्कालीन सामाजिक जन जीवन में स्त्री-पुरुष सुसज्जित जीवन व्यतीत करते थे। शारीरिक संरचना में भी मृदुलता एवं लावण्यता थी। तत्कालीन शिल्पियों ने 'सत्यं शिवम् सुंदरम्' की उदात्त भावना का परिपालन करते हुए तत्कालीन समाज में प्रचलित परंपराओं का कुशलता से निर्वाह किया है। वस्त्रों के विषय में जानकारी खजुराहो मूर्तिकला से प्राप्त होती है, नारी विशेष रूप से कलात्मक साड़ी, चुनरी व चोली का प्रयोग करती थीं।

स्त्रियां केशों की सज्जा दो प्रकार से करती थीं। बालों को गूंथकर वेणी बनाना और दूसरे प्रकार के केश विन्यास में बालों को ऊपर उठाकर कंघी करके लपेटा जाता था। सौंदर्य प्रसाधन में कुमकुम की बिंदी, सिंदूर एवं पुष्पों का प्रयोग होता था। आभूषणों में चूड़ियां, छल्ले, हार एवं विविध मालाएं स्त्रियां धारण करती थीं।

चंदेलकालीन बुंदेलखंड में नारी चारदीवारी में बंद नहीं रहती थी वरन् वह संपूर्ण समाज का ज्ञान प्राप्त करती थी। धार्मिक जीवन में उसका विशेष योगदान था। अभिलेखों में राजपरिवार के सदस्यों, सामंतों एवं अन्य उच्च पदासीन व्यक्तियों द्वारा दान करने के उल्लेख हैं। तत्कालीन अभिलेखों से ज्ञात होता है कि समाज के लोग भूमिदान को विशेष महत्त्व देते थे। प्रायः समृद्ध व्यक्तियों का यह विश्वास था कि भूमिदान करने से स्वर्ग प्राप्त होता है। इस कारण स्थायी रूप

से दानाग्रही को भूमिदान दिया जाता है। बुंदेलखंड के चंदेलवंशीय शासक विद्याधर के कुंडेश्वर के ताम्रपत्र से विदित होता है कि उनकी रानी सत्यभामा ने धार्मिक त्योहार पर कुछ भूमि ब्राह्मणों को दान में दी थी। मंदिरों और मूर्तियों की स्थापना पुण्य का कार्य समझा जाता था। चंदेलकालीन अभिलेखों में इसके प्रमाण मिलते हैं। वीरवर्मन के समय के अजयगढ़ अभिलेख में कहा गया है कि उसकी पत्नी कल्याणदेवी ने नंदीपुर में एक कूप, मंडप तथा शिवमंदिर बनवाया था। मुहड़देव की पत्नी देवल्ल देवी द्वारा गौरी, शिव एवं अन्य देवताओं की मूर्तियों का निर्माण कराया गया था। खजुराहो के घटाई मंदिर में बहुत-सी मूर्तियां हैं। इसके अनुसार इसकी स्थापना सेठ वीवनशाह की पत्नी सेठानी पद्मावती ने की थी। सन् 1163 ई. में साधुश्री रत्नपाल की धर्मपत्नी साधा ने अपने पुत्रों के साथ भगवान अजितनाथ तथा एक अन्य जिन की प्रतिमा प्रतिष्ठित की थी। मदन वर्मा के शासनकाल के कालंजर से प्राप्त अभिलेख में महाप्रतिहार संग्रामसिंह तथा महानचनी पद्मावती का उल्लेख है। कनिंघम के अनुसार वे दोनों नीलकंठ मंदिर की देख-रेख और भगवान नीलकंठ की सेवा में नियुक्त की गई थीं।

चंदेलकालीन बुंदेलखंड में स्त्री की स्थिति सम्मानजनक थी। इस काल में स्त्रियां राजकीय मामलों में सक्रिय नहीं थीं, परंतु रानियों ने प्रशासन में अवश्य योगदान किया। राजनीतिक क्षेत्र में साधारण स्त्री की स्थिति लगभग नगण्य थी, जबकि राजपरिवारों की नारियों को यदा-कदा शासन करने या अपने विचारों से प्रभावित करने का अवसर मिल जाता था। इन अवसरों का लाभ स्त्री शासिकाओं ने उठाया और अपनी योग्यता सिद्ध की। राजपरिवार की कन्याओं को साधारण शिक्षा के साथ सैन्य शिक्षा भी दी जाती थी ताकि आवश्यकता पड़ने पर वे इसका उपयोग कर सकें। खजुराहो की कला में शस्त्रधारिणी स्त्रियों की प्रतिमाएं मिलती हैं, जिन्हें अश्वारूढ़ होकर युद्ध करते दिखाया गया है। एक अन्य स्त्री को धनुषबाण धारण किए हुए प्रहार मुद्रा में दिखाया गया है। राजप्रासाद की व्यवस्था सुचारू रूप से चलाने के लिए बड़ी संख्या में कर्मचारी नियुक्त होते थे, जिनमें अधिकांश स्त्रियां ही होती थीं। स्त्रियां गुप्तचर एवं अंगरक्षक का कार्य भी करती थीं।

चंदेलकालीन बुंदेलखंड के सामाजिक जीवन में स्त्रियों की बड़ी प्रतिष्ठा थी। बौद्धिक और आध्यात्मिक दृष्टि से भी उनका महत्त्व था। धार्मिक कृत्यों, सामाजिक उत्सवों आदि में वे पुरुष के साथ समान आसन ग्रहण करती थीं। पुत्र और पुत्री को समाज में समान रूप से स्थान प्राप्त था। पुत्री का जन्म इतना

चिंताजनक नहीं था, जितना बाद के युग में हो गया था। उनके घर से बाहर निकलने, घूमने-फिरने तथा आने-जाने की स्वतंत्रता पर कोई अंकुश नहीं था। उनकी नैतिकता और सदाचार का स्तर काफी ऊंचा था। विवाह प्रायः वयस्क होने पर होता था। माता के रूप में स्त्री गुरु से भी अधिक महत्त्व रखती थी। पत्नी के रूप में वह पुरुष की अर्द्धांगिनी और गृहिणी के रूप में सुखों का स्रोत मानी जाती थी। उसका पतिव्रत धर्म और सतीत्व की भावना आदर्शमय थी।

चंदेलकालीन बुंदेलखंड में स्त्रियों की दशा उन्नत थी। समाज में उनका आदर और सम्मान था। अधिकांशतः नारियां गृहकार्यों में संलग्न रहती थीं। समाज में स्त्रियों के कार्यक्षेत्र अलग-अलग माने जाते थे। नारियों को विधवा विवाह और संबंध विच्छेद करने, पारिवारिक संपत्ति प्राप्त करने तथा विवाह में प्राप्त दहेज व उपहार प्राप्त करने का पूर्ण अधिकार था। पति के अत्याचारों के विरुद्ध स्त्री न्यायालय में न्याय मांग सकती थी। नारियों के प्रति अन्याय और अपराध करने वालों को राज्य की ओर से कठोर दंड दिया जाता था।

चंदेलकालीन बुंदेलखंड में स्त्रियों से श्रेष्ठ आदर्श, नैतिकता और पतिव्रत धर्म आदि के निर्वाह की अपेक्षा की जाती थी। खजुराहो के मंदिरों में प्रेमपत्र लिखती हुईं नारियों का अंकन है। लक्ष्मण मंदिर में माता द्वारा बालक-बालिकाओं को दीवार पर शिक्षा देने का दृश्य उत्कीर्ण किया गया है। सांस्कृतिक कार्यों में उच्च जाति की और सामान्य वर्ग की नारियां रुचिपूर्वक हाथ बंटाती थीं। वे सामाजिक कार्यों में पुरुषों के साथ समान रूप से सहभागिता करती थीं। इस युग के साहित्य में स्त्रियों के स्त्री धन का उल्लेख मिलता है। वे दान एवं पुण्य करती थीं, इससे विदित होता है कि स्त्रियों को संपत्ति का अधिकार था।

चंदेलकालीन बुंदेलखंड में स्त्रियां कृषि और पशुपालन तथा परिवार के व्यवसाय में सक्रिय रूप से हाथ बंटाती थीं। वे युद्ध सामग्री-धनुषबाण बनाने में पूर्ण सहयोग देती थीं। प्राचीन साहित्य में रंगने के कार्य, कसीदे के कार्य और टोकरी बनाने के कार्य करने वाली स्त्रियों के संदर्भ मिलते हैं। छोटे कुटीर धंधों में भी स्त्रियां कार्य करती थीं। विदुषी स्त्रियां अध्यापन का कार्य भी करती थीं। उन्हें आचार्या कहा जाता था। कुछ विदुषी अध्यापिकाएं दर्शन और धर्मशास्त्रों में भी प्रवीण होती थीं। बौद्ध और जैन धर्म संघ में महिलाएं प्रविष्ट होती थीं। छोटे व्यवसाय व धंधे करने वाले परिवारों में महिलाएं इन व्यापार-धंधों में सहायता करती थीं। वे अपने पति की साख के आधार पर उनकी ओर से व्यापार कर लेती

थीं। स्त्रियां गायन-वादन और नृत्यों में भी प्रवीण होती थीं। उन्हें नृत्य और संगीत की शिक्षा दी जाती थी। राजसभाओं में नृत्यांगनाएं और नृत्य, संगीत प्रेमालाप में प्रवीण वेश्याएं भी होती थीं। वे अपने यौवन, शरीर सौष्ठव व लावण्य के लिए तथा समाज में धनसंपन्नता के लिए प्रसिद्ध थीं। राजसभाओं और रनिवासों में अनेक पहरेदार और चावरधारण करने का कार्य, पंखा झलने का कार्य, पान लेने-देने का कार्य स्त्रियां ही करती थीं। महलों में ये नाचने और गाने तथा राजपरिवार में मनोरंजन का कार्य भी करती थीं। राजरानियों के शृंगार कार्य में ये सहायक होती थीं। ये उनकी सेविकाएं थीं।

चंदेलकालीन बुंदेलखंड के अनेक देवस्थानों और मंदिरों में नृत्यांगनाएं होती थीं। वे पूजा-अर्चन के समय मंदिर में नृत्य करती थीं। यह प्रथा तीसरी सदी ई. से प्रारंभ हो गई थी। मंदिरों में संध्या आरती के समय नृत्यांगनाओं द्वारा नृत्य करने और गाने का वर्णन अनेक साहित्यिक ग्रंथों में मिलता है। मंदिरों में पूजन-अर्चन के समय तथा धार्मिक समारोहों और अवसरों पर ये स्त्रियां नाचती थीं। विभिन्न वाद्यों को बजातीं और गाती थीं। ऐसी नृत्यांगनाओं के संदर्भ पुराणों में हैं। इन्हें 'देवदासी' कहते थे। इस देवदासी प्रथा ने मंदिरों के धार्मिक वातावरण को दूषित किया। अनेक पुरुष इन मंदिरों में देवदर्शन के लिए नहीं, अपितु नृत्य और गायन करने वाली सुंदर कन्याओं के आकर्षण में खिंचे चले आते थे। ये कन्याएं वेश्यावृत्ति भी करती थीं।

सामान्य दासियां विभिन्न प्रकार के गृहकार्यों में अपने स्वामी या स्वामिनी का सहयोग करती थीं। इन दासियों में धात्री, परिचारिका, चंवरधारियां, सैरंध्री आदि होती थीं।

स्त्रियों का धार्मिक और आध्यात्मिक क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण स्थान था। पत्नी सहधार्मिणी कहलाती थी। इसलिए सभी धार्मिक कार्यों—हवन, यज्ञ आदि में वह पति के साथ सम्मिलित होती थी। हवन के समय सामवेदीय गीतों और मंत्रों का सुर, ताल व लय से उच्चारण करना पत्नी का कार्य था। यज्ञ व हवन में लगने वाली सामग्री पत्नी तैयार करती थी और पति के साथ बैठकर यज्ञ की अग्नि में देवताओं को प्रसन्न करने के लिए उसे समर्पित करती थी। उसे कुछ मंत्रों का उच्चारण स्वयं ही करना पड़ता था। कुछ यज्ञ और हवन नारियों द्वारा ही संपन्न किए जाते थे। जैसे सीता यज्ञ, रूद्रवली यज्ञ आदि। कालांतर में कन्याओं का उपनयन संस्कार बंद कर दिया गया, जिसके कारण स्त्रियों की धार्मिक स्थिति का ह्रास हुआ।

प्राचीन बुंदेलखंड में स्त्रियां पुण्य वृद्धि एवं स्वर्ण प्राप्ति हेतु मंदिर, विहार, गुफा आदि का निर्माण करवाती थीं। स्त्रियां विभिन्न प्रकार के गृहदेवताओं का पूजन करती थीं। देवताओं में मातृदेवी, शिव तथा विष्णु की पूजा विशेष रूप से प्रचलित थी। मूर्तिपूजा, ईश्वरोपासना के अतिरिक्त व्रत आदि में भी स्त्रियों का अटूट विश्वास था।

प्राचीन एवं मध्यकालीन बुंदेलखंड के सांस्कृतिक क्षेत्र में स्त्री ने अप्रतिम योगदान किया। कला, स्थापत्य व ललित कलाओं में अपनी ओर से महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। महारानियों तथा रानियों के राजमहल विविध प्रकार से निर्मित किए गए थे। स्त्रियां नृत्य एवं संगीतकला में निपुण होती थीं। साहित्य एवं शिखालेखों में ऐसी अनेक स्त्रियों का उल्लेख है। ऐसी कलाकृतियों का निर्माण परलोक सिद्धि, पुण्य प्राप्ति की इच्छा एवं परोपकार की भावना को लेकर स्त्रियों द्वारा कराया गया था।

चंदेलकाल में स्त्री को पुत्री, पत्नी व माता के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त थी। विधवा के रूप में भी उसकी स्थिति दयनीय नहीं थी। आर्थिक रूप से नारी स्वतंत्र नहीं थी, परंतु उसे यथेष्ठ सांपत्तिक अधिकार प्राप्त थे। उसकी विद्वत्ता, पराक्रम और प्रशासनिक क्षमता के प्रमाण साहित्य में मिलते हैं। यज्ञादि धार्मिक विधानों में पत्नी की सहभागिता अनिवार्य थी। कन्या की शिक्षा के समुचित प्रबंध थे। नारियों को दर्शन, नृत्य, संगीत और सैन्य शिक्षा भी जाती थी। शासन में दक्षता प्रदान करने के लिए राजपरिवार की राजकन्याओं को राजनीति की शिक्षा दी जाती थी।

इस तरह प्राचीन एवं मध्यकालीन बुंदेलखंड में नारी की स्थिति सामाजिक, आर्थिक, राजकीय व प्रशासनिक तथा कला, स्थापत्य व ललित कलाओं के क्षेत्र में सम्मानजनक और श्रेष्ठ थीं।

संदर्भ

1. वासुदेव विष्णु मीराशी, इंडोलाजिक स्टडीज, पृ. 165
2. वीसेंट स्मिथः अर्ली हिस्ट्री ऑफ इंडिया, पृ. 289
3. अभिज्ञानशाकुंतलम : अंक-5
4. राजदेव दुबे : स्मृतिकालीन, भारतीय समाज एवं संस्कृति, पृ. 83
5. परमेश्वरीलाल गुप्त : गुप्त साम्राज्य, पृ. 431
6. नागेन्द्रनाथ भोज : प्राचीन भारत का इतिहास, पृ. 259
7. रमेशचन्द्र मजुमदार एवं सदाशिव अल्तेकर : वाकाटक–गुप्त युग, पृ. 181

8. परमेश्वरी लाल गुप्त : गुप्त साम्राज्य, पृ. 436
9. कृष्णदत्त वाजपेयी एवं संतोष कुमार वाजपेयी : ऐतिहासिक भारतीय अभिलेख, पृ. 107
10. जॉनफेथफुल फ्लीट : भारतीय अभिलेख संग्रह, भाग–3, पृ. 28
11. भगवतरशरण उपाध्याय : कालिदास और उनका युग, पृ. 176
12. सुशील कुमार सुल्लेरे तथा कन्हैयालाल अग्रवाल : 'कलचुरियों की उत्पत्ति, नाम और प्राचीनता', कलचुरि राजवंश और उनका युग (संपादक-राजकुमार शर्मा), दिल्ली, 1998 खंड 1, पृ. 18
13. वही, पृ. 39
14. राकेश सोनी, संगीत, नाट्य परंपरा और बुंदेलखंड, सागर, 2006, पृ. 39
15. आर.के. शर्मा : दि. कलचुरीज एंड देयर टाइम्स, दिल्ली, 1980, पृ. 170
16. भगवन्त सहाय : 'कलचुरिकालीन सामाजिक जीवन', कलचुरि राजवंश और उनका युग, संपादक–राजकुमार शर्मा, भाग-2, नयी दिल्ली, 1998, पृ. 233
17. रामकुमार अहिरवार : सामाजिक संरचना : विविध, चरण, पृ. 280
18. वही, पृ. 282
19. कार्पस इंस्क्रिप्शन्स इंडिकेरम, क्र. 67, श्लोक-23
20. बृहस्पतिस्मृति, 25/11
21. विष्णुस्मृति, 35/14
22. कार्पस इंस्क्रिप्शन्स इंडिकेरम, क्र. 56, श्लोक-12
23. वही, क्र. 98, श्लोक-23
24. भगवन्त सहाय : पूर्वोल्लिखित, पृ. 236
25. वही, पृ. 237
26. वही
27. काव्यमीमांसा, अध्याय 8, पृ. 39
28. आर.के. शर्मा : पूर्वोल्लिखित, पृ. 178
29. वही
30. भगवन्त सहाय : पूर्वोल्लिखित, पृ. 239
31. कार्पस इंस्क्रिप्शन्स इंडिकेरम, क्र. 93, श्लोक-3, क्र. 97, श्लोक-3
32. काव्यमीमांसा, अध्ययन 18
33. भगवन्त सहाय : पूर्वोल्लिखित, पृ. 240
34. शफीक जेबा : बांदा जनपद का राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास, पृ. 113 (अप्रकाशित शोध प्रबंध), सागर, 1997, पृ. 113
35. उर्मिला प्रकाश मिश्र : प्राचीन भारत में नारी, 2002, पृ. 106,
36. कार्पस इन्सक्रिप्शन्स इंडिकेरम, जिल्द 7, भाग 3, दिल्ली, 1989

37. वही, पृ. 388
38. वही, पृ. 654
39. वही, पृ. 501
40. प्रबोधचन्द्रोदय, बनारस, 1955 अंक 2 पृ. 53
41. अलबरूनी का भारत, लंदन, 1910, पृ. 396
42. जयशंकर मिश्र : ग्यारहवीं सदी का भारत, वाराणसी, 1968, पृ. 143
43. कार्पस इन्सक्रिप्शन्स इंडिकेरम, जिल्द, 7 भाग-3, पृ. 417
44. वासुदेव उपाध्याय : प्राचीन भारतीय अभिलेखों का अध्ययन, दिल्ली, 1961, पृ. 149
45. कार्पस इन्सक्रिप्शन्स इंडिकेरम, जिल्द, 7, भाग-3, पृ. 404
46. अलबरूनी का भारत, पृ. 395
47. प्रबोधचन्द्रोदय, बनारस, अंक, 1 पृ. 21
48. कार्पस इन्सक्रिप्शन्स इंडिकेरम, जिल्द, 7 भाग-3, पृ. 344
49. वही, पृ. 346
50. अलबरूनी का भारत, पृ. 395
51. जयशंकर मिश्र : प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पटना, पृ. 442
52. राष्ट्रकूट एंड देयर टाइम्स, पृ. 344
53. कार्पस इन्सक्रिप्शन्स इंडिकेरम, जिल्द, 7 भाग-3, पृ. 344
54. अलबरूनी का भारत, पृ. 397
55. उर्मिला अग्रवाल : खजुराहो स्कल्पचर्स एंड देयर सिग्नीफिकेन्स पृ. 133
56. अलबरूनी का भारत, पृ. 397
57. केशवचन्द्र मिश्र : चंदेल और उनका राजत्व काल, वाराणसी, पृ. 196
58. प्रबोधचन्द्रोदय, अंक-4, वाराणसी, पृ. 143
59. कार्पस इन्सक्रिप्शन्स इंडिकेरम, जिल्द, 7 भाग-3, पृ. 477
60. उर्मिला अग्रवाल : पूर्वोक्त, पृ. 137
61. कार्पस इन्सक्रिप्शन्स इंडिकेरम, जिल्द, 7 भाग-3, पृ. 346
62. प्रबोधचन्द्रोदय, अंक-4, वाराणसी, पृ. 164
63. कार्पस इन्सक्रिप्शन्स इंडिकेरम, जिल्द, 7 भाग-3
64. प्रबोधचन्द्रोदय, अंक-4, पृ. 164
65. अलबरूनी का भारत, पृ. 139
66. प्रबोधचन्द्रोदय, अंक-4, पृ. 142

परमार एवं बुंदेला काल में स्त्री

◆ *वीरेन्द्र बहादुर खरे*

चंदेलों के पतन सन् 1183 के बाद सन् 1340 में बुंदेलखंड में गढ़कुढ़ार को राजधानी बना खंगार राजाओं को गद्दी से उतारकर सोहनपाल बुंदेला (काशी के गहरवार क्षत्रिय) ने बुंदेला राज्य की स्थापना की और तब से 1948 तक स्वतंत्र भारत के संघ शासन में विलीनीकरण तक बुंदेलखंड में बुंदेलों का शासन रहा। इनके शासन काल की अवधि लगभग 600 वर्ष की है। परमार क्षत्रिय मालवा, धार और उज्जैन के शासक रहे। उनका अधिकार पश्चिमी बुंदेलखंड पर चंदेलों के बाद भी बुंदेलों के समय तक रहा। उनका शासनकाल 8वीं सदी से 15वीं सदी तक कम और अधिक रहा। बुंदेलखंड का पश्चिमी भू-भाग उनके अधिकार में रहा। बुंदेलखंड के सामाजिक जीवन में परमार और बुंदेलों के प्रभाव को अलग-अलग करके नहीं देखा जा सकता है। शासकों में कभी-कभी राजनीतिक प्रतिस्पर्धा रही है, पर उन दिनों बुंदेलों एवं परमारों में वैवाहिक संबंध थे।

बुंदेलाकाल में नारी के बारे में समाज की सोच में बड़ा अंतर नहीं आया था। समाज में पुरुषों का वर्चस्व था। वैचारिक स्तर पर वैदिक नारी की तरह तब

भी स्त्री को शक्ति माना जाता था। नारी कन्या रूप में देवी थी। कन्या के पैर छुए जाते थे। उसका सम्मान तो था, पर उसे पुत्र के समान नहीं माना जाता था। भारतीय नारी की सांस्कृतिक यात्रा में ऐसे बहुत थोड़े पड़ाव आए, जब उसे पुरुष से अलग पहचान दी गई। समाज में विवेकशील एवं शीलवान प्रशासकों के समय में ही स्त्री को आदर मिला। समाज में कुशासन और कुव्यवस्था का परिणाम सबसे अधिक नारी को भोगना पड़ा है।

झांसी और हमीरपुर गजेटियर एवं इतिहासकार वी. स्मिथ के अनुसार सन् 1340 में काशी के गहरवार शाखा के राजपूत सोहनपाल बुंदेला ने षड्यंत्र करके तत्कालीन राजा हुरमत सिंह खंगार की हत्याकर गढ़कुढ़ार पर अधिकार कर लिया। इस वंश में वीरसिंह जूदेव प्रथम तक सभी राजाओं ने अपने क्षेत्र को सुरक्षा और सुव्यवस्था दी। मलखान सिंह, रुद्रप्रताप सिंह, भारतीचंद्र, मधुकर शाह और वीरसिंह जूदेव वीर पुरुष थे, पर वे क्रूर नहीं थे। वे प्राचीन नैतिक मूल्यों एवं राजधर्म का पालन करने वाले थे। उन्होंने अपनी प्रजा का शोषण नहीं किया। बाहरी संकटों से उसकी रक्षा की। उसके जीवन को सुरक्षित किया। राजा नैतिक थे तो प्रजा भी अनैतिक नहीं हो सकती थी। इसे हम बुंदेलखंड का 'स्वर्ण युग' कह सकते हैं। रुद्रप्रताप के काल तक इस राज्य में यदा-कदा ही मुस्लिम आक्रमण हुए। अतः सामाजिक जीवन अप्रभावित रहा।

मध्यकालीन बुंदेलखंड में नारी की स्थिति अच्छी थी। विवाहित नारी का जीवन पति एवं परिवार के लिए था। उसका सुख एवं दुःख पति के सुख-दुःख से जुड़ा था। उसका सजना-संवरना पति के लिए था। बचपन में पिता, जवानी में पति एवं वृद्धावस्था में पुत्रों का संरक्षण आवश्यक था। पुत्र परिवार की संपत्ति एवं विरासत का स्वामी होता था, पुत्री या मां नहीं। पुत्र होने पर घर में उत्सव मनाया जाता था, जबकि पुत्री होने पर खुशी नहीं मनाई जाती थी। पिता का श्राद्ध पुत्र ही कर सकता था, पुत्री नहीं। पिता के दाह-संस्कार का अधिकार पुत्र को था, पुत्री या पत्नी को नहीं। विधवा का पति की संपत्ति पर अधिकार नहीं था। स्त्रियों की यौनशुचिता पर बहुत जोर दिया जाता था। पति-निष्ठा नारी का आवश्यक गुण था। विवाहित स्त्री का किसी दूसरे पुरुष से शारीरिक संबंध बनाना या प्रेम करना अनैतिक एवं पाप था। ऐसी स्त्री सामाजिक अनादर का पात्र होती थी, जिसके पुत्र नहीं हो, पुत्रियां ही हों, उसे छोड़ा जा सकता था। उस युग में सवर्ण एवं दलित जाति में विवाह घर के मुखिया के द्वारा ही तय किए जाते थे।

वर-वधू की इच्छा महत्त्वपूर्ण नहीं थी। जबरदस्ती स्त्री का हरण अच्छा नहीं माना जाता था। रानी दुर्गावती का गौंड़वाना के राजा संग्राम सिंह ने हरण कर अपने पुत्र दलपतशाह से उसका विवाह कर दिया था।

समाज में बाल विवाह प्रचलित था। लड़कियों की शादी रजस्वला होने के पूर्व ही आठ-दस वर्ष की अवस्था में कर दी जाती थी। ब्राह्मणों में 13 वर्ष की अवस्था तक पुत्री का विवाह आवश्यक था। छोटी जाति में गर्भावस्था में भी लड़के-लड़की का विवाह माता-पिता के बीच तय कर दिया जाता था। विवाह अपनी जाति में होता था। अनलोम एवं विलोम विवाह भी होते थे, पर समाज में उनको अच्छा नहीं माना जाता था। ऐसे पति-पत्नी एवं बच्चों को छोटी जाति का माना जाता था। सवर्ण जाति के पुरुष का निम्न जाति की नारी के साथ विवाह को अनलोम और उच्च जाति की स्त्री का निम्न जाति के पुरुष के साथ विवाह को प्रतिलोम विवाह कहा जाता था। राज परिवार और धनी पुरुष अनलोम विवाह कर लेते थे। ऐसी संतानें वर्णसंकर कहलाती थीं। बहु विवाह भी प्रचलित था। संपन्न और सवर्ण जाति के पुरुष एक से अधिक विवाह करते थे। सामंतों और राजाओं में एक से अधिक विवाह आम बात थी।

राजा रुद्रप्रताप की तीन रानियां थीं। मधुकर शाह बुंदेला की छह रानियां थीं। वीरसिंह की भी तीन रानियां थीं। जागीरदार चंपतराय की दो से अधिक और उनके पुत्र बुंदेल केशरी छत्रसाल की अनेक विवाहित रानियां थीं। (श्री कृष्ण कवि : ओरछा का इतिहास) वर-वधू की आयु में बड़ा अंतर होता था। हिन्दू धर्मशास्त्र के अनुसार पति को पत्नी से अधिक बड़ा होना चाहिए। मध्यकाल में वर वधू से सात-आठ वर्ष बड़ा होता था। कभी-कभी वर वधू से दुगनी आयु का होता था। ओरछेश महाराज मधुकर शाह और उनकी रानी गणेश कुंवरि में 36-37 वर्ष का अंतर था। महोबा के जागीरदार एवं महाराज छत्रसाल के पिता ने इतिहास प्रसिद्ध लालकुंवरि (सारंधा) से 65 वर्ष की आयु में शादी की थी। ऐसी जनमान्यता है। राजा, जागीरदार एवं सवर्ण जाति के लोगों में वृद्धावस्था में भी विवाह आसानी से हो जाते थे।

पुरुष पुनर्विवाह कर सकता था, पर इस युग में विधवा विवाह उच्च जाति में वर्जित था। नारी एक पति के रहते हुए दूसरे पुरुष को अपना पति नहीं बना सकती थी। परपुरुष से समागम स्त्री के लिए निंदनीय माना जाता था। दलित,

पिछड़ी और छोटी जातियों और गौंड़, सौंर आदि जनजातियों में विधवा विवाह हो जाते थे। उन्हें समाज में स्वीकार कर लिया जाता था।

इस युग में भी विवाह संबंध तोड़ना और तलाक देना धर्मसम्मत नहीं था। सवर्णों में तलाक मान्य नहीं था। विवाह जीवनभर का एवं जन्म-जन्मांतर का संबंध माना जाता था। दलित एवं पिछड़ी जाति में स्त्री भी एक पुरुष को छोड़कर दूसरा पति कर सकती थी, पर 'प्रबोध चंद्रोदय' (चंदेलकालीन नाटक) में कहा गया है कि वंध्या स्त्री को 8वें वर्ष के बाद, जिस स्त्री के बच्चे जिंदा न होते हों, उसे शादी होने के 10वें वर्ष के बाद, जिस स्त्री को केवल कन्या हो, पुत्र न जन्मे, उसे शादी के 11 वर्ष के बाद तथा कुलटा एवं झगड़ालू स्त्री को कभी भी छोड़ा जा सकता है।[2]

कुछ दोषहीन प्रथाएं भी बुंदेलों एवं परमारकालीन बुंदेली समाज में प्रचलित थीं। इस युग में पर्दाप्रथा का बहुत चलन नहीं था। केवल राज-परिवारों, सामंतों एवं धनी वर्ग में कहीं-कहीं महिलाएं पर्दा करती थीं। कुलीन महिलाएं सामाजिक एवं धार्मिक कार्यों में सम्मिलित होती थीं। ओरछेश पहाड़ सिंह की पत्नी हीरा देवी राजकाज में सलाह देती थीं। उन्होंने अपने पुत्र सुजान सिंह की अनुपस्थिति में ओरछा का प्रबंध किया। गोंड़वाना की रानी दुर्गावती ने अपने नाबालिग पुत्र दीपनारायण की संरक्षिका के रूप में शासन किया और मुगल बादशाह से युद्ध करते हुए वीरगति पाई। मुसलमानों के आने के बाद पर्दा-प्रथा बढ़ी। सामान्य एवं जन साधारण में पर्दा प्रथा आ गई।[3]

सती प्रथा प्राचीन भारत में नारी का उच्चतम आदर्श था। सती होने का उल्लेख हमें वाण द्वारा रचित 'हर्ष चरित्र' में मिलता है। सम्राट हर्ष ने अपनी बहन राज्यश्री को सती होने से रोका था। कुछ मुस्लिम इतिहासकारों के अनुसार भारत में राजाओं के मरने के बाद उनकी रानियां सती हो जाती थीं, पर मध्य युग में आए सुलेमान सौदागार के वर्णन से विदित होता है कि सती होना अनिवार्य नहीं था। यह उसकी इच्छा पर निर्भर था। भारतीय विद्वानों का मत है कि बुंदेलखंड में शुरुआती मध्ययुग में सती प्रथा बहुत प्रचलित नहीं थी। बुंदेला शासकों की कई विधवा रानियों ने अपने पुत्रों की संरक्षिका के रूप में कार्य किया है। हीरादेवी, महेंद्र कुंवरि, लड़ई सरकार ने विधवा का जीवन जिया है। प्रसिद्ध इतिहासकार अल्टेकर का मानना है कि उस युग में उत्तर भारत में सती प्रथा के लिखित उदाहरण बहुत कम हैं। उस युग में प्राप्त परमार-चंदेलकाल के शिखालेख मौन

हैं।[4] मुस्लिम आक्रमण के बाद सती प्रथा का प्रचार तेजी से बढ़ा। बुंदेलखंड में क्षत्रियों, ब्राह्मणों और शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रों में सती होने का अधिक उल्लेख नहीं मिलता है। इनका अनुपात बहुत कम है। राजपूत पराजित शत्रु की स्त्री को बलात् अपनी वासना का शिकार नहीं बनाते थे। युद्ध के समय स्त्री, बालक, वृद्ध उनके अत्याचार का शिकार नहीं बनते थे, पर बाद में मुगलों के बुंदेलखंड पर आक्रमण के कारण स्थिति बदल गई। वे पराजित राजाओं की स्त्रियों को अपने हरम में डाल लेते थे। वे पराजित शत्रु की स्त्रियों को बाजार में बैठी वेश्याओं के हाथ और रईसों की गुलाम बनाकर बेच देते थे। यही कारण है कि हिन्दू नारियां अपने पतियों की मृत्यु के बाद सामूहिक जौहर कर या चिता में जलकर आत्महत्या कर लेती थीं। 1528 में बाबर के चंदेरी पर आक्रमण में मेदिनी राय की पराजय पर उसकी रानी सहित सामंतों की महिलाओं ने सामूहिक रूप से जौहर किया। रायसेन के किलेदार पूरनमल की पत्नी लाल कुंवरि ने मुगलों से युद्ध में हार जाने पर अपने पति को अपमानित होने से बचाने के लिए, उनके अनुरोध पर पहले उन्हें कटार मारी, फिर कटार मारकर आत्महत्या कर ली, पर ये घटनाएं अपवादस्वरूप हैं। विधवाएं पति के मरने के बाद उदासीन जीवन जीती थीं। वे सुख-सुविधाओं को त्याग देती थीं। वे साज-शृंगार नहीं करती थीं, अच्छा खाना नहीं खाती थीं और उपवास, व्रत एवं धार्मिक कार्यों में मन लगाती थीं।

महाराज मधुकरशाह ने अंतिम वर्षों में अकबर बादशाह की अधीनता स्वीकार कर ली थी। इसी कारणवश बुंदेले तरुण शाही फौज में शामिल होने लगे। दक्षिण विजय के समय उन्हें लूट का पैसा मिलने लगा। राजकुमार मुगल मंसबदार बन गए। उन्होंने मुगल दरबार की आरामतलबी, विलासिता देखी और उसी में रंग गए। कालांतर में राजनीतिक परिस्थितियां कुछ ऐसी बनीं कि पहले राजा जुझारसिंह के विरुद्ध शाहजहां ने बुंदेलखंड पर आक्रमण किया, फिर उसने चंपतराय के विद्रोह को दबाने के लिए बुंदेलखंड में सैनिक अभियान चलाया। औरंगजेब के विरुद्ध चंपतराय के पुत्र छत्रसाल ने मुगल शासित बुंदेलखंड और मालवा में अराजकता की स्थिति पैदा कर दी। बुंदेलखंड छोटे-छोटे स्वतंत्र राज्यों एवं जागीरों में बंटकर रह गया। इन राज्यों के राजा मुगल मंसबदार बन मुगलों के सैनिक अभियानों में शामिल होकर अपने राज्य से बाहर रहने लगे थे। राज्यों में अराजकता, अर्थव्यवस्था की खराबी और समाज में असुरक्षा बढ़ गई। इसका असर स्त्रियों पर पड़ा। छोटे-छोटे जागीरदार

मनमानी करने लगे। गरीबी और बेरोजगारी के कारण गरीब स्त्रियों का यौन शोषण होने लगा। सामंतों एवं राजाओं का नैतिक पतन हो गया था। विलासी राजाओं का भी हरम बनने लगा था। दबंग पक्ष ताकत के बल पर बहू-बेटियों को उठा लाते थे। इस कारण एक ओर उच्च वर्ग के लोगों ने महिलाओं को घर तक सीमित रहने का प्रबंध किया तो दूसरी ओर राजाओं के आश्रित कवियों ने राजाओं की वासना को ताकत देने के लिए नायिका भेद, नखशिख वर्णन कर नारी को देहमात्र बना डाला। उसे मनोरंजन एवं वासना पूर्ति का साधन समझा गया। कामकाजी स्त्रियों के साथ अवैध संबंध आम बात थी। गरीब परिवार के लोग लड़कियों को बेच देते थे। सामंतों एवं मुगल सरदारों के मनोरंजन के लिए गांवों से लड़कियां उठा ली जाती थीं। वेश्याओं द्वारा सुंदर लड़कियां खरीदकर, उन्हें नाच-गाने में प्रवीण कर देह-व्यापार में धकेल कर कमाई की जाती थी। ओरछा की प्रसिद्ध नर्तकी राय प्रवीण की कहानी भी ऐसी ही है। उसे माधव लुहार की कन्या कहा जाता है। वह किस मजबूरी और किस हालात में ओरछा के राजकुमार इंद्रजीत सिंह की प्रेमिका बनी, वह इतिहास में अज्ञात है। उस युग में आम नारी की यही त्रासदी थी। मराठों और अंग्रेजों के आक्रमण ने रही-सही कसर पूरी कर दी।

लड़कियों के शील और शरीर की रक्षा कठिन होने के कारण पुत्री का जन्म शाप लगने लगा। वे माता-पिता के लिए संकट और भार बन गईं। पुरुष आलसी हो गए। वे गैरजिम्मेदार बन गए। उनके मनोरंजन का साधन मात्र नारी थी। नारी जाति पर कार्य का बोझ बढ़ गया। नारी की शिक्षा अनावश्यक मान ली गई। सौतों के बीच होने वाले कुचक्रों ने परिवार में शांति और प्रेम समाप्त कर दिया। नारी में असुरक्षा की भावना बढ़ गई। ब्राह्मणों, राजपरिवार और सामंतों को छोड़ दिया जाए तो शेष समाज में नारी शिक्षा का अभाव था, पर लड़कियां अपने व्यावसायिक कार्य में दक्ष होती थीं। उन्हें सामाजिक ज्ञान होता था, व्रत (उपवास) पर्वों के माध्यम से वे अपनी संस्कृति, धर्म और नैतिक मूल्यों से पूरी तरह वाकिफ होती थीं। कुम्हार की लड़की मिट्टी के खिलौने बनाने और बुनकर की कताई-बुनाई में दक्ष होती थी। लड़कियां गायन-वादन और नृत्य में प्रवीण होती थीं। बड़े घर की संपन्न महिलाएं साज-शृंगार में या चौपर खेलकर समय व्यतीत करती थीं। आर्थिक तौर पर कमजोर और गरीब परिवार में महिलाएं दलित और पिछड़े वर्ग की महिलाओं की तरह पिटती थीं।[5] कुर्मी, दांगी, लोधी, यादव समाज की नारी

स्वावलंबी होने के कारण अधिक स्वतंत्र थीं। इस समाज में पुरुष नारी पर हावी था, पर उतना नहीं, जितना कि उच्च एवं धनी वर्ग का पुरुष था।

मध्ययुग में नारी ने धर्म, संस्कार एवं परिस्थितियों के कारण अपने को घर तक सीमित रखा, पर योग्यता, साहस एवं अन्य गुणों में वह पुरुष से पीछे नहीं थी। बुंदेला इतिहास में ऐसी अनेक नारियां हैं, जिन्होंने अपने शौर्य से शत्रु को छकाया और जो दुर्दिन में पुरुष की शक्ति बनीं। महारानी दुर्गावती, महारानी गणेश कुंवरि, लालकुंवरि, रायप्रवीण आदि इस युग की महान नारियां थीं, जिन पर समूचे बुंदेलखंड को गर्व है।

संदर्भ

1. अबुल फजल : अकबरनामा भाग-21
2. काशी प्रसाद त्रिपाठी : बुंदेलखंड का सांस्कृतिक आर्थिक इतिहास, पृ. 73
3. चंद्रोदय प्रबोध एवं आल्टेकर : पोजीशन ऑफ वूमेन इन हिन्दू सिवलाइजेशन, पृ. 206
4. चंद्रोदय प्रबोध एवं आल्टेकर : पोजीशन ऑफ वूमेन इन हिन्दू सिवलाइजेशन पृ. 152
5. के.पी. त्रिपाठी : बुंदेलखंड का सामाजिक-आर्थिक इतिहास पृ. 115

आल्हखंड में स्त्री

◆ *जितेन्द्र बिसारिया*

'आल्हखंड' के अब तक प्राप्त चार-पांच सौ साल पुराने लिखित-पाठ और अल्हैतों की गायकी से निर्मित पाठ के आधार पर निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि 'आल्हखंड' में वर्णित स्त्रियों की प्रवृत्ति उनकी युगानुरूप प्रवृत्तियों के कितने समीप है? इसके लिए तत्कालीन उत्तर भारतीय राज्य और चंदेलकालीन बुंदेली स्त्रियों की दशा पर भी थोड़ा-सा दृष्टिपात कर लेना समीचीन होगा। इस संबंध में सबसे प्रामाणिक स्रोत चंदेलकालीन बुंदेलखंड के संस्कृत-साधक एवं परिमर्दिदेव (1165-1203) और त्रिलोक्यवर्मन (1205-1241) के अमात्य वत्सराज और उनका लिखा 'रूपकष्ट्कम' है। वत्सराज का राजकार्य से तो संबंध था ही, जनता से भी उनका सीधा संबंध था। उसने अपनी आंखों से तत्कालीन भारत की युद्धजर्जर दशा को देखा था। यही कारण है कि कवि की काव्यकला अनायास ही उसकी सांस्कृतिक चेतना से विशेष मुखरित हो उठी है। 'रूपकष्टकम्' के अध्ययन से ज्ञात होता है कि समाज में नारी को सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त नहीं था। वह कामवासना की तृप्ति का साधन जैसी होती थी।[1] कन्याओं का बलात

अपहरण और उसके कारण युद्ध एक आम बात थी।[2] इसलिए माता-पिता के लिए कन्या जन्म सुखद बात नहीं थी। हर तरह की परतंत्रता से स्त्रियां जकड़ी हुई थीं। जो कन्याएं अपने बड़ों और कुल की इज्जत का ध्यान रखतीं, वे अपनी इच्छाएं लज्जावश व्यक्त नहीं कर पातीं और दुःख सहती रहती थीं।[3] सामान्यतः नारी दुर्बलता का प्रतीक समझी जाती थी।[4] क्रूर-कामुक पुरुष उन्हें अपना बनाने के लिए धमकी भरे पत्रों, भद्र-प्रदर्शन और आक्रमण का सहारा लेते थे।[5] वस्तुतः रुक्मिणी का हरण उस काल की न जाने कितनी ललनाओं की हरण कथा का प्रतीक है। 'त्रिपुरदाह' में हिंसा और अन्याय से व्याकुल पृथ्वी त्राण के लिए महेश के पास क्या जाती है, लगता है मानो उस युग की करुणा मूर्ति नारी ही साक्षात उपस्थित हो रही है–

वाष्पाकुलास्या विकलं चलन्ती विशालनिःश्वासविलोलवेणिः॥
उपस्थिता मूर्तिमती त्वमाधि रस्मन्मनो मेदिन! सादयन्ती ॥ 31 ॥[6]

दूसरे वर्णन के लिए हम अलबरूनी के 'तारीखे हिन्द' का सहारा ले सकते हैं। अलबरूनी ने लिखा है कि "विधवाएं या तो अपने पतिदेव की चिता पर अपने को झोंक देती हैं या तपस्विनी का जीवन व्यतीत करती हैं।" वत्सराज के 'रूपकष्टकम्' में भी सती का प्रमाण है। राजभक्ति और देश-प्रेम जैसे महत्त्वपूर्ण मूल्य भी स्त्रियों में व्याप्त थे। अलबरूनी ने लिखा है कि "हिन्दुओं का विश्वास है कि यदि कोई देश है तो उनका, जाति है तो उनकी, यदि शासक हैं तो उनके।" इतिहासकार फरिश्ता ने इसी का समर्थन करते हुए नारियों की भावना को उजागर किया है, "हिन्दू वीरांगनाओं ने अपने जवाहरात बेच डाले और धर्म युद्ध के संचालन के लिए उन्होंने दूरस्थ देशों से भी अपनी सहायता भेजी।"[7] तत्कालीन दशा पर राहुल सांकृत्यायन की 'बोल्गा से गंगा' की दो कहानियां 'चक्रपाणि' और 'नूरदीन' का सहारा लिया जाए तो उनमें हम देखते हैं कि उस समय स्त्रियां एक ओर तो विलास की वस्तु बनती जा रही थीं, तो दूसरी ओर पुरानी परंपरा के अनुसार बिना पर्दे के उच्च वर्ग की स्त्रियां युद्ध में भाग भी लेती थीं। दलित-पिछड़े वर्ग की स्त्रियां छाती उतान कर खेतों में डोलतीं, काम करती रहती थीं।[8] बहन-बेटी को रनिवास में भेजकर पद प्राप्त किए जाते थे। कामवासना तृप्त होने पर वृद्ध राजा अपने रनिवास की बहुत सारी स्त्रियों को ब्राह्मणों को दान दे देता था। स्त्रियों की पशुओं की भांति खरीद-फरोख्त भी होती थी।[9]

'आल्हखंड' में स्त्रियों की तत्कालीन दशा और दिशा इसी परिपेक्ष्य में देखते हुए, उनका विभाजन तीन भागों में कर सकते हैं–

राजन्य वर्ग : इस वर्ग की स्त्रियों में महोबा की रानी मल्हना दे, राजकुमारी चंद्रावलि, कन्नौज के सम्राट जयचंद की पत्नी तिलका दे, पुत्री संयोगिता और लाखन सिंह की पत्नी कुसमा दे प्रमुख हैं। इसके अलावा माड़ौं की रानी कुशला, राजकुमारी बिजमा, पृथ्वीराज की पुत्री बेला, नैनागढ़ की राजकुमारी सुनवा, पथरीगढ़ की राजकुमारी गजमोतिन, नरवर की राजकुमारी फुलवा और बलखबुखारा की राजकुमारी चित्तरेखा इत्यादि भी उल्लेखनीय हैं। ये स्त्रियां महल और परिवार की चहारदीवारी में ही बंद थीं और उन्हें स्वतंत्र निर्णय लेने की अनुमति नहीं थी, किंतु शिक्षा, युद्ध और राजनीति का ज्ञान इन्हें अवश्य प्राप्त था। पुत्री के रूप में राजन्यवर्ग की लड़कियों की दशा अच्छी थी। उनके जन्म और विवाह पर पिता दुःखी नहीं, उत्साहित होते थे। उनकी इच्छा का सम्मान होता है। वे सखियों के साथ स्वच्छंद विचरण और शिकार खेलती हुई दिखाई देती हैं। भाई के साथ वे दूर देश के मेलों में घूमने जाती हैं, जादू-टोने करती हैं। स्वेच्छा, किंतु गुप्त रूप से वर चयन कर अपने पिता और भाइयों के विरुद्ध गुप्त सूचनाएं, सहायता और युद्ध में भी खड़ी दिखाई देती हैं। उनका अपहरण होता है और स्वेच्छा से प्रेमियों के संग भागती भी हैं, प्रेम में धोखा होता है और मारी भी जाती हैं।

अभिनंदन राजा की बेटी, चित्तरेखा राजकुमारि।
पाँच सौ जोधा भाई हंसा, केसर नटनी संग में आयँ।।

– – –

सुआ बनाकें इंदल कुँअर खाँ, निज पिंजरा माँ लओ बिठाय।।[10]

– – –

भेद बता देव तुम माड़ौ का, कैसे टूटै दुरग तुमार।
या मन भाय गई बिजमा के, सबरो भेद दओ बतलाय।।

– – –

खेंचि सिरोही मलिखे मारी, बिजमा गिरी तड़का खाय।
बिजमा बोली बघ ऊदल सें, म्वाखाँ तुमने डारो मराय।।[11]

पत्नी के रूप में इस वर्ग की स्त्रियों की दशा अच्छी नहीं थी। यद्यपि 'आल्हखंड' के मूल पाठ में अधिकांश राजाओं को एक पत्नीव्रत धारी ही बताया

गया है, किंतु उस समय बहु विवाह की प्रथा प्रचलित थी। राजा का सभी रानियों के साथ व्यवहार समान नहीं होता था। रनिवास में सौतिया डाह की घटनाएं भी बाद के पाठों में देखी गई हैं।[12] वह अपनी इच्छा से अपने पिता के घर बारह-बारह वर्ष तक नहीं जा पाती थीं :

मल्हना रोबै सतखंडा माँ, लै-लै नाँव चन्द्रावलि क्यार।
सबकी बिटियाँ नैहरवा माँ मोरी बिटिया रयै ससुरार।।
बारह बरसैं ब्याव के बीते, कोउ नाहिं चौथी लाओ चलाव।
आस लगायें निसदिन हुइहै, सावन माँ कोउ आहै लिबाय।।[13]

यद्यपि रूपवती स्त्रियां अपने पति और परिवार की प्रिय होती थीं, किंतु उनका पुरुषोचित व्यवहार किसी भी दशा में स्वीकार नहीं किया जाता था। राजन्य पुरुष स्त्री को बराबरी देना अपना अपमान समझता था। चंदेलकालीन समय तक आते-आते स्त्रियों और पुरुषों की दशा लगभग तय हो चुकी थी और किसे कहां रहना है और किसके क्या कर्तव्य हैं, लगभग यह भी तय हो चुका था। पुरुषों का संसार जहां बाहरी दुनिया थी तो स्त्रियों की घर के भीतर। पुरुष का कार्य घर के बाहर युद्ध भूमि होने तथा बहुपत्नीत्व के चलते, राजन्य स्त्रियां दीन होने की दशा तक, पति को अपने पास रोकने के प्रयास करती थीं :

ऊपर चितै कही व्याकुल हुई, बहिनि बदरिया होउ सहाय।
कारी बदरिया तुमकों समुरौं, कौंधा बीरन की बलि जाऊँ।
झमकि के बरसों तुम अंटा पर, कंता आज रैनि रहिं जायँ।।[14]

देशभक्ति और राजभक्ति सिद्ध-सामंत युग के समाज की प्रमुख विशेषता थी—स्त्री और पुरुष दोनों की। तत्कालीन समय की यही मांग थी और मजबूरी भी। युवराज लाखन जब अपनी पत्नी कुसमा की कोई बात नहीं मानते, तब हताश कुसम-दे 'सती' के पारंपरिक आदर्श पर उतरकर वह लाखन को उसका कर्तव्य स्मरण दिलाती है और अपने कर्तव्योन्मुख होने की हामी भरती है—

रोकत हारी पदमिन कुसमा, मिटी रोकबे की सब आस।
सत्त धारिकें पतिव्रता को, दोऊ कर जोर बिनती कीन।।
लिखी विधाता की कौ मैंटे, हुइहै जो कछु लिखी लिलार।
टूटी आसा भई निरासा, अब कब मिलिहैं कंत हमार।।
जेई बिनै सुन लेव अब मोरी, सारौ काज चंदेले क्यार।
लड़ियों ऐसैं समरभूम में, जुग-जुग साकौ चलै तुम्हार।।

पाँ पिछारू ना धरियो तुम, नहिं छत्रीपन जाइ नसाय।
जो सुन पैहों भगे कनौजी, तो मैं पेट फारिया मर जाँव।।
समुहै रन में जो तुम जुझिहौं, लैंके संग सती हुई जावँ।[15]

राजन्य वर्ग की स्त्रियां अपने 'सत-पत्त की रक्षा के लिए साहस की हद पार कर जाती थीं। शत्रु के हाथ लगने की अपेक्षा अग्निकुंड में कूद मरना, सीने में विष बुझी कटार उतार लेना या विषपान कर लेना उनके लिए दाएं हाथ का खेल बन गया था :

रानी उतरीं सतखंडा से, औ डोला माँ बैठी जाय।
चन्द्रबलि कौ डोला सजिगो, कजरी दोना और कटार।।
डोला सजिगे सब सखियन के, कजरी दोना धरे कटार।
विष की पुड़िया लाव बचावे, सब डोलन मा धरी सजाय।[16]

— — —

रगड़ो मस्तक जब सतवंती, तुरतै उठी अगिन भहराय।
जै-जैकार भई सत्ती की, पुर नर-नारी पूजो जाय।
घर-घर चर्चा लाखन बीर की, औ कुसमा के सत्त की गाय।[17]

— — —

फुलबा-सुनवाँ सत्त राखिबे, कूँदी अग्निकुंड माँ जाय।[18]

उस समय की अधिकांश स्त्रियां स्वेच्छा से ही 'सती' या 'जौहर' करती थीं! और उनके इस प्रकार 'सती' होने के निश्चित मानदंड थे। वे युद्ध क्षेत्र में शत्रु के सम्मुख युद्ध करते मारे गए पति के साथ ही सती होती थीं। कायरतापूर्वक पीठ दिखाकर युद्धक्षेत्र से लौटे पति का मुख देखने की अपेक्षा, कटार से अपना पेट फाड़कर मरना वे ज्यादा श्रेष्ठ समझती थीं।[19] हेमचंद्र द्वारा संकलित वीर गाथाकालीन प्रसिद्ध दूहा—'भल्ला हुआ जो मारिया बहिणि महारा कंतु, लज्जेजतु वय सिंह जब भागा घर एवंतु।'[20] राजन्य वर्ग की स्त्रियों की यह स्थिति आदर्श नहीं कही जा सकती, क्योंकि 'आल्हखंड' में ही राजन्य वर्ग में स्वच्छंद और ऊंचे मस्तिष्क वाली स्त्रियों को एक जगह अनिष्टकारी, तो दूसरी जगह स्त्रियों का 'मत' लेना कायरतापूर्ण माना गया है :

मंड़वा नीचे चली भवानी, तब मलखे कों परी दिखाय।
ऐसे बोल बोलो बेला सें, सिरसा बारो मरद मलखान।।
ऊंचे कपारे कै बेला ती धर-धर आबै पुलइयन पाँव।

जनो-जानो तुहिं बिस्वामिन, हीरा खाओ चंदेले क्यार।।
न तैं बिटिया सोमेसुर की ना तैं बहू चंदेले क्यार।
दोनऊं कुल मैंटें का उपजी एक दिल्ली एक नगर महोब।।[21]

मां के रूप में इस वर्ग की स्त्रियों का उच्च स्थान था। मां की आज्ञा पर पुत्र अपना शीश कटाने तक को तत्पर रहता था। पुत्रों के अबोध और पति के वृद्ध, विलासी या मृत होने पर अधिकांश माताएं आत्मनिर्णय की क्षमता में होती थीं। वे दूसरे राज्यों से पत्र व्यवहार और सहायता भी लेती और देती थीं। महोबा की रानी मल्हना, कन्नौज की रानी तिलका, माड़ौं की रानी कुशला और दिल्ली की रानी अगमा को इस रूप में हम देख सकते हैं।

'आल्हखंड' में शत्रु की मां को भी सम्मान की दृष्टि से देखा गया है। संकट पड़ने पर महलों में अधिकांशतः वृद्ध नारियां और राजमाताएं ही विवाह, पूजन, युद्ध, सती और जौहर में स्त्रियों का प्रतिनिधित्व और उत्साहवर्धन करती थीं :

भीतर से छत्रिन नारिन नें, लै, लै आपन नगिन तरवार।
लओ मोरचा द्वारन-द्वारन, कटि माँ बाँधें छुरी कटार।।
मलिखे बोले हाथ जोरकें, हम नारिन ना करैं नारिन पे बार।
भीतर से रानी घबरा कें, अट्टा पै आयीं अकुलायँ।
बोली मलिखे से अनुचित भओ, जो तिरियन पै डारौ हाथ।।[22]

'देशभक्ति' और 'राजभक्ति' इस युग का प्रमुख जीवन मूल्य था। 'आल्हखंड' में सामंत वर्ग की अधिकांश नारियों का चरित्र इन्हीं मूल्यों से बंधा मिलता है। यद्यपि सुनवा, फुलवा, गजमोतिन, चित्तरेखा इत्यादि राजपुत्रियां थीं, किंतु उनके विवाह आल्हा, ऊदल, मलखान और इंदल जैसे सामंतों के साथ होने से गाथा में उनका दोहरा चरित्र बनता है। वह राजन्य वर्ग की स्त्रियों की अपेक्षा कुछ स्वतंत्र और सक्रिय हैं। घर से लेकर बाहर के कार्यों में उनका परामर्श लिया जाता है।

राजन्य वर्ग की नारियों की अपेक्षा सामंतवर्गीय स्त्रियां काफी साहसी और वक्त पड़ने पर युद्ध क्षेत्र में भी जाती दिखाई पड़ती हैं। वे दूसरे देश के राजा से संधि और सहायता लेने में भी समर्थ हैं। वह युद्ध से विमुख पति या पुत्र को रणक्षेत्र में जाने के लिए केवल फटकारती ही नहीं, वे स्वयं रणक्षेत्र में जाने के लिए तत्पर भी रहती थीं :

मोहि दे कमर-कटार ढाल तरवार की बच्छी।
कच्छी के असवार जात लाखन में अच्छी।।

मरबे के डर करौ बेख तिरियन को धरौ।
नैनन कज्जल देव माँग मोतिन से भरौ।[23]

'आल्हखंड' के अनुसार सामंत स्त्रियां, पति के मरने पर इच्छानुसार सती होती या नहीं भी होती थीं। कुछेक तो शत्रु से बदला लेने के लिए अपने पति के खेत रहने और पुत्रों के बड़े होने तक सुहाग के चिह्न चूड़ी-बिछुआ तक नहीं उतारती दिखाई गई हैं :

कसम खाय के बैठी हौं मैं, लैंके नारायन को नाँव।
जा दिन बारे समरथ हुइहैं, लैहैं बाप कका को दाँव।।
बिछिया चुरियाँ सब पहरे हौं, मैंने नाहिं उतारी लाल।
जा दिन करिया मरहै ता दिन, जैहों चुरियाँ ताल सिराय।[24]

विलियम वार्ड (ऑन हिस्ट्री, लिटरेचर एंड माइथॉलोजी ऑफ दि हिन्दूज भाग द्वितीय 408), एच.एच. विल्सन (द रिलिजस सैक्ट्स ऑफ द हिन्दू) जेम्स टॉड (द एनल्स एंड एंटिक्विटीज ऑफ राजस्थान भाग–द्वितीय पृ. 715), गौरीशंकर हीराचंद ओझा (राजपूताने का इतिहास प्रथम खंड 87) लेकर 'रिलिजस एस्टैब्लिशमेंट्स, फैस्टिवल्स ऑफ इंडिया' खंड–द्वितीय 639-642 तक सबने आल्हखंड के 'आल्ह मनौआ' प्रसंग को ऐतिहासिक मानते हुए उसमें वर्णित आल्हा-ऊदल की मां देवल दे (दिवाला) की भूरि-भूरि प्रशंसा की है।[25] विदित हो कि चंदेल शासक राजा परमर्दिदेव ने चुगलखोर माहिल परिहार के कहने पर आल्हा-उदल को सामान्य प्रजा की तरह महोबा से निर्वासित कर दिया था। इस स्थिति का लाभ दिल्ली नरेश पृथ्वीराज चौहान ने उठाते हुए महोबा की घेराबंदी कर परमर्दिदेव से अपमानजनक दंड भरने को कहा था। अपने वीर सरदारों से विहीन-शक्तिहीन हुए महोबा और उसकी रानी मल्हना दे को अंततः आल्हा-ऊदल का स्मरण आता है। निराश मल्हना दे अपने विश्वस्त और महोबा के जनकवि जगनिक को आल्हा-ऊदल को मनाने कन्नौज भेजती हैं। कन्नौज में अपने पिछले अनुभव और अपमान की आग में तपे आल्हा-ऊदल, जगनिक के साथ महोबा लौटने से इंकार कर देते हैं। निराश जगनिक आल्हा-ऊदल की मां देवल दे से इस बाबत गुहार लगाता है। तब पूर्व में रानी मल्हना से उपकृत देवल दे हठ पर उतर आए अपने पुत्रों से जो वचन बोलती हैं, वह अवश्य ही एक कृतज्ञ, स्वाभिमानी और देशभक्त महिला के वाक्य रहे होंगे :

'देबै बोली तब कुँवरन सें, ध्यान से सुनियो बात हमार।
बारे सें मल्हना नें तुम पालो, अवखुरवन में दूध पिवाय।।

जा दिन जनम लये पुरवा मां, डीलन नची पौर के द्वार।
लैकें ओली जब ऊदल कों, मल्हना की ओली डारो जाय।।
तब रानी ने ऊदल पालो, फोहन भर-भर दूध पिबाय।
जब-जब बिपदा परै महुबै मां सांकर काटी बनाफर म्वार।।[26]

सिद्धों और नाथों द्वारा चलाए गए तंत्रवाद और योगमार्ग की चाहे जितनी निंदा की जाए, पर उसकी एक अच्छाई यह थी कि इसकी क्रियाओं में लोकतांत्रिकता थी। उनमें स्त्रियां, शूद्र और अत्यंज बराबर की भागीदारी पाते थे। जात-पांत का उसमें निषेध था।[27] आल्हा में अधिकांश शक्तिशाली निम्नवर्गीय नारी चरित्र, चाहे उनमें सहजो जोगिन, हिरिया मालिन, केशर नटनी या सुभिया बेड़िनी हों, वे सब अपनी तांत्रिक दक्षता के कारण ही युद्धस्थल में अपनी उपस्थिति दर्ज कराती दीखती हैं। सुभिया बेड़िनी तो नट जाति की स्त्रियों की फौज के साथ ऊदल जैसे पराक्रमी योद्धा का बलात् अपहरण कर, झारखंड के जंगलों में ले जाकर उससे विवाह करने का असफल प्रयास भी करती हैं।[28]

सहजो जोगिन माड़ौ बारी, चेलिन आय झिलमिला क्यार।
इन्द्रजाल कै विद्या जाने, ऊसे बरक के कुसल तुमार।।[29]

— — —

श्यामा भगतिन जादुगरनी, जीको जादू जग में ख्यात।।[30]

— — —

केसर नटिनी की चेली भई, जो मानुष का करै अहार।
गंगानहाबे गई बिठूरै, तहं से मानुस ल्याई चुराय।।[31]

'आल्हखंड' में इन जोगिनों और निम्न वर्गीय स्त्रियों के राजन्य वर्ग के बीच प्रवेश पर प्रश्न उठ सकता है, आखिर यह सब कैसे? मनु का विधान तो इस संबंध में अपनी सहमति व्यक्त नहीं करता! तब इससे पहले हमें जायसी कृत 'पद्मावत' की पंक्ति :

'यह कर गुरु चामारिन लोना, पाढ़न पठयै कामरू टोना।'[32]

का स्मरण भी कर लेना चाहिए, जिसमें इतिहास प्रसिद्ध तांत्रिक योगिनी लोना चमारिन को ब्राह्मण 'राघव चेतन' का गुरु बताया गया है। वेद विरोधी शाखाएं वज्रयान और नाथ-सिद्ध योगियों और शैव-शाक्तों के तंत्रवाद का प्रभाव समाज पर इस प्रकार का था। इन जादूगरनियों और जोगिनों के अलावा महोबा की पृष्ठभूमि में प्रजावर्ग की दो स्त्रियां उल्लेखनीय हैं—लाखा पातुर और हिरिया

बरइन। लाखा महोबा की अप्रतिम सौंदर्य और नृत्यकला में प्रवीण युवती थी, जिसे पहली बार महोबा की लड़ाई में माड़ौं का कलचुरी करिया राय अन्य बेशकीमती वस्तुओं के साथ लूटकर ले गया था और दूसरी बार महोबा की घेराबंदी के दौरान दिल्लीपति पृथ्वीराज चौहान पर माल से दंड भरने में लाखा की भी मांग करता है :

हार नौलखा लाखा पातुर, सबरो लूट लओ रनवासा।[33]

— — —

नाच कों लिखि दई लाखा पातुर औ भूषन कों नौलखा हार।।[34]

लाखा नर्तकी होकर भी महोबा की सम्माननीय महिला थी। माड़ौ पर आक्रमण के समय उसकी उपेक्षा नहीं होती। युद्ध से पूर्व संधि में लाखा की वापसी की मांग भी प्रमुख थी।

उसी तरह हिरिया बरइन महोबा के सैनिक देवकरन की पत्नी, ऊदल के बचपन की मित्र और वह रानी मल्हना के सुख-दुःख की साथिन है। वह एक दबंग स्त्री है और कहीं से भी उसका हीनता बोध नहीं झलकता! वह भी झलकारी की तरह उग्र और साहसी स्त्री के रूप में वर्णित है :

आम लोटना मां झूला घालो, हम तुम झूलै एकै साथ।
कीन्हों भड़ाका मोरे बदन मां, औ मैं मारी बाँह भवाँय।।
गड़गै ककनिया भौं के ऊपर, दै गई घाव बनाफर राय।
दाग ककनिया को अबलौ दरसत, भगवा कबै रंगो उदराज?[35]

'आल्हखंड' में वर्णित तत्कालीन बुंदेली नारियों के चित्रण से एक संश्लिष्ट चित्र उभरता है, उसे हम डॉ. रमेशचंन्द्र श्रीवास्तव के शब्दों में कुछ इस तरह समझ सकते हैं, ''चंदेल काल के उत्तरार्ध तक आते-आते क्रमशः स्त्रियों की दशा में संकीर्णता आ गई थी। राजपरिवारों एवं उच्च वर्ग की महिलाएं शिक्षित हो गईं, किंतु सैनिक शिक्षा से उदासीन युद्धों में लुप्तप्राय-सी रहीं। स्त्रियां भोग की सामग्री मानी जानी लगीं। मंदिरों में देवदासी प्रथा प्रवेश पाने लगी। महानचनी राजाओं की प्रसन्नता के लिए संगत एवं नृत्य के कार्यक्रम मंदिरों के सामने करने लगीं। स्त्रियां आर्थिक रूप से परावलंबी थीं। चंदेलकाल धार्मिक उदारता और सहिष्णुता के लिए स्मरणीय है। शैव, वैष्णव, जैन-बौद्ध धर्मावलंबी प्रचार-प्रसार में स्वतंत्र थे। चंदेलकाल में वाममार्ग भी उत्कर्ष पर था। कापालिक संप्रदाय अवैदिक था। पंच मकार मत्स्य, मांस-मदिरा, मुद्रा और मैथुन निम्न वर्ग में प्रचलित थे। खजुराहो की

मिथुन मूर्तियां भी सामान्य प्रचलन का ही प्रतिबिंब हैं। नाथ-पंथी साधु इसके प्रचारक थे, निम्न वर्ग इसका अनुयायी था। चंदेलकालीन शासक अपने आपको कलियुग का उद्धारक-कलियुग की बुराइयों को नियंत्रित कर समाज में कृतियुग (सतयुग) की ओर ले जाने वाला मानते थे। उन्होंने एक ओर वैदिक धर्म की पुनर्प्रतिष्ठा की ओर ध्यान दिया, दूसरी ओर सदाचार को संरक्षित किया। कामकला की गणना शिष्टाचार के अंतर्गत थी, हेय नहीं थी, अश्लीलता त्याज्य, निंदित नहीं थी। चंदेल वर्ग की उत्पत्ति ब्राह्मण कन्या से मानी जाती है। वर्ण-संकरता सामाजिक व्यवस्था के एक अंग के रूप में मान्य थी।[36]

संदर्भ

1. रूपकष्टकम् पृ. 47
2. *कन्यां खड्गबलोदयेन कलयन्नार्हिमि गर्हामहं।*
   श्लाध्यस्त्वं शिशुपाल! निस्त्रपमुपाललम्भानिमान्यारहन।। रुक्मि. 4 ।14।
3. (क) अहो, संकटम् कन्यकानाम्।
   (ख) अहह, सुकष्टः कन्यकाभावः! तथाहि,
   हृदयं मदनायत्तं वपुरायत्तं गुरुजनस्यैव।
   मरणं दैवायत्तं कथं न सीदन्तु कुलकन्याः।। रुक्मि. 3 ।1।।
4. हित्वा पौरुषवासनां न मलिभावं गहिष्माम्यहम्।। त्रिपुर दाह. 1 ।40।।
5. रूपकष्टकम् पृ. 41-42
6. डॉ. अयोध्या प्रसाद द्विवेदी : वत्सराज के रूपकों में सांस्कृतिक चेतना, आल्हखंड-नर्मदा प्रसाद गुप्त, 1983, पृ. 26
7. हरिश्चन्द्र वर्मा (संपादक)—मध्यकालीन भारत भाग-1 (नीना सक्सेना : तुर्कों का आगमन), 2004, पृ. 14
8. राहुल सांकृत्यायन : वोल्गा से गंगा, 1942, पृ. 251-52
9. वही, पृ. 232-33
10. वही इंदल हरण, पृ. 240
11. वही, माड़ौगढ़ की लड़ाई, पृ. 86-95
12. सिंहल द्वीप की लड़ाई-मुखिया टीकाराम, 1995, पृ. 52
13. नर्मदा प्रसाद गुप्त : चंदेलकालीन लोक महाकाव्य आल्हा : प्रामाणिक पाठ (चंद्रावलि की चौथी) पृ. 193
14. वही, पृ. 394
15. वही, पृ. 394
16. वही, पृ. 352

17. वही, आल्हा मनौआ पृ. 394
18. वही, पृ. 444
19. वही, आल्हा मनौआ पृ. 394
20. डॉ. गजानन शर्मा : प्राचीन भारतीय साहित्य में नारी, 1993, पृ. 223
21. वही, दिल्ली की लड़ाई, पृ. 468
22. वही, बूंदी की लड़ाई पृ. 279
23. आशा गुप्ता : आल्हखंड, नयी दिल्ली, 1999, पृ. 248
24. वही, पृ. 20
25. वही, माड़ौं की लड़ाई, पृ. 78
26. वही आल्ह मनौआ, पृ. 389
27. बच्चन सिंह : हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, दिल्ली, 1996, पृ. 35
28. आशा गुप्ता : आल्हखंड (ऊदल हरण) पृ. 229
29. नर्मदा प्रसाद गुप्ता : चंदेलकालीन लोक महाकाव्य आल्हा : प्रामाणिक पाठ (माड़ौं की लड़ाई), पृ. 163-64
30. वही, मलखान कौ ब्याउ पृ. 153
31. वही इंदल हरण पृ. 145
32. आचार्य रामचंद्र शुक्ल (संपादक) : जायसी कृत 'पदमावत' (राघवचेतन : खंड), 1924, पृ. 198-99
33. नर्मदाप्रसाद गुप्त, चंदेलकालीन लोक महाकाव्य आल्हा : प्रामाणिक पाठ, माड़ौ की लड़ाई पृ. 78
34. वही, कीरत सागर की लड़ाई, पृ. 342
35. वही, पृ. 352
36. डॉ. रमेशचन्द्र श्रीवास्तव : बुंदेलखंड साहित्यिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक वैभव, पृ. 163

बुंदेलखंड की स्त्री

◆ *श्यामसुंदर दुबे*

सैयद हैदर रजा साहब विश्व प्रसिद्ध चित्रकार हैं। रंगों के जादूगर हैं वे। वसंत ऋतु की रंगरेजागिरी को देखने, अनुभव करने ही बुंदेलखंड के केन्द्र दमोह आते हैं। दमोह में उनका बचपन बीता है। उनसे एक जिज्ञासु ने प्रश्न किया कि वे संसार में विचरते रहे हैं, अनेक वस्तुएं, अनेक दृश्यावलियां उन्होंने देखी हैं, अनेक रूप-रंगों के लोगों से उनका साबका पड़ता रहा है। वे यह बताएं कि उन्हें सबसे सुंदर क्या लगा, जिसे वे अब भी याद कर सकते हैं। इस प्रश्न का उत्तर देने में रजा साहब ने कोई समय नहीं लिया। वे बोले, "बुंदेलखंड की स्त्री की सुंदरता को मैं नहीं भूल पाया। वसंत में बुंदेलखंड की इसी सुंदरता को मैं पुनः-पुनः निहारने आता हूं। ऐसा सौंदर्य मैंने दुनिया-जहान में नहीं देखा है।"

जब बुंदेलखंड के चेतनावान कवि केदारनाथ अग्रवाल बुंदेली स्त्री के सौंदर्य को अपनी कविता के तल पर उतारते हैं, तब यह सौंदर्य उन्मुक्त सौंदर्य नहीं रह जाता है। एक तरह से वे बुंदेलखंड की स्त्री के सौंदर्य को शापित सौंदर्य की परिभाषा में प्रत्यक्ष करते हैं। 'सुन ले मेरी ब्याही औरत / ऊपर से नीचे तक / पूरा अंगुल-अंगुल / इस देही का मेरा ही / बस मेरा है / घर के

भीतर / बेंडी बेंडी / केवल दर्पण में मुख देखे / लंबे घूंघट को खींचे / केवल चूड़ी की धुन सुन ले।'' बुंदेलखंड के अंतरंग को उद्घाटित करने वाले लोक कवि ईसुरी ने बुंदेली स्त्री के सौंदर्य को अनेक कोणों से अनुभव किया था। वे बुंदेली स्त्री के सौंदर्य के पारखी कवि हैं। अचरज यह है कि वे इस स्त्री के समाज के रूप, पहनावा और श्रम-जनित आचरण का चित्रण करते हुए बुंदेली मर्द की लोलुप दृष्टि के दायरे में उसे असहाय-सा महसूस करते हैं। 'अपने जरद जुबनबा ढांकौं देसकाल है बांकौं / छलिया छैल बसत बस्ती में पार न लैवे डाकौं/ नन्द-भौजाई चली पनियां खौं, छैला बादै नांकौं/ अपनी बात बनाबौ चाहत छैला है मद छांकौं/ ईसुर काल बनाए रहयो, कुलै न अबै टांकौं।' स्त्री-छवि का यह प्रकरण बुंदेली परिवेश में स्त्री की उपस्थिति के अनेक आयाम खोलता है। बिना उपरिवस्त्र के उघाड़े बदन रहने वाली स्त्री, अपनी श्रमपूर्ण जीवन-चर्या में अपने गार्हास्थिक कार्यों में रत रहने वाली स्त्री और कुल-मर्यादा का भार अपने सिर पर ढोते रहने वाली असुरक्षित स्त्री! इन तीन दृष्टांतों में बुंदेली स्त्री की खोज-खबर लेने वाले कलाविदों के हवाले से जो अनुभव प्रस्तुत किए जा रहे हैं, वे बुंदेली स्त्री की मानसिकता को और उसके आचरण को एकदम सटीक प्रस्तुत करते हैं।

मनुष्य की शारीरिक और मानसिक संरचना का आधार प्राकृतिक समायोजन होता है। प्रकृति ने हजारों वर्षों से मानवीय शरीर के सौंदर्य की तराश अपने परिवेश के हिसाब से की है। बुंदेलखंड की नदी और बुंदेलखंड की नारी की देह-यष्टि के सुसंगठन में यहां की प्रकृति का योगदान है। पहाड़ों-चट्टानों, निचाइयों-ऊंचाइयों, मैदानों की वर्तुल आकृतियों, घनी वनराजियों, ऋतुओं की अनाहत और उत्कर्षमयी क्रमलीला, गिरि-कंदराओं और खोहों की बीहड़ता तथा लहलहाती शस्त्र सरिणियों की उन्मुक्तता ने यहां की स्त्रियों की पिंडलियों, जंघाओं, कटि परिधियों, छातियों, ग्रीवाओं, भुजाओं और मुखाकृतियों की ठोस मांसल और क्षीण संरचनाओं में अपना योगदान किया है। तन्वी शाखाओं, प्रकोहित वल्लरियों और पुष्पित मंजरियों ने आंगिक लोच-लचक और आंगिक विस्फार को ईषत् दिशाएं प्रदान की हैं। यहां की परिपूर्ण, निष्कलंक शीतल चांदनी और उतप्त अनियारी धूप ने एक तरह से स्त्रियों को मृसण, किंतु तीक्ष्ण गोराई की मादकता से आपूरित किया है तो दूसरी ओर चिलकती-किलकती श्यामता का उत्तेजक रंग-संयोजन यहां की वनैली वनिताओं की वर्ण-विशेषता है।

बुंदेलखंड की स्त्री किसी भी स्तर पर मर्द से श्रम करने में कम नहीं है। मैंने गांव की स्त्रियों की दिनचर्या की वह समय सारिणी देखी है, जिसमें उन्हें एक पल विश्राम नहीं है। झाड़ा-बुहारी से उनका दिन प्रारंभ होता है। अलगनी पर वस्त्र टांगना, सानी-पानी करना, गाय-भैंस दुहना, कंडे पाथना, कलेऊ और भोजन रांधना, कलेऊ खेत तक पहुंचाना, अनाज कूटना, पीसना, धौना-बीनना, लीपा-पोती करना जैसी घर की श्रम-आचरण प्रधान जीवन पद्धति के साथ वह खेत-खलिहान तक को अपनी जीवन-ज्योति से जगर-मगर करती रहती है। खुरपी से नींदा गोड़ना, कुदाली से माटी खोदना, हंसिया से चारा काटना, बुआई करना, उगाहनी करना, उसके घर-बाहर के क्रिया-कलापों की ओर इंगित करने वाले प्रसंग हैं। व्यवसायगत अनेक संदर्भों में वह अपनी शक्तियों के उत्पादक प्रसंग रचती रहती है। कपड़े सिलना, बांस की कमठी से दैनिक उपयोग के सूपा, दौरिया, टोकरी आदि बनाना, मजदूरी करना, चरखा कातना जैसे घरेलू उद्यमों में बुंदेली स्त्री की सहभागिता घर के लिए उपयोगी अर्थोपार्जन में कम नहीं है। वह बुंदेली पुरुष के साथ शक्तिरूप बनकर खड़ी हुई है। इन व्यवसाय वृत्तियों की उपलब्धियों में वह यद्यपि अपने को कभी शामिल नहीं करती है। वह अंतर्वतनी रस-धारा की तरह ही घर-गृहस्थी के वृक्ष को पल्लवित-पुष्पित और फलभरित करती रहती है। निरंतर सक्रियता का जीवन-प्रवाह उसकी अनेक मानसिक ग्रंथियों के आक्रमणों को पराभूत करता रहता है। इसलिए बुंदेली स्त्री शारीरिक और मानसिक स्तर पर स्वस्थ रहती है। इन दोनों का निरुज रहना उसके रूप-सौंदर्य को दीप्तिवान करता है। उसकी कर्मचेतना उसे जीवन ललक से आपूरित करती रहती है। जीवन की विभिन्न आसक्तियों से वह अपने को टुकड़ों-टुकड़ों में बांटती हुई भी जागतिक परिस्थितियों में एक मजबूत शिला की तरह अड़ी रहती है। यही वजह है कि वह विपरीत स्थिति में भी नदी जैसा बहना जानती है।

उसका जीवन यथार्थ और स्वप्न का झलमलाता अनुभव आलोक है, जहां उसे यथार्थ का दबाव उत्तापित करता है, वहां वह अपने गीले आंसुओं में मन के संभ्रमों को सानकर एक उर्वर लोक रचने के लिए उत्प्रेरित होने लगती है। घर के भीतर घुसी-घुसी वह ऊबने की पराकाष्ठा में जैसे ही पहुंचती है, पुरुष का वर्चस्व उसे जिस तरह से समेटकर बेजान वस्तु बनाने पर उतारू होता है, वैसे ही वह अपने स्वप्नों में विस्तारित होना चाहती है। वह चिड़िया बनकर उड़ना चाहती है। वह चांदनी बनकर फैलना चाहती है। वह चक्की की परिधि में फैलते

सफेद आटे की तरह संपूर्ण कालिमा और संपूर्ण दारिद्रय को नष्ट कर प्रसन्नता का सूरज उगाना चाहती है। लोक कंठ से उसकी अभिलाषाएं फूटती हैं। लोक गीत बनकर 'उड़ आवती चारऊ देस चिरैया हो जाती राजा।' मैं चिड़िया बनकर स्वतंत्रता के निस्सीम आकाश में उड़ना चाहती हूं। 'ऐसी गोला चांदनी मोरो मन उफनानो री।' बहुत सुंदर और ठोस चांदनी में मेरा मन उफना उठता है। वह ऐल-फैलकर चांदनी के साथ होना चाहता है। मुंह अधियारे आटा पीसती मेरी मां जब गाती थीं कि मैं इस अंधियारे में एक ऐसा ही सूरज उगाना चाहती हूं, जैसा कि आटे का सफेद वलय मेरे जांते के चारों ओर फैल रहा है। बुंदेली स्त्री कैसे स्वप्न में आकांक्षाएं उसके परिगत एक प्रसन्नता का परिवेश निर्मित करती रहती है। वह स्वतंत्रता के मूल्य से परिचित है। वह सुखद संकल्पों की सार्थक अभिव्यक्ति के लिए कर्मशील होकर समानता का संसार सृजित करना चाहती है। वह न्याय से नियमित समाज में अपनी उपस्थिति को महसूस करना चाहती है। इसलिए वह कह उठती है कि 'तिरिया जन्म जनि देव रही', किसी को त्रिया का जन्म नहीं देने की प्रार्थना वह ईश्वर से करती है। स्त्री की दोयम दरजे की स्थितियों का खुलासा इस तरह की अभिव्यक्तियों के माध्यम से होता है। यह यथार्थ न केवल बुंदेलखंड की स्त्री का है, बल्कि समूचे देश में स्त्रियों की यही व्यथा-कथा फैली है। स्त्री द्वारा अपने जीवन का निषेध उसकी यंत्रणाग्रस्त जीवनी की ओर ही संकेत करता है और समाज है कि अब उसकी जन्म न धारण करने की इच्छा की पूर्ति हेतु कन्या-भ्रूण हत्या जैसे जघन्य कृत्य से अपने हाथ अपवित्र कर रहा है।

बुंदेली स्त्री का मन संबंधों में विलसता-हुलसता है। वह अपने संबंधों के सहारे भी अपने जीवनगत समस्त अभावों में एक उल्लसित जीवन-भूमि तलाश लेती है। पति-पुत्र-बेटी, सास-ससुर, जेठ-देवर, ननद-भौजाई के विभिन्न संबंधों में घर की चारदीवारी में अस्तित्वहीन होती यह स्त्री जीवन के रस से लबरेज होती रहती है। ननद-भौजाई के तानों-उलाहनों का विमर्श जहां अमर्ष के क्षण उपस्थित करता है, वहां देवर-भौजाई जैसे रिश्तों की मिठास के तार जीवन संगीत के स्वर छेड़ते रहते हैं। अमर्ष और हास-विलास को जीवित रखने वाले ये रिश्ते जीवन को व्यापक परिप्रेक्ष्य में समझने के अवसर देते हैं। पति-पत्नी का रिश्ता जहां आपसी विश्वास को सिरजता है, वहीं बुंदेली स्त्री के आचरण की दृढ़ता को भी प्रकट करता है। बुंदेलखंड में पति-परायणा स्त्रियों का त्याग प्रधान जीवन वरेण्य रहा है।

पत्नी का प्रत्येक व्रत-उपवास पति और पुत्र की कुशल-क्षेम की याचना अपने आराध्य से करने का निमित्त बनता है। यहां की स्त्री अपने लिए कभी भी अपने निमित्त कुछ नहीं मांगती है। उसने अपने को घर में, घर के परिवेश में कुछ इस तरह से समर्पित कर दिया है कि वह अपने अस्तित्व को अकेले-अकेले अनुभव करती ही नहीं है। माता और पुत्री के संबंध तो बुंदेलखंड में करुणा के अनेक स्रोतों के रूप में ही प्रवाहित होते रहते हैं। बेटी की विदाई के गीतों में मां का हृदय द्रवित हो उठता है। 'माता के रोये गंगा-जमन बहुत है।' बेटी की विदाई पर माता के आंसू रुकते ही नहीं हैं। दोनों आंखें मानो गंगा-यमुना बन जाती हैं। वेदना का यह व्यापक विस्तार बुंदेलखंड के संबंधों का आधार है। बुंदेली स्त्री सारे संबंधों को करुणा के गीलेपन से जोड़ती रहती है। वह अपने को निःसत्व करके जो घर रचती है, वह घर बुंदेली मन के सुआ का पिंजड़ा नहीं होता है। वह घर आत्मीयता का नीड़ बन जाता है। बुंदेली स्त्री स्वयं बंधनग्रस्त होकर सबको मुक्त करती रहती है।

बुंदेलखंड की स्त्री आस्था और विश्वास के सघन तंतुओं से अपनी जीवनी की चादर बुनती रहती है और इस चादर में लपेटती रहती है घर-परिवार के सगुन-साधों के मंगलमय भावना भुवनों के शीर्ष शिखर। वह हर असफलता में भाग्य की भूमिका निर्धारित कर लेती है, वह जीवन के चक्रीय विधान में पुनर्जन्म की धारणा को परिपुष्ट करती हुई अपनी आस्था की प्रबलता में कृष्ण के लीला-विलास और राम के आदर्श चरित्र की अनुगामिका बन जाती है। वह मथुरा का पथरा बनने की हूक पालती है—'मथुरा का पथरा बनैयो हरी', नारी-जीवन की नियति की निष्पत्ति में यह वरदान है या अभिशाप, उसे बखूबी मालूम है। वह जानती है कि इस जीवन से अच्छा तो मथुरा का वह प्रस्तर है, जिस पर कृष्ण के चरण पड़ते हैं। अस्वीकार और वरण का यह धूप-छांही भाव बुंदेली नारी के मानस की बुनावट को प्रकट करता है।

उसके विश्वास उसे राहत देते हैं। टोने-टोटके, तंत्र-मंत्र, पूजा-पाठ, गुनियां-नावते, भूत-भभूत उसके त्रिताप-विनाशक हैं। प्रत्येक विपत्ति के प्रतिरोध के लिए बुंदेली स्त्री अपनी प्राथमिकी इन्हीं की ड्योढ़ी में दाखिल करती है। ये अंधविश्वास उसे भविष्य को देखने की दृष्टि देते हैं। इनमें होते हुए वह अपने को अधिक सुरक्षित मानती है। वह भविष्य की चुनौतियों को एक नारियल फोड़ने की मनौती से निराकृत करना चाहती है। इस रूप में उसकी रक्षा खेरमाई, लंगड़ेलाल, कुलदेवता,

सदैव करते रहते हैं। बुंदेली नारी अपने समस्त आसन्न भयों को किसी न किसी देवता-धामी को सौंपती रहती है। समाज की शक्तियों की निरर्थकता को समझती है। उसके परिगत सक्रिय रहने वाले समस्त मानव केंद्रित बल-बिंदु जब उसके किसी काम के नहीं रहते हैं, जब सब उसका शोषण करना चाहते हैं, जब सब उसे अबला बनाए रखना चाहते हैं, तब फिर वह जाए तो जाए कहां? इसलिए वह खेरमाई के दरबार में अपनी अर्जी डालती है, ''दिन की उकसन किरन की फूटन सूरज सामू दोर हो मां! विपत की मारी इक तिरिया रोबे...' उसके आंसू पोंछने के लिए अधिक दैविक शक्तियां उसके साथ खड़ी रहती हैं। विफलताओं के बाद भी इन शक्तियों पर से उसका विश्वास नहीं डिगता।

बुंदेली स्त्री के मानस में मानवीय चेतना के उदात्त मूल्य निरंतर सक्रिय रहते हैं। घोर कष्टों के ज़ंजालों में लिपटी यह स्त्री अपनी नैतिक शक्तियों को छीजने नहीं देती है। लज्जा, शर्म, दया, दान, मान-मर्यादा, प्रण-पूर्णता, पत की रक्षा, आन-बान और शान की बुंदेली ध्वज की संवाहिका बनकर बुंदेली स्त्री ने न जाने कितनी गाथाएं लोक-इतिहास में सुरक्षित रख छोड़ी हैं। हरदौल के कथानक में हरदौल की भाभी की पति-परायणता और परिवार के पत की रक्षा का विषम संगर भले ही देवर के प्राण लेने के उपक्रम में छिपा हो, किंतु वह वही करती है, जिसमें उसके सतीत्व का कंचन-कलश जगमगाता रहे। बुंदेली लोकगाथापरक गीतों में इस स्त्री की चरित्र-संचरना के अणुपरक जीवन मूल्यों की शिनाख्त की जा सकती है। सुरहिन गाय की गाथा में; जो गाय जंगल में चरने जाती है, वह शेर से सामना करती है। यह गाय स्त्री-चरित्र की प्रतीक बनकर ही क्रियाशील होती है। वह कहती है कि मेरा बछड़ा भूखा है। मैं उसे दूध पिलाकर वापस आ जाऊंगी और तुम्हारा ग्रास बन जाऊंगी। शेर गाय के कथन पर विश्वास कर लेता है, गाय वापस लौटती है। अपने बछड़े को दूध पिलाती है। बछड़ा उसके जल्दी लौटने का कारण जानना चाहता है, तो वह संपूर्ण घटना का विवरण उसे सुना देती है। बछड़ा मां का साथ नहीं छोड़ता। गाय शेर के पास पहुंच जाती है और लोक कवि कहता है—'बचन की बांधी सुरहिन गैया।' अपने वचन के बंधन का निर्वाह गाय नहीं, बल्कि इस क्षेत्र की स्त्री भी करना जानती है। वह टेक रखने में विश्वास करती है। यही टेक झांसी की रानी लक्ष्मीबाई द्वारा अंग्रेजों को दो टूक उत्तर देने में मुख्य भूमिका निबाहती है। 'मैं अपनी झांसी नहीं दूंगी।' जीते-जी लक्ष्मीबाई अपनी झांसी नहीं देती हैं। अंग्रेजों के छक्के छुड़ाने वाली यह बुंदेली वीरांगना युद्ध भूमि

में भी अपने को प्रमाणित करती है और लोक कंठों में उसका बलिदानी चरित्र इस तरह से स्वरित होने लगता है कि बुंदेली कवयित्री सुभद्रा कुमारी चौहान गा उठती हैं—'खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी।' बुंदेली स्त्री वक्त आने पर मर्दानी होना जानती है। ऐसी मर्दानी, जिस पर हजारों मर्द न्यौछावर हो उठते हैं। बुंदेलखंड की चट्टानों में छिपे फौलाद, मेगनीज जैसे खनिज अपनी कठोरता में खड्ग-लीला रचने लगते हैं। यहां की चट्टानी स्त्री निर्झर-प्रवाहिनी वत्सला कुल्या भी है,तो वह युद्ध में अग्निकणिकाएं बरसानेवाली काली भी है।

एक सीमा तक व्यक्ति की रचना में परिवेश और प्रकृति सक्रिय रहती है। इसके बाद व्यक्ति भी अपने परिवेश और अपनी प्रकृति की रचना करने लगता है। उसकी संवेदना और उसकी मेधा जिन सांस्कृतिक आयामों की सृजनात्मकता में अभिव्यक्त होती है, वे आंचलिक पहचान चिह्न बनने लगते हैं। बुंदेली स्त्री ने अपने सांस्कृतिक अभिप्रायों में बुंदेलखंड की पहचान कायम की है। उसकी कला-चेतना के अनेक सृजन बिंदु हैं। गोबर और छुई से की गई लीपा-पोती मात्र लीपा-पोती नहीं है, वह विशिष्ट कला-संरचना भी है। बुंदेली स्त्री के द्वारा रचित फर्श और दीवारों पर कलिका कोंण वाले गोबर के चतुर्भुज बुंदेली फर्श-सज्जा है। दीवारों पर उकेरे गए मयूर-जोड़े बुंदेली चित्र शैली की खास पहचान हैं। बुंदेली स्त्री मयूर जोड़े पर रीझने वाली है। इसलिए उसके शरीर पर गोदे गए गोदनों में भी इस जोड़े का महत्त्वपूर्ण स्थान है। विशेष पर्वों और त्योहारों पर चित्रांकन करने की परंपरा बुंदेलखंड में है। यह चित्रांकन स्त्री द्वारा ही संपन्न किया जाता है। इन चित्रों में चौक-चंदा-सूरज, नसैनी, पगथलियां, फल-बेल आदि का प्रमुख स्थान है। प्रकृति और मनुष्य की जुगलबंदी उसकी चित्रकला में उभरती है, जो यह स्पष्ट करती है कि बुंदेली स्त्री ने प्रकृति और मनुष्य के इस अंतरंग सम्मिलन को महत्त्व दिया है। बांस-पत्रों को चित्रों से सजाने वाली बुंदेली स्त्री का आरेखन जिन कल्पनाओं को सिरजता है, उनमें बुंदेली कला के अद्‌भुत नमूने प्रदर्शित होते हैं। बुंदेलखंड की पर्वत उपत्यकाओं में जो आदिम चित्र बीथियों वाले शैलाश्रय प्राप्त होते हैं, उनकी रचना भी स्त्री मानसिकता का परिणाम है। बुंदेली चित्र शैली को इस आदिम चित्र शैली से जोड़ा जा सकता है।

बुंदेली पाक सामग्रियों में यहां की स्त्री की पाक-प्रणालियों की कुशलता प्रकट होती है। बुंदेली मांडे, घेवर, बुंदेली बरा और बुंदेली सन्नाटा का स्वाद बुंदेली स्त्री के हाथ, मन की कला-चेष्टाओं और रसग्राही अभिरुचियों का परिणाम है।

यहां की स्त्री ने जो 'समूदी' नाम की कच्चे भोजन की व्यवस्था की है, वह अपने स्वाद में जितनी विविधवर्णी है, उतनी ही वह स्वाथ्यवर्द्धक है। राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त के घर पर पहुनई करने वाले अनेक साहित्यकारों ने इस 'समूदी' भोजन व्यवस्था की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। बुंदेलखंड की गकड़ियां और मटर का भरता बुंदेली स्त्री की कला का नायाब नमूना है। बुंदेली स्त्री मिठासप्रिय होने के साथ-साथ दूध-घृत जैसे भोजन उपादानों की पक्षधर है। वह जीवन की सरसता से अपने पकवानों को परिपूर्ण करना जानती है।

नृत्य और गायन कला की सूत्रधारिणी बुंदेली स्त्री ने जो अपना कला-संसार सृजित किया है, उसमें बुंदेलखंड की पहचान विश्वविश्रुत हो चुकी है। इस अंचल का राई नृत्य-स्त्री केंद्रित नृत्य है। बुंदेलखंड के बेड़िनी से संबोधित होने वाले नाटी समुदाय ने 'राई' नृत्य के लिए अपनी गायिकी और अपनी देहगत भाव-भंगिमाओं का ही एक लीला-विलास रचा है। बेड़िनी का नृत्य चटुल गति- भंगिमाओं का समुच्चय है। यह नृत्य कामुक उन्माद की उन्मथित उत्ताल तरंगों से तरंगायित उच्छल सागर की उत्तेजक मुद्राओं का रूपक निर्मित करता है। यह नृत्य जहां बुंदेलखंड के उन्मोचित स्वभाव को अभिव्यक्त करता है, वहीं घूंघट काढ़े बधाई नृत्य करती बुंदेली कुलीन स्त्रियां मंद गति-लय में जब अपनी देह-यष्टि को आघूर्णित करती हैं, तब लज्जा में लिपटी बुंदेली स्त्री की लय संरचना में कुछ ऐसा भाव विकसित होने लगता है; जैसे वह अपने नृत्य में उन्मुक्त होने को छटपटा रही हो। बुंदेलखंड की स्त्री ने अमर्यादित और मर्यादित दोनों तरह के सीमांत रचे हैं। अपनी रहन और कहन में बुंदेलखंड जहां ठेठ और भदेस है, वहीं वह विनयी और मर्यादित भी है।

बुंदेली स्त्री ने इन ध्रुवांतों का स्पर्श किया है। विवाह के जेवनार में जब वह बारातियों की खोज-खबर अपने गायन में लेती है, तब मानो वह अश्लीलता की भी हदें लांघ जाती है। रति-कर्म के गोपनीय दृश्यों को साक्षात करती उसकी अभिव्यक्तियां उसके खुलेपन की चुगली करने लगती हैं, लेकिन जब वह बधाई गाती है, तब वह इस लोक को ऐश्वर्य मंडित कर देती है। 'आज दिन सोने को महाराज' उसे समूचा दिन स्वर्ण आभा से मंडित लगने लगता है। सुरहिन गाय के गोबर से वह अंगना लेपित करती है, मोतियों के चौक पूरती है—ये दोनों स्त्रियां उसके सपनों को प्रकट करती हैं। संयुक्त परिवार में दबी-दबी-सी रहने वाली स्त्री अपने गोपनीय क्रिया-कलापों में भी बहुत सकुची-सहमी, डरी-डरी रहती है। वह

खुलकर अपनी उत्तेजनाओं में प्रकट नहीं हो पाती। इसलिए बारात जैसे प्रसंग में उसको इस स्तर पर उन्मुक्त होने के अवसर सुलभ हो उठते हैं और वह अपने सभी कुटुंबियों के सामने अपनी कामजात वासनाओं का सार्वजनिक इजहार करते हुए निर्ग्रंथ हो उठती है। दूसरी स्थिति में वह अपनी छोटी-मोटी गृहस्थी के अभावों में गुजर-बसर करती हुई एक सुखद समुन्नत गृहस्थी को रचती है।

कलामय बुंदेलखंड में स्त्री की उपस्थिति एक विस्तृत हिस्से को दीप्त करने वाली है। वह चटख रंगों में रमती, उत्तेजनाओं में अप्सरा सी उतरती, ऋतुओं की परिवर्तित छवियों में बदलती अनुभूतियों को अपनी गीत-संरचनाओं में ढालती बारहमासा के चक्र में अनेक उद्दीपनों का स्पर्श करती, प्रकृति की साझेदारी में अपने को घोलती हुई, बुंदेली स्त्री जीवन की भरपूरता का पूरा स्वाद लेना चाहती है। वह जीवंत रस से लबरेज होना चाहती है।

मायके और ससुराल के बीच आवाजाही करती बुंदेली स्त्री ससुराल के उत्तरदायित्वों का भलीभांति संपादन करती हुई अपनी स्मृतियों में मायके के लिए जगह बनाए रहती है। नर्मदा तीर पर बसे गांव में ब्याही गई लड़की जब नर्मदा के हाथी दरवाजों वाले घाटों पर पहुंचती है, किसी अंधियारी सांझ में तब उसे अपने मायके के झिलमिलाते दीपक दिखने लगते हैं, वह गा उठती है, 'नरवदा के हाथी दरवाजे रे हाथी दरवाजे मोये मायके के दिपला दिखाय।' ससुराल में रहते हुए भी उसकी आंखों में मायके की स्मृतियां दिपदिपाती रहती हैं। क्वांरी नर्मदा के कगार पर प्रत्येक कुलवधू का अपनी मायके की स्मृति से सराबोर हो उठना केवल काव्य-अभिव्यंजना नहीं है, बल्कि यह जीवन यथार्थ का बहुत करुण पहलू भी है। बुंदेली स्त्री जिन गीतों को गाती है, उनमें हर्ष, उल्लास, करुणा, दुःख, रूठना-मनाना, प्रेम-प्रीति, भक्ति-प्रार्थना आदि विषयों का समावेश है। बुंदेली बोली के सटीक बोलों में इन भावों को साकार करने वाली बुंदेली स्त्री काम करते हुए, एकांत को गुनते हुए, उपवास रखते हुए, यात्राएं करते हुए, पूजा-पाठ में रमते हुए लोक गीत गाती है। इन गीतों का गायन अकसर समूह में होता है। बुंदेली स्त्री अपनी अनुभूतियों को ही इन गीतों के माध्यम से परस्पर बांटती है और दुःख-सुख में सह अनुभूतियों की साझेदारी करती है। बुंदेली राग-रागिनियों और बुंदेली शब्दों की दुनिया का प्रामाणिक रूप इन लोक गीतों में प्राप्त होता है और इनके द्वारा हम स्त्री द्वारा रची गई बुंदेलखंड की धड़कनों को सुन सकते हैं।

बुंदेलखंड की स्त्री देश और दुनिया की अन्य स्त्रियों के समान ही जन्म लेती है, खेलती-कूदती है, ससुराल जाती है, वंश वल्लरी में वृद्धि करती है, परिवार पालती है, गृहस्थी चलाती है, जीवन के समस्त कला-व्यापारों में रमती है। इन्हें सिरजती है। उसकी मानसिक बुनावट में भी स्त्रियोचित एकता है। उसके सपने भी वैसे ही हैं; जैसे अन्य क्षेत्रों की स्त्रियों के होते हैं, लेकिन बुंदेलखंड की भूभौतिकी और बुंदेलखंड की सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक, परिस्थितियों में जो स्त्री स्वभाव विकसित हुआ, वह कुछ भिन्नता लिए हुए है। यह सर्वविदित है और सर्वस्वीकृत तथ्य है कि बुंदेलखंड सर्वाधिक पिछड़ा क्षेत्र है। आवागमन के साधनों की कमी है। औद्योगिक विकास में पिछड़ापन, वर्षा आधारित खेती में निरंतर पड़ते अकालों का सिलसिला, योग्य राजनीतिक नेतृत्व का अभाव, शिक्षा, विशेष रूप से स्त्री शिक्षा का सीमित होना आदि कारण बुंदेलखंड को स्तब्ध और जड़ीभूत क्षेत्र बनाते हैं। जहां अन्य क्षेत्र के स्त्री समुदाय को विकसित दुनिया के साथ कदम मिलाते हुए चलने की सुविधा प्राप्त है, मसलन विभिन्न नौकरी-पेशा पदों पर स्त्रियों का काबिज होना, जहां स्त्री उच्च शिक्षा और उच्च शोध कार्यों में अपनी प्रतिभा का सही इस्तेमाल कर रही है। जहां आर्थिक और औद्योगिक क्षेत्रों में स्त्रियों की भागीदारी बढ़ी है, वहां बुंदेलखंड की स्त्री अब भी घर-गृहस्थी में खटती हुई अपनी सीमित जिम्मेदारियों का निर्वहन कर रही है। आधुनिकता की बयार छू भी नहीं गई है। इसलिएं वह अपने पति की प्रताड़ना सहती है, किंतु कहीं शिकायत तक नहीं करती है।

मुझे एक वाकया याद आ रहा है। पच्चीस-तीस वर्ष पूर्व मैं अपने पिता का इलाज कराने पास के शहर गया था। वहां मैं एक धर्मशाला में रुका था। गर्मी का समय था। इसलिए हम लोग धर्मशाला के आंगन में ही बिस्तर लगाकर सोने का उपक्रम कर रहे थे, तभी धर्मशाला की एक कोठरी में चीख-चिल्लाहट सुनाई पड़ी। कुछ देर में कोठरी के बाहर एक पुरुष और एक स्त्री निकले। पुरुष स्त्री को बेरहम होकर पीट रहा था और स्त्री जोर-जोर से रो रही थी। मेरे पिता वृद्ध थे। वे कई मामलों में नैतिकता के पक्षधर थे। इसलिए वे झपटे और स्त्री पर उठाने वाले पुरुष का उन्होंने हाथ पकड़ते हुए कहा, "कितना बेशऊर है! परदेश में स्त्री पर हाथ उठाता है।" पुरुष शांत हो गया, किंतु स्त्री ने मेरे पिता को झिड़कते हुए कहा, "तुम कहां से आ गए। वह मेरा पति है। मुझे पीट रहा है, तुम्हें इससे क्या लेना-देना। बड़े आए न्यायकर्ता!" पिता लौट आए थे। यह कहते हुए कि 'तेरे

भाग्य में जब पिटना ही बदा है तो पिट।' बुंदेलखंड की स्त्री अब भी अपने रूढ़िबद्ध संस्कारों में कैद है। वह नए समाज की संरचना में अब भी अक्षम है। वह लड़कियों के दकियानूसीपन की कायल है। उनके आधुनिक रहन-सहन और आधुनिक सोच की निंदक है। वह सास है तो बहू पर हुकुम चलाना अपना फर्ज समझती है। वह ननद है तो भौजाई से सेवा कराना अपना हक महसूस करती है। बुंदेलखंड में अब भी स्त्रियां आत्महत्या के लिए प्रेरित होती हैं। दहेज की बलि-वेदी पर न जाने कितनी बहुएं होम दी जाती हैं। बुंदेली स्त्री का चिंतन-क्षितिज अपनी सीमाओं से घिरा है। इसलिए उसका जीवन अनेक नारकीय अनुभवों से गुजरने के लिए अभिशप्त है। गांवों में स्थिति भयावह है। वहां स्त्री स्वयं अन्य के वर्चस्व में रहकर अपने को सुरक्षित अनुभव करती है। इसलिए वर्चस्ववादी ताकतों का प्रतिकार करने में वह असफल है।

बुंदेलखंड फिर भी जाग रहा है। उसकी स्त्री अपने विकास के लिए रास्ते बना रही है। लड़कियां उच्च शिक्षा के क्षेत्र में अग्रसर हैं। राजनीतिक पदों पर स्त्रियों की भागीदारी बढ़ी है। नौकरी-चाकरी के दरवाजों पर भी स्त्रियों की दस्तक हो रही है और वे प्रवेश भी पा रही हैं। स्त्री एक नयी चेतना लेकर बुंदेलखंड के क्षितिज पर उदित हो रही है। जिस दिन बुंदेलखंड की स्त्री अपनी संपूर्ण सामर्थ्य के साथ उठ खड़ी होगी, उस दिन निश्चित ही बुंदेलखंड का भाग्य सौभाग्य में परिवर्तित हो जाएगा। विकसित बुंदेलखंड का एक सपना मैं उस बुंदेली स्त्री की आंख के माध्यम से देखना चाहता हूं, जिसमें अपने सांस्कृतिक गौरव की झिलमिलाती कौंध हो और आधुनिक विकास की निभ्रांत दृष्टि हो।

जिस तरह से बुंदेली प्रकृति की शक्तियों का सही इस्तेमाल बुंदेलखंड के विकास के लिए अब तक नहीं किया जा सका है, वैसे ही यहां की नारी-शक्ति को भी समुचित अवसर सुलभ नहीं हो पाए हैं। यहां की प्रकृति अपनी उर्वरता और अपनी उदारता में व्यापक है। यहां की स्त्री के पास भी मनुष्य के सर्वोत्कृष्ट गुणों का टोटा नहीं है। वह निश्चित ही एक दिन अपनी शक्तियों को साकार करेगी और मनुष्य के विकास में अपनी महनीयता का योगदान करेगी।

बेड़िनें

◆ *नीरू*

स्त्री और पुरुष! मानव-समाज का प्रकृति-कृत लैंगिक विभाजन! अपनी-अपनी विशिष्टताओं के साथ दोनों अन्यतम; साथ ही सृजन की सिद्धि के लिए अन्योन्याश्रित भी। परस्पर पूरक! कोई बड़ा-छोटा नहीं, मगर यह तो प्रकृति का विधान है, समाज का नहीं। समाज ने परस्पर पूरकता पर आधृत इस लैंगिक विभाजन को विषमधर्मा बनाकर एक को वर्चस्व के सिंहासन पर बिठा दिया और दूसरे को पद्दलित, शोषित, मर्दित के रूप में आंसू बहाने पर विवश कर दिया। इसलिए एक वांछित हो गया और दूसरा तिरस्कृत-उपेक्षित। अपनी पितृसत्तात्मक सोच के चलते मनोवैज्ञानिकों ने भी इस दूसरे अर्थात् स्त्री की स्थिति 'द्वितीयक' या 'अन्या' (सेकंड सेक्स) की ही मानी। अन्याय की सीमा यही नहीं थी, वर्ग-वर्णभेदी मानसिकता वाले क्रूर समाज ने इस 'सेकंड सेक्स' को भी आगे ऊंच-नीच की अनेक श्रेणियों में विभाजित कर दिया। तरह-तरह की स्त्रियां, तरह-तरह की श्रेणियां। कोई राजमहिषी तो कोई दासी। कोई सवर्ण तो कोई दलित। कोई धर्मपत्नी तो कोई रखैल। कोई स्वकीया तो कोई परकीया। कोई

सती-साध्वी तो कोई गणिका। भांति-भांति की स्त्रियां और जितनी तरह की स्त्रियां, उन्हें नियंत्रण में रखने के उतनी ही तरह के हथियार! तरह-तरह के बंधन। तरह-तरह की विशेषताएं, तरह-तरह का शोषण-उत्पीड़न। कुछ प्रत्यक्ष, कुछ अप्रत्यक्ष। यह अप्रत्यक्ष बहुधा धर्म, नैतिकता, मर्यादा जैसे मखमली आवरणों से आवृत्त। सदियों तक इन रेशमी प्रशस्तियों से भ्रमित स्त्री गर्व के साथ 'सेकंड सेक्स' बनी रही। ऐसा भी नहीं कि इस मोह-निद्रा से वह कभी जागी ही नहीं, मगर यह जागरण देश और काल के व्यापक प्रसार में नगण्य-तुल्य ही सिद्ध हुआ। वस्तुतः बौद्धिक-तार्किक क्रांति के आधुनिक युग में और फिर उसके बाद विखंडन और विकेंद्रण के आज के उत्तर-आधुनिक युग में हाशिए पर पड़ी अनेक इकाइयों के साथ-साथ स्त्री भी अपने अस्तित्व के प्रति सजग-जागरूक हुई। अपने जाग्रत विवेक के आलोक में उसने अपने मानवाधिकारों को पहचाना और उसकी प्राप्ति के लिए संघर्ष का बिगुल बजा दिया। उसने अपने शोषण-उत्पीड़न के बहुविध षड्यंत्रों को समझा तथा बड़ी निर्भीकता के साथ उनका पर्दाफाश भी किया। विश्व भगिनीवाद का सपना आंखों में संजोए उसने अपनी उन बहनों के जीवन-संघर्ष में भी सार्थक हस्तक्षेप किया, जो गरीबी और अशिक्षा के चलते समाज की विभेदकारी संरचनाओं में जकड़ी कराह रही थीं। शिक्षा, कला, समाज-कल्याण, राजनीति आदि क्षेत्रों में अपनी सार्थक उपस्थिति दर्ज करा चुकी अनेक स्त्रियों ने अपनी दबी-कुचली बहनों की ओर सहयोगभरा हाथ बढ़ाया। अपनत्व की ऊष्मा से भरा ऐसा ही एक हाथ स्त्री-रचनाकारों का भी रहा। प्रखर मेधा तथा गहरी संवेदना की स्वामिनी आज की स्त्री-रचनाकार ने ऐसी दमित-मर्दित स्त्रियों के जीवन के हर कोने-अंतरे को, उनकी पीड़ा के पोर-पोर को शब्दों में पिरोया है, गहन संपृक्ति के साथ, मगर लैंगिक पक्षपात से ऊपर उठकर।

ऐसी ही गहन संपृक्ति और लैंगिक निष्पक्षता के साथ लिखा गया शरद सिंह का उपन्यास है—'पिछले पन्ने की औरतें'। जनसाधारण का विश्वास है कि बेड़नी वह स्त्री है, जो अपनी देह के यौन-आकर्षण से पुरुषों को बांध लेती है। बाड़ की तरह, बेड़ी की तरह। इसलिए तो वह बेड़नी कहलाती है, मगर यही बेड़नी खुद शोषण और उत्पीड़न की किन-किन बेड़ियों में जकड़ी है, जनसामान्य की दृष्टि कभी वहां तक पहुंच ही नहीं पाई।

पृथ्वीराज चौहान के सैनिकों के वंशज हैं ये बेड़िया लोग। मुहम्मद गौरी के साथ हुए युद्ध में पृथ्वीराज चौहान के अनेक राजपूत सैनिक मारे गए थे। लेखिका

बताती है कि उनकी विधवाओं ने सती होने के स्थान पर (स्त्रियां प्रायः सामाजिक बाध्यता के चलते सती होती थीं, मगर यहां बाध्य करने वाले परिजन भी मारे गए थे।) जीवित रहने का निर्णय लिया। कुछ संन्यासिनी हो गईं तो कुछ ने अन्य जातियों के पुरुषों से संबंध बना लिए, मगर विडंबना यह रही कि इन संबंधों से उपजी संतानों को किसी ने भी स्वीकार नहीं किया, उन पुरुषों ने भी नहीं, जिनकी ये संतानें थीं। समाज से बहिष्कृत इन संतानों में लड़कियां भी थीं। तथाकथित उच्च जाति के संपन्न घरों के पुरुषों की बेटियां होने पर भी इनका विवाह संभव न था, अतः इन सुंदर, चतुर, सुजान लड़कियों को उत्तेजना-भरे राई नृत्य और वेश्यावृत्ति के लिए विवश होना पड़ा। सामाजिक बहिष्कार के कारण इनके घर के पुरुषों के पास रोजगार के अवसर उपलब्ध नहीं थे, अतः वे या तो छोटे-मोटे अपराधों की ओर प्रवृत्त हो गए या अपनी जरूरतों के लिए अपने घर की स्त्रियों पर निर्भर होते चले गए। इसी विवशता के चलते ये स्त्रियां एकाधिक धनाढ्य पुरुषों से यौन-संबंध बना परिवार के प्रति अपने दायित्वों का निर्वाह करने लगीं। यायावरी वृत्ति इन संबंधों के अधिक अनुकूल थी, अतः यह समुदाय खानाबदोश जीवन जीने लगा। इसी समुदाय के जो लोग बुंदेलखंड की धरती पर आकर बस गए, वे बेड़िया कहलाने लगे।

बुंदेलखंड की परवर्ती परिस्थितियां भी ऐसी ही रहीं, जो बेड़िनों को देह-व्यापार की ओर धकेलने वाली थीं। इस क्षेत्र के अलग-अलग भूभागों पर जिन राजवंशों का शासन रहा, उनमें कलचुरि और चंदेल वंश उल्लेखनीय हैं। इनमें से चंदेल वंश के शासकों का यौन संबंधी दृष्टिकोण पर्याप्त उदार था और अपने इसी दृष्टिकोण के कारण उन्होंने मंदिरों की बाहरी दीवारों पर विभिन्न यौनासनों वाली आकृतियां भी खुदवाईं। राजाओं के इस दृष्टिकोण का समाज पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था। यही नहीं, कालांतर में मुस्लिम शासकों के अधिकार में चले जाने पर इस क्षेत्र के स्थानीय शासकों का उनसे सतत विद्रोह जारी रहा और यह क्षेत्र निरंतर युद्धों की आग में जलता रहा। लूटपाट और हिंसा का अनवरत दौर यहां जारी रहा। ऐसी अशांत-हिंसक परिस्थितियों में खानाबदोश जातियों का चोर-डकैत-लुटेरे बनना स्वाभाविक ही था।

धीरे-धीरे बुंदेलखंड की धरती पर अंग्रेज पैर पसारने लगे। स्थानीय विद्रोह अब भी जारी था। 1799 ई. में पिंडारी नेता अमीरखान ने सागर पर आक्रमण किया। आगजनी व लूटपाट ने आम जनता को संत्रास की आग में झोंक दिया।

इसी दौरान 1797 ई. से 1817 तक जबलपुर भोंसले प्रशासन के अधीन था। अंग्रेज इतिहासकारों (चार्ल्स ग्रांट : 'गजेटियर ऑफ सेंट्रल प्रॉविंसेज, 1870) ने इस कालखंड को प्रशासकीय दृष्टि से सर्वाधिक बुरा काल माना। कठोर कर-व्यवस्था के भार से जनता का जीना दूभर हो गया। शरद सिंह तर्क देती हुई लिखती हैं, "यह कहा जाता है कि अंग्रेजों ने अपने समय की घटनाओं को अपने पक्ष में बहुत बढ़ा-चढ़ाकर लिखा है। उन्होंने स्वयं को नायक सिद्ध करने के लिए भारतीय राज्य-व्यवस्थापकों एवं प्रतिक्रियावादियों को खलनायक की भांति उद्धृत किया है। यदि चार्ल्स ग्रांट ने तत्कालीन स्थिति का वर्णन नमक-मिर्च लगाकर बढ़ा-चढ़ाकर भी किया हो, तब भी छिटपुट युद्धों से कंगाल हो चला यह क्षेत्र एक भी कर बढ़ाए जाने से चरमरा गया होगा। ऐसी स्थिति में बेड़िया जैसे घुमक्कड़ समुदायों के लिए जहां ईमानदारी से रोजी-रोटी कमाना दूभर हो गया होगा, वहीं प्रशासन को भी ऐसे समुदाय खटकने लगे होंगे, जो किसी भी प्रकार की कर-नीति में नहीं फंसते थे।" (पृ. 72) परिणामतः अंग्रेजी प्रशासन ने 1829 ई. में कर्नल स्लीमेन को पिंडारियों के दमन का जिम्मा सौंपा। इस दमन-अभियान में पिंडारियों के साथ-साथ कुछ अन्य घुमक्कड़ समुदाय भी पिसने लगे। बेड़ियां भी इनमें से एक थे।

इसी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में लेखिका ने उन बेड़िया-स्त्रियों की कहानी कही है, जो प्रेम, साहस और जिजीविषा की प्रतिमूर्ति बनी लिखित और वाचिक इतिहास में तो सदियों से जीवित हैं, मगर अपनी वास्तविक जिंदगी में जो कभी राजनीति की बिसात पर मोहरा बनाकर ढेर कर दी गईं तो कभी समाज के क्रूर व्यवहार की भेंट चढ़ा दी गईं। मधुकर शाह बुंदेला की बेड़नी प्रेमिका 'चंदा', मि. ब्रिक्स्टन को मन ही मन चाहने वाली 'नचनारी', सिपाही डेलन सिंह से इकतरफा प्यार करने वाली 'फुलवा', ग्राम टीला के भूस्वामी महाराज सिंह की रखैल 'रसूबाई' जैसे कितने ही प्रसंग लेखिका ने इस उपन्यास के पन्नों पर उकेरे हैं और उनके माध्यम से बेड़नियों के जीवन को समग्रता से पढ़ने का प्रयास किया है।

क्या इन बेड़िनों का परिवार होता है? यदि हां तो कैसी होती है इनके परिवार की संचरना? बेड़िनें अपनी कुल-परंपरा का पालन करते हुए देह-व्यापार करती हैं, स्वाभाविक है कि इन संबंधों से इन्हें संतान की प्राप्ति भी होती है। इन संतानों को इनके वास्तविक पिता कभी स्वीकार नहीं करते। कारण कई हो सकते हैं और होते भी हैं। सबसे मुख्य कारण है, यौन-संबंधों में बेड़िनों की बहुगामिता। इस तथ्य के कारण यह निश्चित करना मुश्किल हो जाता है कि अमुक संतान

अमुक पुरुष से जन्मी है। अतः वास्तविक पितृत्व का प्रश्न उलझा ही रहता है। दूसरा कारण यह है कि जिन पुरुषों से ये बेड़िनें संबंधी बनाती हैं, वे प्रायः कामुक प्रकृति के व्यभिचारी पुरुष होते हैं। ये पुरुष भी प्रायः अनेक यौन संबंध बनाते हैं, इन संबंधों से इनकी कब, कहां, कौन-सी संतान जन्मी, इसका हिसाब-किताब ये रखने लगें तो सूची तो कभी खत्म ही नहीं होगी। इसलिए इस तरह के 'झंझट' में ये नहीं पड़ते। बेड़नी नचनारी अपने यौन-साथी 'ठाकुर' के चरित्र की इसी 'विशेषता' के बारे में तो सोचती है, "ठाकुर तो ऐसे न जाने कितने बच्चों का पिता बन चुका है। उसकी जमींदारी के हर गांव में उसके दो-चार बच्चे गिल्ली-डंडा या कंचे खेलते मिल जाएंगे। वह भला किस-किसके होने की खुशी मनाएगा।" (पृ. 27) ठाकुर जैसे लोग अपने वीर्य को 'अमृत' समझते हैं और 'अमृत बांटना' अपना धर्म समझते हैं। इस 'अमृत' की एक भी बूंद व्यर्थ नहीं जानी चाहिए। स्त्री-योनि नहीं तो पशु-योनि ही सही। सो ऐसे पुरुषों से पितृत्व की स्वीकृति की क्या उम्मीद हो सकती है? तो ये संतानें कहां जाती हैं? क्या इन्हें अवैध मानकर 'भद्र महिलाओं' की तरह बेड़िनें भी इन्हें किसी नदी-नाले में बहा आती हैं? नहीं। साहसी बेड़नियां इन्हें अपनी संतान मानती हैं। 'वैध-अवैध' का प्रश्न इन्हें नहीं उलझाता। श्यामा बेड़नी अपने बच्चों के विषय में दृढ़ स्वर में कहती है, "क्यों कहलाएंगे अवैध? वे अनाथ थोड़े ही हैं।" (पृ. 18) इन बच्चों का पालन-पोषण बेड़नी के लिए कभी भी आसान नहीं रहता, मगर फिर भी वह मां बनती है। आखिर क्यों? मां बनने की इच्छा हर बेड़नी के भीतर अंगड़ाई लेती रहती है। बेड़नियां अपनी इसी मातृत्व-भावना की तृप्ति के लिए मां बनती हैं। एक अन्य व्यावहारिक कारण भी है—बुढ़ापे में सहारे की जरूरत और यह सहारा मुख्यतः 'बेटियां' ही बनती हैं, इसलिए हर बेड़नी की पहली चाहत यही रहती है कि वह अपनी कोख से बेटी पैदा करे।

क्या बेड़नियां विवाह करती हैं? हां, करती हैं। जिन बेड़नियों की रुचि 'राई नृत्य' में नहीं होती (अविवाहित बेड़नियां ही राई नृत्य कर सकती हैं), वे विवाह करके गृहस्थी बसाती हैं, अपने समुदाय के पुरुषों से या कुछ अन्य निर्धारित समुदाय के पुरुषों से। यह विवाह प्रायः परिवार वालों की सहमति से होता है। इस विवाह के लिए लड़के की योग्यता का पैमाना क्या रहता है? छोटे-मोटे अपराध करने की और पुलिस से बचने की लड़के की योग्यता। बिलौटी बेड़नी के प्रसंग में लेखिका लिखती है, "बिलौटी के विवाह के पूर्व नचनारी की मां और बाबू ने

बिलौटी के भावी पति से पूछा था कि 'तुमने अब तक कितनी चोरियां कीं? चोरी करने के अपराध में कितनी बार पकड़े गए?' 'छोटी-बड़ी मिलाकर एक सौ उन्तालीस चोरियां...पकड़ा गया सिर्फ नौ बार।'' उत्तर दिया था बिलौटी के भावी पति ने। बिलौटी के परिवारवालों ने भावी पति का यह आंकड़ा 'सम्मानजनक' पाया। खानाबदोश जीवन व्यतीत करने वाले बेड़ियों की यही तो खूबी रही कि वे अपने खेमे की लड़की उसी को पत्नी के रूप में सौंपते, जो चोरी करने में 'अच्छा रिकॉर्ड' रखता हो।'' (पृ. 41) स्वाभाविक है कि यह योग्यता गृहस्थी का भारी-भरकम बोझ उठाने में असमर्थ ही सिद्ध होगी। यूं भी यह 'योग्यता' वास्तव में तो 'अपराध' ही है। अतः इस योग्यता का प्रदर्शन जोखिमभरा है। चाहे अतीत में कर्नल स्लीमेन का दमन-अभियान हो या आज के पुलिस तंत्र का सख्त रवैया, बेड़िया पुरुषों के लिए खतरा सदैव बना रहा। और किसी कार्य में निपुण न होने के कारण, अशिक्षा के कारण, नशे की लत के कारण ये पुरुष शनैः-शनैः अकर्मण्य होते चले गए और अपनी निजी तथा पारिवारिक आवश्यकताओं के लिए अपनी पत्नियों या परिवार की अविवाहिता बेड़नियों (बहन, बुआ, मौसी आदि) पर निर्भर होते चले गए। इसीलिए स्थिति यह बनी कि बेड़नी विवाहित हो या अविवाहित—दोनों ही स्थितियों में उसे देह-व्यापार (और चौर्य-कर्म भी) करना पड़ा। स्वेच्छा से, मगर कभी-कभी विवशभाव से भी।

ऐसी ही विषम परिस्थितियों में अपनी आर्थिक जरूरतों को पूरा करने के उद्देश्य से बेड़नियों ने एक प्रथा को स्वीकार किया, 'सिर ढंकने की प्रथा' अर्थात् रखैल बनने की प्रथा। इस प्रथा के तहत कोई भी धनाढ्य पुरुष (प्रायः जमींदार, नंबरदार या कोई सामंत और प्रायः सवर्ण), पूरे बेड़िया समुदाय के सामने अभी-अभी वयस्क हुई (रजस्वला हुई) किसी अविवाहित बेड़नी से संबंध जोड़ने की सार्वजनिक घोषणा करता है। इस संबंध को जोड़ने की एवज में वह कुछ रकम तो एकमुश्त देता है, साथ ही उस बेड़नी के भरण-पोषण के लिए वार्षिक राशि की घोषणा भी करता है। एकमुश्त रकम से उसी समय सामूहिक जाति-भोज किया जाता है, यदि कुछ राशि बच जाए तो वह उस लड़की को व्यक्तिगत संपत्ति के रूप में दे दी जाती है। घोषित वार्षिक राशि प्रायः नाममात्र की होती है और उसकी अदायगी के लिए कोई कानूनी बाध्यता भी नहीं होती। यद्यपि सामाजिक अवमानना से बचने के लिए (कि बेड़नी रखी तो थी, अब पाली नहीं जाती) प्रायः यह धनिक व्यक्ति इस राशि का भुगतान कर देता है,

मगर तब भी इस रिश्ते में बेड़नी शोषित ही होती है, इसमें कोई संदेह नहीं। उस धनिक की यौन-आवश्यकताओं (यौन-विकृतियां कहना चाहिए) को पूरा करने, उसके अवैध बच्चों को जन्म देने, उसके पारिवारिक समारोहों में उसके परिवारजनों (जिनमें उसकी पत्नी यानी इस बेड़नी की सौत भी शामिल होती है) तथा नशे में धुत्त ऐय्याश मित्रों के आगे 'राई नाचने' के मुकाबले यह राशि नगण्य ही सिद्ध होती है, मगर बेड़नी की आर्थिक विवशताएं उसे इस रिश्ते में प्रवृत्त होने के लिए बाध्य करती हैं।

'राई नृत्य' बेड़नी की सबसे बड़ी पहचान है। उसका अन्यतम वैशिष्ट्य! देश-विदेश के सांस्कृतिक मंचों पर वह इस राई नृत्य के जरिये अपनी पहचान बना चुकी है। देह-व्यवसाय हेतु अपने ग्राहक जुटाने के लिए वह कामुक चेष्टाओं से युक्त राई नाचती है और अपनी कमर की लोच व कूल्हों के ठुमकों से मनचले पुरुषों को लुभा लेती है। अपने सोहबतियों के साथ मिलकर जब वह गीत-संगीत, नृत्य और स्वांग का प्रदर्शन करती है तो समां बंध जाता है। लेखिका ने ऐतिहासिक चंदेरी नगरी से आगे ग्राम करीला के निकट एक पहाड़ी मंदिर के आसपास रंग पंचमी की रात होने वाले विराट बेड़नी मेले का अद्‌भुत वर्णन किया है, जिसमें 'राई' का वैभव अपने सुंदरतम रूप में चारों ओर बिखरा रहता है। राई नृत्य की पद-गतियों, मुद्राओं तथा इस समय की बेड़नी की वेशभूषा व हाव-भाव का उल्लेख भी लेखिका ने किया है। वह लिखती हैं, "राई नृत्य की प्रमुख पद-गतियां और मुद्राएं होती हैं—ठुमके, चकरी, गिरदी, कोण, उड़ान, बैठकी, मोरचाल, मोरघुमन, झटका, ठड़कचका और जुगलबंदी। राई नृत्य करने वाली बेड़नी घेरदार लहंगा और चोली पहनती है, जो चटख रंग का सुनहरे-चमकीले गोटे से सजा होता है। लहंगा नाभि के नीचे से एड़ी तक लंबा रहता है। इस नृत्य में कमर की लोच का विशेष महत्त्व रहता है, अतः चोली और लहंगे के बीच कमर का काफी सारा भाग खुला रहता है। चोली के ऊपर से चूनरी ओढ़ी जाती है, जो गोटे और सितारों से सजी रहती है। राई नृत्य करते समय बेड़नी का मुख लंबे घूंघट से ढंका रहता है, यद्यपि चुनरी झीनी होती है। वह अपने दाएं हाथ में रूमाल बांधे रखती है अथवा पकड़े रहती है। वह इस रूमाल को नृत्य के दौरान जिस पुरुष के ऊपर डाल देती है, उसे बेड़नी की इच्छानुसार धनराशि देनी पड़ती है। नृत्य के दौरान एक पल वह भी आता है, जब बेड़नी भ्रमरी के समान तेजी से घूमती है और अपने घेरदार लहंगे से दर्शक

के रूप में उपस्थित किसी भी पुरुष के सिर को ढंक देती है। यह नृत्य की सबसे उत्तेजनात्मक अंतक्रिया होती है।" (पृ. 252-253)

मगर ऐसा अद्‌भुत राई नाचने वाली ये बेड़िनें खुद जीवन-भर नियति के इशारों पर नाचती रहती हैं। इनकी समस्याएं अनंत हैं, किसी भी अन्य स्त्री की ही तरह। इन समस्याओं का स्वरूप किंचित भिन्न अवश्य है। बेड़िया स्त्रियां भीतर तक थर्रा देने वाले यौन-शोषण का शिकार होती हैं। इनके यौन-ग्राहक प्रायः यौन-विकृतियों से पीड़ित होते हैं, अतः कोई इन्हें मुख-मैथुन के लिए विवश करता है, कोई इन्हें चौपाया बनाकर इनसे अत्यंत पीड़ादायी यौन-संबंध बनाता है। ये और इनके ग्राहक दोनों ही बहुगामी प्रकृति के होते हैं, गर्भनिरोधकों के प्रयोग के प्रति लापरवाह होते हैं, अतः दोनों के ही यौन रोगों से संक्रमित होने की पूरी आशंका रहती है, मगर धनाभाव के कारण बेड़नी स्त्री के लिए यह दशा मर्मांतक पीड़ा देने वाली सिद्ध होती है।

इन बेड़िया स्त्रियों का गर्भकाल, प्रसवपूर्व-काल तथा प्रसव के बाद की स्थितियां भी अत्यंत शोचनीय रहती हैं। फुलवा बेड़नी का पति डेलन सिंह पूरे गर्भकाल में उससे मनचाहे रूप में यौनसंबंध बनाता रहा। उसे इस बात की तनिक भी चिंता नहीं थी कि इससे गर्भस्थ शिशु पर घातक प्रभाव पड़ सकता है। बेड़नी नचनारी को प्रसव के एक माह बाद ही राई नृत्य करने के लिए विवश होना पड़ा। इन बेड़नियों के भाग्य में विश्राम कहां?

बेड़िया स्त्रियों का जीवन असुरक्षा के साए में बीतता है। अतीत में भी स्थितियां ऐसी ही थीं, आज भी बहुत नहीं बदलीं। कभी कोई जमींदार इन्हें उठवा लेता था, कोई यौन-पिपासा शांत होने के बाद टुकड़े-टुकड़े करवाकर मगरमच्छों को खिला देता था, कोई बंदी बना लेता था। आज भी स्थितियां कहां बदली हैं? बेड़नी श्यामा की बेटी गुड्डी का पति उससे जबरन देह-व्यापार करवाता है और विरोध करने पर जान से मारने की धमकी देता है। गुड्डी की सहायता करने वाला युवक सहायता के बदले इस 'बेड़नी का स्वाद चखने' की शर्त रखता है। श्यामा का शरणदाता गुड्डी का विवाह अपने छोटे भाई से करवाकर खुद भी उससे मुंह काला करने का दुःस्वप्न देख रहा है। समाज, पुलिस, कानून सब बेड़नियों को दबोचने के लिए अपने खूनी पंजे तैयार किए बैठे हैं। बेहतर भविष्य या सामाजिक प्रतिष्ठा तो दूर की बात है, बेड़िया स्त्रियों की तो अस्तित्व-रक्षा की लड़ाई ही खत्म नहीं हो रही।

यह लड़ाई जारी है तो बेड़नियों के जीवट के कारण ही। अपने समुदाय के पुरुषों की अकर्मण्यता, पुलिस का भय, अपने यौन-साथियों का पीड़ादायी व्यवहार, अवैध बच्चे जनने की पीड़ा, एकल अभिभावकत्व, सामाजिक प्रताड़ना, अपने शरणदाताओं का छलनामय व्यवहार, सब कुछ सहती हैं ये बेड़नियां, मगर हार नहीं मानतीं। अद्‌भुत है इनकी जिजीविषा! धन्य है इनका साहस! अविश्वसनीय है इनका लचीलापन! इनके यौन-साथी इन संबंधों से पैदा हुए बच्चों को अपना नाम नहीं देते, न दें। ये इन बच्चों के पिता के नाम की जगह 'पैसा' लिखवाएंगी और इस प्रकार उन भद्र पुरुषों के मुंह पर तमाचा जड़ेंगी, जो बेड़नी से संबंध बना तो सकते हैं, मगर उसे स्वीकार करने का साहस नहीं रखते।

यह लड़ाई जारी है तो चंद ऐसे प्रयासों के कारण भी, जो वैयक्तिक प्रशासनिक या सामाजिक स्तर पर घटित हुए हैं। हिमाचल में जन्मी चंपा बहन द्वारा बेड़नी उद्‌धार के लिए ग्राम पथरिया में स्थापित 'सत्य बोधन आश्रम' या मध्यप्रदेश सरकार की 'जाबाली योजना' या 1986 ई. में बनाया गया 'पथरिया प्रोजेक्ट', मध्यप्रदेश सरकार द्वारा ही बेड़िया समुदाय को विमुक्त जाति घोषित कर इसे अनुसूचित जनजाति में सम्मिलित करना आदि कुछ ऐसे प्रयास हैं, जिनसे स्थितियों में कुछ तो सकारात्मक बदलाव आया ही है। ये प्रयास अपर्याप्त अवश्य हैं, मगर उपेक्षणीय नहीं।

लोकगीतों में स्त्री

◆ *रमेशदत्त दुबे*

लोक की रचना प्रक्रिया सामूहिक जतन है। उसके रचना संसार की निर्मिति में स्त्री-पुरुष दोनों की साझेदारी है। लिंगभेद के कारण स्त्री लोक में भी दोयम दर्जे की नागरिक है। आभिजात्य से कहीं अधिक लोक मनुस्मृति की रीतियों, लोकाचारों, मान्यताओं के मकड़जाल में फंसा हुआ है। समता-मूलक समाज का सपना तो बीसवीं सदी, विज्ञान की देन है। नारी विमर्श तो बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में अपने अस्तित्व-अस्मिता की पहचान पाता है। ग्रामीण अंचलों में अभी इसकी आहटें ही पहुंची हैं। लोक अपने रचना कर्म में तो समावेशी, उदार और जनतांत्रिक है, लेकिन अपने आचार-व्यवहार में वह आज भी सामंती मूल्यों के दबावों में पिस रहा है।

लोक संस्कृति के मुख्यतः पांच रचना-संसार हैं—गायन, वादन, नृत्य, नाट्य, चित्रकला। स्त्री का संसार देहरी के भीतर का ही संसार होता है, इसलिए उसी के भीतर उसकी रचने-बनने की मर्यादाएं सुनिश्चित की गई हैं। सार्वजनिक

प्रदर्शन के कलारूपों में उसकी भागीदारी लगभग नगण्य है। आज भी नाट्यरूप—नौटंकी-स्वांग में पुरुष ही स्त्री पात्र की भूमिका का निर्वहन करता है। नृत्य चूंकि सार्वजनिक प्रदर्शनकारी कला है, इसलिए बुंदेली नृत्य-दिवारी (अहीरों का नृत्य), जवारे, कानड़ा (धोबियों का नृत्य), ढिमरयाई (धीवर नृत्य) आदि पुरुष प्रधान नृत्य ही हैं। 'राई में, जो बुंदेलखंड की पहचान है, बेड़नी नाचती जरूर है, लेकिन उसका मुंह ढंका होता है, प्रमुख सूत्रधार मिरदंगिया (पुरुष) होता है—वही गाता है, वही नचाता है। राई नृत्य देखना स्त्रियों को वर्जित किया गया है। स्त्रियों को केवल घर के भीतर, विभिन्न धर्मिक प्रसंगों, संस्कारिक अवसरों पर ही नृत्य के अवसर दिए गए हैं। लोक वाद्यों—नगड़िया, नगाड़ा, मृदंग, झांझ, खंजरी आदि हैं, लेकिन इन सब पर केवल पुरुष का ही अधिकार है। एकमात्र 'ढुलकिया' (ढोलक नहीं) स्त्रियों का वाद्य है। क्या यह सब इसलिए नहीं है कि हम औरत को दुर्बल-हीन समझते हैं और इसी तर्क के आधार पर उसे पुरुष-समकक्षता के अधिकार से वंचित करते रहे हैं।

गायन ही ऐसा कला रूप है, जिसमें स्त्रियों की भागीदारी सर्वाधिक है। पता नहीं गायन का यह अधिकार उन्हें अपने सुरीले कंठ के कारण मिला है या देहरी के भीतर ही संभव हो पाने के कारण। स्त्रियां अपना सुख-दुःख इन गीतों के माध्यम से ही व्यक्त करती हैं। गीतों की लय और नाद की संप्रेषणीयता आत्मा को रस-सिक्त कर देती है। स्त्रियां इन्हें किसी अनुष्ठान-उत्सव पर्व पर ही नहीं गातीं, सोती-जागती गुनगुनाकर अपने मन को हल्का करती रहती हैं। वे अपने मन के उल्लास को गाकर शुभ को टेरती हैं और शुभ को झकमारकर आना पड़ता है।

लोक गीतों की धार्मिक, संस्कार, क्रीड़ा, ऋतु, शृंगार, श्रम, जाति, वीरतापरक गीतों में वर्गीकृत किया जा सकता है। इनमें संस्कारपरक गीत ही ऐसे हैं, जिन्हें सिर्फ स्त्रियां ही गाती हैं। अन्य सभी प्रकार के गीतों में स्त्री-पुरुष की भागीदारी है। हां, संख्या के हिसाब से स्त्रियों का प्रतिशत अधिक है।

धार्मिक पर्वों में 'कार्तिक स्नान' एक ऐसा पर्व है, जिसमें स्त्रियों की ही उपस्थिति होती है। यह पर्व कार्तिक प्रतिपदा से कार्तिक पूर्णिमा तक चलता है। किसी जलाशय पर जाकर स्नान-पूजन करना, रास-रहस या लीला रचाना। इन स्त्रियों को 'कतकारी' कहते हैं। कतकारियां अपने को कृष्ण की सखियां मानती हैं। कृष्ण वृंदावन छोड़कर गए, फिर नहीं पलटे, लेकिन उनकी सखियां आज भी

प्रतीक्षारत हैं। किसी आधुनिक कवि का एक गीत है—'इतनी मधुर प्रतीक्षा है प्रिय, तुम आ जाते फिर क्या होता।' कतकारियां गेंद लीला, नाग नथैया, गोबरधन लीला जैसे प्रसंगों को अपने गायन-नृत्य में शामिल करती हुईं, रास रचाती हैं। रास में पुरुषों की ताक-झांक भी वर्णित है। श्रीमद्भागवत में एक प्रसंग है—एक बार शिव रास से इतने अभिभूत हुए कि उन्होंने गोपियों से रास में शामिल होने की अनुमति चाही। गोपियों ने इंकार कर दिया। तब शिव एक गोपी का स्वरूप धारणकर रास में शामिल हो गए। नाचते-नाचते शिव इतने अभिभूत हुए कि उनकी जटाएं खुल गईं, उनमें से निकलकर नाग फुफकारने लगे, सारा भेद खुल गया। गोपियों ने उन्हें निकाल बाहर किया।

ब्रह्ममुहुर्त में गली-गली कतकारियों के सुमधुर गान से जाग जाती है—

आ जाऊंगी बड़ी भोर
दहिरा लेके आ जाऊंगी बड़ी भोर
न मानो तो मटकी रखा लो, जा में बने हैं पपीहा और मोर
न मानो तो कुडरी रखा लो, जा में गड़े हैं नगीना करोड़।

इन गीतों में मान-मनुहार, छेड़छाड़ किसी भी रीतिकाल के कवि से होड़ लेती है—

कछू कारे, कछू कारी कमरिया
उन खों देख बिचक गई मोरी गैया
कऊं देखें, कऊं सेंट चलावें
मुख पे दूध गिरे मोरी मैया
तू है ग्वालिन मद की माती
अब तो हमाओ बारो है कनैया।

उत्तर रीतिकाल के महाकवि पद्माकर सागर (बुंदेलखंड) के हैं। उन्होंने कविताई ब्रजबोली में की, लेकिन उनके काव्य का आवेग, क्षिप्रता, खिलंदड़ापन बुंदेलखंड की ही देन है। उनके अनेक पदों में बुंदेली लोकगीतों के ऐसे प्रभाव को सहज ही देखा जा सकता है—

फागु की भोर, अभीरन की, गहि गोंविद भीतर ले गई गोरी
धाय की करि मन की पद्माकर, ऊपर नाए अबीर की झोरी
छीन पीतांबर कम्मर तें, सुबिदा दई मीड़ी कपोलन रोरी
नैन नचाए, कहे मुस्काए, लला फिर आईओ खेलन होरी।

जलाशय के घाट पर एक बच्ची—'मोर मुकुट, कटि काछनी, उर वैजन्ती माल' धारणकर कृष्ण का स्वांग धर लेती है। सारी सखियां उसके चतुर्दिक नृत्य करती हुई रास नचाती हैं—

सखि री, मैं तो भई नें बिरज की मोर
इक बन उड़ती, इक बन चुगती, इक बन करती किलोर
उड़-उड़ पंख गिरें धरनी पे, सो बीने नंद किशोर
उन पंखन को मुकुट बनऊती सो पैरें जुगल किशोर।

अंधेरे में डूबा घाट, 'गा इंधियार, रैन मसि छूटी, भा भिनसार किरन रवि फूटी'—(जायसी) प्रकाश से नहा उठता है। दीपदान से जलाशय की लहरें, रोशनी की लहरों में टूटती हैं। अल्पना, चौक आदि शृंगारित घाट मंदिर में बदल जाता है। यह कतकारियों की आस्था ही तो है कि ब्रह्म स्वरूप कृष्ण हर कतकारी के साथ नर्तन करने लगते हैं, उनके गांव की गलियां वंशीवट में, उनकी काई-कीचड़ से भरी तलैया यमुना में बदल जाती है। पद्माकर का एक पद है—

जाहिरे जागत सी जमुना, जब बूड़े, बहै, उमहै वह बैनी
त्यों पदमाकर हीर के हारन, गंग तरंगन को सुख दैनी
पाइन के रंग सो रंगिजात, भांति ही भांति सरस्वती सैनी
पैरे जहांई जहां वह बाल, तहं-तहं ताल में होत त्रिवेणी।

जब ताल में तैरती पद्माकर की नायिका तालाब को त्रिवेणी बना सकती है तो कतकारियों की अगाध आस्था घाट पर वृंदावन को साक्षात क्यों नहीं कर सकती। दर्शन में रास का अर्थ माया का नर्तन है। कतकारियों का रास माया के नर्तन की अनेक मुद्राओं को चाक्षुष करता है।

कतकारियों द्वारा गाए जाने वाले कृष्ण प्रसंग के ये गीत किन्हीं चंद्रसखी द्वारा विरचित हैं—'चंद्रसखि भज बालगोबिन्द छब, हरिदरसन की चेरी' लेकिन बहुत खोजबीन के बाद भी चंद्रसखी का कोई जीवनवृत्तांत उपलब्ध नहीं है। लोक साहित्य वाचिक परंपरा में होता है। वह अनाम भी होता है। यह ठीक है कि कोई भी रचना अंततः किसी एक व्यक्ति के मुख से ही निसृत हुई होगी, लेकिन अतंतः वह लोक द्वारा व्यक्ति और समाज के अद्वैत के अर्थ में लंबे समय तक रचे जाकर लोक की स्थायी स्मृति बनी होगी। चंद्रसखी के साथ भी ऐसा ही हुआ है। फाग में जो 'कबीर' गाए जाते हैं, वे कबीर के नहीं हैं। लोक द्वारा ही विरचित

हैं। उनके पीछे 'सुनो भई साधो' मिलता है तो सिर्फ इसलिए कि रचना को देखने की एक दृष्टि मिल सके। चंद्रसखी सूर-मीरा से होड़ लेती कवयित्री हैं। रसखान अपने एक पद में ब्रज के पाहन, पशु, खग होने की कामना करते हैं। चंद्रसखी ब्रज के वन की शोभा मोर होने की कामना करती है और चाहती हैं कि कृष्ण को समर्पित उनकी शोभा के एक-एक अंग का कृष्ण स्वयं संचालन करें और उन्हें सौंप दें ताकि वे उसका मुकुट बनाकर, कृष्ण को पहनाकर उनकी आभा द्विगुणित कर सकें। लोक की भक्ति 'विकलांग श्रद्धा का दौर' नहीं, आत्मसम्मान-पराक्रम को ललकारना श्रद्धा का दौर है।

संस्कारपरक लोकगीत अपनी सांगीतिक संरचना के माध्यम से मनुष्य को संस्कारित करते हैं। हर संस्कार के वे ही मंत्र हैं। वे ही आचार-व्यवहार की दृष्टि देते हैं। संस्कारपरक गीत स्त्रियों द्वारा ही गाए जाते हैं। यह लोक की स्मृति ही है कि इन संस्कारों के लिए ज्योतिषी या पंडित से पूछना नहीं पड़ता, हर परिवार की बुजुर्ग महिला की स्मृति में न केवल सोलह संस्कार या उन प्रसंगों के गीत ही, बल्कि उनके विधि-विधानों की जानकारी भी दर्ज होती है। विस्तारभय से मैं सभी संस्कारों का वर्णन न करते हुए केवल विवाह संस्कार को ही लूंगा। समस्त संस्कारों में विवाह सबसे महत्त्वपूर्ण संस्कार है। मनुष्य की नवजीवन यात्रा के साथ ही यह दो परिवारों का सबसे अधिक आनंद-उल्लास का पर्व होता है। इस संस्कार की समयावधि भी लंबी होती है, इसलिए कल्पनाशीलता को रचनात्मक अवकाश भी अधिक मिलता है। विवाह केवल स्त्री-पुरुष के बंधन का ही संस्कार नहीं है, इसके साथ अनेक रीतियों, लोकाचारों, मान्यताओं की छोटी-बड़ी कड़ियां बंधी होती हैं, जिनके द्वारा जीवन का सामाजिक-समग्रता में संस्कार किया जाता है। विवाह का प्रथम प्रसंग 'मटयावनो' ही देखिए, जिसमें लोक देवताओं, स्वजनों-परिजनों के साथ दुश्मन—सांप, बिच्छू, गुहेरे तक को न्यौता जाता है।

विवाह के सारे संस्कार गीत स्त्रियां ही गाती हैं। इन गीतों में मुख्यतः बनरा-बनरी ही गाई जाती हैं। बनरा-बनरी शृंगारिक और गारियां व्यंग्य-विनोद से भरी होती हैं। बनरी कन्या पक्ष में गाई जाती है—

रुनक-झुनक बेटी मड़वा डोले, आजुल लए हैं उठाए
कै मोरी बेटी तुम सांचे की ढारी, कै गढ़े हैं चतुर सुनार

इसी तरह बनरा—

'मोरो ऐसो बना नजरानों री, ऐंसी शोभा चांदनी'

'ऐंसी शोभा चांदनी' की टेक हर दो पंक्तियों के बाद आकर वर की सुंदरता में चार चांद लगाती है। उपरोक्त बनरा में वर की नजर उतारने के लिए मां-पिता, भाई-भावज, चाचा-चाची सबको बुलाया जाता है और इस तरह संबंधों का एक सामूहिक बिंब बनता है। लोक व्यक्तिवाची नहीं, समूहवाची होता है। विवाह में ज्योनार, भांवर, रहस बधाव' में गारियां गाई जाती हैं। ज्योनार गारी—'काय मोरे समदी, ऊंसई आ गए, लोटा काए ने लियाये, जो पानी बगर गओ, भूल जाओ भड़ुआ', भांवर गारी—'भरी सभा में समधी बैठे, बड़े-बड़े झल्ले मारें री' मंडप-गारी, समधी की समधन सपरन गईं सी, ऊपर बगुला मूत गओ।' विवाह की गारियों की नोक-झोंक वैवाहिक समारोह को उल्लासमय बनाए रखती है। गारियों के व्याज से स्त्रियां पुरुष प्रधान संस्कृति पर प्रहार करने का अवसर पाती हैं। विवाह के बिदा गीत में स्त्री के अस्तित्व और अस्मिता की अनेक दारुण छवियां हैं—

कच्ची ईंट बाबुल देहरि ने धरियो, बिटिया नें दिइयो परदेस, मोरेलाल
देहरी की ईंट खिसक जेहे बाबुल, बिटिया बिसूरे परदेस, मोरेलाल
माई के रोयें नदी-नार बहत हैं, बाबुल के रोयें बेलाताल, मोरेलाल
बीरन के रोयें छतिया फटत है, भौजी के जियरा कठोर, मोरेलाल
हमरे खेलत की धरी है पुतरियें, गंगा में दीजो बहाए, मोरेलाल
ऐसे कठोर बोल जिन कहो बेटी, भोरईं लिबऊआ पोंचायें, मोरेलाल
हाय री मैया जो का कीनो, कहं को दई है ढकेल, मोरेलाल
जो दुख बाबुल काए खों दीनो, जनमत काए ने मारो, मोरेलाल
बालापन जहं खेल गवांयो, लोटत जा ही धरनी, मोरेलाल
अब दोपन मोरे किते बीतहें, जो सब मोए बताओ, मोरेलाल
कागज होए तो बांचियो बेटी, करम ने बांचे जायें, मोरेलाल
कुअला होए तो पाटियो बेटी, समुद नें लाघें जायें, मोरेलाल।'

इस गीत में स्त्री जीवन के इतने मार्मिक बिंब हैं कि वीतरागी पुरुष भी विह्वल हो उठे।

विवाह कलाओं का गुरुकुल है—गायन, वादन, नृत्य, नाट्य, चित्रकला, सभी यहां पड़ोस में रहते हैं और पड़ोस स्त्रियों का ही होता है। विवाह मंडप की शोभा देखिए—*'मैया को गोबर मंगाओ बारी सजनी, ढिग दे आंगन लिपाओरी।*

इसी तरह मुतियन चौक, चंदन पटली, कंचन कलश से मंडप अलंकृत करने की कामना स्त्रियां ही करती हैं। जमीन ही नहीं, व्यंजन-पापड़, मिठाइयों पर

मनोहर आलेखन किया जाता है। नाटक देखना तक स्त्रियों के लिए वर्जित है। रंगकर्म की भूख स्त्रियां देहरी के भीतर ही शांत करती हैं। इनमें 'बाबा', जिसे जुगिया भी कहा जाता है, प्रमुख है। नर की बारात में जब सब पुरुष चले जाते हैं तो घर में स्त्रियों का ही राज होता है, तब 'बाबा' का प्रहसन खेलती हैं। प्रहसन में वे पुरुष का स्वांग धरकर पुरुष सभ्यता के विद्रूपों पर तीक्ष्ण व्यंग्य करती हुई अपना मनोरंजन करती हैं।

क्रीड़ा बाल खेल-गीतों में लड़कियों के दो खेल हैं—मामुलिया और झिंझिया। झिंझिया में लड़कियां नौछिद्र की एक मटकी में, दीप जलाकर किसी चबूतरे पर प्रतिष्ठित कर देती हैं। सामने की दीवाल पर 'टेसू' की गोबर से दैत्य जैसी आकृति बनाती हैं। उसका शृंगार किया जाता है। मिट्टी की गुड़िया की तरह 'गौर' बनाई जाती है। इस स्थान को अल्पना-चौक, विविध रंगों से सजाकर, मंदिर के प्रांगण जैसा उज्ज्वल और पवित्र बनाने का खेल पूरे नौ दिन चलता है।

झिंझिया के पूरे नौ दिनों में प्रत्येक सांझ को लड़कियां अपने सिर पर झिंझिया रखकर हर घर जाती हैं, नाचती-गाती हुई—

झिटक पिछोरी लीला की और खोजा ओढ़न जायें ना रे
चली-चली वे महाचली जहं बैठी जसोदा नार नारे।

नौ दिनों तक झिंझिया के स्थान पर प्रतिदिन गायन-नृत्य चलता रहता है। गौर को लेकर लड़कियों के दो दलों में चुहलबाजी होती रहती है। अंतिम नौवें दिन लड़कियां झिंझिया सिर पर रखकर उसे विसर्जित करने जाती हैं, लेकिन चौराहे पर लड़के झिंझिया तोड़ देते हैं। पुरुष प्रभुत्व यहां खेल में शामिल कर लिया गया है।

लड़कियों का दूसरा खेल है—मामुलिया। एक कांटेवाली टहनी में तेवरइया के फूल खोंसकर उसे गोबर में रोप देती हैं। यह उनकी देवी, सहेली, सखी सब कुछ है। एक लड़की माहुलिया उठाकर किसी जलाशय में विसर्जित करने के लिए चल पड़ती है। साथ की लड़कियां गाती हैं—

ल्याओ-ल्याओ चंपा-चमेली के फूल, सजाओ मोरी माहुलिया
माहुलिया तोरे आ गए लिबौआ, ठडक चलो मोरी माहुलिया।

नारी को अर्द्धांगिनी भी कहा गया है। शास्त्रों के अनुसार उसके बिना सृष्टि अधूरी है, लेकिन लोक में अगर स्त्री न हो तो वह संस्कृतिहीन, बिना सींग, पूंछ का पशु ही नजर आएगा।

लोककाव्य में स्त्री जीवन का यथार्थ

◆ *आनन्दप्रकाश त्रिपाठी*

स्त्री विमर्श के इस दौर में बुंदेली लोककाव्य के व्यापक फलक पर स्त्री जीवन के यथार्थ से परिचित होना अत्यंत मार्मिक अनुभव है। स्त्री ने अपने जीवन बोध, सौंदर्य दृष्टि, कला-नैपुण्य और नैतिक कर्म की उजास से समस्त लोक को रचा है। अपने व्यक्तित्व के सौंदर्य का संप्रसार किया है। उल्लेखनीय है कि लोक ने भी स्त्री को रचने में कोताही नहीं की है। बुंदेली लोकगीत, लोकगाथाएं, लोककथाएं, चित्रकला, लोकनाट्य, लोकरंग, यानी सारे कला एवं साहित्य माध्यमों में स्त्री की सशक्त उपस्थिति दर्ज है। स्त्री के बिना लोकसाहित्य की कल्पना अधूरी है और लोक साहित्य में स्त्री के बिना लोक जीवन के यथार्थ की पहचान कमतर होगी, क्योंकि लोक साहित्य का अधिकांश स्त्री की ज्ञानात्मक संवेदना में सुरक्षित है।

लोकसाहित्य में स्त्री के दुःख-दर्द की गहरी रेखाएं उभरी हैं। लोकगीतकारों ने स्त्री के जीवन मर्म के उद्घाटन में यदि कोई कसर रखी है तो स्त्री ने अकुंठ भाव से हँसते-हँसते अपना दुःख व्यक्त किया है। सहनशील होकर भी कभी-कभार वह अपना आक्रोश व्यक्त करने से चूकती नहीं है। गृह-जंजाल में उसे

अपनी कोमल भावनाओं के आहत होने का दर्द बिसूरना ही पड़ता है। सबसे अधिक त्रास स्त्री को पति के दीर्घ अवधि के लिए परदेश चले जाने पर अनुभव होता है। बाबुल के छूटने की पीड़ा भी उसे सालती है। अपने निःसंतान होने की उसें जितनी छटपटाहट है, उससे अधिक सतीत्व के लिए बलिदान होने की चाहत है। बुंदेली नारी में वीरता का गुण है और वीर पति पर न्यौछावर होना भी वह जानती है।

स्त्री जीवन के बहुविध संदर्भ बुंदेली लोकगीतों में चित्रित हैं। लोक में स्त्री आदर्श भारतीय नारी का प्रतिरूप है, किंतु पारंपरिक सोच के तहत। आधुनिक स्त्री विमर्शकारों को निराशा हो सकती है कि बुंदेली लोकसाहित्य में नारी की छवि पूरी तरह से प्रगतिशील नहीं है। यद्यपि नयी सदी की स्त्री के लिए कहीं न कहीं प्रेरक संदेश मिलते हैं। बुंदेली क्षेत्र की ये नारियां पुराने जमाने की हैं। आधुनिक लोकगीतकारों की रचनाओं में नए समय की स्त्रियों की आवाजाही देखने को मिलती है। परंपरागत लोक में प्रचलित बुंदेली गीतों एवं गाथाओं के आधार पर ही यहां स्त्री के जीवन यथार्थ को पहचानने की कोशिश की गई है।

बुंदेलखंड की ग्रामीण स्त्रियों का जीवन संसार घर-गांव तक सीमित है। घर में सास-ससुर, ननद-देवर आदि रिश्तों के निर्वाह में वह किसी भी तरह का स्खलन नहीं होने देना चाहती है। फिर भी अनेक लोकगीतों में ननद और सास से मनमुटाव की झलक मिलती है। सास बहू को गाली देकर घर-गृहस्थी के काम कराती है तो बहू के मन में विरोधी प्रतिक्रिया होती है। वह इस उत्पीड़न के खिलाफ मुखर होकर कहती है–

पनिया की खेप न धरहौं, गुबरा की हेलन छीहों
चकिया को डड़ा न छींहों तवा पै कुचइया न धरहों
ताती हू तौ लप लप खैहों, बासी को कौर न दैहो।

सास के अत्याचारों से तंग आकर बहू अपने मायके जाने वाली गैल के यात्री से संदेश भेजती है कि उसकी सास ऊंट के गोबर से आंगन लिपवाती है, जो चिकना नहीं होता और उसे लीपने में कष्ट होता है। इस स्थिति में फंसी नारी धीरज खोकर विवाह को कोसने लगती है और विवाह कराने वाले ब्राह्मण तथा नाई के विनाश की बात करती है–

कीने लिखे जो घर अंगना कीने लिखे परदेश?
बमना लिखे जे घर उर अंगना नऊआ ने लिखे परदेश

बरै बो बमना उर बरै बो नऊआ जी ने लिखे परदेश
दूरा जुनरिया जिन बइयों उर बिटिया न दइयो परदेश

इस प्रसंग के बहाने विवाह के पुराने ढर्रे में भागीदारी करने वालें ब्राह्मण और नाई के विरोध में आवाज उठाई गई है।

गृहस्थ जीवन में आगत विकृतियों और उनके विरोध में खड़ी स्त्री का एक दूसरा पहलू भी है, जो उसे आदर्श से जोड़ता है। नारी के हृदय में सास-ससुर के प्रति सम्मान व प्रेम का वैसा ही भाव है, जैसा अपने माता-पिता के प्रति है। इसी तरह भौजी-ननद के कटु संबंध के विषय में लोक प्रचलित रूढ़ि को तोड़कर एक स्नेहिल आदर्श उपस्थित करने वाली नारी की छवि नौरता के गीतों में मिलती है–

ढिग ढिग लिखियो मोरो मायको, नारे सुअटा,
अंचरन माई के बोल
माई बैठी मंझधरा, नारे सुअटा,
बाबुल पौर दुआर।
बाबुल बड़े मोरे बिछिया, ससुर बड़े मोरी बांक।
तुम जिन जानो भोजी मांगने, नारे सुअटा,
घर-घर देत असीस।

इसके विपरीत आजकल की बहुएं ससुराल में मालकिन बन बैठती हैं। वह सासू से चक्की चलवाती हैं, जिठानी से दही फिरवाती हैं, ससुर से पानी भरवाती हैं, जेठ से चारा कटवाती हैं और पति से मालकी करने को कहती हैं। बाखर (घर के पिछवाड़े) में बनियां बसाती हैं, उससे रोज सुबह जलेबी मंगाकर खाती हैं–

ब्याह गौने से करें घर मालकी
जे बहुएं आज काल की
सासों से चकिया पिसवाती
जिठानी पे दहिया फिरवाती
सासों हमसे जिन कहियो कछु काम की।
जे बहुएं आज काल की
ससुरा से पानी भरवाती
जेठ से कुटी कुटवाती
सैंया तुम तो करोगे बैठे मालिकी
जे बहुएं आज काल की

बाखर में बनियां बसवाती
रोज जलेबी ले ले खातीं।

ननद और भाभी की नोक-झोंक सनातन पारिवारिक सत्य है। इनके नाजुक संबंधों में कब किस बात को लेकर दरार आ जाए, कह नहीं सकते। बुंदेली लोकगीतों में ननद-भाभी के रिश्तों की वास्तविकता उजागर हुई है। ननद को देखकर भाभी का मन खिन्न हो जाता है तथा भाभी से नेग, सम्मान न पाकर ननद उदास हो जाती है। लोकगीत की निम्नांकित पंक्तियों में ननद-भौजाई का वाद-विवाद वर्णित है–

भाभी रानी को चेहरा उदास ही उदास
आ गयी ननद रानी पाउनी
पल्का से उतरो हे भाभी रानी
जरा उठकर के कुंदी खोलो
जरा उठकर के नीर पिलाओ
लौटा गिलास ननदी घर में नई
बरतन बारौ गयौ ससुराल
आ गयी ननद रानी पाउनी
पलका से उतरो हे भाभी रानी
जरा उठकर के नेंग चुकाओ
रुपया पैसा ननदी घर में नैया
तुमार भैया गये हैं दुकान
आ गयी ननद रानी पाउनी
उठकर के पलंग बिछाओ
पिड़ी औ पलंग ननदी टूटे पड़े हैं
बाढ़ई गओ है अहमदाबाद
आ गयी है रानी पाउनी
सासरे की रास्ता नरदी सीधी सड़क है
कहा तो भैया पठायें।

पुत्र जन्म के संस्कार के अवसर पर गाए जाने वाले सोहर गीतों में सास-ननद और भावज आदि के झगड़ों और छींटाकशी के चित्र अंकित हैं। बधावा गीतों में सास-बहू की तकरार और ननद-भौजाई के वाद-विवादों का समावेश है।

कुआं पूजन गीतों में बहू के मनोभावों और उसकी आंतरिक पीड़ा प्रतिबिंबित हुई है। एक प्रसंग में वधू घर से पानी भरने जाती है, कुएं पर उसकी गागर फूट जाती है और तब उसे बहुत कुछ सुनना और सहना पड़ता है—

छोटी ननदिया मैं तेरी पैंया लागूं, घर जिन कहियौ जाए मेरे लाल,
छोटी ननदिया जनम छिनरिया, द्वारे से टेर लगाई मेरे लाल,
सास ने मारी ननद ललकारी देवर देश निकारी मेरे लाल,
हाथ में लुटिया बगल में धुतिया, गह लई मायके की गैल मेरे लाल,
उतेंत आए ननद जू के भइया, तुम धना कितकों जाओ मेरे लाल,
सास ने मारी ननद ललकारी, देवर देश निकारी मेरे लाल,
सास तुम्हारी धना बना की लकड़िया, आज जरै चहै काल मेरे लाल,
देवर तुम्हारे धना आधे के बटैया, आज बटावैं चाहै काल,
छोटी मोटी धनिया अधिक प्यारी, छींकत पनियां को जाए मेरे लाल।

वधू को सास पीटती है, ननद डांटती है और देवर उसे घर से निकाल देता है। वह हाथ में एक लोटा व धोती लिए मायके चल देती है। रास्ते में पति से भेंट होती है और वह अपनी व्यथा-कथा बताती है। पति समझाता है कि सास तुम्हारी वन की लकड़ी की तरह है, चाहे आज खत्म हो जाए या कल। तुम्हारी ननद वन की चिड़िया की तरह है, जाने कब उड़ जाए। देवर जायदाद में आधे के बंटाने वाले हैं, पता नहीं, कब बटवा लें। इसलिए उनका बुरा मत मानो और घर लौट चलो।

कभी-कभी पासा पलट जाता है और वधू ननद पर भारी पड़ जाती है। ननद बड़े उत्साह से भतीजे का बधावा लेकर भाई के घर पहुंचती है। नेग के रूप में ननद भाभी के कंगन की मांग करती है, लेकिन चतुर भावज अपनी ननद को कंगन तो दूर, उल्टे धक्का देने की बात करती है—

कंगनवा मांगे ननदी लालन की बधाई
ये तो कंगनवा अपने मायके से लाई
रुपइया मांगे ननदी लाल की बधाई
ये तो रुपया मोरे ससुरा की कमाई
अठन्नी ले जा ननदी लालन की बधाई
ये तो अठन्नी मोरे जेठा की कमाई

— — —

दो धक्का ले जा नदी लालन की कमाई

गांव में स्त्री की जिंदगी गृह-जंजाल में खप जाती है। ससुराल में युवती को गृहकार्य का बोझ उठाना पड़ता है। वह अपनी सखी से अपने मायके संदेश भेजती है–

कुअला की पनिहारी मोरी लगत बहिनियां
एक संदेशों लये जइयो मोरे लाल
जब तो हती मोरी बारी उमरिया
पिया तो चले गए परदेस मोरे लाल

हर युवती सुखी-संपन्न ससुराल चाहती है, किंतु मनचाहा वर एवं परिवार न मिलने पर वह बहुत दुःखी होती है। प्रेमी रंगमहल की कहकर टूटी टपरिया में ब्याह कर लाया है। पत्नी उलाहना देती है–

तोरे गुन जान गई बलमा रे।
जब तो कहत ते रंगमहल में हो रंगमहल में
टूट टपरिया में ब्याये बलमा रे तोरे गुन...
जब तो कहत ते से हो जा सुपेती
टूटी खटुलिया पे ल्याये बलमा रे
तोरे गुन जान गई।

'सौतिया डाह' स्त्री जीवन का करुण यथार्थ है। यदि पति परदेशी है तो सौत की संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता। पति-पत्नी के प्रेम में सौत के आने पर सारा सुकून नष्ट हो जाता है। सुनो प्रियतम, मेरी-तुम्हारी अब नहीं निभेगी। तुम्हें अलग होना हो तो अपनी सोन मछली लेकर अलग हो जाओ। मुझे यदि इस घर में नहीं रहने देना है तो तुम अपनी दूसरी टपरिया बना लो, अन्यथा मैं अपने मायके चली जाऊंगी। फिर तुम रहना और तुम्हारी सोन मछली घर में रहेगी।

तुमरी हमरी पिया अब न बर रे
हो जा पिया प्यारे ले सोन मछरिया कहां...
ई घर में तुम रैन ने दै हो
सो खोजो पिया अपनी न्यारी टपरिया कहां...
के फिर पिया अपने मायके चली मैं
फिर रखो पिया अपनी सोन मछरिया कहां...

लोकगीतों में चित्रित बुंदेलखंड की ग्रामीण नारियां पतिपरायण हैं। इन स्त्रियों के लिए पति का महत्त्व संसार के समस्त वैभव से अधिक है। पति ही

उसका सर्वस्व है, उसके प्राणों की पुलकन, नेत्रों की ज्योति और हृदय का रत्न है। वह सदैव अपने प्रियतम के प्रति समर्पित रहती है। प्रियतम का वियोग उसकी अंतर्वेदना को बढ़ा देता है। नारी के विरह-विदग्ध हृदय की अनेक करुण भावनाओं की अभिव्यक्ति बुंदेली गीतों में हुई है। विरहिणी स्त्री को कोयल की कूक कष्टदायी प्रतीत होती है–

कूक कूक मोरे जिया खों काय जराउत भोर
पिय बिछोय खों मोरे जिया में बेंसई उठत हिलोर
पुरवैंया की बैर बैरई छाई घटा घनघोर
भयो सबई विद उसरो बिधाता की खो दइये खोर।

विरहिणी स्त्री अपने प्रियतम की प्रतीक्षा कर रही है, पति की अनुपस्थिति में उसका कोई सहारा नहीं है। पति के बिना उसके दिन-रात सूने हैं। वह अपनी मनोव्यथा पति तक इन शब्दों में पहुंचाती है–

तुम पिया के देश मोरो संदेशा कइयो रे।
दूधभात तुम खइयो रे, सब सखियों के सैंया आए
मोसे पूंछे के नई आये, सुनतई मोरे नैन लजाये
सबने मेरी हँस उड़ाई तुम जाके सुआ कइयो रे
मोरे बाग फूल गई बगिया, डार-डार बोले कोयलिया
कली-कली रस भौंरा लियो, एक कली बगिया में रैया
राधा को मनमोहन ले गये, मोसे पिया कछू नहीं कहा।

एक अन्य गीत में विरहिणी स्त्री कागा के माध्यम से प्रियतम को संदेश भेजती है–

उड़ जा रे कारे कागा, रे बलमा बारे के बिछड़ गये
का तो करे को जाये, रे जीरा मछली लो तड़फ एहो।

परदेश को कोसती हुई स्त्री की दशा उस चिड़िया की तरह है, जो घोंसले में कैद है–

चिरई छाये धेसुआ, बिटिया छाये परदेश।
चिरई बिसूरे धेसुआ बिटिया बिसूरे परदेश।

पति के विदेश गमन पर पत्नी को सारा संसार नीरस प्रतीत होता है। हृदय की रिक्तता उसकी संपूर्ण सुखद कामनाओं और स्वप्नों को छिन्न-भिन्न कर देती है। उसे सिर्फ प्रियतम के मिलन की प्रतीक्षा रहती है। पति के सामीप्य के लिए प्रतीक्षारत पत्नी की विरही अंतर्दशा का चित्र देखिए–

मिलन खों तो बहियां फरके रे।
बहियां फरके हो दरसन खों फरक रये दोउ नैन
सुदिन दिन कब हुइहे हो
कब हुइये जब भैटों ननदिया तोरे वीर रे।
ननद बाई सगुन तो धरो रे
सगुन तो धरो कब आहे तुम्हारे राजा वीर हो।

परदेसी पति के लिए पत्नी का दिल इतना बेचैन है कि मिलने के लिए मछली-सा तड़प रहा है। अपनी तड़पन को लेकर पत्नी कहां जाए—'का तो करें कां जायें रे। जीया मछरी से तड़फ रये।' पति के बिछोह के भय से पत्नी कहती है कि मैं अपने पति को बाहर नहीं जाने दूंगी, चने का साग-रोटी देकर उनको रोक लूंगी, मैं उनको गुजिया देकर रोक लूंगी। मैं उनको लड्डू देकर रोक लूंगी, लेकिन जाने नहीं दूंगी।

जान न दैहों सजन कों
सकसा रोटी दैहों सजन कों
जान न दैहों-सजन कों
गुजिया दैहों विलमाओं सजन कों
जान न दैहों सजन कों
घुघटा दैहों विलमाहों सजन कों
जान न दैहों सजन कों
लडुआ दे विलमाओं सजन को
जान न दैहों सजन को

बुंदेली बारामासी गीतों में नायक-नायिका के प्रेम और विरह के जीवंत चित्र अंकित हैं। एक बारहमासी गीत में नायिका द्वारा अपने प्रियतम को बादल के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

हमारे पिया बदरिया हो गए
बरसें ने एकऊ बेर।
हमारे पिया बदरिया हो गए
— — —
चैत बड़ौ घामों परो रे
छिन छिन लगत पियास

मन मोरों अब जा कहैं
उड़ चलों पिया के पास
हमारे पिया बदरिया हो गए।

परदेशी पिया के विरह में ग्रामीण स्त्री सदियों से जलती रही है। नौकरी का चक्कर ही पति को परदेश की राह ले जाता है। एक पत्नी अपने पति को नौकरी छोड़ने के लिए मनाती हुई कहती है–

ऊंचे अटा को बैठका अर सूरज सामू दौर रे
तुम तो छोड़ो चाकरी कऊं हम छोड़े घर दौर रे।

प्रेम के वशीभूत स्त्री की भावनाओं को भी लोकगीतों में अभिव्यक्ति मिली है। प्रेमपाश में बंधी युवती अपने सारे नेह-नाते भूल गई है। वह अपने भाई का मरना एवं भाभी का बांझ होना विचारती है, क्योंकि भाई-भाभी उसके प्रेम में बाधक बन गए हैं। युवती कहती है–

भोजी के मरजा वीरना अर भोजी हो जा बांझ रे।
ओछे तौ जाम ना मारे चढ़े न गाठे हाथ रे।

युवती ने परमेश्वर को साक्षी मानकर प्रेम किया, पर प्रेमी कपटी निकला। प्रेमिका को मंझधार में छोड़कर प्रेमी चला गया। प्रेमिका का दर्द है–

जौ मैं ऐसी जानती, प्यारे प्रीत करे दुःख होय रे।
नगर ढिंढोरा पीटती, प्रीत न करियो कोय रे।

लोकगीतों में पति के जुआरी होने पर पत्नी के दुःख की थाह ली गई है। जुआरी पति के कारण घर का सब कुछ कुर्क हो गया है। स्त्री की पीड़ा इस गीत में व्यक्त हुई है–

जुनई तो हो गई मन भर की।
मुंशी आये पटवारी आये।
आये तहसीलदार होन लगी कुरकी।
जुनई तो हो गई मन भर की।
लहंगा बिक गओ लुंगरी बिक गयो।
बिक गई अंगिया तन की।
पियाके बांधत को सैला बिक गयो।
फजियत हो गई घर की।

जुआरी पति को पाकर कोई भी स्त्री अपनी किस्मत को कोसेगी और जीवन भर दुखी बनी रहेगी। ऐसे कुमार्गी एवं कुचाली पति के अत्याचार, उत्पीड़न

का दर्द झेलने के बावजूद वह, परमेश्वर बने पति के खिलाफ मुंह तक नहीं खोल पाती है। दबे स्वर में एक सखी से वह अपना दर्द कहती है–

तुम सुनो परोसन गुइंया री
ज्वारी हमरे सैंया।
जुआ खेलत हैं निसि-दिन
दांव लगावें गुइंया
बेंदी हारे, छल्ला हारे
हार गये नथुनियां
तब फिर आये बहुत सिपाही
पकड़ के ले गये सैंया।

बुंदेलखंड में वर्षा ऋतु में ददरिया गाई जाती है। इसमें स्त्री मन की वेदना के साथ उसकी सुकुमारता और माधुर्य की झलक मिलती है–

सावन की लगी झड़ी पिया गये परदेश तो।
पियू पियू बोलत पपीहरा, मोरे हिय में लागत ठेस हो।

एक गीत में नयी-नवेली दुल्हन अपने मन की बात इस तरह कहती है–

जरजा-बरजा रे, जरजा बरजा तोरे सतखंडा
तोरे पानों में परजा तुषार, तोरे अकेले अरे जियरा बिन
मोहे सूनो लगे संसार।

बेटी के प्रति मां, पिता और भाई के वात्सल्य भाव की अभिव्यक्ति बुंदेली लोकगीतों में हुई है। लोकगीत में एक प्रसंग है, जिसमें बेटी सज-धजकर विवाह मंडप में घूम रही है। पिता ने उसे गोद में उठा लिया है और भावविह्वल होकर कहता है कि बेटी यदि मैं जोगी होता तो तुम्हें झोली में छिपा लेता। मैया कहती है कि यदि मैं छाया होती तो अपने आंचल में छिपा लेती। भाई कहता है कि यदि मैं तोता होता तो पिंजरे में छिपा लेता, भाभी बोली यदि मैं सिंदूर होती तो तुमको मांग में भर लेती–

रुनक-झुनक बेटी मंडप डोले
सो बाबुल गोद उठाये भले जू
बाबुल बोले बेटी जोगी हुते जो
तो झोली में लेते छुपाय भले जू
मैया जो बोली बेटी छैंया होती जो

आंचल में लेती छिपाय भले जू
भैया जो बोले बहना सुअना होती जो
पिंजड़ा में लेते लुकाय भले जू
भाभी जो बोली ननदी सेंदुर होती जो
तो मांग में लेते भराय जू।

लगुन (लग्नोत्सव) संबंधी गीतों में मां की ममता और बेटी के प्रति सुख की कामना व्यक्त हुई है। भांवरगीत में बेटी के बिछोह में मां की मनःस्थिति और माता-पिता के मन की पीड़ा को स्वर मिला है। नौरता गीत स्त्री के सपने और आकांक्षाओं के गीत हैं।

मायके के प्रति स्त्री का प्रेम सर्वोपरि है। युद्ध करने जाते हुए पति से पत्नी कहती है कि नीमा शहर मेरा मायका है, तुम्हारी ससुराल है, वहां लड़ने मत जाओ, क्योंकि युद्ध करने से मेरा मायका छूट जाएगा और तुम्हारी ससुराल छूट जाएगी।

नीमा शहर मोरो मायको सैंया की ससुरार
के छूटे मायको, के तुमरी ससुरार
नीमा शहर की सकरी गली, दुहरे लगे बजार
मानुष की जहां बस, नहीं हथिया को हो जाने।

लड़की के लिए मां-बाप का प्रेम अटूट होता है। ब्याह योग्य बेटी को समझाती हुई मां कहती है कि बेटी नौरता का खेल (सुअटा) हमारे रहते खेल लो। जब तुम दूर देश ब्याह कर जाओगी तो सास-ननद तुम्हें खेलने नहीं देंगी। रात में पीसना पिसवाएंगी और दिन भर गोबर लिपवाएंगी।

खेल लो बेटी खेल नौरता सुअटा माई बाबुल के राज
जब दुर जैहो बेटी सासरे, सास न खेलन देय
रात पिसाहे पीसनों बेटी दिवस गुबर की हेल।

कानड़ा नृत्यगीत में बिटिया के बाबुल का घर-आंगन छूटने की पीड़ा दर्ज है और यह अभिव्यक्ति मां की अंतरात्मा से हुई है। मां कहती है–

अंगना छूटो जाये आज मोरी बिटिया को
देहरिया दुर्लभ भई अगन भये परदेश
मात-पिता बिछड़न भये चली पिया के देश।

मां-बाप की चिंता बेटी के पिया के परदेस चले जाने से कहीं अधिक उसकी स्वच्छंदता एवं लाड़-प्यार से वंचित हो जाने की है। पति के घर में अनुशासन,

मर्यादा की डोर में उसे बंधना पड़ेगा। ससुराल में स्त्री का जीवन सकुशल बीत जाए, यह आज भी स्त्री के लिए चुनौती है। व्रत-उपवास संबंधी गीतों में देवी-देवताओं की अभ्यर्थना इस उद्देश्य से की गई है कि उनकी कृपा से स्त्री के दुःख-दर्दों का शमन हो जाए।

बुंदेलखंड में विदाई के अवसर पर गाए जाने वाले गीत अत्यंत हृदयस्पर्शी और मार्मिक होते हैं। माता-पिता अपनी बेटी को शिक्षा देते हैं—

बेटी जात सजन जू के देश घर छोड़ चली।
पाल-पोसकर करी सयानी मात-पिता को भई बिरानी।
भरभर बहै आंखों से पानी छाती फटन लगत मन ठेस।
बांधे द्वार बंदन बारे चढ़कै साजन आये द्वारे।
चित्त से करियो घर का काज रखियो दोऊ कुल की लाज।
बेटी करियो न मन में क्लेश पति सेवा को मन में धरियो।
सास-ससुर की पीड़ा हरियो घर में रार कबहूं न करियो।
बेटी जात सजन जू के देश घर छोड़ चली।

आदर्श बहन का आख्यान भी लोकगीतों में मिलता है। ब्याह के बाद ससुराल चली गई बहन अपने भाई के प्रति मंगलकामना करना नहीं भूलती। श्वसुर गृह को तो वह अपने प्राणरस से सींचती है, पर आत्मा से भाई के प्रति मंगल भावना रखती है—'भदरिया रानी बरसो बिरन के देश में।'

लोकगीत में आए एक प्रसंग के अनुसार, आर्थिक दृष्टि से विपन्न पिता अपनी बेटी का विवाह समीपवर्ती क्षेत्र में इसलिए कर देता है कि उसे बार-बार बुलाने में आर्थिक व्यय अधिक न हो।

माई के रोए नदिया बहत है, बाबुल के रोए बेला ताल।
कच्ची ईंट बाबुल देहरी न धरियो, बिटिया न दइयो परदेस मोरे लाल।
द्वारे की इंटिया खिसक जैहे बाबुल, बिटिया बिसूरे परदेश मोरे लाल।

एक गीत में बेटी अपने मां-बाप को उलाहना देती है कि भाई को तुमने अटा-अटारी दे दी और मेरा विवाह कर परदेस भेज दिया—

भैया दीन्हीं अटा-अटारी
हमको दई परदेश
नाओ करन को बेटा, जनम भये
सुख करन को दई परदेश

सुख तो बाबुल सपनन में नैंया
दुःख सजीवर होयें
बाबुल के रोंये गंगा बहत है।

देवर-भाभी का प्रेम भारतीय समाज का आदर्श है। भाभी को मां का दर्जा दिया गया है। देवर-भाभी के संबंधों में हँसी-मजाक भी चलता है। इन रिश्तों की चर्चा बुंदेली लोकगीतों में हुई है। एक प्रसंग है, जिसमें स्त्री का पति विदेश गया हुआ है और देवर भाभी से दरवाजा खोलने की बात कहता है। भाभी कहती है—तुम मुझसे उम्र में छोटे हो, घर के पीछे गंगाजी बह रही हैं, उसमें नहा लो तो तुम्हारे और मेरे पाप कट जाएंगे। बारह बरसों के बाद पति परदेश से वापस आ रहे हैं, पत्नी पति से मिलने को व्याकुल है। देवर-भाभी की बातचीत का एक अंश प्रस्तुत है—

खोलो न भाभी मेरी चंदन किवरिया
भैया तो चले गये परदेश मोरे लाल
अबे तो हती मोरी बारी उमरिया
हम नई खोलें लाला चंदन किवरिया
तुम लौरे हम जेठे मोरे लाल
घरई के पीछे लाल गंगा बहत है
कट जैहे तोरे मोरे पाप मेरे लाल
बाराबरस में राजा मोरे लौटे
कोयलों पे डारे हैं मेला मोरे लाल
जायतो कइयों इन मोरी धना सें
पिया के मिलन करवाओ मोरे लाल।

बुंदेलखंड में देवर-भाभी के आदर्श प्रेम का उदाहरण है—हरदौल और जुझार सिंह की रानी की कथा। रानी चंपावती अपने देवर हरदौल को पुत्रवत् स्नेह करती है—

नजरिया के सामने तुम हरदम लाला रइयौ।
जैसी लाला की है प्रीत, तेसी सब दुनिया की रीत।
तनकऊ करी नई अनरीति।

दुर्भाग्यवश राजा जुझारसिंह को यह रास नहीं आता। उसे रानी चंपावती के चरित्र पर संदेह होता है। रानी को अपना सतीत्व प्रमाणित करने के निमित्त वह हरदौल को जहर पिलाने को कहता है।

यदि सांचों धरम पतिव्रत है तो, तोय परीक्षा देने हैं।
हरदौल लाल खों विष के भोजन, अपने हातन वे देवे हैं।
सुन कैं रानी हो गई सुन्न, झकझोर झमा सो आन लगो।
धरती घूमत सो दिखन लगी, नभ टूटत सो दरशान लगो।
कानन में जैसे सीसो पिघला कैं, भरदओ कोऊ ने
हिरदै में उथल-पुथल मच गई, सारो शरीर झुलसान लगो।
पिंजरा में जैसे बंद सुआ, बिन पंखन के घबरान लगो।
आंखन की पुतरी अधर टंगी, आंसुवन से हो गई जोत मंद
तालू में चिपक़ी जीब और ओंठन के वारी भये बंद।

रानी दुविधा में पड़कर सोचने लगती है–

एक ओर है पति की आज्ञा, एक ओर देवर प्यारो
करो प्रभु अब निनवारो।
पति की कहीं करों तो देवर बिना मौत जावे मारो।
जो पति की आज्ञा न पालों, धरम बिगर जावे सारो।
इतै जावतो कुआ उते जाव पुखरी दलदल है भारो

पति की आज्ञा शिरोधार्य कर चंपावती हरदौल की विषयुक्त खीर खिला देती है। सब कुछ जानते हुए भी हरदौल अपनी मां समान भाभी के सम्मान के रक्षार्थ अपने प्राणों की आहुति दे देते हैं। हरदौल के गीत विभिन्न मांगलिक अवसरों पर आज भी गाए जाते हैं।

निःसंतान होना स्त्री के लिए अभिशाप है। इसीलिए मातृत्व पद प्राप्ति के लिए वह लालायित रहती है। निःसंतान स्त्री संतानोत्पत्ति के लिए धार्मिक अनुष्ठान संपन्न करती है, जिसका उल्लेख बुंदेली लोकगीतों में हुआ है। परिजनों के उपालंभों से दुःखी कुलवधू देवी मां की आराधना करती है कि उसे संतानरूपी एक अमरफल प्राप्त हो जाए।

घर मोरो सजो अंगन कुआ से
गोबरपतरी सार हो लाल
सास-ससुर मोसें बोल बोलवैं
धरो है बंजुरिया नाव हो लाल
एक अमरफल देव मोरी मात
बांझ का नाव मिटाव हो लाल।

बांझ होने की पीड़ा और उलाहना स्त्री के लिए असह्य है। पति अपनी पत्नी को सांत्वना देना तो दूर, बांझ होने का ताना मारना नहीं भूलता। अपने को दोषी वह नहीं मानता है। निम्नांकित पंक्तियों में बांझ होने का आरोप झेल रही स्त्री की पीड़ा अभिव्यक्त हुई है–

धन्न मोरी कूंख सुलोचनी, लीपत ती धन ओबरी पौर दुआर
हँसत खेलत राजा आ गए बात कहौं धन एक
सुनियो मन चित लाय ब्याव रचै हम दूसरो।
कै हम कुल की टाँचरी, कै हम सेवा नै जोग
ब्याव रचो पिया दूसरो।
कुल की तो तुम तिल आगरी भौतिक सेवा जोग।
कूंरवरियां बैरन भई जेने घटाए तेरे मान
ब्याव करे हम दूसरो।

बांझपन के अभिशाप से मुक्ति के लिए स्त्री देवी की उपासना करती है, उनसे अरज करती है। जवार नृत्यगीत में वह देवी से निर्धन को धन और बांझ को पुत्र देने की प्रार्थना करती है–

भाई के दिवाले एक बिटिया बिसूरे, अंसुअन भीजें कुल सारिहो मां।
के तोरी सास ननद दुखी दीनो, के मायके कुलहीन हो मां।
ना मोरी सास ननद दुखी दीन्हो, न मायके कुलहीन हो मां।
घरई के राजा पिया बांझ कहत हैं, जो दुःख सहे न जाए मोरी मां।
बालक दे यो मोरी आदि भवानी, न तो तजन हो प्राण हो मां।
जाओ रीति रिया घरे आपने, बालक होंय तुम्हारे हो मां।

शिशुजन्म संस्कार संबंधी गीतों में संतान की प्राप्ति की लालसा, उसकी अधीरता, वेदना, लोकाचार के विभिन्न उपायों द्वारा संतान प्राप्ति की आकांक्षा व्यक्त हुई है। लोक की मान्यता है कि स्त्री तभी सुंदर लगती है, जब उसके घर-आंगन में बालक झूला झूले–

तिरिया सुहानी जब ई लगे, ललुवा झूले पोर के दोर।

बंध्या स्त्री का पति विदेश जा रहा है। वह पति से खुनखुना लाने का आग्रह करती है, किंतु पति संतानहीन होने के कारण पत्नी पर व्यंग्य करता है। पति के शब्द उसके हृदय में शूलवत् चुभते हैं। भावज को दुःखी देखकर देवर उदासी का कारण जानना चाहता है। नारी मन की करुणा इस गीत में फूट पड़ी है–

जात हो विदेश खुनखुना लयें आइयो
पिया जात हो देस-विदेस खुनखुना लय अइयो रे।
रानी नै तोरे वारे नै छोटे खुनखुना कौन खिलाहो रे।
इतनी तो सुन धन अनमनी ए धन अनमनी।
हन लये बजर किवार सांकर दै लई लोहे की।
मांय से आ गए बारे देवरा वे हँस बोले वे हँस बोले।
खोली भौजी बजर किवार सांकर खोलो लोहे की।
भौजी कैसे बदन मलीन, कैसी भोजी अनमनी।
लाला तुम रे भैया बोले हैं बोल करेजे में हन गये।

पति के विदेश गमन के बाद स्त्री अकेली रह जाती है। वर्षों बाद उसका पति अपने घर आता है और खुनखुना लाना नहीं भूलता। पत्नी बेहद दुःखी है कि खुनखुना खेलने वाला तो उसकी गोद में है नहीं। बारह वर्ष तक वह संतान न होने का दर्द झेलती है।

बारा बरस में लौटे पिया प्यारे खुनखुना ले आये रे।
रानी लै ले अपनो खुनखुना हम ल्याएं रे।

इस पर पत्नी पत्नी नाराज होकर कहती है–

खुनखुना अपनी माई खों देओ बिरन तोरे खेले रे।
राजा ने मारे बारे नै ओली झूडले खुनखुना कौन खिलाये रे।
राजा मोय खुनखुनवा को सौक सोने के गडवा लव रे।

आहत हृदय नारी पति का लाया खुनखुना स्वीकार नहीं करती। पति की व्यंग्योक्ति का उत्तर वह संतानोत्पत्ति के पश्चात सोने का खुनखुना बनवाकर देती है।

बुंदेली लोकगाथाओं में स्त्री के उच्च प्रेमादर्श की अनेक घटनाएं वर्णित हैं। ढोला-मारू, रानी सारंगा-सदाव्रत आदि प्रेमगाथाएं नारी के स्वाभिमान, एकनिष्ठ प्रेम, त्याग और बलिदान का आदर्श रचती हैं। ढोला-मारू सच्चे प्रेमी-प्रेमिका हैं। बचपन में विवाहित मारू युवा होने पर पति ढोला से मिलन के लिए तड़प उठती है। काम उसे सताने लगता है। हिरण-हिरणी के मृत जोड़े के बारे में अपनी भाभी से जानकर मारू उससे पूछती है–

कै पिता कुल टांचरे, कै दामन के बलहीन।
मोरी ज्वानी वय भई, बाबुल करे न ब्याव रे।

भाभी उसे सांत्वना देते हुए कहती है–

ना पिता कछु टांचरे, ना दामन के बलहीन।
डल्ली डल्ला तो तोरी भांवर परी, तो ढेलन के साथ रे।

मारू पहले तोते के द्वारा संदेश भेजती है, किंतु ढोला नहीं आता। बाद में वह व्यापारी, ढाड़ी, कक्का आदि के माध्यम से संदेश भेजती है। दूसरी तरफ लंबे समय बाद ढोला भी मारू से मिलने के लिए आतुर हो उठता है। अंत में अपने पिता नल की सहायता एवं देवी मां की कृपा से वह सकुशल पिंगल देश पहुंचकर अपनी पूर्व विवाहिता मारू को अपने साथ ले आता है। मारू एक आदर्श भारतीय स्त्री के रूप में चित्रित है, जो बाल विवाहिता होते हुए भी अपने सतीत्व और पतिव्रत धर्म की रक्षा करती है।

बुंदेली लोकगाथाओं में नारी जीवन के उच्चादर्शों–त्याग, पतिनिष्ठा, वीरता, समर्पण आदि का उल्लेख अनेक स्त्री चरित्रों की जीवन कथाओं में हुआ है। रानी दुर्गावती, महारानी लक्ष्मीबाई, रामगढ़ की रानी अवंतीबाई आदि का शौर्य एवं बलिदान नारी जाति के लिए गौरवपूर्ण है। इन नारियों के पराक्रमी व्यक्तित्व को देखकर वीर पुरुष हतप्रभ हो जाता है। देशप्रेम और अपनी आन-बान के लिए स्त्री का बलिदान बुंदेलखंड के इतिहास की स्वर्णिम घटना है। 'जगदेव की गाथा' में जगदेव द्वारा नारी की प्रशंसा की गई है। जगदेव की रानी दिया हुआ दान वापस नहीं लेती। देवी द्वारा उदास मन से दिया हुआ दान अस्वीकृत करने पर वह अपना शीश चढ़ाने को उतावली हो जाती है। ये दोनों ही विशेषताएं बुंदेली नारी की पहचान हैं। जगदेव और उसकी रानी के आदर्शों और त्याग की अद्‌भुत मिसाल है जगदेव की गाथा।

युद्ध का आदर्श स्त्री के जीवन से भी संबद्ध है। हेमचन्द्र का यह कथन मानो बुंदेलखंड की वीर नारियों का आदर्श था–

भल्ला हुआ जु मारिआ, बहिणी म्हारा कंतु।
लज्जेजं तु वयंसिअहु, जइ भग्गा घर अंतु।।

हे बहन! अच्छा हुआ जो मेरा पति रण में लड़ता हुआ मारा गया, क्योंकि यदि वह भागकर घर लौट आता तो मेरी सखियों के बीच में मेरा उपहास होता। 'आल्हखंड' में वर्णित कथानुसार आल्हा-ऊदल ने बावन लड़ाइयां लड़ी थीं, जिनमें अधिकांश युद्ध विवाह के लिए हुए थे। राजा नेपाली की पुत्री सुनवां तोते के द्वारा आल्हा के पास विवाह का प्रस्ताव भेजती है–

ऐसी सोसत सुनवां बेटी, कर में कागद लियो उठाय
पाती लिख रई सुनवां बेटी सुनियो पंचों ध्यान लगाय
जैसी रुक्मिनी की सुधि लीनी, सुनियो किसनचंद भगवान
तैसई लाज बचाइयो मोरी, प्यारे पति यहां पै आन
पाती अस लिख दीनी भइया और सुअना सैं बोली न
सुअना एक सहारो तोरा, मोरी नइया कर दे पार
उड़जा सुअना गढ़ महुबे को, जापैं बसे बनाफर राय
मोरी पाती लै जाकें तुम, नर ऊदल खों दहयो जाय

उधर राजा नेपाली ने नाइयों के द्वारा राजाओं को विवाह का प्रस्ताव भेजा और साथ ही युद्ध की चुनौती दी।

नाई भाट बुलाके भूपति, ऐसो कहन लगो समजाय।
वर के लायक बेटी हो गई, भइया सुन लो कान लगाय।।
कठिन लड़ाई नैनागढ़ की, सब भूपौं को देव बताय
अमर ढोल जिनके घर कहिए, दुश्मन नाम सुनता दहलाय।।

नैनागढ़ के युद्ध में आल्हा-ऊदल की जीत हुई और आल्हा से सुनवां का विवाह संपन्न हुआ।

राजा परमाल की पुत्री चंदावली कीरत सागर से भुजरियां ले जाना चाहती है और इधर पृथ्वीराज चौहान की सेना महोबे को घेरे खड़ी थी। यह महोबे की मान-मर्यादा का प्रश्न था। राजा परमाल और पृथ्वीराज की सेना के बीच घमासान युद्ध हुआ और कीरतसागर का पानी लाल हो गया। तब जाकर चंद्रावली का प्रण पूरा हुआ।

प्रवीण राय का चरित्र भी बुंदेलखंड की स्त्री की मान-मर्यादा का प्रतीक है। ओरछा नरेश इन्द्रजीत और उनके दरबार की राजनर्तकी प्रवीण राय का प्रेम जगजाहिर है। प्रवीण राय राजनर्तकी ही नहीं, एक बुद्धिमती स्त्री और कुशल कवयित्री भी थी।

बादशाह अकबर उसकी काव्य कुशलता व बुद्धिमत्ता से प्रभावित होकर अपने दरबार की शोभा बढ़ाने के लिए आमंत्रण भेजता है। दिल्ली दरबार में पहुंचकर वह अकबर से दो टूक शब्दों में कहती है–

विनती रायप्रवीन की सुनियो शाह सुजान।
जूठी पातर भखत हैं, बारी बायस स्वान।।

बुंदेली लोकगीतों में चित्रित स्त्री सतीत्व के लिए मर-मिटना जानती हैं। इन गीतों में आबरू की रक्षा के लिए स्त्री और समाज की सजगता स्पृहणीय है। एक गीत में भुजरियां के त्योहार का प्रसंग है। बेटियां व बहुएं भुजरियां देखने गई हैं। कजलियां तालाब पर रखी हैं। बेटियां उन्हें सिराने की तैयारी कर रही हैं। उसी समय मुगल सेना युद्ध करने आ जाती है। इस पर भाई अपनी बहनों से कहते हैं कि भागकर घर चली जाओ, मुगल सैनिकों के हाथ पड़कर कुल को कलंकित न करना।

बिटियन के डोला सजे, बहुअन की चाउेल
जेठी को पठ्यो मायके लहुरी हो तुम पे भार
धरी भुजरिया जा तला की पार बिटियन आन सिराय
फौजें इतै मुगलों की बेहने भगने होबे भग जाय
हाथ कोऊ के जिन परियों ने कुल में दाग लगाय।

पतिव्रत धर्म की रक्षा हेतु मथुरावली का उल्लेख ऐतिहासिक घटना है। सैनिक मायके जाती हुए मथुरावली का अपहरण कर काबुल ले जाना चाहते हैं। वह सच्ची पतिव्रता नारी है। वह कामलोलुप सैनिक से पानी लाने को कहती है और ज्यों ही वह सैनिक पानी भरने के लिए बाहर निकलता है, त्यों ही मथुरावली तंबू में आग लगाकर भस्म हो गई। मुगल आततायी पछताता रह गया। गाथाकार लिखता है–

जारे मुगला पानी भर ले आ, प्यासी मरें मथुरावली।
जौ लौं मुगला पानी खौं गओ, तम्बू में दै लई आग।
ठाड़ी जरें मथुरावली।

उसके पति को अपार दुःख हुआ, किंतु उसके भाई को प्रसन्नता हुई कि बहन ने कुल की लाज रख ली–

रोय चलें बाके बालमा, विहंस चले वाके वीर।
रखी बहना पगड़ी की लाज, ठाड़ी जरें मथुरावली।

मथुरावली की गाथा आज भी पतिव्रता स्त्रियां गाकर अपने सुहाग की रक्षा की कामना करती है।

बुंदेली लोककवियों ने स्त्री जागरण के न केवल गीत गाए हैं, बल्कि लोककथाएं एवं लोकगाथाएं भी रची हैं। धर्मासांवरी, राजकुमारी सुनवां, मथुरावाली, रानी कुंवरि गणेश, प्रवीणराय आदि की कथाएं स्त्री जागरण से संबद्ध हैं। एक लोकगीत में युवती पिता से अपने विवाह के विषय में निडर होकर निवेदन करती

[illegible], तुम दतिया हमारी सगाई मत करना, चाहे घर सोने का क्यों न हो। वहां की बोली हिना-हुना मेरी समझ में नहीं आती। वहां पांव में भारी-भरकम पैंजना पहने जाते हैं। ये इलाका दतिया, झांसी, दमोह का है। वहां ब्याही गई कोई लड़की सुख से नहीं रहती, पति नौकरी को जाएंगे और उसे पूरे दिन बीड़ी बनानी पड़ेगी। वहां के गहने, पांव का पैंजना और अमर पेटी ढाई किलो की। वह पिता को सलाह देती है कि अब मैं जैसा कहती हूं, वैसा तुम करो। जहां घर एवं वर दोनों ही ठीक हो, ऐसी जगह मेरी शादी करो और ग्वालियर जैसी जगह देखो, जिससे मेरे जीवन में सुख रहे।

दतिया सगाईनहिं करियो बाबुल
जो चाहे घर सोनेउ सौ होय
हिना हुना की बोली प्यारी
नेकऊ समझ न परै हमारी
पहरै बड़े पैजना भारी
ये परिये दतियां झांसी और दमोह
दूजे बाबुल जौ दुख भारी
सुख से कोड ना रहै विचारी
बीड़ी सदा बनावत नारी
सारे-सारे दिन मैं तो बीड़ी बनाऊंगी
— — —
पांव पैंजना और पैजनियां
ढाई किलो की कमर कसनियां
बेड़ी बिन पारी, बो पांवन में पिरये
ककरन के शोर बड़े होंय
दतिया बाबुल जनम से ऐसा
अब तुम करौ कहूं मैं वैसा
ढंग से तुम जइयो बाबुल
घर-बर संग देखियो
जीवन में सदा सुख होय,
दतिया सगाई नई करियो बाबुल
जो चाहे घर सोनेउ सौ होय।

बुंदेली लोकगाथाओं में स्त्री के अंतर्जातीय विवाह, गंधर्व विवाह आदि के प्रसंग चित्रित हैं। धर्म-सांवरी गाथा ऐतिहासिक है। धर्मासांवरी राजा की पुत्री होने के बावजूद एक पशुपालक से ब्याह करने में गौरव समझती है। आदिकाल में पुरुष की वीरता ही विवाह की कसौटी होती थी।

नारी की महिमा और शक्ति का बोध लोककवि को था। इसलिए एक गीत में वह कहता है कि नारी क्या नहीं कर सकती है। नारी के साथ समुद्र, अग्नि और काल का उल्लेख उसकी अतुलनीय शक्ति का प्रमाण है–

कहा ने तिरिया कर सके, का नहिं सिंध समाय।
कहा न पावक में जारे, काहे काल न खाय।।

समग्रतः बुंदेली लोककाव्य में स्त्री की नाना छवियां अंकित हैं। इनमें प्रायः आदर्श भारतीय नारी की छवि उभरती है, जो लोकमर्यादा, सामाजिक मूल्यों, धार्मिक आस्था से अनुप्राणित होकर अपना लोक निर्मित करती रही है। इस लोक में पुरुष की उपस्थिति संरक्षक की है, रूढ़ियों एवं अंध मान्यताओं के कारण स्त्री के जीवन में पीड़ा के लिए एक कोना बना रहता है। लोक की स्त्री अभी स्वतंत्र नहीं है। घूंघट की ओट एवं घर की देहरी में ही अपना सारा सुख-दुःख समेटे परिवार की मंगलकामना में अपना जीवन विसर्जित करती है। उसका जीवन-संघर्ष पुरुष की सामंती मानसिकता के प्रति तीव्र आक्रोश से हमें भर देता है। इनमें स्त्री-विमर्श के आधुनिक अर्थ की खोज अधूरी है, क्योंकि लोकगीतों और लोकगाथाओं के संसार में ऐसी स्त्रियां या उनकी जीवन स्थितियां विरल हैं, जिन्हें आधुनिक स्त्री-संघर्ष के संदर्भ में देखा जा सके।

संदर्भ

* रामचरण हयारण 'मित्र' : बुंदेलखंड की संस्कृति और साहित्य
* श्यामसुंदर बादल : बुंदेली का फाग साहित्य
* रमेशचंद्र श्रीवास्तव : बुंदेलखंड–साहित्यिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक वैभव
* सुधीर तिवारी एवं माधव शुक्ल मनोज : बुंदेलखंड के संस्कार गीत
* उत्तम बंसल : बुंदेली लोकगीत
* बुंदेली बसंत एवं चौमासा (पत्रिकाएं)

लोककथाओं में स्त्री

◆ *दुर्गेश दीक्षित*

स्त्री के प्रति सम्मान का भाव संपूर्ण बुंदेली लोक साहित्य में है। बुंदेलखंड में प्रचलित सैकड़ों लोककथाएं स्त्री के जीवन-संघर्ष, आस्था, सौंदर्य, साहस, त्याग, प्रेम से भरी हुई हैं। स्त्री अपने सद्‌गुण के साथ दुर्गुण लिए भी उपस्थित हुई है। स्त्री अपने उज्ज्वल चरित्र के कारण पूजनीय है। बुंदेली लोककथाओं में आदर्श स्त्रियों के उदाहरण भरे हैं और चरित्रहीन स्त्रियों की दुर्गति भी प्रदर्शित की गई है। स्त्रियों के शोभनीय और अशोभनीय रूप चित्रित हुए हैं। एक ओर पतिव्रता स्त्रियों का त्याग और तपस्या है और दूसरी ओर व्यभिचारिणी स्त्रियों के निंदनीय और कुत्सित कार्य-कलापों के भौंडे और घृणित चित्र दिखाई देते हैं। 'नारी का चरित्र' शीर्षक लोककथा में एक चरित्रवती स्त्री अपनी चतुराई के बल पर दुराचारियों के सिर झुका देती है और उन्हें क्षमा मांगकर लज्जित होकर भागना पड़ता है।

बुंदेलखंड की स्त्रियां अनेक प्रकार के कठोर व्रत और उपवास करती हैं। धार्मिक कार्यों में विशेष भागदारी स्त्रियों की ही रहती है। वे कठोर व्रत रखती हैं।

हरितालिका तीज, निर्जला एकादशी और करवा चौथ ऐसे ही कठोर व्रत हैं, जिनमें स्त्रियां चौबीस घंटे निर्जल रहती हैं। 'करवा चौथ' की व्रत कथा में एक पतिव्रता स्त्री के आत्मविश्वास का वर्णन है।

पतिव्रता स्त्री के संयमित और संतुलित जीवन के अतिरिक्त बुंदेली लोककथाओं में व्यभिचारिणी स्त्री के घृणित एवं नारकीय जीवन के कार्यकलापों की झांकी भी देखने को मिलती है। चरित्रहीन स्त्रियों का अंत अधिक दुखपूर्ण रहता है। उन्हें अपनी करनी पर पछताना पड़ता है। 'कंजूस साहूकार' लोककथा में एक धनी व्यक्ति की पुत्री की चरित्रहीनता का वर्णन है। एक साहूकार का घर से निकला हुआ पुत्र भटकते हुए अपनी ससुराल के गांव में पहुंच जाता है। कथा का एक अंश है–

"...कोतवाल गांव के सेठ के मिहिल के दोरैं ठांढ़ौ होकै छिड़ियन छिड़ियन एक अटापै चढ़त गओ, उर पाछें-पाछें गठरिया लै कै सेठ कौ लरका चलो गओ। अटा खौ देखतरई पैचान गओ कै जौ तौ हमाई ससुराल को घर आय। ऊनें देखौं कै ई अटा पै ऊकी घरवारी कौ डेरा है। उर वा ई कोतवाल सैं प्यार करत है। उर जौ आदीराते ओई सै मिलिबे आ जा रओ। हमाई घरवारी तो बज्र छिनार हो गई। अब वा हमाये का काम की रई। कछू देर छिड़ियन पै ठांढ़े ठांढ़े उन दोइयन के प्यार-मुहब्बत की बातें सुनत रये, उर फिर बायरै कड़कैं अपनो सौ मौ लैके रूआयदे से उतै सै लौट आये। उर बायरैं बैठकैं वौ पर्चा काड़ कै पढ़ो। ऊ में लिखो तौ "पइसा हौबे हाथ जोरू दैबे साथ।" हमनों पइसा नइया सो हमाई घरवारी ने हमाओ साथ छोड़कै कोतवाल के संगै रंगरेलियां मनाई रई है। बा मुन देवता की जा बात सोरा आना सांरी कड़ी।" अंत में उसकी व्यभिचारिणी पत्नी को आत्मग्लानि हुई और उसने आत्महत्या कर ली।

'अनूपा मित्रन की प्रीत' शीर्षक बुंदेली लोककथा में एक राजकुमारी की चरित्रहीनता का चित्रण किया गया है–राजकुमारी कन लगी कै भइया जैसें तुमने हमाये प्रान बचाये, ऊसई अब तुम हमें राजमिहिल में पौंचा दो। लुहार कौ लरका राजकुमारी खौं रातई खौं राजमिहिल में लुआ गओ। उतै पौचतनई राजकुमारी ऊकौ हांत पकरकैं कन लगी कैं आज सै तुम हमाये पती हो गये। अब चलों तुम हमारई संगै सो जाव। लुहार कौ लरका बोलो कै हम तुमें अपनी बैंन बना चुके, अब हम तुमें अपनी पत्नी नई बना सकत। इत्ती सुनकै राजकुमारी ने नाराज होकैं हल्ला मचा दओ। चोर, चोर, चोर। हल्ला सुनकै पैरेदार जग उठे, उर उन्ने लुहार के

लरका खौं तुरतई गिरफ्तार कर लओ। लरका सोसन लगो कै देखौ तौ नेकी को फल बदी मिलो। हमने ऊके प्रान बचाये, उर बदले में ऊकौ जो फल मिलो। मनई मन सोस कै दुखी होन लगो।

भाई-बहन का प्रेम तो स्वाभाविक और सर्वमान्य है। अपने भाई को देखकर बहन का सारा दुःख-दर्द दूर हो जाता है।

रक्षाबंधन, भैयादूज और वैवाहिक अवसरों पर भाई-बहन एक-दूसरे की याद किया करते हैं। लोककथाओं में उनके प्रेम और लगाव के उदाहरण भरे पड़े हैं। करवा चौथ व्रतकथा में भाइयों ने बहन को भूखा-प्यासा देखकर उसका व्रत खंडित करा दिया था। लोक कथा में कहा गया है, ''बैन दिन भर पानी के बिना इकदम मुरजा गई। भईयन सैं जो सब नईं देखौ गओ। उनन ने सोसी कै चंदा ऊगबै में तो भौतई देर है। जबनौ तौ बैन अदमरिअई हो जैय तौ कछू उपाय करो चइयै। जीसैं बैंन जल्दी खा पी लेबैं। उनके उपाय से भले ही व्रत के खंडित हो जाने से बहन को कष्ट भोगना पड़ा था। 'भइया दोज' लोककथा में तो एक बहन के निष्काम प्रेम का सुंदर चित्रण किया गया है।

'भइया बैन कौ प्रेम तो दुनिया में भौतई बड़ों बनाव। साल में दो बार भइया दोज परत। एक कातक में दिवाई के दूसरे दिना, उर दूसरी चैत में होरी के दूसरे दिना भइया दोज परत। ई मौका पै भईयन खौं बैन की भौत खबर आवन लगत।'' इस लोककथा में एक भोली-भाली बहन के स्वाभाविक प्रेम का चित्रण किया गया है। पांच भाइयों के बीच में एक बहन थी, जिसका नाम 'पांचो' रखा गया। एक बार उसका छोटा भाई उसे लिवाने गया। बहन ने भइया का खूब आदर-सत्कार किया। बढ़िया भोजन कराए। भइया जब लौटकर जाने लगा, तब बहन का प्यार उमड़ पड़ा।

रक्षा बंधन के अवसर पर हर भाई अपनी बहन को लिवाने के लिए उसकी ससुराल पहुंच जाता है। यदि बहन का भाई इस अवसर पर उपस्थित नहीं होता, तो बहन अपना अपमान समझती है। 'नागपंचमी' लोककथाओं में भाई के न पहुंचने पर एक बहन बिलख-बिलख कर रोने लगती है। एक काला नाग उसे रोता हुआ देखकर द्रवित हो गया। नाग उसे अपनी भांजी मानकर नागलोक में ले गया। खूब आदर-सत्कार किया और विदाई में नौलखा हार दिया।

भाई-बहन का प्रेम अतुलनीय है। बहन के मन में अपने भाई के प्रति सदैव कल्याण-कामना रहती है। वह बड़ा से बड़ा कष्ट भोगकर भाई की भलाई का प्रयास करती है। 'भाई-बिन्ना' लोककथा के प्रारंभ में कहा गया है 'भाई बैन को रिस्तौ

बड़ौ पवित्तर मानौ जात। जी कैं भइया होत, ऊ बैन खौं अभागिनी मानौ जात। साय उयै तानें मारन लगत।"

बुंदेली लोककथाओं में मां की ममता के अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं। माताएं देव मंदिरों में जाकर अपने पुत्र की कल्याण-कामना करती हैं। पुत्र कैसा भी हो, किंतु वह अपनी माता के लिए प्राणों से भी अधिक प्रिय होता है। 'परियन कौ खेल' बुंदेली लोककथा में मां की ममता का उदाहरण प्रस्तुत है। 'एक दिनां भोले अपनी मताई से बोले, कै ओरी अब हम बैठे-बैठे का करें। तुमाई बसकी अब काम नई रओ। हम परदेशै जाकै कमाई करन चाऊत, जीसैं अपन दोई जनन कौ अच्छी तरा सैं गुजारौ होंन लगै। लरका की बातें सुन-सुन कें मताई सन्न होकैं रै गई। उर अपने लरका के मौ कुदांव हेर कैं कन लगी—कै बेटा इतै अकेले हमाओ कैसे मन लगे। अबै तौ हड्डी घोर घोर कैं जैसे बनो सो अपनौ गुजारौ चलाऊत रये। जिदनों तुम ई घर में नई रैव सो हमाओ जीबो मुश्कल हो जैय। ईसैं जो बने सो मैन्त मजूरी इतै करत रबूं। नांय मांय जाबे की बात नई करो। कन लगत कै घर की आदी भलीं। ईसै नौन रोटी खाकें गुजारौ करत रैबूं।

भोले भइया बोले कै मताई तुम फिकर नई करो हम चारई छै मइना में थोरौ भौत कमा धमा कैं लौट आयं। अपनौ घर छोड़ कै क्यांऊ अच्छौ लगतई नइयां परदेश में रैकैं का करें। तुमाये बिना तौ हम रैई नई सकत? हमें कछू दिना खौं चलो जानदों हम उलायते लौट के आ जैय। सुनतनई मताई के आंखन में डवरियां भर आई, बोली कैं अच्छी बात है, तुम कछू दिना खौं हो आव नईंतर तुमाये मन में लगी रैय अकेले भौतई जल्दी लौट कैं आ जइयौ। रात कैं हम तुमें गैल के लाने कलेवा बना दैय क्याऊ गैल में छायरे में बिलम कै थौरौं भौत खालिइयौ। उतै जातनई खाबे कौ इंतजाम कैसे हो पैय, कन लगत कै 'बगल में तोसा तौ दम कौ भरोसा। मताई खौ चिंता के मारैं रात भर नींद नई आ पाई। क्यांऊ सैं तेल मंगा ल्याई उर क्याऊ सै सेर भर कनक। बड़े प्रेम सौ सात ठौवा मोटी-मोटी लुचई बनाकै उन पै चार ठौवा अमियां की कली धरकै एक छन्ना में बांध दई। एक छोल्ला में लुटिया डोर उर कलेवा धर कैं बड़े भुन्सरा भइया खौं गहा दओ। फिर झोला में सै कलेवा काड़ो उर गल्ला में बंधी लुचई छोर कै गिनी सोवे लुचई कड़ी सात। वे बैठ कैं जोर-जोर सै कन लगे कै एक खांऊ कै तीन खांऊ कै सात की सातई खाऊं। जा बात उन्नें मस्ती में कैऊदार दुहराई। ऊ बावरी में सात ठौआ परियां रत्ती। उन्नें जईं सै सुनी कै कुआ की पाठ पै कोनऊ हमसै जादां तागतवर

आ गओ है, उर वौ हम औरन खौं खावे की बिदी लगा रओ है। कजन हम ऊकी सेवा खुशामद नई करें तौ वौ तौ हमन खौं खाइ जैय। लगत कै कोनऊ भौत बड़ो दानौ आ गओ।

उनन नें सला करी चलों अपुन उयै मना लिइयै, नईतर अपुन सातई जनी मर जाबूं। भोलैं नें लुचई खाई नई पाईती। वे इत्ती कैई रयेते। इतेकई में वे सातई परियां बावरी से कड़कै भोले के सामैं हांत जोर कैं ठांढ़ी हो गई। भोले उनें देखतनई भौचक्के से रै गये। पैलां तो वे तनक डरा से गये, फिर तनक साहस बांध कै उनन की बातें सुनन लगे। उनन ने कइकै देखौ तुम हमें खाव नई हम तुमें एक भौत अच्छी चीज दै रये जीसैं तुमाव दालुद्दार दूर हो जैय। उर तुम माला माल हो जैव। परियन की बात सुन कै भोले फूल कैं कुप्पा हो गए उर सोसन लगे कै जौ अच्छौ धुआं में लट्ठ घलो।

'बालक कौ साहस' लोक कथा में माता की पुत्र के प्रति अटूट ममता प्रकट हुई। माता अपने पुत्र को आंखों के सामने से दूर नहीं करना चाहती। पुत्र उनके जीवन का एकमात्र आश्रय था। वह उसे जाते देखकर छाती पीट-पीटकर रोने लगती है। "चिट्ठिया लैके सूदो अपनी चारई मताइयंन नौ पांच कैं कन लगो कैं हम रानी के मूढ़ की दवाई लैबे खौ जा रये, सात समुंदर पार धरी है ऊके मूंढ़ की दवाई। तुम कोनऊ चिंता नई करियौ। सुन तनई वे चारई रानी छाती पीट-पीट कैं रोवन लगीं और कन लगीं कै हम आंदरन के लाने तुम तनक सहारे हते सो तुमई हमें छोड़ कैं जान लगे। देखौ अब तुम हमें कितँउ छोड़ कैं नई जाव। नईतर हम तमारे लानें तड़फ तड़फ कै मर जायै।"

'भोंदू बसंत' लोककथा में मां की ममता का चित्रण है। पुत्र चाहे मूर्ख हो और चाहे गुणवान, सुंदर हो चाहे कुरूप, स्वस्थ हो चाहे रोगी, मां के मन में अपने पुत्र के प्रति ममत्व और प्यार होता है। वह उसे कभी दुखी नहीं देख सकती। वह अपने पुत्र के सुख में सुखी और दुःख में दुखी हो जाती है। मां को अपने भोंदू बसंत से भी उतना ही लगाव है, जितना कि कोई विद्वान पुत्र से रखता है। कहानी का प्रमुख अंश है : दिन कड़त का लगत। भोंदू सयानौ भयौ। मताई बोली भोंदू बेटा ऐसो कबनौं फिरत रैय। ससरार जाकैं बऊ की विदा करालया। तोरौ बाप जिंदा रतो तौ अबै नौ तौ नाती हो परतो। भोंदू अपनी मताई की बात सुनकैं चमक के मारे कछू नई बोलो। मताई ने ऊकी जानकै हामी मान लई। इतेकई में पिपरिया गांव के एक गैलारे ने बताई कै भोंदू कौ ससुर बीमार है। मताई ने भोंदू सैं कई

कै बेटा तुमाव ससुर बीमार हो गओ। बेटा जाकैं तुम ससुर की खबर दबर उर अपनी दुलइया खौं लिवा ल्याव। कजन तुमई मौका पै नई गये तौ चार जनें नांव धरे। हम रात कैं तुमा ये लानें कलेवा बना दैय। मताई बोली कैं जा सूदी गैल ओई गांव नौ गई है। तुम सूदी गैल धरें जइयौ सो बेऊ गांव मिलजैंय। हम अपने बेटा के साकें सोहरे करन चाऊत। गैल में प्रेम से कलेऊ कर लिइयौ। मताई के समझाय बुझाय सें भोंदू बसंत राजी हो गए। बड़े भुंसरा सपर खोर कैं पटियां पार कैं सुरमा लगाकैं, पोसाक पैरकैं राजा बेटा से लगन लगे। मताई अपनें भोंदू बसंत खौं देख देख मनई मन फूली नई समा रईती।''

स्त्रियां प्रेम, ममता और करुणा की मूर्ति होती है, किंतु उनमें ईर्ष्या, द्वेष और कलह का आधिक्य भी होता है। एक स्त्री दूसरी स्त्री की प्रशंसा नहीं सुन सकती। वह आत्मप्रशंसा सुनने के लिए लालायित रहती है, पर निंदा में स्त्रियां विशेष रुचि लेती हैं। एक सामान्य स्त्री के प्रति जब किसी स्त्री में ईर्ष्या भाव रहता है तो सपत्नी के लिए ईर्ष्या और प्रतिस्पर्द्धा का होना आश्चर्य नहीं है। प्राचीन काल में राजा... महाराजा की अनेक रानियां हुआ करती थीं। उनमें परस्पर ईर्ष्या भाव स्वाभाविक था। उनमें प्रियतम का प्यार पाने की होड़ रहा करती थी। वे एक-दूसरे के अवगुणों को गिनाकर अपने आपको श्रेष्ठ सिद्ध करने का प्रयास करती हैं। राजा दशरथ की तीन रानियां थीं। सौतिया डाह के कारण ही श्रीराम को वनवास मिला था। गोपियां कुब्जा को अपनी सौत मानकर उस पर व्यंग्य बाणों की बौछार करती रहीं। बुंदेली लोककथाओं में सौतियां डाह के दुष्परिणाम दिखाई देते हैं। कागबिडारिन महालक्ष्मी, बालक कौ साहस और निपूतौ राजा शीर्षक लोककथाओं में सौतिया डाह का दुष्परिणाम दिखाया गया है। 'कागबिड़ारन' लोककथा में दो रानियों की कलह और परस्पर ईर्ष्या-द्वेष का चित्रण है। ''ऐसैं-ऐसैं एक राजा हते। उनकी दो रानीं हतीं। एक बड़ी उर एक हल्की रानी हती। बड़ी रानी बड़ी सीदी सादी उर हल्की रानी बड़ी इरखियाऊ हती। जब देखौ जब वा राजा सैं बड़ी की बुराई करतरत्ती। राजा को दूसरौ ब्याव हो गओतो तोउ उनकैं संतान नई भई। वे निपूते होबै के कारन रात-दिन दुखी रत्ते। एक दिना वे दुखी मन सैं बड़ी रानी के मिहिल में पौचे, रानी ने कई कै भगवान कछू दिनन में अपनी मनसा पूरी करबे बारे हैं। जा बात सुनकैं राजा के मन में धीरज बद गओ। कछू दिनन में खबर फैल गई कै बड़ी रानी कैं बाल-बच्चा होबै वारौ है। सुनतनई राजा की खुशी कौ ठिकानौ नई रओ। बड़ी रानी की खूब सेवा-खुशामद होन लगी। जा खबर सुनकैं हल्की रानी कैं काटै खूननई रओ। वा ईरखा के कारन जरी

बरी जा रईती उर मनई मन नईं कोनऊ खुरापात सोस रईती। राजा मनई मन फूले नई समा रयेते। हरां-हरां बड़ी रानी के दिन पूरे हो गए, उर उनको पेट पिरान लगो। राजा तो किलकिला सी बाठ हैरै बैठैते कै कबै बाल-बच्चा होबे की खबर मिलत। नौकरानी उनकी सेवा-खुशामद में लगींती। हल्की रानी ने नौकरानी सै पैलऊ सलाकर लईती। आदी राते बड़ी रानी के कुंवर हो परे। हल्की रानी नें कुंवर खौं उठवा के घूरे पै फिकवा दऔ, उर ऊकी जगा पै दो चार लोड़ा पथरा धरवा कै हल्ला कर दओ। कै जा औरत बड़ी कुलच्छन है। ई कै तो ककरा पथरा आय पैदा हो गए।

सुनतनई लोगन खौ बड़ौ अचंभौ भओ। अकेलैं राजन सै को काकै सकततो। राजा की आसा पै पानी फिर गऔ। हल्की रानी ने राजा को सौ कै कैं उयै किले सैं बायरे कड़वा दऔ उर उयै किले के कौवा बिड़ारबै कौ काम सुपबाकै काग बिड़ान बनवादओ। यह है सौतिया डाह का दुष्परिणाम। एक भोली रानी के साथ षड्यंत्र रचकर अपना स्वार्थ सिद्ध कर लिया एक चालाक ईर्ष्यालु रानी ने। इन्हीं दुष्परिणमों को देखकर बहुपत्नी प्रथा समाप्त हो गई। अपवादस्वरूप जहां इस प्रकार के परिवार हैं, वहां कलह और अशांति का वातावरण रहता है।

महालक्ष्मी व्रत कथा में सौतिया डाह का अशोभन दृश्य है। दामौती रानी अपने षड्यंत्र और कुचालों के बल पर राजा की प्रिय बन जाती है और बड़ी रानी आमौती को राजमहल से बाहर निकलवा देती है। वह बेचारी रूखा-सूखा खाकर एक झोंपड़ी में दिन गुजारती है। राजा की विशेष कृपा पात्र होने के कारण उसे घमंड हो जाता है। बड़ी रानी की भाव-भक्ति को देखकर लक्ष्मीजी प्रसन्न होकर उसे सुख और समृद्धि प्रदान कर देती हैं। इस लोककथा में मुख्य रूप से सौतिया डाह की स्थिति दिखाई दे रही हैं। "ऊ राजा की दो रानी हतीं। बड़ी रानी नांव आमौती उर हल्की की नांव दामोती हतो। बिलात दिनां नौतौ दोई जनी सला सूद में बनी रईं। कछू दिना में भीतरई भीतर खुटर-पुटर होनं लगी। उन रानियन के मन में तन-मन दरार सी होन लगी। उयै देखकै। राजा कौ प्रेम पैलां तौ बड़ी रानी पै जादां बनो रओ। उयैं देखकैं हल्की रानी मनई मन जरत-बरतती। औरतन में तौ जरबे-बरबे की आदत होतई है। हरां हरांऊ हल्की रानी ने राजा पै ऐसौ जादू डारदऔ कै वे हल्की रानी की उगईयन के इसारे पै नचन लगे। ऊनें राजा के कान भरबौ शुरू कर दओ। उर जब देखौ जब राजा खौं भड़काउतई रत्ती। एक जनी कोऊ रैय। हम रबैं चाय बड़ी रबैं। बताव एक म्यांन में दो तरवारें कैसें समा पैंय। राजा तौ हल्की पै भौतई रीजेते। वे उयै कैसंउ छोड़ई नई सकतते। उन्नें हल्की रानी कै कयै सैं बड़ी रानी खौं राजमिहिल

सै बायरैं निकार दओ। या बिचारी एक टूटी-सी टपरिया में रैकैं दिन गुजारन लगी।'' यह है सौतिया डाह का कारुणिक दृश्य।

बुंदेली लोककथाओं में स्त्रियों के विविध रूपों की झांकी दिखाई देती है। स्त्रियां पारिवारिक संबंधों का भली-भांति निर्वाह करती हैं, जिनमें सास-बहू, ननद-भाभी, भाई-बहन, पति-पत्नी और माता-पुत्र की मर्यादा का विशेष ध्यान रखा गया है। माताएं अपने पुत्र पर सर्वस्व न्यौछावर करने के लिए तत्पर रहती हैं। पिता पुत्र को घर से निकाल देता है, किंतु मां का ममत्व जाग्रत हो जाता है, 'कंजूस साहूकार' लोककथा में ''ऊकी मताई ने देखो कै हमाव लरका घर छोड़कैं परदेसैं जा रओ। वा दौर कैं ऊकें लिगां जाकै कन लगी कै बेटा गैल के कलेवा के लाने जे लडुबा लेत जाव। गैल में जितै भूक लगै सौ एक-एक खाकैं पानी पियत जइयौ।'' यह है मां की ममता अपने पुत्र के प्रति।

'बादाम देश' लोककथा में मां की ममता के दर्शन होते हैं, ''सुनत नई रानी घबड़ा कैं पौची उर कन लगी कै बेटा, तुम पै ऐसी का आफत आ गई कै तुम भूके लांगे डरो हो? इत्ते बड़े राज में तुमाये लानें का चीज की कमी है, हमें बताव हम तुरतई तुमें मंगाय देत। अपनी मताई खौं देखत नई राजकुमार फुसक फुसक कैं कन लगे कै तुम हमाव ब्याव ऊ धोबी की बिटिया के संगै करा देव। जौन धोबी जंगल के बीच के गांव में रत हैं। रानी बोली कै बैटा तुम इत्ती सी बात के लानें रिसाने परे हो। अरे जो तौ हमाये बांयें हांत कौ खेल है।'' मां अपने पुत्र को दुखी नहीं देख सकती। ननद-भाभी का प्रेम लोककथाओं में अनेक स्थलों पर व्यक्त हुआ है। 'करवा चौथ' लोककथा में ननद-भाभी का प्रेम उजागर हुआ है। सात भाइयों के बीच एक बहन थी, जिस पर भाभियों का पूर्ण प्रेम था। भाभियां व्रत रखे रहीं, किंतु ननद को मुरझाया हुआ देखकर भोजन करा दिया।

सास-बहू के रिश्ते में प्रायः कटुता दिखाई देती है। सासें बहुओं पर नियंत्रण रखना चाहती हैं और बहुएं स्वतंत्र रहना चाहती हैं। इस कारण से उनमें तालमेल नहीं हो पाता और उनमें अनबन रहा करती है। लोककथाओं में सास-बहू से संबंधित अनेक प्रसंग प्राप्त होते हैं, यहां तक कि सास की आज्ञा के बिना बहुएं व्रत, उपवास और पूजा भी नहीं कर पाती हैं। 'दसा रानी' व्रत कथा में एक बहू अपनी सास से छिपकर पूजा करती है।

बुंदेली लोक कथाओं में परियों से साक्षात्कार और उनके चमत्कारों का चित्रण किया गया है। अरेबियन नाइट्स और ईसप की कहानियों में परियों से संबंधित कहानियां प्राप्त होती हैं। 'बृहत्कथा मंजरी' और 'कथा सरित्सागर' में

अप्सराओं और परियों की कथाएं प्राप्त होती हैं। पौराणिक कथाओं में इंद्र लोक से उतरने वाली परियों की चर्चा है। ऐसा कहा जाता है कि देवताओं के राजा इंद्र के दरबार में अप्सराएं नृत्य करती रहती हैं। पौराणिक और संस्कृत साहित्य से परियों की कथाओं का आगमन लोक साहित्य में हुआ है। इनका स्थान जलाशयों, बावड़ियों या भूगर्भ में बताया गया है। कहीं परियों और कहीं नागकन्याओं के चमत्कारों की चर्चा बुंदेली लोककथाओं में की गई है। यह स्त्री का एक मानवेतर स्वरूप है। लोककथाओं में उन पर राजकुमारों के रीझने की चर्चा है।

नाग कन्याओं के साथ राजकुमारों के विवाह की चर्चा भी कुछ लोक कथाओं में है। किसी परी की सुंदर जूती देखकर कोई राजकुमार रीझकर उसकी खोज में निकल पड़ता है। एक राजकुमार एक चमत्कारिक धोबी की लड़की पर रीझ जाता है। 'बादामदेश' नामक लोक कथा में वह चित्रित घटना वर्णित है।

'दिलबर चोर' नामक लोक कथा में एक राजकुमार परियों की खोज में भटक रहा था। एक परी की जूती को देखकर राजकुमार उस परी को प्राप्त करने के लिए पागल हो गया और फिर दिलबर चोर के सहयोग से परियों को प्राप्त करने में सफल हो गया।

संस्कृत और अंग्रेजी की कहानियों में डायनों के कृत्यों का वर्णन है। धीरे-धीरे इन कहानियों का प्रचलन लोक साहित्य में हो गया। उनके कार्यकलाप बड़े ही घृणित और भयंकर होते हैं। डायनें मांस भक्षिणी होती हैं। वे स्त्रियों का सुंदर रूप धारण करके मनुष्यों को खा लेती हैं। बुंदेली लोककथाओं में डायनों के कुकृत्यों का वर्णन है। यह स्त्रियों का विकृत रूप है 'बालक कौ साहस' बुंदेली लोक कथा में एक डायन के मायाजाल का चित्रण किया गया है।

'मित्रन की प्रीत' लोककथा में एक डायन रास्ते में एक सोने की ईंट डाल देती है। एक मित्र लालचवश उस ईंट को उठा लेता है। रात को वह डायन उसे खा लेती है। धीरे-धीरे वह तीन मित्रों को खा लेती है। अंत में चौथा समझदार मित्र उस डायन के चंगुल से छूटकर उसे मरवा डालता है। हालांकि इस तरह की डायनों की स्थिति आज तो दिखाई नहीं देती, किंतु ये सब लोककथाओं में मनोरंजन के साधन हैं। इन्हें केवल काल्पनिक ही कहा जा सकता है। पुराणों और महाभारत में इस प्रकार की स्त्रियों की चर्चा है, जिन्हें केवल राक्षसी ही कहा जा सकता है।

बुंदेली लोककथाओं में स्त्री का स्वरूप विविध रूपों में प्रकट हुआ है। किसी न किसी रूप में स्त्री अवश्य दिखाई देगी। अधिकांश लोककथाएं मनोरंजक और

उपदेश प्रधान हैं। उनसे समाज को एक नवीन दिशा निर्देशन और महत्त्वपूर्ण शिक्षा प्राप्त होती है। लोककथा के हर कथानक में पुरुष के साथ स्त्री की प्रमुख भूमिका है। उनमें स्त्री माता, पत्नी, बहन, भाभी, पुत्री आदि विविध रूपों में प्रकट हुई है। उनमें पारिवारिक संबंधों का विधिवत निर्वाह हुआ है। पुत्र के प्रति मां की ममता, पति-पत्नी का पारस्परिक प्रेम और पतिव्रत धर्म की रक्षा, भाई-बहन का निस्वार्थ प्रेम, देवर-भाभी के परस्पर संबंध और मर्यादा का परिपालन, माता और पुत्री का परस्पर प्रेम और आकर्षण। उनमें एक ओर तो स्त्री पूर्ण पतिव्रता और चरित्रवाली प्रदर्शित की गई है, जो अपने चरित्र की रक्षा के लिए अपनी बुद्धिमत्ता और चातुर्य का उपयोग करती है तो दूसरी ओर कुछ ऐसी भी स्त्रियां हैं, जो परपुरुषगामिनी और व्यभिचारिणी सिद्ध हुई हैं। पतिव्रता स्त्रियों की पूर्ण प्रशंसा और चरित्रहीन स्त्रियों की निंदा लोककथाओं में भी की गई है। चरित्रहीन स्त्रियों को दंडित करने की घटनाएं भी लोककथाओं में घटित हुई हैं। कहीं सास-बहू का सामंजस्य और कहीं उनकी नोक-झोंक के दुष्परिणाम का चित्रण करके स्त्री समाज को मूल्यवान शिक्षा प्रदान की गई है। देवरानी-जिठानी की अनबन के कारण पारिवारिक विघटन और सौतिया डाह के दुष्परिणाम का चित्रण भी लोककथाओं में किया गया है। भाई-बहन का निःस्वार्थ प्रेम और बहन की आत्मीयता कुछ लोककथाओं में प्रदर्शित की गई है। ननद-भाभी की नोक-झोंक और सास-बहू की अनबन तो स्वाभाविक ही है। स्त्री की ईर्ष्या, द्वेष और कलह के कारण अनेक परिवार खंडित होते हुए भी दिखाए गए हैं। बुंदेली लोककथाओं में स्त्रियों से संबंधित कुछ आश्चर्यजनक घटनाओं का समावेश किया गया है, जिन पर आज का शिक्षित समुदाय कभी विश्वास नहीं कर सकता। जैसे राजकुमार सुंदर परियों की खोज करते हुए दर-दर की ठोंकरे खाते हैं। मणिं के प्रकाश से जल मार्ग से भूगर्भ में पहुंचकर राजकुमार नाग कन्याओं के साथ विवाह कर लेते हैं। उड़नखटोला में बैठकर परियों को उड़ा ले जाते हैं। नरभक्षी डायनें सुंदर स्त्रियों का रूप धारण करके पुरुषों को ठग लेती हैं। राजकुमारी की नाक या पेट से नागिन निकलकर डस लेती है। घटनाएं कुछ भी हों, किंतु बुंदेली लोककथाओं में स्त्री के विविध रूपों और उनके चमत्कारिक कार्यकलापों की प्रधानता है।

लोकगाथाओं में स्त्री

◆ *ओमप्रकाश चौबे*

लोकगाथाएं जनपदीय जीवन और संस्कृति की कथा साक्ष्य हैं। जनपदीय लोक परंपरा में कथा, कथावार्ता और सुदीर्घ प्रतीकात्मक आख्यान गाथाओं के रूप में रचे गए हैं और उनका कथन अथवा गायन जीवंत लोक-परंपरा में आज भी किया जाता है। पुराण से होकर जब हम लोक की गाथा परंपरा पर आते हैं, यहां स्पष्ट देख सकते हैं कि लोकगाथाएं एक सीमा तक ही पौराणिक आख्यानों की लोक पुनर्रचना हैं।[1] वास्तव में इस मौखिक गाथा साहित्य का अधिकांश स्वयं भारतीय लोक जीवन ने रचा है, जिसके केंद्र में एक सुदीर्घ जीवन परंपरा का अनुभव है, वह पुराण रचना के आप्त और आर्ष से मुक्त है।[2] वहां समुदायों के जीवन का स्वानुभव ही आर्ष है और उन्होंने इसी अनुभव को अपने चरित नायकों, लोक देवताओं, मातृशक्तियों और पुरखों, प्रकृति और जीवन की परस्परता में संभव होते जीवन सहज सुंदरता में रचा है। लोकगाथा गेय होती है, गाथा का वाचिक पाठ एक विशेष छंद में पिरोया होता है और गायन की विशेष शैली में गाया जाता है।

गाथा किसी अंचल के भूगोल, प्रकृति, इतिहास, लोक विश्वास और लोक मूल्यों, आस्था और धारणाओं, लोकदेवताओं और उनके पूजन अनुष्ठानों, पर्व-त्योहारों की सांस्कृतिक परंपरा की समग्रता को प्रकट करती है।

इस अंचल में शक्तिपूजा बहुत प्राचीन है। शक्तिपूजा से प्रेरणा पाकर देवी गीतों, गाथाओं की रचना सहज स्वाभाविक थी।[3] जगनिक ने 1182 ई. से 1202 ई. के बीच आल्हा की रचना की थी। आल्हा गाथा के रचनाकाल से दो सौ वर्ष पूर्व अर्थात 10वीं शती के अंतिम चरण में देवी गीतों की रचना प्रारंभ हुई थी। देवीपरक गाथाओं में सुरहिन, धांदू, जगदेव, सूरजगढ़ की गाथाएं प्रमुख रूप से लोकप्रिय हुईं।

बुंदेली लोकगाथाओं में स्त्री के विविधवर्णी चित्र हैं। एक ओर श्रवण कुमार की कर्कशा नारी है तो दूसरी ओर रानी चंपावती के समान आदर्शवान स्त्री, कहीं ऐलादी जैसी आदर्श बहन है तो कहीं रानी जगता जैसी पति के शीश का सहर्ष दान करने वाली। धर्मा सांवरी, रेवा, मारू, सारंगा जैसी अनेक स्त्रियां बुंदेली लोक गाथाओं में चित्रित हैं।

बुंदेली स्त्री सदैव अपने कल्याणकारी स्वरूप एवं सांस्कृतिक परंपराओं के प्रति निष्ठावान होने के कारण अभिनंदनीय रही है। वह जहां कर्तव्यपरायणा, कुशल गृहणी है, वहीं वर्तमान परिस्थितियों में भी उसकी भूमिका उल्लेखनीय है।

'एक चना दो देउलरी माई साहुन आए।'

गीत में नारी की दोहरी भूमिका की ओर संकेत है। जैसे एक चना दो हिस्सों में बंटकर देवल बन जाता है, वैसे ही नारी जीवन भी दो हिस्सों—मैहर और पीहर की भूमिका में पूर्णता प्राप्त करता है। बुंदेली लोकगाथाओं में स्त्री के रूप-सौंदर्य, साहस, धैर्य और समर्पण का मार्मिक चित्रण बुंदेली स्त्री के जातीय गौरव का प्रतिमान है।

ओरछा नरेश जुझारसिंह की रानी चंपावती अपने देवर हरदौल से बहुत अधिक प्रेम करती थी। हरदौल भी भौजी को माता की तरह मानते थे। हरदौल अपनी न्यायप्रियता, सत्यवादिता, वीरता आदि गुणों के कारण काफी लोकप्रिय हो गए थे। इसी कारण कुछ ईर्ष्यालु दरबारियों और मुगल प्रतिनिधियों ने मिलकर राजा के कान भरे और देवर-भौजी के सात्विक प्रेम को लांछित किया। राजा ने रानी के पतिव्रत धर्म की परीक्षा लेनी चाही और देवर को विष देने के लिए विवश

किया। अंततः विवश रानी को विषमिश्रित भोजन हरदौल को परोसना पड़ा, उसकी आंखें बरस पड़ीं। गाथाकार ने लिखा है :

भोजी धरे तनिक न धीरा, ढारत है नैनन में नीरा
न्यारे भये जाततें हीरा, सैहे कौन कठिन जा पीरा
ई निरदयी राजा ने दीने, विष मिलाय पकवाना।

भोजन करने पर हरदौल के प्राण पखेरू उड़ गए। हरदौल को बुंदेलखंड में लोक देवता माना जाता है। देवर-भाभी के पवित्र प्रेम से उत्पन्न हरदौल का देवत्व अब लोकमानस में विवाह के वरदाता के रूप में मान्य हो गया है। यह सत्रहवीं शताब्दी की घटना है।

'कारसदेव की गाथा' में राजू गूजर की बेटी ऐलादी प्रमुख स्त्रीपात्र है। गड़राझौर का राजा राजू गूजर से उसकी बेटी की अपने पुत्र से विवाह के लिए मांग करता है। वह बलात उठवा लेने की धमकी भी देता है। इस विवाह के लिए राजू गूजर 'डाड़' कहता है। इसका बदला कारसदेव स्वयं लेते हैं। इस अपमान का बदला लेने हेतु ऐलादी बारह वर्ष तक शिव की आराधना करती है। प्रसन्न होने पर शिव से वरदान में वह कारसदेव जैसा वीर भाई मांगती है। वही भाई कारस अपने पिता का बदला गड़राझौर के राजा से लेता है।

'अरे राजा लड़का सें लड़की भली जो कुलवंती होय।
बिटिया जनमें ऐसी जनमें जैसा घर जनमी ऐलादी होय।
ये जनमत कुल करी, काठुर मेरे कुल परवार
ऐलादी के जनमत भैया, तिर जावै सिंसार'

गाथाकार ने ऐलादी को भवानी दुर्गा का अवतार माना है। कारस के लालन-पालन में ऐलादी ने मां जैसी भूमिका निभाई थी। उसने कारस को अनेकानेक बाधाओं से मुक्ति दिलाई। यही नहीं, ऐलादी की बड़ी बहन, जो अपने छोटे बच्चों को छोड़कर परलोक सिधारी थी, उसके बच्चों को भी पाल-पोसकर उसने बड़ा किया। कारसदेव तथा सूरपाल ने बावन लड़ाइयां लड़ीं और अपने पिता के अपमान का बदला लिया था, लेकिन उस हर छोटी-छोटी घटना में ऐलादी की केंद्रीय भूमिका रही है।

'धर्मासांवरी की गाथा' में दांपत्य जीवन की समस्या केंद्र में है? गाथा का आरंभ चिड़ा-चिड़ी के विवाह से हुआ है। इस विवाह का निर्णय राजा भोज और

बाणासुर की कचहरी में होता है। पुरुष बच्चे चिड़वा को और स्त्री बच्चे चिड़िया को दिए जाएं। चिड़िया (नारी) को यह निर्णय स्वीकार नहीं होता है। विवश होकर वह आत्महत्या कर लेती है। चिड़वा भी अपने प्राण त्याग देता है। अगले जन्म में वही चिड़वा-चिड़िया धर्मासांवरी और दंग-रिछारिया के रूप में जन्म लेते हैं। धर्मा सांवरी बाणासुर की पुत्री हुई और उसे अपने पूर्व जन्म में लिए हुए निर्णय का स्मरण रहा है।

गाथा-नायक बारह वर्ष तक एक बेड़नी की गिरफ्त में रहता है। सांवरी और दंग रिछारिया का विवाह दुनिया में रखे केशों के आधार पर होता है और परषा के चार विवाह पौरुष के कारण संपन्न हुए। इन विवाह संबंधों में जातिगत, धर्मगत, संप्रदायगत, वर्णगत भेदभाव नहीं है। राजा बाणासुर की पुत्री धर्मासांवरी एक पशुपालक को ब्याह दी गई। नीमा के राजा भोज की पुत्रियां परषा बरदी का वरण करने में गौरव समझती हैं।

धर्मासांवरी लोक की नारी है, पर गाथाकार ने उसे जादुई व्यक्तित्व प्रदान कर लोक से विलग कर दिया है। उसका व्यक्तित्व तत्कालीन स्त्रियों से पूरी तरह मेल नहीं खाता है, क्योंकि वह जादूगरनी के रूप में प्रस्तुत हुई है।

'बैठी अकेली भैया वाखरे में रे, जल ढूढ़े कुटुम परवार
आशा के विरवा जेखो है नइयां रे, जब बोले सियारे मोरे राम'

धर्मासांवरी विवाह होने पर भी पति से दूर है, क्योंकि पति एक बेड़नी की कैद में है। उसे जीवन अंधकारमय प्रतीत होता है। वह रूपवान है--

'सहजई है धर्मा को रूप, सूरज की किरन दमक रई है
शौहन चढ़ी है कमान, हिरनी सी अखियां डोल रई हैं।'

धर्मासांवरी अपने पति को बेड़नी की कैद से परषा बरेदी की मदद से छुड़वाती है। परषा को चार युवतियों से विवाह करने का आश्वासन देना पड़ता है। धर्मासांवरी संवेदनशील स्त्री है। इसी स्वभाव के कारण उसका परिवार बसता है। धर्मा ने परषा को इतना योग्य और सबल बना लिया था कि जिससे वह हर प्रकार की बाधाओं से निपट सके। इस तरह की संघर्षशील एवं चरित्रवान स्त्रियां चरागाही संस्कृति की गाथा में अन्यत्र नहीं मिलेंगी।

'जगदेव की गाथा' में जगदेव द्वारा दुर्गा देवी को अपना शीश अर्पित करने और मुगलों से उसके युद्ध का वर्णन है। जगदेव की गाथा में दो स्त्री पात्र

हैं—जगदेव की रानी एवं उनकी बेटी। जगदेव की रानी जगता धर्मपरायण तथा पतिव्रता है। जगदेव रानी के इन गुणों से परिचित है। जब देवी जगदेव से उनका शीश दान में मांगने जाती है, तब जगदेव उनसे कहते हैं कि माता आप तनिक रुकें, मैं रानी से मशविरा करके आता हूं। तब देवी ने जगदेव से कहा—स्त्रियां दान में बाधक होती हैं। जगदेव ने देवी से कहा—

नारी कभऊं न निदरो माता, नारी कंचन खान मां
नारी से नर उपजै माता, ध्रुव प्रहलाद समान मां
नारी से राजा करन भये माता दै दये सवाये दान मां।

जगदेव की दृष्टि में नारी महान है। रानी से सलाह लेकर ही उन्होंने अपना शीश काटा। रानी ने शीश थाल में रखकर देवी को भेंट किया। रानी पति के आत्म बलिदान से दुखी नहीं हुई, बल्कि वह पूर्ण संतुष्ट थीं। निश्चय ही वह नारी महान है, जो सहर्ष अपने पति का शीश दान में देती है। मां दुर्गा प्रसन्न होकर रानी के पति को पुनर्जीवित कर देती हैं।

'जगदेव की गाथा' में मुगलों से युद्ध का प्रसंग वर्णित है। जगदेव की बेटी चिंतित है कि विशाल मुगल सेना से उसके पिता अकेले कैसे लड़ेंगे। मुगलों ने जगदेव को आदेश दिया था कि वह अपनी बेटी मुझे दे दे या युद्ध करे। जगदेव की बेटी ने स्वयं को मुगल बादशाह को सौंप देने और पिता को निष्कंटक राज्य करने की बात कही थी, किंतु, जगदेव को बेटी के वचन पर ऐतराज हुआ और उन्होंने कहा कि राजपूतों से बेटी का ब्याह करूंगा और कन्यादान करूंगा। बेटी तुम्हारा निर्णय सुनकर मेरी छाती फटी जा रही है—

हीन वचन जिन बोलों बेटी छत्री धरम न जाय
छाती फटै बजुर की, जगदेव समाय
तुमें ब्याहो राजपूतों, लैहों कन्यादान
राजा जगत के मामत्ये हो मां।

इस गाथा में नारी के त्याग और बलिदान की महिमा का उल्लेख है। 'रैया लोकगाथा' बुंदेलखंड में स्त्रियां बड़ी भोर में जांता से अनाज पीसते हुए गाया करती थीं, इसीलिए रैया को 'जतसार' गीत भी कहा जाता है। रैया गाथा में प्रमुख स्त्री पात्र हैं रैया की माता, रैया की पत्नी तथा रैया की प्रेमिका।

सूर्य देवता के आशीर्वाद से रैया का जन्म हुआ। माता ने उन्हें बड़े जतन से पाल-पोसकर बड़ा किया। उनका विवाह किया। रैया अचानक युद्ध के लिए

तैयार हो जाते हैं। युद्ध के लिए प्रस्थान करते समय माता उन्हें रोकती हैं, लेकिन रैया नहीं रुकते हैं। एक बार सैर-सपाटे के लिए निकले, रैया को एक रूपवान युवती पानी भरती हुई मिल जाती है। रैया ने उससे पानी पिलाने को कहा। इन दोनों का प्रेम हो जाता है। रैया अपनी पत्नी बनाने का आश्वासन देकर उसे अपने साथ घर ले आते हैं। पत्नी पूछती है कि आप मेरे लिए सौत लाए हैं। रैया कहते हैं कि यह तुम्हारी सेवा-सुश्रुषा करेगी और तुम्हारे बालक की देख-रेख भी करेगी।

ने हम लाये पावनी, न लाये जनम की सौत
पीसे तुम्हारे पीसने और खिलौने नंदलाल।

प्रेमिका ने यह बात सुनी और उसे अपना जीवन अंधकारमय प्रतीत हुआ। वह बहुत दुखी हुई और अंत में जहर खाकर उसने अपनी जीवन लीला समाप्त कर ली। दूसरी ओर युद्ध क्षेत्र में गए हुए रैया का वध हो जाता है। उनके सगे बहनोई ही उन्हें धोखे से मौत के घाट उतार देते हैं।

'सारंगा-सदाव्रत' शृंगारपरक गाथा है। बुंदेलखंड में प्रचलित यह गाथा सारंगा-सदाव्रत के पिछले तीन जन्मों की कथा है। पहले जन्म में वे हंस-हंसनी हुए, दूसरे जन्म में वे लड़ई-लड़ैत के रूप में जन्म लेते हैं। उन दोनों का प्रेम अटूट था। किसी कारणवश राजा से अनबन हो जाने पर राजा ने उन्हें अपने राज्य से निष्कासित कर दिया। वे दोनों अन्य राज्य में चले जाते हैं। चलते-चलते उन्हें बहुत प्यास लगी और एक गांव के बाहर कुएं के समीप वे रुके। कुएं के बाहर किसी जानवर के पैर के निशान, जिसमें पानी भरा देखकर वे (लड़ई-लड़ैत) एक दूसरे से पानी पीने का आग्रह करते रहे, प्रेम की प्रगाढ़तावश किसी ने पानी नहीं पिया, परिणामतः लड़ई और लड़ैत की मृत्यु हो गई।

तीसरे जन्म में उन दोनों ने सारंगा-सदाव्रत के रूप में जन्म लिया। जन्म-जन्मांतर के उन प्रेमियों का प्रेम इस जन्म में भी बचपन से ही परवान चढ़ने लगा। बड़े होने पर वे दोनों मदरसे में पढ़ने जाते हैं। उनका प्रयास है कि वे हमेशा एक साथ रहें। सारंगा अपने प्रेमी सदाव्रत से मिलने के अनेक उपाय रचती है। वह मर्द की वेशभूषा धारणकर मिलने का प्रयास करती है। सारंगा का विवाह किसी अन्य पुरुष से कर दिया गया, फिर भी वह सदाव्रत से मिलने का प्रयास करती है। वह अपना आंचल फाड़कर उस पर काजल की स्याही से, पैती चीरकर

उसे मलहम के रूप में उपयोग कर सदाव्रत को संदेश लिखती है, सदाव्रत के यहां पिजड़े में बंद तोते से कहती है :

पिंजरा में के सुअना, भैया लगो हमार।
जब जग उठैं मोरे बालमा, तुम हूको भरियो साक।

हे पिंजरे के तोते! इस समय मेरे स्वामी सो रहे हैं, जब वे जाग जाएं, तुम मेरे आने की सूचना उन्हें देना। सदाव्रत को सारंगा के आगमन की जानकारी मिली। वह तुरंत उसी रास्ते चल पड़ता है। प्रेमी-प्रेमिका का मिलन-बिछोह होकर अंत में मिलन हो जाता है।

राजा करन बहुत बड़े दानी थे। दानप्रियता की चर्चा श्री कृष्ण और अर्जुन तक पहुंची। उन्होंने साधु वेश में राजा की परीक्षा का निश्चय किया। दोनों तपस्वी वेश में जब राजा के घर पहुंचे, तब राजा ने उनका यथोचित आतिथ्य सत्कार किया। उन्होंने राजा से कहा कि हमें तुम्हारे पुत्र का दान चाहिए। साधुओं ने कहा कि तुम दोनों दंपती अपने पुत्र को आरे से चीरकर हमें भेंट दो। राजा और रानी ने साधुओं की बात मान ली। साधुओं ने और भी मांगें कीं। अंत में राजा की दानप्रियता से प्रसन्न होकर साधु वेशधारी कृष्ण ने राजा के पुत्र को जीवित कर दिया। इस लोकगाथा में रानी का त्याग राजा से किसी भी तरह कम नहीं है।

पितृभक्त श्रवण कुमार की गाथा इस अंचल में प्रसिद्ध है। श्रवण पितृभक्त थे और उनकी पत्नी कर्कशा एवं सास-ससुर से दुराव रखती थी। अपने पति एवं स्वयं के लिए वह खीर बनाती थी तथा अपने सास-ससुर को खट्टी महेरी खिलाती थी। दोनों तरह के भोजन एक ही हांडी में पकते थे। श्रवण कुमार की स्त्री की कपट-चातुरी देखने योग्य है! वह कुम्हार से हांडी बनवाकर लाती है। एक हांडी में दो भाग थे। एक में खीर तथा दूसरे भाग में खट्टी महेरी बनाती थी।

सरमन तिरिया दौरी गई, कुमरा के दरबार
मेरे भैया एक हांडी गढ़ देव
ऐसी हांडी तुम गढौ, एक हंडी दो पेट
एक में रांधो महेरिया और एक में खोआ खीर
अंधा-अंधी को राधों महेरिया सरमन को खोआ खीर

एक दिन श्रवन के अंधे माता-पिता ने शिकायत की कि बेटा तेरे राज में हमने कभी खीर नहीं खाई। सरमन ने इसकी परीक्षा करनी चाही। भोजन जब

परोसा गया तो सरमन ने अपना थाल माता-पिता को सरका दिया और उनका थाल खुद ले लिया। तब सरमन को पत्नी की दुर्मति का पता चला। वे बढ़ई के घर जाकर कांवर बनवा लाए और अपने अंधे माता-पिता को तीर्थाटन कराने चल दिए।

वस्तुतः बुंदेली लोकगाथाओं में लोक-स्त्री की विविध छवियां जीवन की उजास के साथ उत्कीर्ण हुई हैं। अपने आत्मिक सौंदर्य, प्रेम, करुणा के कारण बुंदेली स्त्रियां हमें रिझाती हैं, किंतु जहां ये लोकमर्यादा से परे जाकर अपना विकृत रूप प्रकट करती हैं, वहां संवेदनशील जनमानस को आहत करती हैं। दरअसल यही स्त्री की मुकम्मल छवि है।

व्रतकथाओं में स्त्री

◆ *शरद सिंह*

व्रत कथाओं को प्रायः धार्मिक अनुष्ठान के अंतर्गत पढ़ी-सुनी जानेवाली कथाएं मान लिया जाता है, जबकि व्रत कथाओं का एक और रूप होता है, जो कि लोक विश्वास अथवा लोक आस्था के रूप में लोक मानस में व्याप्त रहता है और इसी रूप में ग्रहण किया जाता है। जैसे भैया-दूज की व्रत कथा। काल्पनिक 'दोज महारानी' की आस्थायुक्त यह कथा ईश्वरीय चमत्कारों तथा धार्मिक आग्रह से परे भाई की रक्षा को लेकर बहन की चिंता का लौकिक स्वरूप है। इसमें स्त्री का वह रूप उभरकर सामने आता है, जिसे पारिवारिक एवं सामाजिक ताने-बाने में 'बहन' का संबोधन दिया गया है।

मुख्य रूप से लोक व्रत कथाएं श्रोताओं के सम्मुख कही (बांची) जाती हैं। लोक व्रत कथाओं के केंद्र में स्त्री ही रहती है। इसके दो कारण माने जा सकते हैं। पहला कारण यह है कि समाज को धर्म के माध्यम से लोक हित से जोड़ने वाली स्त्री ही होती है। वह मां के रूप में भावी पीढ़ी को साहस का पाठ पढ़ाती है। संकट से जूझने की क्षमता प्रदान करती है और उसकी तमाम शक्ति को समाज हित में लगाने की शिक्षा देती है। इस प्रकार वह भावी पीढ़ी को लोक हित का अर्थ समझाती

और सिखाती है। उसमें आस्था उत्पन्न करती है। दूसरा कारण यह है कि जिस ग्रामीण लोक में उन कथाओं को स्थान मिला है, उसमें स्त्री की अपनी अलग सत्ता है। भले ही वह आर्थिक रूप से पुरुष पर निर्भर हो, किंतु पुरुष की स्त्री पर निर्भरता भी निर्विवाद रहती है। मसलन यदि स्त्री घर की चौखट के भीतर रखी जाती है, विशेष रूप से वह स्त्री, जो अर्थोपार्जन से जुड़ी न होकर खांटी घरेलू स्त्री होती है तो पुरुष भी रसोईघर की चौखट लांघकर उसमें प्रवेश नहीं करते हैं। अन्न जुटाने का दायित्व पुरुष का रहता है तो अन्न पकाकर खिलाने का दायित्व स्त्री का।

बुंदेली व्रत कथाओं के केंद्र में स्त्री के होने के कारण ही स्त्री विमर्श का विशिष्ट रूप सामने आता है। इनमें स्त्री धैर्य, साहस और कर्म का प्रतिरूप बनकर एक ऐसी छवि प्रस्तुत करती है, जिसके अभाव में समाज का सतत बने रहना कठिन है।

यहां प्रमुख नौ बुंदेली लोक व्रत कथाओं में स्त्री विमर्श का आकलन किया जा रहा है। यथा—भैया दूज की व्रत कथा, दसा माता की व्रत कथा, गनगौर की व्रत कथा, आसमाई की व्रत कथा, ग्वालिन (हरछठ) की व्रत कथा, गाजबीज की व्रत कथा, करवाचौथ की व्रत कथा, वटसावित्री की व्रत कथा एवं तुलसी नवमी की व्रत कथा।

भैया दूज की व्रत कथा

फागुन के बाद चैत्र मास के कृष्ण पक्ष की द्वितीया को भैया दूज मनाया जाता है। इस अवसर पर भाई-बहन के परस्पर प्रेम पर आधारित व्रत कथा बांची जाती है। 'सात बैनन को वीर' नामक व्रत कथा में सात बहनों में इकलौते भाई के प्रति अगाध प्रेम और चिंता का विवरण है। इस कथा में भाई पर सात प्रकार के प्राणघातक संकट आते हैं, जैसे—भोजन में सांप का विष मिल जाना, सेही के कांटों से व्यवधान उत्पन्न होना, नदी में बाढ़ का आ जाना, कांटों भरे रास्तों पर से गुजरना, द्वार का गिरना, मंडप का गिरना तथा डंसने के लिए नागिन का आ जाना। बड़ी बहन इन सभी संकटों से अपने भाई की हर संभव रक्षा करती है। सहायता के लिए वह एक और स्त्री शक्ति का आह्वान करती है, जिसे 'दोज महारानी' का नाम दिया जाता है। कथा के अंत में भी इसी स्त्री शक्ति की अपेक्षा की जाती है कि वह ठीक उसी प्रकार सबका कल्याण करे, जिस प्रकार सात बहनों के भाई की रक्षा करने में बड़ी बहन को सहायता देने का कल्याणकारी कार्य

किया—'पनमेसरी दोज महारानी जैसी इनकी राखी, सो सबकी राखियो'। यही कथा दीपावली के बाद मनाएं जाने वाले भैया दूज में भी कही-सुनी जाती है।

भैया दूज की इस कथा में स्त्री का एक रूप बहन का है, जो अपने भाई के लिए सर्वस्व लुटाने को तत्पर दिखाई पड़ती है। यह स्त्री का वह रूप है, जो पारिवारिक संबंधों की महत्ता को सर्वोपरि मानती है और हर संभव प्रयास से इन्हें बनाए रखना चाहती है। यह भारतीय स्त्री का परिवार के प्रति, अपनों के प्रति पूर्ण समर्पण का भाव है। इस कथा में स्त्री का दूसरा रूप दोज महारानी का है, जो दूसरों की भावनाओं तथा पारिवारिक मूल्यों के प्रति अति संवेदनशील हैं और उस स्त्री के प्रति उदारमना हैं, जो अपने पारिवारिक संबंधों की रक्षा करने के लिए तत्पर है। दोज महारानी और बड़ी बहन के परस्पर पूरक अथवा सहायक स्वरूप से वह धारणा मिथ्या दिखाई पड़ती है, जिसमें स्त्री को स्त्री का प्रतिद्वंद्वी माना जाता है। इसमें एक स्त्री दूसरी स्त्री की सहायता करती है। यह स्त्री का वास्तविक एवं लोक हितकारी रूप है।

दसामाता की व्रत कथा

चैत्रमास के कृष्ण पक्ष की दसवीं तिथि को दसमाता का व्रत रखा जाता है। इसे 'पिपरदसा व्रत' भी कहते हैं, क्योंकि इस अवसर पर पीपल के वृक्ष की पूजा की जाती है और उसी समय व्रत कथा बांची जाती है। दसामाता की व्रत कथा इस प्रकार है—एक सेठ और सेठानी थे, जिनकी कोई संतान नहीं थी। सेठानी लोकाचार के वशीभूत एक बहू लाना चाहती थी। पुत्र के अभाव में यह संभव नहीं था। अतः उसने वधू पक्ष से छल करते हुए यह कह दिया कि पुत्र व्यापार के सिलसिले में परदेस गया है। शुभ मुहूर्त को ध्यान में रखते हुए विवाह को टाला नहीं जा सकता है। इस पर एक कटार के साथ वधू का विवाह करा दिया गया। ससुराल आने पर सेठानी की बहू को सच्चाई का पता चला। बहू ने सास की अनुमति से एक कमरे में पीपल की पूजा शुरू कर दी। प्रतिदिन उस बंद कमरे में पूजा के बाद एक सुंदर पुरुष पीपल से निकलता और चौपड़ खेलकर पीपल में समा जाता। चौपड़ खेलने के दौरान उस पुरुष के संसर्ग से बहू गर्भवती हो गई। इससे सेठ-सेठानी घबरा गए, किंतु बहू ने उन्हें ढांढ़स बंधाते हुए सभी परिचितों को निमंत्रित करने के लिए कहा। सेठ-सेठानी ने ऐसा ही किया। सभी परिचितों के आ जाने पर बहू ने पीपल की पूजा प्रारंभ की। पूजा समाप्त होते

ही दसामाता एवं पीपरदेव की कृपा से पीपल से वह पुरुष प्रकट हो गया, जो प्रतिदिन पूजा के उपरांत सामने आया करता था। सबके सामने प्रकट होने से वह पुरुष शापमुक्त होकर सदा के लिए सेठ-सेठानी के घर पर रह गया तथा बहू ने अपना पति एवं अपने होने वाले बच्चे का पिता पा लिया।

यह कथा सामाजिक संरचना एवं स्त्री के लिए निर्धारित कठोर बंधनों से मुक्ति का एक रास्ता दिखाती है। इस कथा में बहू के रूप में छल द्वारा छद्म विवाह के बंधन में बांध दी गई स्त्री का बंधन को तोड़कर अपने अस्तित्व को स्थापित करने का सफल प्रयास है। इस कथा की नायिका राजपूतकाल में कटार से विवाह करा दिए जाने पर कटार के साथ जीवन बिताने तथा कटार के साथ सती हो जाने वाली तथाकथित 'वीरांगना स्त्री' नहीं है वरन् विवाहेतर पुरुष से संतान उत्पन्न करके उसे पति के रूप में तथा संतान को वैध संतान के रूप में समाज में स्थान दिलाने वाली दृढ़ स्त्री है। वह जानती है कि इस असंभव कार्य को किस प्रकार संभव किया जा सकता है। यूं भी 'नियोग' द्वारा संतान उत्पन्न करना प्राचीन भारतीय समाज में स्वीकार्य था। विशेष रूप से उच्च वर्ग में, किंतु इस कथा में 'नियोग' के बदले पीपरदेव एवं दसामाता के चमत्कारी सहयोग को माध्यम बनाया गया है। इस कथा में ध्यान देने योग्य तथ्य यह भी है कि यह स्त्री के प्रति बुंदेली समाज के उदार एवं लचीले आचरण की ओर भी संकेत करता है, अन्यथा समाज का कट्टरपंथी कठोर आचरण किसी स्त्री को इस प्रकार पति पाने और उससे उत्पन्न संतान को वैधानिक दर्जा पाने की छूट नहीं देता है, यद्यपि ऐसे उदाहरण समाज में मुक्त रूप से नहीं मिलते हैं, क्योंकि कथा का वाचन और श्रवण भले ही बहुलता से किया जाता हो, किंतु कथा के मर्म को स्वीकार करने का साहस समाज कहीं खो चुका है। फिर भी यह कथा इस बात का स्पष्ट संकेत देती है कि बुंदेली स्त्री विषम परिस्थितियों को भी अनुकूल बनाने एवं समाज में परिवर्तन लाने का माद्दा रखती है, बशर्ते परिवार तथा जिस पर वह विश्वास करती हो, उसकी ओर से सहायता मिले, चाहे उसका रूप 'दसामाता', 'पीपरदेव' अथवा 'सास-ससुर' का हो।

गनगौर की व्रत कथा

चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की तृतीया को गनगौर व्रत रखा जाता है। यह मुख्य रूप से विवाहिताओं का व्रत-त्योहार है। इस व्रत में शिव-पार्वती की पूजा की जाती है तथा गनगौर की व्रत कथा का वाचन किया जाता है। इस कथा में

पार्वती द्वारा स्त्रियों को अखंड सौभाग्यवती बनाने का वर्णन है। कथा के अनुसार चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की तृतीया को शिव और पार्वती भ्रमण के लिए निकले। पृथ्वी पर निवास करने वाली स्त्रियों को जैसे ही इस बात की सूचना मिली, वे पार्वती की पूजा के लिए तैयार होने लगीं। निर्धन स्त्रियां भी पूजा की सामग्री कम होने के कारण जल्दी से तैयार होकर पूजा में सम्मिलित हुईं। पार्वती ने उनकी पूजा से प्रसन्न होकर उन्हें अखंड सौभाग्यवती होने का वरदान दे डाला। तब तक धनी वर्ग की स्त्रियों ने सोने-चांदी के थाल में बहुमूल्य सामग्री सजाकर पूजा प्रारंभ कर दी। पार्वती उनकी पूजा से भी प्रसन्न हो गईं और उन्हें अपनी उंगली में चीरा लगाकर रक्त के छींटों के द्वारा अखंड सौभाग्यवती होने का वरदान दिया।

यह कथा समाज के सभी वर्गों की स्त्रियों के सुख की कामना करने का आदर्श सामने रखती है। इसमें उस स्त्री का समर्पित, उदारमना रूप वर्णित है, जो सदा पुरुष के प्रति सहयोग भाव रखती है तथा पति के रूप में सहगामी पुरुष की सभी संकटों से (मृत्यु से भी) रक्षा की कामना करती है। भले ही पुरुष (पति) का व्यवहार उसके प्रति अमानवीय अथवा असंतुलित ही क्यों न हो।

आसमाई की व्रत कथा

आषाढ़ माह के तीसरे रविवार को आसमाई का व्रत रखा जाता है। इस व्रत में लकड़ी के पट्टे पर चंदन से भूखमाई, प्यासमाई, नींदमाई और आसमाई की आकृतियां बनाई जाती हैं। इस अवसर पर जो व्रत कथा कही जाती है, उसमें एक ऐसे जुआरी राजा का उल्लेख है, जो आसमाई के सहारे अपने जीवन की दिशा बदलता है। राजा को जुए में अपना राज-पाट खोना पड़ा और वह देश छोड़कर जाने को विवश हुआ। जब वह वन मार्ग से जा रहा था तो उसे रास्ते में चार स्त्रियां दिखाई दीं। उसी समय राजा के पांव में कांटा चुभ गया, जिसे निकालने के लिए वह झुका। चारों स्त्रियों ने समझा कि वह उन चारों में से किसी को प्रणाम कर रहा है। उन्होंने राजा से पूछा कि वह किसे प्रणाम कर रहा है। निराशा के सागर में गोते लगाकर राजा बोल उठा कि वह आसमाई (आशा) के सहारे जी रहा है और आसमाई को ही प्रणाम कर रहा है। वे चारों औरतें वस्तुतः भूखमाई, प्यासमाई, नींदमाई और आसमाई थीं। आसमाई राजा की बात सुनकर प्रसन्न हो गई और उसने विजय दिलाने वाली कौड़ियां राजा को दीं। उन कौड़ियों की सहायता से राजा ने एक बार फिर जुआ खेला और अपना राजपाट वापस प्राप्त कर लिया।

इस कथा में स्त्री के दैवीय रूपों को सामने रखा गया है। यदि इन्हीं रूपों को लौकिक दृष्टि से देखा जाए तो यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि आशावादी स्त्री पुरुष के जीवन को सही दिशा दे सकती है। वह पुरुष के अवगुणों को गुणों में परिवर्तित कर सकती है। यही आसमाई का मूल चरित्र है।

ग्वालिन (हरछठ) की व्रत कथा

भाद्रपद (भादो) माह के कृष्ण पक्ष की छठीं तिथि को हरछठ का व्रत रखा जाता है। यह व्रत पुत्र की मंगल कामना के लिए रखा जाता है। इस अवसर पर छह कथाएं कही जाती हैं, जिनमें मालन की व्रत कथा प्रमुख है। कथा के अनुसार एक ग्वालिन अपने नवजात पुत्र को पलाश की छाया में लिटाकर दूध-दही बेचने चली जाया करती थी। एक दिन जब वह पुत्र को छोड़कर गई, उसी समय एक किसान अपने हल-बैल साहित उधर से निकला। बैलों के विचलित हो जाने से हल की नोक पुत्र के पेट में घुस गई। किसान ने उसके पेट को कांस (एक प्रकार की लंबी घास) से सिल दिया। जब ग्वालन लौटी तो वह अपने पुत्र की दशा देखकर रोने लगी। उसे लगा कि यह उसके द्वारा दूध में मिलावट करने का कुपरिणाम है। वह रोती हुई गांव की स्त्रियों के पास गई और उन्हें सच्चाई बताकर उनसे अपनी करनी की क्षमा मांगी। गांव की स्त्रियों ने उसे क्षमा करते हुए उसके पुत्र को आशीष दिया, जिससे उसका पुत्र स्वस्थ हो गया।

इस कथा में मातृत्व के दो रूपों को उनकी अच्छाइयां और बुराइयों के साथ प्रस्तुत किया गया है। यदि स्त्री नवजात शिशु के प्रति लापरवाही बरते तो वह अपने शिशु की जीवन रक्षा के लिए किसी भी सीमा तक जा सकती है। इस कथा में एक अखरने वाला तथ्य यह भी है कि शिशु के लालन-पालन एवं जीवन रक्षा का संपूर्ण दायित्व तो स्त्री का माना गया है, किंतु पिता रूपी पुरुष का दायित्व निभाने वाले के रूप में उल्लेख नहीं है।

गाजबीज की व्रत कथा

भाद्रपद (भादो) माह के शुक्ल पक्ष की तीसरी तिथि को गाजबीज का व्रत रखा जाता है, जिसमें गाजबीज की व्रत कथा कही जाती है। इस कथा के अनुसार एक राजा था, जो शिकार खेलने जाने वाला था। उसने अपनी रानी से कहा कि रास्ते के लिए रोटियां सेंक कर रख दो। रानी आलसी स्वभाव की थी। उसने स्वयं

रोटियां बनाने के बदले दासी को रोटियां बनाने का आदेश दिया। दासी ने रोटियां बनाकर राजा को दे दीं। राजा शिकार खेलने निकल पड़ा। जंगल पहुंचने पर घनघोर वर्षा होने लगी। राजा को सिर ढंकने के लिए वही पोटली हाथ लगी, जिसमें रोटियां बंधी थीं। अचानक राजा के ऊपर गाज गिरी, किंतु सिर पर रखी रोटियों के कारण वह बच गया। वापस महल आने पर राजा ने रानी से पूछा कि तुम्हारी बनाई रोटियों में तुम्हारा कौन-सा पुण्य था, जिसने गाज गिरने पर मेरी जान बचाई। रानी उत्तर न दे सकी, क्योंकि रोटियां तो दासी ने बनाई थीं। इस पर राजा ने वही प्रश्न दासी से किया। दासी ने राजा से कहा कि मुझे अपने पुण्य के बारे में तो नहीं पता, किंतु मुझे जो एक किलो चना अन्न के रूप में दिया जाता है, उससे अपने लिए रोटियां बनाती हूं। उन रोटियों में से एक रोटी या तो कन्या को या गाय को देती हूं।

दासी की बात सुनकर राजा समझ गया कि अपने सीमित साधन के बावजूद दासी कन्या और पशुओं के प्रति दयाभाव रखती है। यही उसका पुण्य है, जिसने उसके हाथों बनाई हुई रोटियों के माध्यम से राजा के प्राणों की रक्षा की। राजा दासी पर प्रसन्न हुआ और उसे अपनी रानी बना लिया तथा रानी को दासी बना दिया।

भारतीय समाज के वर्तमान परिवेश में कन्या भ्रूण की हत्या किए जाने के परिणामस्वरूप स्त्रियों और पुरुषों के अनुपात में चिंताजनक असंतुलन आता जा रहा है। ऐसी स्थिति में गाजबीज की यह व्रत कथा स्त्री के उस स्वरूप को स्थापित करने में सक्षम है, जो अपनी दृढ़ता के द्वारा कन्या भ्रूण की रक्षा कर सकती है। यदि वह दृढ़ हो जाए तो परिवार, समाज में स्त्री को जन्म लेने दिया जाएगा, बोझ नहीं समझा जाएगा तथा स्त्री-पुरुष का आनुपातिक संतुलन बना रहेगा। यह कथा स्त्री से उसकी दृढ़ता का आग्रह करती है, साथ ही दृढ़ न रहने अथवा किसी को अनदेखा करने पर होने वाली हानि की ओर भी संकेत करती है।

करवाचौथ की व्रत कथा

कार्तिक माह के कृष्ण पक्ष की चतुर्थी को करवा चौथ का व्रत रखा जाता है। यह व्रत विवाहिताओं के लिए निर्धारित है। इस अवसर पर करवा चौथ की व्रत कथा बांची जाती है। एक साहूकार के सात बेटे और एक बेटी थी। बेटी विवाहिता थी और उन दिनों अपने मायके में थी। करवा चौथ के दिन अपने पति

की दीर्घायु के लिए उसने व्रत रखा। भाइयों से अपनी बहन का इस प्रकार भूखे रहना देखा नहीं गया और उन्होंने अपनी बहन को नकली चंद्रमा दिखाकर व्रत समाप्त करा दिया। बहन ने अभी भोजन प्रारंभ ही किया था कि तीसरे कौर में ही ससुराल में उसके पति के बहुत बीमार होने का संदेश आ गया। बेटी उसी क्षण ससुराल के लिए निकल पड़ी। ससुराल पहुंचकर उसने साल भर पति की सेवा की और अगली करवा चौथ पर चौथमाता से पिछला व्रत खंडित होने की क्षमा मांगी एवं निर्जला व्रत रखा। इस पर प्रसन्न होकर चौथ माता ने उसके पति को पूर्ण स्वस्थ कर दिया।

करवा चौथ का व्रत बुंदेलखंड सहित लगभग देश की सभी हिन्दू विवाहिताओं द्वारा रखा जाता है। यह कथा अपने पति के लिए स्त्री के त्याग-बलिदान का विचित्र आदर्श रखती है। क्या पत्नी के भूखे-प्यासे रहने से पति स्वस्थ व दीर्घायु हो सकता है? यह कथा विवाहिता के मन में यह अंधविश्वासपूर्ण भय उत्पन्न करती है कि करवाचौथ का व्रत न रखने अथवा अज्ञानवश व्रत के खंडित होने से पति के प्राण खतरे में पड़ सकते हैं। अतः मूल रूप से यह व्रत कथा स्त्री को अंधविश्वास और आत्मपीड़न की बेड़ियों में जकड़ने को प्रेरित करती है। यदि इस कथा में पति के अहित का भय न दिखाया गया होता तो यह कथा आस्था तथा समर्पण तक सीमित रहती और तब स्त्री के संवेदनशील स्वभाव के निकट रहती।

वटसावित्री की व्रत कथा

वटसावित्री का व्रत जेठ मास की अमावस्या को रखा जाता है। इस अवसर पर बांची जानेवाली कथा बहुप्रचलित सावित्री-सत्यवान की कथा है। इस कथा में सावित्री के पति सत्यवान की मृत्यु हो जाती है, तब सावित्री अपने पति की आत्मा के साथ-साथ यमदूत के पीछे चलती हुई यमराज के पास जा पहुंचती है। वह यमराज से अपने पति को पुनर्जीवित करने की विनती करती है, किंतु यमराज ऐसा करने में असमर्थता व्यक्त करते हैं। इस पर सावित्री उनसे सौ संतानों को जन्म देने का वर मांगती है। यमराज उसे वर दे देते हैं। तब सावित्री उनसे कहती है कि जब तक आप मेरे पति सत्यवान को पुनर्जीवित नहीं करेंगे, तब तक आपका वरदान फलीभूत नहीं हो सकेगा, क्योंकि मैं किसी अन्य पुरुष का वरण नहीं करूंगी। अतः यमराज को विवश होकर सत्यवान को

जीवनदान देना पड़ता है। इस प्रकार सावित्री यमराज के घर से भी अपने मृत पति को जीवित करा लाती है।

इस कथा को पति के प्रति पत्नी के समर्पण के रूप में लिया जाता है, किंतु इसका दूसरा पक्ष भी है। वह है स्त्री की दृढ़ इच्छाशक्ति। स्त्री जब कोई काम करने की ठान लेती है तो वह उसे पूरा करके ही रहती है, भले ही उसे किसी भी सीमा तक जोखिम उठाना पड़े। सावित्री को इस बात का भय नहीं था कि पति के साथ रहने की जिद करने पर यमराज उसे भी मार सकते थे, अपितु उसके भीतर इस बात का विश्वास था कि वह सत्यवान को पुनर्जीवित करा कर रहेगी। यह प्रिय के प्रति प्रेम के साथ-साथ स्त्री की अदम्य इच्छाशक्ति और साहस की कथा है।

तुलसी नवमी की व्रत कथा

यह व्रत कार्तिक शुक्ल की नवमी तिथि को रखा जाता है। इस अवसर पर जो कथा बांची जाती है, वह इस प्रकार है कि एक निःसंतान बुढ़िया प्रतिदिन तुलसी के पौधे की पूजा-अर्चना किया करती थी। एक दिन पूजा के दौरान उसके अंगूठे में एक फफोला हो गया। वह फफोला नौ माह तक रहा। ठीक नौ माह बाद उस फफोले से एक मेढक ने जन्म लिया। वह अपने पुत्र के रूप में उस मेढ़क का लालन-पालन करने लगी। कुछ समय बाद उस राज्य की राजकुमारी का स्वयंवर रचा गया। मेढक भी उस स्वयंवर में पहुंच गया। स्वयंवर प्रारंभ होने पर राजकुमारी ने वहां उपस्थित राजकुमारों को छोड़कर उस मेढक के गले में माला डाल दी। राजकुमारों में खलबली मच गई। उन्होंने राजा से कहा कि राजकुमारी घबराहट के कारण ऐसा कर बैठी होगी। अतः एक बार फिर राजकुमारी से माला डलवाई जाए। राजकुमारी को उन राजकुमारों में कोई भला नहीं लग रहा था। अतः उसने पुनः मेढक के गले में माला डाल दी। राजकुमारी का निर्णय सभी को स्वीकार करना पड़ा। राजकुमारी अपने मेढक पति के साथ बुढ़िया के घर आ गई। राजकुमारी को बहू के रूप में पाकर बुढ़िया बहुत प्रसन्न हुई, किंतु उसे इस बात का दुःख भी था कि उसका पुत्र मेढक है, मनुष्य नहीं। राजकुमारी ने बुढ़िया को ढांढ़स बंधाया और मेढक के साथ रहने लगी। राजकुमारी ने पाया कि वह मेढक रात्रि को मेढक का खोल उतारकर सुंदर युवक में बदल जाता है और सुबह होते ही पुनः मेढक बन जाता है। एक रात राजकुमारी ने अवसर पाकर मेढक की खाल जला दी। अब युवक सदा के लिए मनुष्य के रूप में ही रह गया। बुढ़िया को

जब इस बात का पता चला तो वह भी युवक को अपने पुत्र के रूप में पाकर अत्यंत प्रसन्न हुई। राजा को पता चला तो वह भी खुश हो गया और उसने अपने दामाद को अपना राज-पाट सौंप दिया।

यह कथा स्त्री की आस्था, ममत्व और अधिकार की कथा है। स्त्री जिसके प्रति आस्था रखती है, उससे कोई शिकायत नहीं करती है। बुढ़िया को तुलसी के प्रति आस्था थी तो उसने पुत्र के रूप में मेढक मिलने पर भी तुलसी से शिकायत नहीं की। स्त्री ममत्व की पर्याय इसीलिए मानी गई है कि भले ही उसकी संतान बदसूरत, दुर्गुणों से युक्त हो, फिर भी उसे अत्यंत प्रिय होती है। जैसा कि कहावत भी है कि पुत्र कुपुत्र हो सकता है, किंतु माता कभी कुमाता नहीं होती है। बुढ़िया इसी सघन मातृत्व का उदाहरण है। स्त्री के अधिकार एवं उसकी स्वतंत्रता राजकुमारी द्वारा मेढक को पति के रूप में चुने जाने से स्पष्ट है। वह सामाजिक स्वरूप कितना उत्कृष्ट है, जिसमें स्त्री को अपने जीवन साथी चुनने की पूर्ण स्वतंत्रता हो। यदि कोई अपनी इच्छा से अपना जीवन साथी चुनती है तो वह उन लोगों की दृष्टि में भले ही अनुपयुक्त हो, किंतु उस स्त्री के लिए सर्वोपयुक्त सिद्ध होता है तथा आगे चलकर समाज भी इसे मानने को विवश होता है। इस प्रकार यह कथा स्त्री-स्वातंत्र्य का सुंदर उदाहरण सामने रखती है।

मूल्यांकन

भारतीय समाज में स्त्री का स्थान शेष दुनिया की भांति दोयम दर्जे का तो है ही, किंतु पारिवारिक संबंधों के आधार पर वह तृतीय और चतुर्थ स्थान पर भी कहीं नहीं दिखाई देती है। अधिकांश धार्मिक एवं सामाजिक मान्यताएं और परंपराएं स्त्रियों के कारण जीवित हैं। स्त्री अपने पति की लंबी आयु के लिए 'करवा चौथ' का व्रत रखती है और पुत्र के लिए 'छठ' की श्रमसाध्य पूजा करती है। स्त्री अपने दायित्व का पालन करती हुई परिवार के सभी सदस्यों को भोजन कर लेने के बाद भोजन करती है, जिसमें कई बार उसे आधापेट भोजन करके रह जाना पड़ता है, यदि घर में अनाज के दो दाने हैं तो वे घर के पुरुष के हिस्से में जाते हैं, स्त्री के नहीं।

उपर्युक्त बुंदेली व्रत कथाओं में स्त्री की सहज प्रकृति को वर्णित किया गया है।। इन कथाओं में चित्रित स्त्रियों के गुण ही नहीं, अवगुण भी हैं। पुरुष समाज में स्त्री से उसके उन गुणों की अपेक्षा की जाती है, जिसमें वह पुरुष के प्रति

समर्पित, पुरुष पर निर्भर रहे, जबकि उदाहरण के लिए चुनी गई इन नौ व्रत कथाओं में स्त्री का पुरुष के प्रति प्रेम, समर्पण तथा निष्ठा तो है, किंतु साथ ही यह स्त्री इच्छित पति चुन सकती है। इन कथाओं की स्त्री एक पूर्ण मनुष्य की भांति पूर्ण स्त्री है। मात्र करवाचौथ की व्रत कथा एक ऐसी व्रत कथा है, जिसमें स्त्री का वह दलित रूप वर्णित किया गया है, जो अपने पति रूपी पुरुष के लिए आत्मपीड़न का रास्ता चुनने का आदर्श प्रस्तुत करती है। प्रेम और सहजीवी होने के नाते पति की सेवा का आदर्श ग्राह्य हो सकता है, किंतु भूखे-प्यासे रहने वाला व्रत भाइयों के बहन के प्रति प्रेम के कारण टूट जाने से पति को हानि पहुंचाने वाला तर्क मानसिक दबाव बनाने वाली एवं पाखंडयुक्त कथा है। आश्चर्य तो तब होता है, जब इस प्रकार की कथा को पढ़ी-लिखी स्त्रियां भी भावविभोर होकर सुनती हैं तथा अपने स्वास्थ्य की अवहेलना करके भूखी-प्यासी रहकर करवाचौथ का व्रत करती हैं, महज यह जताने के लिए कि वे अपने पति की दीर्घायु की कामना कर रही हैं। जो स्त्रियां इस व्रत को नहीं करती हैं, क्या वे अपने पति की दीर्घायु की कामना नहीं करती हैं?

मैत्रेयी पुष्पा की यह बात समीचीन लगती है कि 'देश जब आजाद हुआ तो वह पूरी तरह आजाद नहीं था, क्योंकि उससे स्त्रियों की स्थिति में कोई सुधार नहीं हुआ। हालांकि स्वतंत्रता आंदोलनों के दौरान पर्दा प्रथा, सती प्रथा जैसी मुहिमें भी चलीं, लेकिन जिस तरह के नतीजे आने चाहिए थे, वे नहीं आए। इसका नतीजा तो हम अब तक जारी पर्दा प्रथा, दहेज प्रथा और इक्का-दुक्का सती हत्या के रूप में देख ही रहे हैं। इन संदर्भों में देखा जाए तो स्त्रियों को कई स्तरों पर आजाद होने की जरूरत है।' (चर्चा हमारा, पृ. 75)

बुंदेली लोक व्रत कथाओं में स्त्री के अधिकारिणी एवं दलित दोनों रूपों का मिलना भारत के सामाजिक विकास में स्त्री की भूमिका के सतत क्षरण का परिणाम कहा जा सकता है। इसे परखने के लिए निम्नांकित बिंदुओं का अवलोकन किया जाना चाहिए–

* महाभारतकाल में अविवाहित मातृत्व को उचित नहीं समझा जाता था। इस काल में नियोग की प्रथा प्रचलित थी। महाभारत में नियोग द्वारा संतान प्राप्त करने के अनेक प्रसंग हैं।
* वैदिक ग्रंथों से ज्ञात होता है कि वैदिक काल में स्त्रियों को समाज और परिवार में उचित सम्मान दिया जाता था। उनके विचारों को सुना जाता

था। सामाजिक तथा धार्मिक उत्सवों में वे अपने पति के साथ सम्मिलित होती थीं। विदुषी स्त्रियां पुरुषों के साथ शास्त्रार्थ करती थीं तथा उन्हें समाज में श्रेष्ठ समझा जाता था। वे अविवाहित भी रहती थीं, अध्यापन कार्य करने को स्वतंत्र थीं।

* संयुक्त निकाय के अनुसार—'अवगुण भरे पुत्र की अपेक्षा गुणवती पुत्री अधिक श्रेष्ठ है।'
* किसी भी सभ्य समाज अथवा संस्कृति की अवस्था का सही आकलन उस समाज में स्त्रियों की स्थिति से ज्ञात किया जा सकता है, विशेष रूप से पुरुष सत्तात्मक समाज में स्त्रियों की स्थिति सदैव एक-सी नहीं रही। वैदिक युग में स्त्रियों को उच्च शिक्षा पाने का अधिकार था, वे याज्ञिक अनुष्ठानों में पुरुषों की भांति सम्मिलित होती थीं, किंतु स्मृति काल में स्त्रियों की स्थिति वैदिक युग की भांति नहीं थी। पुत्री तथा पत्नी के रूप में स्त्री समाज का अभिन्न भाग रही, लेकिन विधवा स्त्री के प्रति समाज का दृष्टिकोण कालानुसार परिवर्तित होता गया।
* वैदिक युग में स्त्रियों को धार्मिक अनुष्ठानों में सम्मिलित होने का अधिकार था। ऋग्वेद में देवताओं से जो प्रार्थना की गई है, वह पति-पत्नी दोनों की ओर से है। पति की अनुपस्थिति में पत्नी अकेली धार्मिक कृत्य करती थी। ऋग्वेद के अनुसार पत्नी को यज्ञ करने और अग्नि में आहुतियां देने का अधिकार था। पति-पत्नी दोनों गार्हपत्य अग्नि की रखवाली करते थे। अथर्ववेद से ज्ञात होता है कि कन्याओं का उपनयन संस्कार होता था। वे वैदिक ग्रंथों का पठन-पाठन कर सकती थीं।
* ब्राह्मण ग्रंथों के काल में स्त्रियों के धार्मिक अधिकारों में अंतर आ गया। इस काल में धार्मिक क्रियाओं में जटिलता आ गई थी। अतः धार्मिक क्रियाओं पर पुरुषों का वर्चस्व बढ़ गया। फिर भी कोई भी धार्मिक कार्य पत्नी के बिना पति नहीं कर सकता था। पत्नी की उपस्थिति आवश्यक समझी जाती थी। धीरे-धीरे पत्नियों के स्थान पर पुरोहितों के द्वारा धार्मिक कार्य किए जाने लगे। पत्नी का कुछ धार्मिक कृत्यों में सम्मिलित होना अनिवार्य नहीं समझा जाने लगा। फिर भी कुछ यज्ञ ऐसे थे, जो पत्नी की उपस्थिति के बिना नहीं कराए जा सकते थे। जैसे—अश्वमेध, वाजपेय तथा राजसूय यज्ञों में पत्नी का सम्मिलित होना

अनिवार्य था। शतपथ ब्राह्मण से यह स्पष्ट है कि स्त्रियों को वैदिक ग्रंथ पढ़ने और यज्ञ करने का अधिकार था। यज्ञ करने के पूर्व उनका उपनयन संस्कार किया जाता था। तैत्तरीय ब्राह्मण में भी एक धार्मिक क्रिया का उल्लेख है, जिसको करने के बाद स्त्री वैदिक ग्रंथों का पाठ और यज्ञ कर सकती थी।

* सूत्रकाल में भी स्त्रियों को धार्मिक कृत्य करने के अधिकार थे। पत्नी को अकेले ही सीता यज्ञ, रुद्र बलि और रुद्रयाग करने का अधिकार था। यह प्रथा सातवाहन तक प्रचलित रही। सातकर्णी प्रथम की पत्नी नागनिका ने अनेक वैदिक यज्ञ किए थे। स्त्रियों को वैदिक मंत्रों का प्रयोग करने का अधिकार नहीं रहा। सूत्रकाल में स्त्रियों का उपनयन संस्कार बंद हो गया था। उन्हें प्रातःकालीन तथा संध्याकालीन आहुतियां देने और संध्या करने का अधिकार था। रामायण में सीता के संध्या करने का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। याज्ञवल्क्य के अनुसार स्त्रियों का उपनयन संस्कार नहीं होना चाहिए। धार्मिक कार्य करने की दृष्टि से स्त्रियों के अधिकारों में तेजी से कमी आ गई।
* गुप्तकाल में स्त्रियों को धार्मिक क्रियाएं करने के अवसर एक बार फिर मिल गए, किंतु इन कार्यों का स्वरूप पहले से भिन्न था। स्त्रियों के लिए उपवास, व्रत, दान, पूजा, तीर्थयात्रा आदि का विधान किया गया। इनमें वैदिक मंत्रों के उच्चारण की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। उपवास, व्रत पूजा आदि में ऐसी कथाओं का समावेश किया गया, जो मात्र स्त्रियों को पति एवं परिवार की सेवा की शिक्षा देती थीं। इन कथाओं का लोक व्रत कथाओं के रूप में वाचिक उपयोग होता रहा, जो वर्तमान में वाचिक एवं मुद्रित रूप में प्रचलित है। बुंदेलखंड में पढ़ी-सुनी जाने वाली लोक व्रत कथाओं का भी यही स्वरूप है।
* एक भी व्रत कथा ऐसी नहीं मिलती है, जिसमें पति द्वारा पत्नी की जीवन रक्षा अथवा सुरक्षा के लिए 'करवा चौथ', 'वट सावित्री' जैसा व्रत रखने का उल्लेख हो। पत्नी की रक्षा-सुरक्षा का दायित्व पति की लौकिक शक्ति पर निर्भर रहा है।

वस्तुतः इन व्रत कथाओं में से उन तथ्यों को चुन लिया जाता है, जो समाज की बहुप्रचलित धारणाओं के अनुरूप हैं और उन तथ्यों को अनदेखा कर दिया

जाता है, जिनमें स्त्री अपने अधिकारों से युक्त आत्मनिर्भर मनुष्य के रूप में है। अतः दोषी ये कथाएं नहीं, न ही ये पुरातनपंथी हैं, यदि कहीं गड़बड़ है तो वह सामाजिक सोच में है। इसीलिए उस कथा का अनुकरण तो किया जाता है, जिसमें चांद को चलनी से देखकर ही अन्न-जल ग्रहण करते हैं। (उसी चांद को देखकर जिस पर मनुष्य बस्तियां बसाने की तैयारी कर रहा है और प्लाटिंग कर चुका है।) वस्तुतः कथा का अनुसरण नहीं किया जाता है, सिर्फ बांचा जाता है, जिनमें स्त्री को पति के रूप में मेढक को चुनने व अपनाने का अधिकार है। आमतौर पर यह अधिकार सचमुच दिया नहीं जाता है।

संदर्भ

- सं. श्रीराम शर्मा आचार्य : ऋग्वेद, गायत्री तपोभूमि मथुरा, 1960
- अथर्ववेद, सं. श्रीराम शर्मा आचार्य, गायत्री तपोभूमि मथुरा, 1960
- जिनसेन आदि पुराण, सं. पन्नालाल, ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी ग्रंथमाला, संस्कृत ग्रंथ संख्या-8, वाराणसी-1900
- ऐतरेय ब्राह्मण, आनंद आश्रम, संस्कृत सीरीज, पूना, 1956
- वाल्मीकि : रामायण, गीताप्रेस, गोरखपुर, संवत् 201
- भंडारकर : महाभारत, आरियेन्टल रिसर्च इंस्टीट्यूट पूना, 1927-66
- दसामाता व्रर्त कथा, लक्ष्मी प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण–2001
- चतुर्मास व्रत कथा, धार्मिक पुस्तक भंडार महल, झांसी
- नगरीय एवं ग्रामीण अंचलों के वाचिक स्रोत

कहावतों में स्त्री

◆ *राजेन्द्र चंद्रकांत राय*

कहावतें अपने समकालीन समाज का समाजशास्त्रीय अध्ययन बनकर हमारे सम्मुख उपस्थित हैं। स्त्रियों की सामाजिक स्थिति भिन्न-भिन्न स्थानों और कालों में बदलती रही है। समाज ने स्त्रियों के प्रति क्या दृष्टिकोण बनाया और उस दृष्टिकोण से युक्त समाज की अवधारणाएं एक प्रगतिशील सभ्यता में अध्येताओं के लिए कितनी आकर्षक हैं, यहां प्रस्तुत कहावतों के बहाने इसे देखा जा सकता है।

स्त्री सबसे पहले एक बेटी के रूप में ही हमारे जीवन में पदार्पण करती है। बेटी के प्रति हमारा आदि लोक कितना निर्मम रहा है, इसे घाघ की इस कहावत में देखा जा सकता है–

नसकट पनहीं, बतकट जोय, जो पहलौंठी बिटिया होय।
पातर कृषि, बौरहा भाय, घाघ कहें दुख कहां समाय।।

यदि जूती ऐसी हो, जो पैर की नस काटने वाली हो, पुरुष की बात काटने वाली पत्नी हो और किसी के घर में पहली संतान के रूप में बेटी का जन्म हो,

खेती कमजोर हो, भाई बावला हो तो ऐसे व्यक्ति का दुख अपार होता है और कहीं समाता नहीं है। पत्नी को पति का अनुयायी बनकर ही रहना चाहिए, तभी पुरुषप्रधान समाज उसे सह सकता है। यदि पत्नी बुद्धिमान है और पति के विचार के आगे एक वैकल्पिक विचार रखती है तो वह दुःख का कारण बन जाती है। पुत्री के रूप में पहली संतान का आगमन ही दुःख का स्रोत है। अभी तो उसने बोलना, सोचना और विचार करना आरंभ ही नहीं किया, फिर भी पुरुष सत्ता उससे अप्रसन्न है। यह तो पहली संतान के आगमन की प्रतिक्रिया है, यदि वे अनेक हो जाएं तब–

चना की खेती, चिक्क धन, बिंटियन की बढ़वारि।
इतनेऊ पै धन ना घटै, तो करैं बड़े से रारि।।

बेटियां धन की बरबादी का कारण होती हैं, संभवतः यह दहेज प्रथा के प्रति लोक मानस का विद्रूप है, परंतु अचरज यह है कि चोट दहेज पर नहीं, बेटियों पर है और बेटियों के प्रति ऐसी वितृष्णा कि एक बेटी का जन्म तक स्वीकार नहीं लोक को–

चलना भला ना कोस का, बेटी भली न एक।
लेना भला ना बाप से, जो विधि राखें टेक।।

कोस भर चलना और पिता पर निर्भरता को जितना बुरा माना गया, उतना ही एकमात्र बेटी के जन्म को भी। जब बेटियों के प्रति लोक में इतना विरोध मौजूद है तो उसका भ्रूण हत्या तक पहुंच जाना कोई आश्चर्य नहीं माना जाना चाहिए। बेटी का जन्म अपने घर में हो ही जाए तो पिता की नींद दांव पर लग जाती है–

कै जागै जेके घर में सांप।
कै जागै बेटी को बाप।।

विषैले सांप के प्रति जितनी चिंता और भय हो सकता है, उतनी ही चिंता और भय बेटी के पिता को होता है। जहां बेटी का जीवन रात-रात भर सोने नहीं देता, वहीं कुमारी कन्या की मौत सुख का कारण हो जाती है–

बिन ब्याही कन्या मरै, ठाड़ी ऊख बिकाय।
बिन मारो बैरी मरै, सो सुख कहो नै जाय।।

दहेज धन के कारण अविवाहित बेटी की मृत्यु का सुख खेत में खड़े गन्ने के विक्रय और शत्रु की बिन मारे मृत्यु के बराबर माना गया है। प्रेमचंद की

कहानी 'पूस की रात' का निर्धन हल्कू भी नीलगायों द्वारा खेत उजाड़ दिए जाने के बाद दुखी हो जाने की बजाय प्रसन्न मुख से कहता है—'रात की ठंड में यहां सोना तो न पड़ेगा।' हल्कू की प्रसन्नता जहां आर्थिक विपन्नता में पड़े किसान के शोषण से उपजी करुणा का रूपांतर है, वहीं अविवाहित बेटी की मृत्यु पर सुख का अनुभव करना मनुष्यता के जड़ हो जाने और पितृत्व के घोर भौतिकवादी हो जाने का लक्षण प्रतीत होता है।

लोक को तो बेटी तभी याद आती है, जब बेटा दगा दे जाता है—'बेटा से बेटी भली, जो कुलवंती होय।' दूसरी ओर बेटी का कन्यादान किए बिना जीवन ही व्यर्थ वाली कहावत भी लोक के कोष में मौजूद है—

जो कन्यादान नै कियो।
तो जन्म अकारथ गियो।।

बेटी का विवाह करने में व्यर्थ की देर नहीं करनी चाहिए, यह सीख भी यहीं से मिलती है—

आतुर खेती, आतुर भोजन, आतुर करिये बेटी ब्याव।

खेती, भोजन और बेटी का विवाह कार्य संपन्न करने में देर करना उचित नहीं होता, क्योंकि विवाह योग्य आयु हो जाने पर भी विवाह न किया जाए तो संभावना यह भी बनी रहती है कि यौवन और देह की प्राकृतिक जरूरतों के कारण बेटी के पैर बहक जाएं, तब—

नकटी के ब्याव में सौ जोखम

परंतु स्त्री-पुरुष एक-दूसरे को सच्चे हृदय से चाहते हों और विवाह करने के इच्छुक हों तो समाज इस संबंध में उदारता भी दिखाता है—

मियां बीबी राजी, तो क्या करेगा काजी

बुंदेली समाज बेटियों की सादगी और विनम्रता से भी प्रभावित है, वह गौ जैसे सरल और पूजने योग्य प्राणी के साथ उसकी तुलना करता है। इस तुलना में हार्दिक संवेदना भी है—

बेटी और गइया एकई आंय।
जहां बांध दो, उतई बंधी रहत।।

बेटियां सरल और भोली होती हैं। अपने सपनों और मनोकामनाओं को दबाए रखना उनका गुण है। पुरुषों के विचारों वाली दुनिया में वे गौण हैं। यह

अहसास भी लोक को है। इसलिए बेटी भले ही गाय जैसी रहे, उसे 'वर' परखकर ही ब्याहना उचित होता है, यह जागरूकता भी उसकी वाणी में है–

परहथ बनज, संदेसन खेती, बिन वर देखे ब्याहे बेटी।
द्वार पराये गाड़े थाती, ये चारों मिल पीटें छाती।।

अन्यथा बेटियों के भविष्य और सपने कैसे ध्वस्त होते हैं।

लोक का यह मशवरा भी है कि पत्नी की उम्र की तुलना में पति की उम्र कम न होनी चाहिए अन्यथा दांपत्य जीवन दुःख भरा होता है–

घर की खुनुसऔ जर की भूख, छोट दामाद वराहे ऊख।
पातर खेती, भकुआ भाय, घाघ कहें दुख कहां समाय।।

स्त्री से ही पुरुष का जीवन पूर्ण होता है। प्रकृति ने दोनों की रचना एक दूसरे के पूरक के रूप में की है। अतः स्त्री के बिना 'घर' की कल्पना ही झूठ का पुलिंदा होगी–

बिन बैलन खेती करै, बिन भैयन के रार।
बिन मेहरारू घर करै, चौदह लाख लवार।।

समाज में वर्गीय भिन्नता और आर्थिक विभेदों ने विवाह संस्कार के स्वरूप पर भी प्रभाव डाला है। धनिक वर्ग में वह दिखावे और मिथ्या शान के प्रदर्शन के कारण धीरे-धीरे आर्थिक बोझ बनता जा रहा है, जबकि निर्धन वर्ग और इतर जातियों में विवाह कर्म सामान्य जीवन में घटित होने वाले दैनिक कर्म जैसा ही सहज और सरल है–

गड़रिया समाज के विवाह पर बुंदेली कहावत बताती है कि वे पुरोहित की जरूरत भी महसूस नहीं करते–

आड़र दीनी, गाड़र दीनी और ढला भर ऊन।
बामन मार पटा तर दीनों, कहुरों पंचौ ह्वै गओ ब्याव।

(लोग चिल्लाकर कहते हैं) हो गओ-हो गओ।

भुमिया जाति के विवाह बिना दहेज के ही संपन्न हो जाते हैं–

अगोनी में मुरगा दीनो, पांव परवाई में बिल्ली।
बंद छौड़ी में कुत्ती दीनी, बई की लंबी पुच्छी।।

आदिवासियों में दहेज प्रथा नहीं है। अरण्य संस्कृति की परंपराओं वाले इस समाज में विवाह नितांत सादे तरीके से संपन्न होता है। हालांकि लोक इसकी सराहना करने की बजाय उपहासात्मक कटाक्ष ही करता है, जबकि उच्च

समाज दहेज प्रथा के कारण बिन ब्याही बेटी के मरने पर सुख का अनुभव करता है–

कुटकी की पेय बनी, महुआ का दोना।
गोंड़ गोंड़नी को ब्याव भओ, लेना न देना।।

बहू जब ससुराल आती है तो उसका स्वागत उसी आनंद के साथ किया जाता है, जो आनंद पुत्र के जन्म पर मनाया जाता है–

आऊती बहू, जनमतो पूत

बेटी के पराये घर जाने की अनिवार्यता पर लोक भावना इस तरह अभिव्यक्त हुई है–

आज इतै तो काल उतै, परों पराये देस।

ननद, भाभी बनकर आनेवाली स्त्री के प्रति एक स्वाभाविक ईर्ष्या रखती है, क्योंकि भाभी उसके घर में आते ही स्वामित्व प्राप्त कर लेती है, जबकि वह ननद को 'पराया धन' कहकर उसके स्वामित्वबोध को अनजाने में ही ठेस पहुंचाती रहती है। इसकी प्रतिक्रिया में ही ननद की वक्रोक्तियां चला करती हैं, परंतु एक दिन ऐसा भी आता है कि ननद भी भाभी बनकर ससुराल जाती है, जहां उसका सामना अपनी ननद से होता है। बुंदेली कहावत इस प्रसंग पर भी उपस्थित है–

नंद के सोई नंद भई

रंगभेद सामान्यतः अंग्रेजों के भारत आगमन के बाद का सामाजिक रोग माना जाता है। श्याम वर्ण के रंग के प्रति मनोवैज्ञानिक आकर्षण ने गोरी पत्नी की चाहना उत्पन्न की होगी–

धौले भले हैं कापड़े, धौले भले न वार।
आछी काली कामरी, काली भली न नार।।

दुश्चरित्रा स्त्री से बचने की सलाह बुंदेली कहावतों में मौजूद है–

ताक-भैंसा, गादर-बैल, नारी-कुलच्छिन, बालक छैल।
इनसे बाचें चातुर लोग, राज छांड़िकै साधैं जोग।।

इसी तरह किसी पति के द्वारा छोड़ दी गई स्त्री को ग्रहण करने की मुमानियत कहावतों में की गई है–

खेत नै जोते राड़ी,
नै भैंस बिसाहे पाड़ी,
नै मेहरि मर्द की छांड़ी।

स्त्री के मन में पति के मन भायी अन्य स्त्री के प्रति अत्यंत ईर्ष्या और ईर्ष्या से भी बढ़कर शत्रुता का भाव होता है। सौत तो वह आटे की भी स्वीकार करने को तैयार नहीं रहती–

कांटा बुरा करील का, और बदरी का घाम।
सौत बुरी है चून की, और साझे का काम।।

इधर वह सौत के रूप में अग्राह्य है तो इधर पति को भी दो पत्नियों वाले संसार से मुक्त रहने की ताकीद बुंदेली कहावतों में की गई है–

तीन बैल दो मेहरी।
काल बैठ न देहरी।।

स्त्रियां भी दूसरा पति करती हैं, परंतु इसके लिए बड़ा सम्यक विवेचन मिलता है–

फलाने की मताई ने मुंस करो, बुरओ करो।
कई छोड़ दओ, औरई बुरओ करो।।

बुंदेली लोक स्त्रियों में एक तरफ तो केवल तीन गुण ही देखता है, जबकि चार लाख अवगुण बताता है–

तिरिया में तो तीन गुन, औगुन हैं लखचार।
मंगल गावै, सत रचै, कोखन उपजे लाल।।

पुरुष प्रधान समाज में स्त्री की उपादेयता सिर्फ मंगल गीत गाने, पति मृत्यु पर सती होने और पुत्र उत्पन्न करने वाली मशीन के रूप में है तो उसके उलट स्त्री को पुरुष का नूर भी कहा गया है–

नारी नर को नूर है, नारी जग को मान।
नारी से नर ऊपजै, ध्रुव प्रहलाद समान।।

पुत्रविहीना स्त्री को लकड़ी का लट्ठा बताने वाली कहावत भी बुंदेली समाज में प्रचलित है–

अक्कल बिन पूत लठेंगर से,
लरिका बिन बऊ डेंगुर से।

इसी तरह पराए पुत्र से आशा करना व्यर्थ कहा गया है–

परये पूतन की आशा।

और पराये पुत्र से पुत्रवती बन पाना भी असंभव कहा गया है–

पराये पूतन सपूती होवो।

स्त्रियों के आपसी झगड़े में पुत्रहीना होने का ताना देकर मार्मिक चोट पहुंचाने की अदा पर भी लोक मुखर है–

नै रांड़ कहौ और नै निपूती सुनौ।

इस कहावत में कटाक्ष की आंतरिक चोट भी है, जो यह अहसास भी कराती है कि मैं पुरुषविहीन हूं तो क्या हुआ, तुम तो पुरुष के होते हुए भी पुत्रहीना हो। पति की नामर्दगी की ओर इशारा भी है।

पतिव्रता स्त्री के रूप में पत्नी को सुख स्रोत बताने वाली कहावत में कहा गया है–

पैलो सुक्ख निरोगी काया, दूजो सुक्ख होय घर माया।
तीजो सुक्ख पुत्र अधिकारी, चौथो सुक्ख पतिव्रता नारी।।

उधर दूसरी ओर यह चुनौती भी दी गई है कि पतिव्रता स्त्री की देह का उपभोग करने के लिए प्राणों की बाजी लगानी पड़ती है–

केहर मूंछ, भुजंगमणि, पतिव्रता की देह, सरसट्टे को लेय।

विधवा स्त्री बुंदेली लोकसंस्कृति में भी उतनी ही उपेक्षित है, जितनी भारतीय संस्कृति वाले अन्य समाजों में। उसकी शृंगारप्रियता को दुष्चरित्रता का सूचक माना जाता है–

तीतर पंखी बादरी, विधवा काजल-रेख
या बरसे, वा घर करै, या में मीन न मेख।।

विधवा का पुनर्विवाह भी लोक को कलंकपूर्ण लगता है। इतना ही नहीं, उसका हँसना भी उसे सह्य नहीं है–

साधुवे दासी, चोरहिं खांसी, रांड़ बिनासै हांसी।
घग्घा उनकी बुद्धि बिनासै, खांय जो रोटी बासी।।

विधवा की सहज भावनात्मक और मनोवैज्ञानिक आवश्यकताएं यदि उसे अपने वैधव्य से विचलित कर दें, तो इससे समाज की चिंताएं और भी बढ़ जाती हैं–

रांड़ मेहरिया, अनाथ भैंसा।
जब विचलें तब होवै कैसा।।

अपनी दुर्दशा और समाज की क्रूर धारणाओं के कारण विधवा स्त्री सदैव रोती रहती है। उसकी आंखें आंसुओं से सदा भरी रहती हैं, पर समाज इन्हें सहानुभूति नहीं देता, वह तो इस पर भी व्यंग्यात्मक टिप्पणी ही करता है–

राड़ के अंसुआ

स्त्री स्वभाव पर समाजशास्त्रीय चिंतन करते हुए बुंदेली लोक का निष्कर्ष है कि विद्या, स्त्री और लताएं जिसकी निकटता पाते हैं, उसी से लिपट जाते हैं–

बिद्या और बनिता लता, जे नहिं जानें कुल जात।
जो जाके ढिंग रहैं, ताही से लिपटात।।

उस पर यह मशवरा भी कि व्यापार, अतिथि, घोड़ा और स्त्री की देखभाल स्वयं ही करनी चाहिए। दूसरे पर छोड़ देने पर नुकसान उठाना पड़ेगा–

बेपारी उर पाऊनो, तिरिया और तुरंग।
अपने हाथ संवारियो, लाख लोग होंय संग।।

क्योंकि स्त्री जब तक आपके सामने हैं, आपकी है, अन्यथा दूसरे की हो जाने में देर न लगेगी–

मुंह आगे नार, पीठ पांछे पराई।

स्त्री कमजोर पति को कभी भी प्रेम नहीं करती। वह कोदों की रोटी से जैसे-तैसे पेट भर लेने का प्रयत्न करती है, क्षुधा तृप्ति नहीं होती–

मरिया मुंस करम ढकना।
कोदों की रोटी, पिट भरना।

स्त्री-सलाह की बुंदेली समाज में सख्त मनाही की गई है। स्त्रियों को विचारहीन माना गया है और जो उनकी सलाह पर चलेगा, उसका विनाश हो जाएगा–

बेरी का मत मानबो, उर तिरिया की सीख।
क्वांर करे हर जोतनी, तीनऊं मांगे भीख।

स्त्री के चरित्र को रहस्यमय मानने की ग्रंथि से बुंदेली समाज भी मुक्त नहीं है–

तिरिया चरित जानें नहिं कोय।
खसम मारकै, सत्ती होय।

सौंदर्यवती स्त्री यदि पढ़ी-लिखी भी हो तो वह भरी हुई बंदूक के साथ घुड़सवार जैसी है। एक तो स्त्री स्वयं नागिन होती है, यदि उसके दो पंख भी उग जाएं तो उसके जैसा खतरनाक और कौन होगा–

सुघर नार जो पोथी पढ़ी, भरी तुवक और घोरे चढ़ी।
इक नागिन दो पंख सजाय, कैसे बचे तीन के खाये।।

स्त्री शिक्षा का ऐसा घोर विरोध मौजूद होते हुए भी वर्तमान बुंदेली समाज की स्त्रियां शिक्षा के प्रति गहरी चेतना से न केवल परिपूर्ण हैं, बल्कि अनेक क्षेत्रों में नेतृत्वकारी शक्ति बनी हुई हैं। यह तथ्य प्रमाणित करता है कि लोक-मानस भले ही जड़ता में विश्वास करे, वह समाज की प्रगतिशीलता में बाधा नहीं बन पाता। बुंदेली कहावतों में लज्जाशीलता को ही स्त्री का आभूषण माना गया है–

दुकानदारी लरम की।
बहु-बिटिया शरम की।
सिपाहीगिरी गरम की।

क्योंकि निर्लज्जता किसी भी समाज में ग्राह्य नहीं है–

नंगी नाचै, धमाकौ होय।

फूहड़ स्त्रियों पर भी बुंदेली-कहावतों में टिप्पणियां की गई हैं। एक कहावत में कहा गया है कि फूहड़ स्त्री शाम से ही बिस्तर पर पड़ी रहती है। बर्तन यहां-वहां पड़े रहते हैं और घर में गंदगी रहती है–

सांझै से परी रहती खाट, भांड़े बारह बाट।
घर आंगन सब घिन-घन होई, घग्घ गाहिरे देव डुबोई।।

और यह भी कि– *फूहर को मैल, फागुन में उतरत। या फूहर चालै। सब घर हालै।।*

हां, फूहड़ स्त्री से एक फायदा जरूर होता है कि जिस घर में फूहड़ स्त्री होती है, उस घर में झगड़ा-उलाहना लेकर आने की हिम्मत कोई नहीं करता–

बैल बगौधा, निर्घिन जोय।
वा घर उरहन कबहुं न होय।।

बुंदेली लोक की दृष्टि इतनी व्यापक है कि वह किसी प्रसंग को अनदेखा नहीं करता। बुंदेली स्त्रियों के कला-कौशल और कला-प्रियता पर भी उसने टिप्पणी की है। बुंदेली स्त्री बीमार होने और मृत्यु-संकट में घिरी होने पर भी गीत गाना नहीं छोड़ती–

मरी जांय, मल्हारै गायें।

वे सिर्फ गाती ही नहीं, नृत्य के प्रति भी उनमें तीव्र आकर्षण है। भले ही लज्जा के कारण घूंघट डालना पड़े, थिरकन का जोखिम उठाने को वे सदा तत्पर रहती हैं–

नाचने चलीं और घूंघट घालीं।

आभूषण-प्रियता भी कुछ कम नहीं–

नाक छिदावन गई।
कान छिदाकै आ गईं।।

और यह भी– *नाक नंगी, गर हमेल।*

इसलिए बुंदेली पुरुषों को परिपूर्ण पुण्यों से ही स्त्री मिलती है–

पूरे-पूरे पुन्न बिन, मांगे मिलैं न चार।
धन संपत्ति, शरीर सुख, इक विद्या इक नार।।

इसीलिए सच्चा-स्वर्ग उस घर को कहा गया है, जहां बांकी चितवन वाली स्त्री उत्तम प्रकार का भोजन परोसने के लिए उपलब्ध हो–

भुइयां खड़े हरहवै चार।
घर होय गिहथिन गऊ दुधार।
अरहर की दाल जड़हन को भात।
गागल को निबुआ और घी तात तात।
खांड-दही जो घर में होय,
बांके-नैन परोसे जोय।
कहैं लोग तब सबही झूठा,
उहां छोड़ि इहिवै बैकुंठा।

बुंदेली गारियां

◆ *सुधा गुप्ता*

बुंदेली हिन्दू समाज में विवाह के अवसर पर प्रत्येक रस्म पर अनेक गीत गाए जाते हैं। इन गीतों में वधू पक्ष के यहां गाए जाने वाले उन गीतों का, जो 'गारी' नाम से अभिहित हैं, अपना अलग ही मिजाज है। स्त्रियां अधिक संवेदनशील होती हैं और 'गारी गीतों' के माध्यम से वर पक्ष की हर तरह से खूब खबर लेती हैं। स्त्रियां आपस में एक-दूसरे से भी छेड़छाड़ करती है एवं ससुराल के लोगों को, जिन्होंने उन्हें प्रताड़ित किया है तथा उनके चरित्र तक को नहीं बख्शा, उन्हें भी लपेट लेती हैं। ये गीत हास्य-व्यंग्य से भरपूर होते हैं। इन गीतों में वे अश्लील शब्दों का इस्तेमाल करने से भी नहीं चूकतीं। अश्लीलता से युक्त अपशब्दों एवं निरर्थक शब्दों का इस्तेमाल करने के कारण ही इन गीतों को 'गारी' कहा जाता है। इन गारियों में स्त्रियां वाक्-बाणों की बौछार करती हैं। उनका वास्तविक सौंदर्य उनकी व्यंजना में ही निहित है। लड़के वालों को सुना-सुनाकर, उनके एवं आपस में एक दूसरे के नाम ले-लेकर हँसी-मजाक करतीं, हूंका-सा भरती हुईं जब स्त्रियां एक के बाद एक इन गारी गीतों को अपने सुमधुर कंठों से गाती हैं, तो विवाह स्थल

पर हास-उल्लास के झरने से प्रवाहित होने लगते हैं, जिनके निर्मल जल में स्नान कर बारातियों का सारा अहं धुल जाता है और स्त्रियां भी अपने मन का सब कुछ उंड़ेल कर तरोताजा हो जाती हैं।

द्वार पर बारात आते ही औरतें बारातियों से परिहास शुरू कर देती हैं। वे बारातियों पर एक नजर डालती हैं और दूल्हे तथा बारातियों की तुलना महादेवजी की बारात से कर उनके रूप-रंग का मखौल सा उड़ाती हुई गा उठती हैं।

अजाये जा बजाये जा लगाये जा मनरंगी।
महादेव की सजी बरातें एक से एक संगी।
कौना कौ घोड़ा जंगी।
आजुल जी कौ घोड़ा जंगी। आजाये जा बजाये जा...
कौना कौ घोड़ा जंगी।
बाबुल जी कौ घोड़ा जंगी।
काकुल जी कौ घोड़ा जंगी।
अरे हां जी दूल्हे के मामाजी कौ घोड़ा जंगी।
अजाये जा बजाये जा लगाये जा मनरंगी।
महादेव की सजी बरातें एक से एक संगी।

उपर्युक्त गीत में स्त्रियां सबसे पहले बारातियों के रूप को ही अपने व्यंग्य-बाण का निशाना बनाती हैं और उनके शारीरिक सौंदर्य पर प्रश्न चिह्न लगा देती हैं। बारातियों में एक भी ऐसा नहीं आया, जो उनके मन को मोह ले–

मन कौ एकऊ नै आओ।
मन कौ एकऊ नै आओ।
बड़ी मूछन के आये।
बड़ी बड़ी नाकन के आये।
मन कौ एकऊ नै आओ।
बड़े बड़े पेटों के आये।
बड़े बड़े दांतों के आये।
मन कौ एकऊ नै आओ।

द्वारचार एवं चढ़ावे के पश्चात वर पक्ष लोक मंडप के नीचे भोजन करने आते हैं। उस समय वधू पक्ष की स्त्रियां पहले तो जेवनार के गीतों द्वारा उनका

स्वागत करती हैं। आदर सहित समधियों एवं सभी बारातियों के पैर धुलवाने, बैठाने, भोजन सामग्री परोसने तथा हाथ जोड़कर भोजन करने का आग्रह कर वे अपनी विनम्रता और शालीनता से बारातियों का मन मोह लेती हैं, यथा

देखो सखी नृप जेवन आए दशरथ राजदुलारे जू
हां हां जू कै हूं हूं जू।
कंचन धार धरे नृप आगे धर नृप चरन पखारे जू। हां हां...
चंदन चौकी डारी बिछौना जिन पै नृप बैठारे जू। हां हां...
कनक कील मन पान संवारे पनवारे परसाए जू। हां हां...
गंगाजल की झाड़ी परसी फिर नृप परस कराए जू। हां हां...
चारहुं चांवर चन्द्र सब उज्ज्वल केसरिया बनवाए जू। हां हां...
लोगें मिरचें मसाले डारे दही में बोझ परसाए जू। हां हां...
पीली कढ़ी पकौड़ी बेसन फिर नृप दई परसाए जू। हां हां...

जैसे ही बाराती खाना शुरू करते हैं, वे सस्वर गा उठती हैं--

रघुवंशी सुने जइयो गारी औसरे नौनो बनो।
काये समधी के स्वागत में भूल गई रे
न, कछु देखन लगी घर-बाह। औसर नौनौ बनो, रघुवंशी
गुंडा गलिन में कूद रए रे
मिथिला भए निरधार। औसर नौनौ...
रघुवंशी कौ भोरे बनाये लए रे,
अलबेली जनकपुर ना। औसर नौनो...

हे रघुवंशियो! तुम गारी सुनते जाओ, तुम्हें सुनाने के लिए विवाह का बड़ा अच्छा अवसर मिल गया है। फिर स्त्रियां बारातियों को सुनाती हुईं एक-दूसरे से पूछती हैं, अरे! तुम कहां भागी-भागी फिर रही हो, क्या अपने समधीजी के स्वागत में अपनी सुध-बुध ही खो बैठी हो; प्रत्युत्तर में वे कहती हैं—अरे नहीं मैं तो अपना घर-बार देखने चली गई थी, कहीं मेरा घर लुट तो नहीं गया। देख नहीं रही हो गलियों में गुंडे कूद रहे हैं और मिथिला नगरी असुरक्षित हो गई है। उपर्युक्त गीत में वे परोक्षरूप से कटाक्ष करती हैं कि वर पक्ष की बारात क्या है; गुंडों की जमात है।

वधू पक्ष की स्त्रियां काम-लोलुप बूढ़े-खूंसट को अच्छा सबक सिखाती हैं। पहले तो उनके आगमन पर बिस्तर बिछाए जाते हैं, बिस्तर बिछाकर दरवाजे बंद कर दिए जाते हैं, लेकिन आधी रात में जब वे काम से व्याकुल हो उठते हैं तो उन्हें ऐसा धक्का मारा जाता है कि बेचारे बाबाजी का पानी छूट जाता है, वे हक्के-बक्के रह जाते हैं और सुबह होते ही चुपचाप अपने जूते पहन खिसक जाते हैं। उपर्युक्त गीत को औरतें निम्न प्रकार से आगे बढ़ाती हैं।

आ गए बिचारे बिछ गए बिस्तर बाबाजू बाबाजू।
बिछ गए बिस्तर लग गई किवरियां बाबाजू बाबाजू।
लग गई किवरियां सो गए बिचारे बाबाजू बाबाजू।
सो गए बिचारे ऊंगी हिरनी बाबाजू बाबाजू।
ऊंगी हिरनी खोली तिन्नी बाबाजू बाबाजू।
खोली तिन्नी भए अधरत्ता बाबाजू बाबाजू।
भए अधरत्ता लगे दचक्का बाबाजू बाबाजू।
लगे दचक्का छूट गओ पानी बाबाजू बाबाजू।
छूट गओ पानी धरी रहे भुवानी बाबाजू बाबाजू।
भए भुनसारे चले बिचारे बाबाजू बाबाजू।
पैरी पनैया बोली चिरैया बाबाजू बाबाजू।

रात के अंधेरे में काली करतूत करने वाले समधीजी दिन में सफेदपोश बने भरी सभा में बैठकर बड़ी-बड़ी डींगे हांक रहे हैं और बेचारा लड़की का सज्जन पिता उनके नाज-नखरे उठाता हुआ उनकी आवभगत में चिंतित घूम रहा है। यह देखकर स्त्रियां जल-भुन जाती हैं तथा समधिनजी के चरित्र पर छींटाकशी करती हुईं अपनी पत्नी की नाजायज औलाद के पिता बने समधीजी से पूछतीं है कि ये हाथी-घोड़े सब आपके ही हैं या बेटे की तरह ये सब भी किसी दूसरे के किराये पर लाए हो।

भरी सभा में बैठे समधी
बड़ी-बड़ी झल्लै मारे रे। हां हां वे हूं हूं वे।
समधिन छिनरो लरका पाले, समधी मसनद डारे रे। हां हां...
समधिन की भई नौ नौ बिटिया समधी सोच बिचारे रे। हां हां...
काय भाई समधी कां के जे हाथी, कां से ल्याये जो घुरवा
कै ल्याये सबरे भारे के। हां हां जू...

उनके व्यंग्य का पैनापन धीरे-धीरे बढ़ता जाता है। वे खुलेआम समधियों के यहां की स्त्रियों की भर्त्सना करती हुई कहती हैं—अरे समधीजी पहले अपने घर की स्त्रियों को तो संभाल लो, फिर यहां बैठकर अपने खानदान, पद और पैसे का बढ़ा-चढ़ा कर बखान करना। यहां तो माननीय नए समधीजी आप दूल्हे के साथ नयी बारात सजाकर लाए हैं, मगर वहां आपके घर की स्त्रियां सजधज कर कहारों को बुलाकर नए सजे डोलों में बैठकर झांसी शहर अर्थात वहां के बाजार में अपना ग्राहक ढूंढ़ने निकल पड़ी हैं। समधीजी तुम्हारी पत्नी, मां, चाची, मौसी आदि रेशम की डोरी से बिनी पीढ़ी पर मैदान में बिकने के लिए बैठी हुई हैं। उनको खरीदने के लिए हमारे यहां के पुरुषों में छीना-झपटी मची हुई है। तुम्हारे यहां की स्त्रियां खाने-पीने और रुपये-पैसों के लालच में अपने समधियों के साथ चली गईं, लेकिन यहां भी वधू पक्ष के ग्राहक ठगे गए। ऊपर से सजी-धजीं, बनाव-शृंगार किए वे इतनी सूखी-साखी, रसहीन निकलीं कि उन्हें लाकर अब वे बुरी तरह से पछता रहे हैं एवं अपनी दी कीमत और सौगातें अपनी समधिनजी से वापस मांग रहे हैं। इतना सुनना था कि समधीजी की सारी ठसक हवा हो जाती है और वे ढीले-ढीले, उदास-उदास से अपने यहां की स्त्रियों—पत्नी, मां आदि को ढूंढ़ने निकल पड़ते हैं—

नइया से दूल्हा नइया बरतिया नइया सजन घर आये कै हां जू।
नइया से डोला सजाये सजन बहू पचरंग कहार बुलाये कै हां जू।
जाये उतारे झांसी के बाजार में सो इन्हें कोउ ग्राहक लागौ कै हां जू।
नइया पिढ़ी झरकोटे मड़ाई सो रेशम पाट भराई कै हां जू।
डार पिढ़ी डगरे में बैठी सजन रई रनिया तुम्हारी बिकाय कै हां जू।
तुम्हारी माई, मौसी कै हां जू। डार पिढ़ी डगरे में...
जौनो इक सजन मोल करत हैं तौनो दूजे सजन लै भग आये कै हां जू।
जब उनने देखे पचरंग पलका सो झपट पलंग पै चढ़ आई कै हां जू।
जब उनने देखे खालन लड्डुआ सो झपट दए गलुआ कै हां जू।
जब उनने देखे मुहर रुपैया सो झपट दए गलुआ कै हां जू।
सालई साल मचक्कन लागे धुजन लगी करियाई कै हां जू।
जब छिनरू को मौ सूखन लागो सौ को भर ल्याये पानी कै हां जू।
हमारे सब सजना लाल मसत है मसक भर ल्याये पानी कै हां जू।

उलट पलट कै देखी सजन बहू कढ़ आई असल पुरानी कै हां जू।
देओ मेरी समधिन खालन लड़ुआ हम घर पड़े रई लुगाई कै हां जू।
देओ मेरी समधिन मुहर अढ़ाई सो हम घर लगी है त्याई कै हां जू।
देओ मेरी समधिन रोक रुपैया सो हम घर बैठे हैं सिपाई कै हां जू।
ढिलरे ढिलरे फिरै सजन तुम्हारौ का हिरानौ कै हां जू।
जो कैसी बाल कौंदन कैसी कांवनी धनिया हमारी हिरानी कै हां जू।
मैया हमारी हिरानी कै हां जू, काकी हमारी हिरानी के कै हां जू।

मिल जाने पर गुस्से में आकर समधीजी अपनी पत्नी को भादों की मूसलाधार बरसती रात में घर से निकाल देते हैं। चारों ओर इस बात की चर्चा है। गांव की गली-गली में वह कुलटा स्त्री घूम रही है, पर कोई भी उसे अपने घर में आश्रय देने को तैयार नहीं है। उसकी बदनामी के नगाड़े चारों ओर बज रहे हैं। समधिनजी की दुर्दशा का ऐसा हाल सुनकर वधू पक्ष वालों ने उन्हें अपने यहां आश्रय दे दिया, पर यहां भी वे अपनी हरकतों से बाज नहीं आईं और उनको अपने समधीजी का गर्भ रह गया। इससे अब लड़के के बाप की और अधिक बदनामी हो रही है। वे गीत गाती हैं–

रघुनंदन धनुष उठाइयौ सब संतन लये विश्राम,
सब हितुअन लये विश्राम बाजे न्यौरा घना।
समधीजी ने जुइया निकालियौ भर भादों की रात। बाजे न्यौरा...

– – –

अलिन गलिन वा छिनरो फिरे अरे कोई न पूछे बात। बाजे न्यौरा...
हमाये रामजी सजना ये कहै समधिन मेरे महल धंस आओ। बाजे...
महल धंसे कौ का पाहौं मेरे समधीजी। बाजे न्यौरा...
हमाये रामजी सजना ये कहै समधिन मेरे पलंग लटकाव बाजे...
पलंग लटकाये कौ का पाहौं मेरे समधीजी। बाजे न्यौरा...
हमाये रामजी सजना ये कहैं समधिन मेरे हिय लगये जावे।
हिये लगे कौ का पाहौं मेरे समधीजी। बजाये बाजे न्यौरा घना।
पहलौ पहरौ रैन को छिनरो लग गई हिये से जाये। बाजे न्यौरा...
दूजौ पहरौ रैन को सतकर्मू को रै गयौं पेट। बाजे न्यौरा...
तीजौ पहरौ रैन कौ बाके होय परे ललना। बाजे न्यौरा...

चौथो पहरौ रैन को कौना सोंठ बिसाइयो,
को है ललन के बाप। बाजे न्यौरा...

अपनी पत्नी के कारण होने वाली बदनामी से बचने के लिए स्त्रियां नए समधीजी को सलाह देती हैं कि वे अपनी कुलटा पत्नी की रखवाली के लिए कुत्ता पाल लें और स्वयं भी कुत्ते की तरह सतर्क रहकर उनकी रखवाली करें।

कुत्ता पाल लो,
नये समधी महाराज कुत्ता पाल लो।
कुत्ता की पूंछ जैसे समधी की मूंछ,
हथ्था फेर लो, नये समधी जजमान कुत्ता पाल लो।
कुत्ता की पीठ जैसे बंबई की छींट
कुर्त्ता पैन लो नये समधी महाराज कुत्ता पाल लो।
कुत्ता की खुरी जैसे मैदा को पुरी,
दो और लो नये जजमान कुत्ता पाल लो।
कुत्ता के कान जैसे महोबा के पान,
बीड़ा चाव लो नये समधी महाराज कुत्ता पाल लो।

यह नेक सलाह देने के बाद वे आगे अपने समधियों से कहती हैं कि और भी जिन कामों की अक्ल और सलीका आपको न हो, वह सब भी हमसे सीखते जाओ। वे समधियों का नाम ले-लेकर गाती हुई कहती हैं—

थोड़ी खइयों मसूरिया की दार रौंसा वादी करै।
समधी के पेट में ईतुर बोले तीतुर बोले चार कबूतर बोले,
कैसे बोले गुटरगूं श्रीराम राधेश्याम श्रीराम सीताराम। थोड़ी खइयो...
लिखवो पढ़वो न आउत होय तौ हमसे सीखौ,
पढ़ौ अ आ इ ई ए ऐ ओ औ अं अः। थोड़ी खइयो...
अंग्रेजी की गिनती इ नई आत होय तो हमसे सीखो
हम सिखायें कऔ वन टू थ्री फोर फाइव सिक्स सेवन एट नाइन टैन।
श्रीराम सीताराम श्रीराम राधेश्याम थोड़ी खइयो...
तुम्हें कुर्सी पै बैठवो न आउत होय तो कुर्सी लाकें हम रखे दें
अरे समधीजी कैंया लै कै हम बैठार दें तुम बताऔ तुम्हें का का
नई आउत श्रीराम राधेश्याम श्रीराम सीताराम थोड़ी...

उपर्युक्त गीत में स्त्रियां पढ़ाई-लिखाई, खान-पान, रहन-सहन आदि से संबंधित विभिन्न कार्यकलापों को समेट लेती हैं तथा बारातियों को उनके उपयोग करने के तौर-तरीके सिखाती हैं।

विवाह में गाई जाने वाले इन गारी गीतों में स्त्रियां वर वक्ष के रूप, गुण, चरित्र एवं बुद्धि-चातुर्य की ही धज्जियां नहीं उड़ातीं वरन् वे आधुनिकता की ऊंची दौड़ में अपनी हिन्दू सभ्यता एवं संस्कृति से विमुख मनुष्य के स्वार्थों, समाज में फैली कुरीतियों, कुरूढ़ियों की ओर भी हमारा ध्यानाकर्षित करती हैं।

अंग्रेजी की नकल कर उन्होंने अपना खान-पान, वेश-भूषा, मातृभाषा, शील-संकोच आदि का ही परित्याग नहीं कर दिया अपितु हिन्दू धर्म के मूल तत्व प्रेम, परमार्थ आदि सद्वृत्तियों को भी भुला दिया। अपने स्वार्थ के लिए कन्या तक को बेचने वाले ऐसे अधर्मी को 'हिन्दुस्तानी' कहते हैं तो स्त्रियों को जरा भी सहन नहीं होता।

कहते हम हैं हिन्दुस्तानी।
कोट कमीज बास्कट पहने सूट पहिन बन गए ज्ञानी।
कहते हम हैं हिन्दुस्तानी
इन बैलन की खाई कमाई खेती कर लई मनमानी।
कहते हम हैं हिन्दुस्तानी।
बूढ़े भए कसाइन बेचें ऐसे मूरख अज्ञानी।
कहते हम हैं हिन्दुस्तानी।
चमर गोट में खाना खाते मसकन कौ पीते पानी
कहते हम हैं हिन्दुस्तानी।
हिन्दू धरम रीति न जाने बुद्धि पाप में लिपटानी।
कहते हम हैं हिन्दुस्तानी।
कन्या बेचें रकम गिनायें पुण्य धरम जस की हानी।
कहते हम हैं हिन्दुस्तानी।

वधू पक्ष की स्त्रियां वर पक्ष के ज्ञान चक्षु खोलने के लिए पहले तो उन्हें खरी-खोटी सुनाती हैं और उस पर भी जब वे खाना खाकर उठने लगते हैं तो उन्हें धमकाती हुई सजग करती हैं।

बोली बोली आम की डार बोली री कोयलिया का बोली।
इतै की बात कऊं उतै कत जैहौ
तौ चीर डारौं फार डारौं तीन परी तेल डारौं
पातर सी रौंद डारौं
तोरी मारौ कनपटी तोरी बाप की मारूं मूड़
न तर सारे बारीक चौटिया लै डारूं। बोली बोली रे...
कौरा रोटी दइ सौ खाओ खाते खाते दिल्ली जाओ
दिल्ली तेरो ओत तेरो गोत
इतै की बात दिल्ली कत जैहो तो चीर डारौं फार डारो
तीन परी तेल डारौ ना तर सारे बारीक चौटिया लै डारौ।
बोली बोली आम की डार बोली री कोयलिया का बोली।

अर्थात् यदि यहां की कोई भी बुराई तुम लोगों ने अपने घर जाकर की तो हम लोग चीर-फाड़कर पत्तल की तरह रौंदकर तुम लोगों की बुरी दुर्गत बना देंगे। हमने तुम्हें जो खाने को दिया, वही खाते हुए हमारी बातों को सुनते हुए चुपचाप अपने शहर दिल्ली को लौट जाओ।

पर बाराती स्त्रियों को अपने को रौंद डालने का तनिक भी अवसर नहीं देते। वे उनकी सीधी-सच्ची खरी-खरी बातों का जरा भी बुरा नहीं मानते। वे जानते हैं कि इन व्यंग्य वचनों की कठोर सतह के नीचे मान-सम्मान, प्रेम, सौहार्द का निर्मल मीठा जल हिलोरें ले रहा है, अतः वे खाना खाकर इस मीठे जल के स्रोत से अपनी प्यास बुझाकर पान का बीड़ा ले मन में हर्षित होते हुए जनवासे को लौट जाते हैं—

ऐसे व्यंग्य वचन त्रियन के सुन नृप दशरथ भए सुखारे जू। हां हां जू...
कर आचमन पान पुनि दीने सब लखन मन हरषाये जू। हां हां जू...
दुज दुर्गा धन्य भाग सखिन के फिर नृप गए जनवासे जू। हां हां जू...
देखो सखी नृप जेवन आये दशरथ राज दुलारे जू। हां हां जू कै हूं हूं जो।

ये गारी गीत टीके के बाद एवं मंडप के नीचे जैवनार के समय ही नहीं गाए जाते हैं, बल्कि विवाह के अन्य अनेक नेगों कुंअर, कलेऊ, मुंह मड़ई (फाग), समधौरे आदि अन्य अवसरों एवं विवाह में पूड़ी आदि बेलते समय भी गाए जाते हैं। जेवनार के समय वधू की मां, काकी, बुआ, मामी आदि वर के आजा, पिता,

काका, फूफा, मामा आदि को गारी सुनाती हैं तो कुंअर कलेऊ के अवसर पर वधू की भाभियां, बहनें, सखी-सहेलियां अर्थात् दूल्हे की सलहजें, सालियां आदि दूल्हे की घेराबंदी करती हैं।

जूर आई ललाजू की सारियां, बैठी मीठी गावें गारियां।
तुम नृप दशरथ लाल कहाये, ब्याहन काज जनकपुर आये।
तुमहो कौशल्या के जाये, सुनियत पति बिन सुत उपजाये।
इनकी मैया कौ हैं बलिहारियां, बैठी मीठी गावें गारिया।
नइया भरत भोग अनुरागी, इनके बहनोई बैरागी।
बहना श्रृंगी ऋषि संग लागी, अपनी कुल मर्यादा त्यागी।
सुन नारी हंसै देवें तारियां, बैठी मीठी गावें गारियां।
इनको देख त्रिय ताड़का आई, ताखौ देखत गए रिसाई।
बाकौ मारौ है खिसयाई, जौ करतूत सुनौ मेरी माई।
सुन नारी हँसे देवें तारियां, बैठी मीठी गावें गारियां।
आखिर अबला आए बिचारी, जिन खौं बिन हथियारन मारी।
हम है जनकपुरी की नारी, लाला सारी लगै तुम्हारी।
दुज दुर्गा की बलिहारियां। बैठी मीठी गावें गारियां।

विवाह के अन्य अवसरों पर तो औरतें केवल गारियां गाकर ही वर पक्ष के साथ मनोविनोद करतीं और उनकी धज्जियां उड़ाती हैं, किंतु विवाह में मुंह मड़ई (फाग) के नेग के समय वे केवल गारी ही नहीं गातीं, समधियों का स्त्री स्वांग बना, हल्दी लगा एवं रंग आदि पोतकर उनके शरीर की दुर्गत करती हैं। निम्न गारी दृष्टव्य है–

जान न देहौं सजन खौं जान न देहौं
तीन ख्वाब कौ लांगा पहिराओ औ ऊपर चूनर औड़ाहौं।
सजन खौं जान न देहौ
सोने के दीप कपूरा की बातीं हँस हँस काजर पारौं
नैनन काजरा आंजौ। सजन खौं...
अरे माथे बीज दाऊनी सौहे बिन्दिया लाल लगाहौं।
सजन खौं रोरी लाल लगाहैं मुतियन मांग भराहौं।
सजन खौं जान न देहौं

हाथन मेंहदी एड़ियन माहुर औठन लाली रचाहौं।
अरे अबला रूप बनेहौं सजन खौं जान न देहौं।

वर एवं वर पक्ष के समधियों के बाद बारी आती है समधिनों अर्थात् वर की आजी, मां, ताई, बुआ, मौसी आदि की। यदि वर-वधू एक ही गांव के रहने वाले होते हैं तो बुंदेलखंड में वधू पक्ष की महिलाएं वर पक्ष की समधिनों को अपने यहां आमंत्रित करती हैं तथा सभी समधिनों को शर्बत पिलाकर सामर्थ्यानुसार सोने अथवा चांदी की छाप (आजकल अंगूठी) साड़ी, रुपये, मिठाई, फल आदि भेंट स्वरूप देती हैं, इसे समधौरा देना कहा जाता है। दूल्हा-दुल्हन का रहने का गांव अलग-अलग होने पर 'समधौरा' विवाह के बाद सुविधानुसार कभी भी दे दिया जाता है। 'समधौरा' में वधू पक्ष की स्त्रियां समधियों की भांति अपनी समधिनों को भी किसी तरह नहीं बख्शती, लेकिन समधोरे में दोनों पक्ष की समधिनें गारीं गाती हैं एक पक्ष की समधिनों का गीत समाप्त होते ही दूसरे पक्ष की समधिनें गाना शुरू कर देती हैं। इन गारी गीतों में वे विपक्ष की समधिनों के नाम लगाती जाती है। यथा—

हां हां किनारे जई नीम की शीतल छइयां।
हां हां किनारे जई नीम की कटाव लकड़ियां।
कटाव लकड़ियां डारौ बढ़ई कै डारों बढ़ई के बनौ है
हिंडौलना।
ऐसी रामकली छिनरो झूलन को निकरी, ऐसी वर की मैया
झूलन को निकरी अरे दुल्हन की छिनरो काकी झूलन
को निकरी।
ओड़ो टूटो गोड़ो टूटो औ टूटी बाकी जांघिया।
ऐसी है कोई चटक बैदइया सो ओड़ो जोड़े गोड़ो
जोड़े जोड़े बाकी जांघिया।
हां हां किनारे जई नीम की शीतल छइया।

समधिनजी को पर पुरुषों के लिए कामातुर देखकर विपक्ष के समधीजी उनका इलाज करने के लिए उनको अपने महलों में ले आए और अंदर से दरवाजे बंद कर लिए। इन्हीं समधी से समधिन को गर्भ रह गया और उनके लड़का हुआ। स्त्रियां गाती हैं।

जमुना के ईर तीर गौये चरावें मुख मरली बजावे नंद के लला।
गौये रोक खिरक में पैड़ी झांसी वाले समधीने गौयें रोक
खिरक में पैड़ी सो वेई भए ललना। अरे मऊ वाले समधी ने
समधिन रोक महल में पैड़ी सो वेई भए ललना।
बागन ऊपर बाग लगाये सो को करै सिंचना।
दतिया वाली समधिन असल छिनरिया मलिया की
जोइया सो बौई करे सिंचना।
कुंअलन ऊपर कुंआ खुदाये सो को करै खिंचना।
रामरती समधिन असल छिनरिया ढिमरा की जोइया
सो बौई करे खिंचना।
तालन ऊपर ताल बंधाये सो को करै धुबना।
उरई वाली समधिन असल छिनरिया धोबी की जोईया
सो बोई बरे धुबना।
धीरे धीरे समधी बहियां मरोड़ो मुरकत हैं चुरियां
औरई पहिरा दऊं समधिन हरी पीरी चुरियां
औरई सिला दऊं समधिन कलौंजी कौ लांगा।
सुरग चुनरिया विरग भरी अंगिया। जमुना के ईर तीर...

समधिनजी के विवाहित पति से तो लड़कियां ही लड़कियां है, बेटा उनके किसी मनचले प्रेमी से हुआ है, पर समधिनजी इस बात को स्वीकार नहीं करती और सौगंध खा-खाकर कहती हैं—वे अपने समधीजी या किसी अन्य पुरुष से कभी मिली ही नहीं, लेकिन कोई भी उनकी इस बात को सच नहीं मानता। तब वे पंचों से फरियाद करती हैं कि उनके बेटे को जायज संतान करार दिया जाए। पंच उन्हें ही दोषी मान कर आग बबूला हो उठते हैं। तब वे नदी, नालों, पोखर, तीरथ आदि सभी जगह अपनी अर्जी लिए घूमती हैं, किंतु सभी जगह से उन्हें निराश लौटना पड़ता है। उनके बेटे के पिता के लिए उनके भिन्न-भिन्न यारों के नाम जोड़े जाते हैं, वह गारी दृष्टव्य है—

पोखरिया के नारई नारै सौ लटक रहे अनार भले जू।
के अनार उनने तोड़ौ सजन बऊ सो सजना कौ रह गयौ पेट
भले जू।

ब्याहै खसम की बिटियाई बिटिया सो छैला के जाये
नंदलाल भले जू।
सौहें करत है तो किरियां करत है सो नइया सजनजू
से भेंट भले जू।
लै कगदा पंचन में आई सो पंच उठे भर्राय भले जू।
लै कगदा नदिया में डारे सो छैला चले उतराय भले जू।
लै बेटा गई गंगाजू सो धरे हैं गंगाधर नाम भले जू।
लै बैटा गई जमुना सो नाम धरे जमुनालाल भले जू।
लै बेटा आई काशी सो नाम धरे काशीलाल भले
जू। पोखरिया...

उपर्युक्त गारी के माध्यम से स्त्रियां आपस में एक-दूसरे को सचेत करती हैं कि इस पुरुष प्रधान समाज में नाजायज संबंधों में पुरुष का तो कुछ नहीं बिगड़ता, वह तो औरत के गर्भ में पल रही अपनी संतान की जिम्मेदारी लेने से साफ मुकर जाता है, पर बदनाम हो जाती है औरत। पुरुष के स्वीकार न करने पर संतान को भी आजीवन अभिशप्त जीवन जीना पड़ता है। अतएव संतान भी अपनी मां को ही दोषी ठहराती है। इस प्रकार औरत पर दोहरी मार पड़ती है।

आर्थिक रूप से पुरुष पर निर्भर होने के कारण औरत की स्थिति अत्यंत शोचनीय हो जाती है। निम्नांकित गारी गीत में स्त्री की शोचनीय स्थिति का वर्णन मिलता है–

पिया पत्नी ले आये देहरादून की सौत बुरई होत चून की।
अब कैसे होय गुजारी आकै कर दऔ न्यारक न्यारी।
आली छीन लियौ सुख सारी बात मोसौं करत कानून की। सौत...
बाके लाने बढ़िया सारी लहंगा रेशम की जरतारी,
जामें सुंदर टकी किनारी मेरे लाने कामरियां कारी ऊन की। सौत...
बाकौ लखौ न जावै ठाट आबै रोज बजारी चाट,
मेरे लाने टूंटी खाट अपुन सजै शैया प्रसून की। सौत बुरई...
मंडप तरै बचन हवाये वे स्वामी ने नहीं निभाये,
समझे नहीं बात बहुत समझाये दास करामात विध के मजबूत की।
सौत बुरई होत चून की।

पर वे यह भी जानती हैं कि स्त्रियों की इस दुर्दशा की जिम्मेदार कुछ हद तक स्त्रियां ही हैं, जो विवाहित पुरुषों के जीवन में आकर पहली विवाहित पत्नी के जीवन को नारकीय बना देती हैं। निम्न गारी गीत में समधिन को ढाल बनाकर ऐसी स्त्रियों की ओर संकेत किया गया है, जो पुरुषों के काम संकेतों के प्रत्युत्तर देकर उसे बढ़ावा देती हैं और अपने सुख के लिए पर स्त्री की पीड़ा को नजरअंदाज कर देती हैं–

वे रानी गई तीं सरवर पानी सो वे राजा घुड़ल पलाने।
उनने चमकायी सिर की पगड़िया उन माथे की बिंदिया।
लेओ मेरी समधिन रूप रुपैया सो घुंघटा देऔ न प्यारी।
लेओ मेरी समधिन खालिन लड़ुआ सो घुंघटा देओ न प्यारी।

स्त्रियां अपने-अपने घरों में अपने-अपने पतियों को अलियों-गलियों में जाने, नदी-तालाबों के घाटों पर नहाने, बाग-बगीचों में घूमने-फिरने, दूसरों की शैया पर सोने आदि के लिए मना करती हैं।

घर हटके नार चतुर सयानी घर हटकै घर हटकै।
अरे इड़ियन छिड़ियन जिन जइयो मेरे स्वामी,
सो कौन गैल कैसी वानी। घर हटकै...
अरे हाटन घाटन जिन जइयो मेरे राजा,
सो कौन घाट कैसो पानी। घर हटकै...
अरे आंगियन बगियन जिन जइयो मेरे संइया,
सो कौन बाग कैसी मलिनी। घर हटकै...
अरे पराई सेज जिन जइयो मेरे पीतम,
सो को कैसी निरखे ज्वानी। घर हटकै...

स्त्रियों को डर है कि कहीं उनके पति भी किसी दूसरी स्त्री के जाल में फंसकर उनसे मुख न मोड़ लें। उपर्युक्त लोकगीत में उनका यही डर मुखरित हो रहा है।

जहां एक ओर औरतों को दूसरी औरत के द्वारा अपने पति के छिन जाने का भय बना रहता है, वहीं लड़के की शादी हो जाने पर उनमें अपने बेटे के छिन जाने का भय भी समा जाता है। इसीलिए स्त्रियों को अपने बेटे द्वारा अपनी ससुराल वालों की प्रशंसा करना नागवार गुजरता है। उन्हें लगता है कि उनका

बेटा उनसे अधिक महत्त्व अपनी ससुराल वालों को देने लगा है। इससे वे अपने को बड़ा अपमानित-सा महसूस करती हैं। निम्नांकित गारी गीत में बेटे की मां की यही अंतर्वेदना चित्रित हुई है–

अरे टेरत आवै मतारी ललन की टेरत आवे।
अरे चार दिना को लाला गये ससुरारे जाय सराई ससुरार की।
ससुरा हमारे तीनऊ लोक के राजा सासो हमारी रानी।
ओजू टेरत आवै मतारी ललन की टेरत आवै।
सारे हमारे घुड़ला कुदावै साराजें तपतीं रसोई। अरे टेरत...
नौ दस मास मैंने गरभ में राखे कबहूं न कीन्हीं बढ़ाई
चार दिना को लाला गए ससुरारे जाय सराई ससुरार की।
अरे टेरत आवै मतारी ललन की टेरत आवै।

इन गारी गीतों में स्त्रियों की चपलता एवं वाग्वैदग्ध्य देखकर श्रोता अवाक् रह जाते हैं। इन गीतों की अभिव्यंजना शक्ति इतनी तीखी एवं मार्मिक है कि इनकी कलात्मक अनगढ़ता पर ध्यान ही नहीं जाता और सहृदय इनके भाव सौंदर्य में डूबकर मंत्रमुग्ध हो जाते हैं।

स्त्रियों का एक अन्य सरस और मार्मिक परिहास देखिए। नयी-नवेली मुग्धा वधू को आभूषण पहनने का अभी अभ्यास नहीं है। इसलिए आभूषण उसके अंगों से खिसककर गिर जाते हैं। उनके पैर में बिछिया न देखकर स्त्रियां उससे बिछिया के बारे में पूछती हैं। नव वधू दबी-सिकुड़ी लाज में डूबी एक कोने में बैठी है और परिवार की अन्य स्त्रियां उसकी बिछिया ढूंढ़ने में लगी हैं। इस गीत में स्त्रियां आपस में अपनी समधिनों, ननदों आदि से परिहास करती हैं कि हम सब तो बिछिया ढूंढ़ने में लगे हैं, पर हमारी समधिन हमारी ननद, हमारी जिठानी आदि बिछिया के बहाने अपना प्रेमी तलाश कर रही हैं।

कहां डार आई नारि नवल बिछिया कहां डार आई।
सब कोउ ढूढ़े इछिया बिछिया हमारी समधिन ढूढ़े खसम रसिया
कहां डार आई कहां डार आई नार नवल बिछिया
कहां डार आई
चिड़ी पान की पायल पहिने रौनन के बिछिया। कहां डार...
सब कोउ ढूढ़े इच्छिया बिछिया सो हमाई ननदी ढूढ़े
खसम रसिया। कहां डार आई...

कहना न होगा कि विवाह में गाई जाने वाली गारिया, जो सतही तौर पर बुरी तथा अश्लील लगती हैं, कड़वे नीम की तरह ही गुणकारी और हितकारी हैं। जिस प्रकार नीम का सेवन करने से शरीर के विकार दूर हो जाते हैं, उसी प्रकार यदि इन गारियों को सुनने वाला भी उन्हें सही रूप से हृदयंगम करे तो उनके मन से विकार दूर हो सकते हैं और शरीर तथा मन से विकाररहित संयमयुक्त नैतिक जीवन जीने वाला स्वस्थ मानव समूह हो तो रूढ़िमुक्त प्रगतिशील, स्वस्थ, चेतन समाज की संरचना में सहायक हो सकता है।

स्त्री सर्जना के स्वत्व लोकनृत्य

◆ *वसंत निरगुणे*

विश्व की सारी कलाओं की जननी स्त्री है। इस बात पर आप कितना विश्वास करते हैं, यह इस बात पर निर्भर करता है कि आप 'स्त्री शक्ति' को कितना पहचानते, जानते, समझते हैं। पश्चिम की एक लोक धारणा है कि आकाश से अप्सराएं उतरती हैं और पृथ्वी की स्त्रियों को सारी शिल्पकलाएं सिखाकर चली जाती हैं। भारतीय अवधारणा में 'पार्वती' को कलाओं के मूल में माना जाता है। फिर चाहे नृत्य संगीत, मूर्ति, चित्र आदि कला हो। इन कलाओं से 'पार्वती' का कोई न कोई मिथ अवश्य जुड़ा है। देखा जाए तो सृष्टि की धुरी ही स्त्री है। महादेव प्रथम 'पुरुष तत्व' हैं और पार्वती प्रथम स्त्री तत्व हैं। जीवन के 'ललित' को रचने वाली पार्वती ही हैं।

भारतीय आख्यानों में नृत्य उत्पत्ति का आदिम उल्लास 'तांडव' को माना है। इसके जनक शिव-महादेव हैं। महाआततायी त्रिपुर राक्षस के वध के बाद शिव उल्लसित होकर नाचने लगे थे। वे नाचते ही गए। इससे ब्रह्मांड में भूचाल खड़ा

हो गया। डमरू निरंतर बज रहा था। जल, वायु, पर्वत, सूर्य-चंद्र, पृथ्वी के सभी तत्व तांडव से कंपित हो उठे थे। यह शिव का निर्बाध और अनियंत्रित नृत्य था। बहुत कुछ निरर्थक भी हो रहा था। तब इसे बांधने वाली केवल स्त्री शक्ति ही थी, वह शक्ति थी पार्वती। विध्वंसक तांडव को बाधित किया था पार्वती ने 'लास्य' जैसा सार्थक नृत्य सृजित कर। लास्य में अर्थ ओर 'सौंदर्य बोध' दोनों थे। इसलिए 'लास्य' विश्व का पहला पूर्ण नृत्य था। शिव भूल ही गए थे कि विश्व की रक्षा के लिए त्रिपुर दानव का संहार किया। ताण्डव में विश्व का 'मांगल्य' तो था, लेकिन वह अंतहीन, विशृंखलित और विध्वंसक होता जा रहा था, जिसमें 'प्रलय की आहट' थी, इसलिए महादेवी पार्वती को सुसंयोजित लास्य जैसे ललित नृत्य की सर्जना करनी पड़ी, वरना विश्व में सौंदर्य और मांगल्य नाम की कोई चीज बचती ही नहीं और इसे बचाने वाली केवल और केवल एक स्त्री शक्ति पार्वती ही हैं। तब जाकर नृत्य का अर्थ 'शिव' यानी 'कल्याण' हुआ है, 'आनंद' हुआ है।

आदि नृत्यों में प्रारंभ से ही यह अर्थ अभिव्यक्त होता रहा कि उल्लास के साथ सौंदर्य और मांगल्य के भाव अंतर्निहित हैं। पार्वती 'प्रश्नकर्ता' हैं और शिव 'प्रवक्ता' हैं। पार्वती 'जिज्ञासा' हैं और शिव उस जिज्ञासा को शांत करने वाले 'उत्तर' हैं। असल बात यह है कि 'जिज्ञासा' ही मूल है, जब जिज्ञासा ही नहीं होगी तो हमें 'उत्तर' कहां से मिलेगा? मैं इसमें स्त्री तत्व की सहज शक्ति को मानता हूं। आदिकाल से स्त्री ने किसी भी सृजन में पुरुष से पहले पहल की है। फिर चाहे गुहा में आश्रय ढूंढ़ने का आग्रह हो, दीवारों पर रेखाचित्र बनाने की कल्पना हो अथवा आग पैदा करने के पीछे का बल हो या बच्चे पैदा करने की इच्छा हो, गुफाओं से निकलकर मैदानों में बसने का सूत्रपात हो, अन्न पैदा करने से लगाकर चूल्हा बनाकर रोटी बनाने तक इन सबमें स्त्री शक्ति की भागीदारी सबसे अधिक है। जब जीवन के गढ़ने के मूल में ही स्त्री समाई हुई है तो फिर जीवन को संवारने में भी उसी शक्ति का ही योगदान मौजूद है। स्त्री ने प्रथम बार गीत, नृत्य, संगीत, चित्र और शिल्प-परंपरा की नींव डाली, जिस पर समस्त मनुष्य संस्कृति का संसार खड़ा हुआ है।

पुरुष यदि 'पूरक' है तो स्त्री 'परिपूरक' है। यह परिपूरकता भी अद्वितीय, अविस्मरणीय और अविभाज्य है। स्त्री की सर्जना जिस सृष्टि को रचती है, वह 'अपरिमेय' है। स्त्री जहां भी होगी, जैसी भी होगी, 'सृजन' जरूर करेगी। उसके

पैर और हाथ कभी रुकते नहीं, कभी थकते नहीं। उसमें एक प्रकार का 'सौंदर्यबोध' या कह लीजिए 'कलाबोध' जन्मजात ही होता है। उसमें 'कलाबोध' ही नहीं होता, बल्कि उसमें बहुत कुछ रचने की भीतरी शक्ति या ताकत भी होती है। घर के जिस कोने को उसे सजाना है, वह उसकी आंखों से बच नहीं सकता। चाहे घर का खुला आंगन क्यों न हो अथवा घर के प्रमुख दरवाजे की चौखट या डेल क्यों न हो, अथवा आलिये के आसपास की रेखाएं क्यों न हों? स्त्री की आंखें और हाथ इन जगहों पर कुछ न कुछ कलाकारी करने के लिए मचल पड़ते हैं। ऐसे ही घर में अनुष्ठान, उत्सव या संस्कार हो, स्त्री बिना गाए और बिना नाचे रह नहीं सकती। जन्म और विवाह संस्कार तो एक तरह के नृत्योत्सव ही हैं, जिनमें कोई भी स्त्री बिना नाचे अपनी खुशी या प्रसन्नता व्यक्त किए बिना नहीं रह सकती। सच तो यह है कि कोई भी घर, कोई भी अवसर, कोई भी कार्य, यहां तक कि जीवन की प्रत्येक गतिविधि बिना स्त्री के परवान नहीं चढ़ती, शोभा नहीं देती। निकष रूप में स्त्री के बिना यह सृष्टि अधूरी है। अपरिभाषित है, क्योंकि स्त्री में सृजनेच्छा सबसे अधिक होती है। यह सृष्टि ही स्त्री सर्जना का स्वत्व है।

भावना से उद्वेलित संचालन ही नृत्य है। नृत्य देह उत्फुल्लता का राग है। नृत्य के बारे में एक महत्त्वपूर्ण बात कही जाती है कि नृत्य अपनी आदिम अवस्था में ही चरम उत्कर्ष पर पहुंच गया था। बाद में लोक में नृत्य की दो प्रविधियां विकसित हुईं। वे हैं—एक आदि नृत्य, जिन्हें आजकल आदिवासी नृत्य कहते हैं और दूसरे लोकनृत्य, जिन्हें आदिम समूहों से इतर लोक समाजों ने आग्रहित किया, विकसित किया। निश्चित रूप से लोक समाज और उनके नृत्य आदिम जीवन में आए नृत्यों से अगली विकसित कड़ी हैं।

नाद मृदंग कला परवीना।
नाचहि चतुर प्रेम रस लीना।

जायसी के इस पद में नृत्य और नर्तकी की कला की परिभाषा छिपी है। शौर्य, साहस और शृंगार की धरती बुंदेलखंड ऐसे नृत्य और नर्तकी के लिए प्रसिद्ध है। बुंदेलखंड की भूमि पर लोकनृत्य की परंपरा बहुत समृद्ध है, जिसमें बुंदेलखंड की स्त्रियों की केंद्रीय भूमिका रही है। इसका उल्लेख इतिहासज्ञ अलबरूनी ने अपने लेख में किया है, "चैत की एकादशी को झूले का दिन (जिसमें महिलाएं झूला झूलती हैं), पूर्णिमा को वसंतोत्सव, अश्विन पूर्णिमा को पशुओं का त्योहार और कुश्तियों का आयोजन, कार्तिक प्रतिपदा को दीपावली का उत्सव तथा

फाल्गुन पूर्णिमा में स्त्रियों का दोलोत्सव एवं होली आदि।'' बुंदेलखंड का लोक संगीत अपनी मौलिक और मधुरता के लिए प्रसिद्ध है। यहां की पारंपरिक लोक धुनें इतनी समृद्ध और विविधवर्णी हैं कि एक विधा के जहां हजारों गीत मिलते हैं, वहां गाने के तरीके भी कई हैं। नृत्य के साथ गाए जाने वाले गीतों की कमी नहीं है, यहां हर अवसर के गीत गाए जाते हैं और उनके साथ कोई न कोई नृत्य किया जाता है। किसी भी अंचल के लोक संगीत की समृद्धि का पता उसकी लोकनृत्य परंपरा से लगाया जा सकता है। इस परंपरा के मूल में बुंदेलखंड की स्त्री है। बुंदेलखंड की नृत्य परंपरा के उद्‌भव और विकास यात्रा को देखें तो ज्ञात होता है कि बुंदेलखंड की नृत्य परंपरा की अंतर्धारा में वहां की कुंवारी लड़कियों और विवाहित स्त्रियों की अहम भूमिका है।

बुंदेलखंड के लोकप्रिय नृत्य 'राई' को जरा गौर से देखिए। राई नृत्य को एक संपूर्ण लोकनृत्य बनाने में सबसे अधिक केंद्रीय भूमिका किसकी है? बुंदेलखंड के राई नृत्य से जरा बेड़नी नर्तकी को हटाकर देखिए। पूरा नृत्य निष्प्राण सा दिखाई देने लगेगा, बेड़नी के हटने से राई नृत्य का संपूर्ण लालित्य ही समाप्त हो जाएगा। इस नृत्य में मृदंगिया पुरुष होता है, लेकिन उसकी प्रवीणता केवल मृदंग वादन में देखी जाती है। मृदंग की लय-ताल पर बेड़नी को नचाने में मृदंगवादक को महारत हासिल होती है, वह मृदंग वादन के साथ थोड़ा-बहुत नृत्य भी करता है, पर असली नृत्य तो बेड़नी ही करती है। राई नृत्य के केंद्र में बेड़नी ही होती है। मेरी पूरी धारणा है कि बेड़नी ने अपनी नृत्य प्रतिभा से राई नृत्य को गढ़ा है। नृत्य करते-करते नृत्य की अनेक मुद्राएं बेड़नियों ने अपनी प्रत्युत्पन्नमति से समय-समय पर जोड़ी हैं, जिससे न केवल राई नृत्य का आकर्षण बढ़ा है, बल्कि राई नृत्य की संरचना में बेड़नियों ने सहज रूप से सृजनात्मक पहल भी कर डाली है। राई नृत्य का यह रूप, जो आज हमें दिखाई देता है, वह कोई एक दिन में रूपायित नहीं हुआ है, उसके निर्धारण में कई कुशल नर्तकियों की नृत्य कुशलता का योगदान है। बुंदेलखंड में कई बेड़नियां कुशल नर्तकियां हुई हैं, जिनके नामों की धूम जनसाधारण से लगाकर राजघरानों तक पहुंची थी, जिनमें रजिया, गिरजिया, चंद्रा, धनकुंवर, शांति, कांति और मुन्नी आदि प्रमुख हैं। ये सब अपनी नृत्य मुद्राओं, लटकों-झटकों और नृत्य अदायगी की विशेषताओं के लिए ख्यात रही हैं। बेड़नियों ने ही राई नृत्य को संपूर्ण रूप से उद्‌दाम शृंगार और प्रेमपरक बनाया। इसी विषय को लेकर बुंदेलखंड में हजारों स्वांग गीत रचे गए

और गाए गए, जिन पर बेड़नियों ने उत्कृष्ट भाव-नृत्य का सृजन किया है। राई नृत्य की आकर्षक वेशभूषा स्वयं बेड़नी ने गढ़ी है, जिसे बेड़नी ने राई नृत्य परंपरा के अनुसार कई वर्षों के नृत्य अनुभव से विकसित किया है। विशेषकर घेरदार घाघरा और ओढ़नी राई नृत्य की शान है। बेड़नी के चुन्नटदार घाघरे पर ही सारा राई नृत्य आधारित होता है। घाघरा ही राई नृत्य की अनेक मुद्राएं गढ़ने में सक्षम होता है। राई नृत्य में घाघरा बेजोड़ होड़ का पर्याय बन जाता है। चपल मृदंगिया बेड़नी के घाघरे की छाया से भी दूर भागता है। नृत्य का यह उसूल भी है, जिससे नृत्य में एक तरह की तेजी और चपलता का वातावरण निर्मित होता है। उस समय राई नृत्य और उत्तेजक हो जाता है, जब बेड़नियां क्षिप्रगति से कमर की लटकन प्रस्तुत करती हैं, तब राई नृत्य उद्दाम लक्ष्य को प्राप्त करता नजर आता है और उसे देखकर दर्शक धन्य-धन्य हो जाता है। ऐसा कमाल केवल बेड़नियों की कमर हिलाने की मुद्रा ही कर सकती है, जिसे देखने के लिए दर्शक-श्रोता राई नृत्य में बार-बार लौटने का प्रयास करता है। राई नृत्य से कभी जी ही नहीं भरता। यह भी सिर्फ बेड़नियों के कारण ही है, जिन्होंने अनथक परिश्रम से राई को इतना उत्तेजक लोक नृत्य बनाया है। ऐसा मनोरंजक लोकनृत्य और कहीं दिखाई नहीं देता।

भले ही बेड़नियों को समाज में वैसी प्रतिष्ठा नहीं मिली हो, क्योंकि तथाकथित समाज ने ही उसे देह व्यापार में भी धकेला है। जहां उसे राई नृत्य को गढ़ने, सजाने-संवारने और जीवंत रखने का पूरा 'कला श्रेय' मिलना चाहिए था, वहां उसे केवल नाचने वाली, जलालत की जिंदगी जीने वाली मात्र एक 'स्त्री देह' बना दिया है, पर इसके ऊपर सोचता हूं तो बेड़नियों ने अत्यंत महत्त्वपूर्ण अप्रतिम कार्य भी किया है। पुरुष प्रधान समाज में सब कुछ सहन करते हुए भी बेड़नी स्त्री ने राई जैसे नृत्य को समर्पित होकर आज तक जीवित और जीवंत रखा। इस मायने में बुंदेलखंड की बेड़नी स्त्री ने राई नृत्य के लिए साधारण ही नहीं, असाधारण कार्य किया है। जिस दिन बेड़नी, बेड़नी नहीं रहेगी, उस दिन राई, राई नहीं रहेगा। फिर उसमें एक लोकनृत्य की ऊंचाइयां नापना मुश्किल हो जाएगा। राई नृत्य में बुंदेलखंड की 'स्त्री की शक्ति' नहीं दिखती, लेकिन कला की 'अपरिमित भक्ति' दिखाई देती है। राई में देह का राग जितना समावेशी है, उतना ही उसमें विराग का विस्तार भी है। इसीलिए उसमें एक उत्कट लालसा का अभौतिक संसार भी मौजूद होता है। राई के बारे में कही गई इस बात को माधव

शुक्ल 'मनोज' ने पहले 'राई' पर केंद्रित अपने मोनोग्राफ में लिखा है—"जब रात भर मशाल के प्रकाश में बेड़नी फागें, स्वांग, ख्याल और राई गीत गाती हुई सौ चुन्नटों वाला लहंगा फहराती, हवा में चूनरी लहराती नाचती हैं, तब उनके अंगों की थिरकन और लटकन बहुत ही आकर्षक होती है। दर्शक एकटक देखता ही रह जाता है। बेड़नी के साथ मृदंगिया व ढोलकिया की होड़ उस नृत्य की आत्मा है। इस होड़ में ही राई नृत्य का विशेष कलापक्ष उभरकर सामने आता है।" कुल मिलाकर यह स्त्री और पुरुष दोनों के समन्वय का नृत्य है, इसलिए स्त्री देह का लालित्य और पुरुष देह की चपलता; दोनों एक साथ दिखाई देते हैं। यही कारण है कि राई नृत्य में शिव के तांडव की उत्तेजना और पार्वती के लास्य की कोमल संवेदना का संपुट बहुत स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

'बधाई' बुंदेलखंड की मांगलिकता का नृत्य है, जो खुशी के हर अवसर पर किया जाता है, चाहे बच्चे का जन्म हो, विवाह हो, विभिन्न अनुष्ठानिक संस्कारों के निर्वाह के वक्त बधाई नृत्य करने की परंपरा लगभग समूचे बुंदेलखंड में प्रचलित है। शीतला माता की मनौती पूरी होने पर तो बधाई नृत्य अवश्य किया जाता है। यह देवी शक्ति की कृपा का धन्यवाद स्वरूप नृत्य है। बधाई नृत्य में बुंदेलखंड की स्त्री की प्रमुखता इसलिए है कि नृत्य में स्त्री के बिना अकेला पुरुष अदायगी नहीं कर सकता। संभवतः जब से बुंदेली समाज और संस्कृति का निर्माण हुआ, तब से स्त्रियों की सक्रियता से बधाई नृत्य का प्रादुर्भाव माना जा सकता है।

परंपरा में बधाई नाचना प्रत्येक बुंदेलखंड की स्त्री का कर्तव्य है, जिसे बधाई नाचना नहीं आता, संभवतः वह मन की मांगलिक उमंग से वंचित ही रह जाती है। आंगन में बधाई के बाजे बज रहे हों तो किसके पैर थिरकने नहीं लगेंगे। बाजों की लय-ताल पर पहले कोई एक स्त्री बधाई नाचने खड़ी होती है, तेजी से नाचने लगती है, उसे देखकर स्त्री-पुरुषों में उत्साह का संचार हो जाता है, फिर दूसरी स्त्री उठ खड़ी हो जाती है, फिर कोई पुरुष नर्तक भी नृत्य में कूद जाता है, धीरे-धीरे कई स्त्री-पुरुष युगल मौज में बधाई नाचने और गाने लगते हैं। बधाई नृत्य की शुरुआत स्त्री से होती है और समापन युगल समूहन से होता है। बधाई का सारा दारोमदार स्त्रियों पर ही होता है। बधाई गीत, बधाई नृत्य मुद्राएं और सांगीतिक सोहबत सबकी सब बुंदेलखंड की स्त्री चेतना और संस्कृति की परिचायक हैं, जिसमें बुंदेलखंडी स्त्री की समस्त दैहिक और आत्मिक उर्जा के

दर्शन होते हैं। बधाई में शृंगार और प्रेम की संपूर्ण उपस्थिति होती है, जिसमें आनंदानुभूति अपने चरम पर दिखाई देती है। बधाई खुशी और प्रसन्नता का नृत्य है। ढपले की बधाई ताल बधाई नृत्य को संपूर्णता प्रदान करती है।

नौरता पूर्णतः स्त्रीपरक नृत्य है, परंपरा में यह कुंवारी कन्याओं का एक आनुष्ठानिक नृत्य है। समूचे भारत के साथ बुंदेलखंड की कुंवारी कन्याएं नवरात्रि के दिनों में नौरता पर्व मनाती हैं। यह पूरे नौ दिन चलता है। यह पर्व स्वयं शक्ति की आराधना का अवसर होता है। देवी को प्रसन्न करने के लिए कुंवारी कन्याएं नौरता व्रत और नृत्य गीत के माध्यम से अच्छा वर पाने के लिए प्रार्थना करती हैं। कहते हैं, जो लड़की नौरता व्रत और नृत्य सच्चे मन से एक बार भी पूरा कर लेती है तो उसकी मनोकामनाएं अवश्य पूरी होती हैं।

एक आततायी सुअटा दानव के आतंक को तोड़ने के लिए कुंवारी कन्याएं नवरात्रि भर शक्ति की आराधना करती हैं, व्रत रखती हैं, उसके सामने गीत गाती हैं और समूह में नृत्य करती हैं। यह नृत्य घट स्थापना से शुरू होता है। सजी-धजी लड़कियां पार्वती के प्रतीक छेदयुक्त मिट्टी के सुंदर कलश को सिर पर रखकर उसमें जलते दीये की जगमग रोशनी के साथ जब नौरता पर्व के पारंपरिक बुंदेली संगीत के साथ नृत्य करती हैं तो ऐसा लगता है, जैसे शक्ति स्वयं प्रकाशमर्या होकर नृत्य करने उतर आई हैं।

चाहे बधाई हो अथवा नौरता या राई-नृत्य के संयोजन में, रूप गढ़न में बुंदेलखंड की स्त्री ने अपनी पारंपरिक प्रतिभा, प्रज्ञा और संज्ञान का सृजनात्मक परिचय दिया है, इसमें कोई शक नहीं है।

बुंदेलखंड की लोक देवियां

◆ *सुधा गुप्ता*

भारत में प्रचलित देवी उपासना की धार्मिक पृष्ठभूमि में जब हम बुंदेलखंड क्षेत्र पर दृष्टिपात करते हैं तो ज्ञात होता है कि यह क्षेत्र अत्यंत प्राचीनकाल से शक्ति पूजा का प्रमुख केंद्र और शैव-शाक्त मंत्र-तंत्र-सिद्धि में विश्वास रखने वाला जनपद रहा है। देवी भागवत में शक्तिपीठों का उल्लेख विंध्याचल और कालिंजर पर भी मिलता है। श्री दुर्गा सप्तशती के ग्यारहवें अध्याय में भगवती ने अपने सात अवसरों की कथा में विंध्याचल निवासिनी की कथा भी कही है। यहां पुरातात्त्विक सर्वेक्षण में भी बौद्ध एवं गुप्तकालीन देवी प्रतिमाएं और मातृकाओं की मूर्तियां काफी संख्या में प्राप्त हुई हैं। यहां प्राचीनकाल से ही व्रात्य, पुलिंद, गौंड, भील, शबर आदि अनार्य-अशिक्षित जातियों का बाहुल्य रहा है। महाभारत आदि पुराणों में वैदिक युग से ही बुंदेलखंड में इन जातियों के निवासी होने के पर्याप्त साक्ष्य मिलते हैं। बुंदेलखंड का पठारी पर्वतीय प्रदेश अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण सदैव से शैक्षिक और आर्थिक दृष्टि से पिछड़ा रहा है। अतएव अभावग्रस्त कठोर जीवन के कारण यहां के निवासियों में साहस, संघर्ष की प्रवृत्तियां और स्वभाव से

अक्खड़पन आ गया, जिसने उन्हें शक्ति पूजक बना दिया। यहां पर सबसे प्राचीनतम मठ और मंदिर शिव और देवी के ही मिलते हैं।

अपनी कुछ आंचलिक विशिष्टताओं को छोड़कर बुंदेलखंड की शक्ति उपासना बहुत अंश तक भारत में प्रचलित शक्ति उपासना का ही प्रतिनिधित्व करती है। भारत के अन्य अंचलों की तरह बुंदेली लोक जीवन में भी अनेक देवियों की पूजा प्रचलित है। यहां गांव-गांव में देवियों के मठ हैं। प्रत्येक गांव की एक स्थानीय देवी होती है, जिसे गेंउड़े की देवी कहते हैं। इस देवी को किसी पूज्य वृक्ष के नीचे स्थापित कर दिया जाता है। सभी हिन्दू वेद, पुराणों, तंत्र ग्रंथों में वर्णित देवी-देवताओं को मानते हैं, किंतु लोकजीवन में उनका रूप बदलकर लौकिक हो गया है। बुंदेली लोक ने शास्त्रोक्त पद्धतियों को अपने अनुरूप ढालकर उन्हें सरल, सहज और लोकोपयोगी बना लिया है और वे लोक मुख में बुंदेली नाम पाकर उनकी अपनी मौलिक सी लौकिक देवियां बन गई हैं। बुंदेली परिवारों में विभिन्न पूजा के अवसरों पर जो भित्तिचित्र बनाए जाते हैं, खूंट निकाले जाते हैं, चौक पूरे जाते हैं, उनमें शास्त्रोक्त पद्धति के तंत्र-मंत्र चक्र घुले-मिले मिलते हैं, जो लोक में आज विस्मृत हो चुके हैं। उदाहरणतः दीपावली पर बनाई जाने वाली सुराती सोलह खंड की होती है। देवी का आवाहन करने के लिए शास्त्रों में सोलह खंड का एक मंत्र है। हिन्दू धर्म की मान्यता के अनुसार कोई भी देवी-देवता मंत्र के आवाहन करने पर ही आते हैं। इसी प्रकार लक्ष्मी पूजन में पंद्रही बनती है। पंद्रही में कहीं से भी जोड़ें पंद्रह का ही जोड़ होता है। इसमें भी सुख, स्मृद्धि, लाभ का ही मंत्र है।

बीजासेन माई : बीजासेन माई की पूजा को बुंदेली महिलाएं 'पाटा भरना' कहती हैं। इनके पूजन में उरैन घर के भीतर ही डाला जाता है। बीजासेन का पाटा वर्ष में एक बार या तीसरे साल सोमवार या शुक्रवार को बीजासेन की मड़िया पर जाकर भरा जाता है और फिर घर आकर सुहागनें जिमाई (भोजन कराना) जाती हैं। विवाह और पुत्रजन्म पर इनकी पूजा अनिवार्य होती है। जिनके यहां बीजासेन पूजती हैं, उनके यहां चढ़ावे के साथ बीजासेन की तबिजिया चढ़ाना आवश्यक होता है। यह एक प्रकार का यंत्रात्मक स्वरूप है। इसमें स्वर्ण या चांदी के पत्ते पर सात या नौ पुत्तलिकाएं अंकित की जाती हैं, जिसमें मुखाकृति की प्रतीक गोल बिंदुओं के साथ सीधी खड़ी लकीरें बनी रहती हैं। विवाह के समय पूजन कर यह यंत्र ताबीज की तरह स्त्रियां आजीवन अपने गले में धारण करती हैं। लोक

विश्वास है कि जो स्त्रियां अपनी यह पुतरिया उतारकर रख देती हैं, उनके यहां कुछ न कुछ विपदा आती है। इस पूजा में चूने से पुती दीवार पर हल्दी अथवा घी में सिंदूर से नौ टिपकियां रखी जाती हैं। इन टिपकियों के ऊपर एक पुतरिया बनाई जाती है, जो बीजासेन देवी होती हैं। उसी के नीचे गोबर से लीपकर आटे का चौक पूरकर और पटा रखकर सवा गज का लाल कपड़ा बिछाया जाता है, जिस पर नौ चौक पूरे जाते हैं। उन पर चार-चार पूड़ी और उन पर मलींदा (पूड़ी का चूरा कर बनाया गया हलुवा) रखकर के नौ खूंट (कोरा) रखे जाते हैं, उस पर नौ प्रकार की नौ-नौ वस्तुएं रखी जाती हैं। पान के ऊपर नौ हल्दी की गांठ, नौ साबुत सुपारी, नौ नारियल के टुकड़े, नौ चिरौंजी, नौ दाख, नौ मखाने, नौ लौंग, नौ इलायची, नौ डोंडा। इसमें नौ सुहागिनें जिमाई जाती हैं। पूड़ी और लपसी के लिए सवा सेर आटा लिया जाता है, किंतु विवाह और जन्म पर दोहरा पाटा भरा जाता है, तब नौ के स्थान पर अठारह खूंट रखे जाते हैं और अठारह सुहागनें जिमाई जाती हैं। सभी सुहागिनें और घर की बहुएं-बेटियां अपनी-अपनी बीजासेन की पुतरिया गले से उतारकर धोकर पूजने के लिए उसी पटा पर रख देती हैं।

पाटा बीजासेन के मंदिर में पुजारी द्वारा भरा जाता है। जिनके घर में पूजा होती है, उनके यहां घर की जेठी बड़ी महिला मैर के कोठे में सबसे पहले दीवाल पर बनी पुतरिया को महावर लगाती है, फिर छोटी बहुएं सुहागिनों को महावर लगाती हैं। घर की जेठी बीजासेन की पुतरिया पर जल चढ़ाकर हल्दी, रोरी, अक्षत और फूल चढ़ाती हैं, बैसादुर लाकर घी और धूप से होम करती हैं, अगरबत्ती और आरती जलाकर ताबीजों की पूजा करती हैं। नौ कोरों को पूजती हैं। आरती कर निम्न गीत गाती हैं–

'सुहागिल रानी मोरे महल होकें जाइयो'
सुहागिल रानी सेंदूर तो घरैई धरे हैं।
सुहागिल रानी मांग भराये घरै जइयो।।
सुहागिल रानी बूंदा तो घरैइ धरे हैं।
सुहागिल रानी बूंदा लगाये घरे जइयो।।
सुहागिल रानी बीरा तो घरैइ धरे हैं।
सुहागिल रानी बीरा रचाय घरै जयौ।।
सुहागिल रानी जोरौ तो घरैइ धरे है।
सुहागिल रानी जोरौ पैर घरै जइयो।।

सुहागिल रानी चुरियां तो घरैइ धरी है।
सुहागिल रानी चुरिया पैर घरै जइयो।।
सुहागिल रानी मांदी तौ घरैइ धरी हैं।
सुहागिल रानी मांदी रचाय घरै जइयो।।
सुहागिल रानी माहुर तो घरैइ धरौ है।
सुहागिल रानी माहुर रचाय घरै जइयो।।
सुहागिल रानी बिछिया तौ घरैइ धरै हैं।
सुहागिल रानी बिछिया पैर घरै जइयो।।

फिर सभी महिलाएं श्रद्धा से बीजासेन मैया के सम्मुख सिर नवाकर उनका पैर छूती हैं। पूजा करने वाली जेठी महिला उनको टीका करके मांग में सिंदूर भरकर बूंदा, चूड़ी और एक-एक कोरा देती है। सुहागिनें यह कोरा अपनी साड़ी के आंचल में लेती हैं और पूजा करने वाली जेठी और घर की सभी बड़ी-बूढ़ियों के पैर छूती हैं। तत्पश्चात आमंत्रित सुहागिनें भोजन कर अपने-अपने कोरे लेकर घर चली जाती हैं। प्रसाद-स्वरूप वितरित किया जाने वाला 'कोरा' केवल उन्हीं को दिया जाता है, जिनके यहां बीजासेन की मान्यता होती है। यह प्रसाद घर के लड़कों को ही दिया जाता है। कुंआरी लड़कियों को नहीं देते हैं और न ही वे पूजा देखती हैं और न ही उन्हें आरती और दीये की जोत देखने दी जाती है, जबकि पिछौर, बामोर कलां आदि गांवों में बीजासेन के प्रसाद सभी को बांटने की मान्यता है। यहां पर पुजारी के पाटा भर दिए जाने के बाद मंदिर में ही सभी आमंत्रित नाते-रिश्तेदारों को भोजन कराया जाता है और वहां उपस्थित सभी स्त्री-पुरुषों, बालकों को मलीदे का प्रसाद दिया जाता है। इन गांवों में बीजासेन के प्रसाद का बड़ा ही महत्त्व है। मालूम होने पर कि मंदिर में किसी का पाटा भर रहा है, बिना आमंत्रित किए हुए भी प्रसाद लेने लोग आ जाते हैं। विवाह हो जाने पर जिन लड़कियों की ससुराल में बीजासेन नहीं होती हैं, वे अपने मायके में आकर पाटा भरती हैं।

बीजासेन देवी की मान्यता बुंदेलखंड के झांसी-दतिया जिलों, विशेषतया ओरछा की अष्टमैया कही जाने वाली जागीरों एवं बुंदेलखंड से लगे मालवा के बौद्ध धर्म से प्रभावित क्षेत्र में ही है।

सामाजिक परिप्रेक्ष्य में हम यह कहना चाहेंगे कि बीजासेन में अंकित नौ देवियों की नौ शक्तियों को उन प्रतीकों के रूप में लिया जा सकता है, जो स्त्री में उसके सुखी दांपत्य जीवन, परिवार के कुशल संचालन, संतान के पालन-पोषण तथा

उसकी भौतिक उन्नति के साथ ही आत्मिक-आध्यात्मिक विकास और रक्षा हेतु होना आवश्यक है। जैसे सृष्टि की धुरी आदिशक्ति है, घर की धुरी स्त्री है। मां, पत्नी, बेटी, गृहिणी की अपनी अनेक भूमिकाओं में देवी मां से प्रेरणा लेते हुए स्त्री परिवार व समाज के प्रति अपने अनेक दायित्वों का बखूबी निर्वाह कर सकती है। मां के अष्टभुजी रूप से स्त्री सशक्त बहुआयामी व्यक्तित्व की प्रेरणा ले सकती है। हिन्दू संस्कृति में विवाह कामवासना की तुच्छ प्रक्रिया मात्र नहीं है, अपितु वह कतिपय कर्तव्यों की पूर्ति के लिए एक सांसारिक विधि है। रक्तबीज काम है, इच्छा है। इच्छाएं अनंत है। विषय-वासनाओं पर विजय पाना कठिन है। देवी द्वारा बीजरक्त के वध की भांति वे अपनी विषय-वासनाओं को विजित कर संयमित और परिष्कृत रतिसुख के साथ समाज और देश कल्याण के लिए अपने व्यक्तिगत आनंद और सुख की आहुति देने का संकल्प ले सकती हैं।

देवी मां का दिव्य रूप आराध्य तो है ही, साथ ही मानव जीवन को उन्नत बनाने के लिए स्त्रियों के लिए आदर्श भी है। इसीलिए विवाह जैसे महायज्ञ के अवसर पर बीजासेनी ताबीज में इन नौ देवियों का आवाहन कर उन्हें ताबीज में 'स्थित कर' दिया जाता है और उनका पूजन कर नववधू के गले में पहना देते हैं, ताकि ये शक्तियां समय-समय पर उसमें संचरित होती रहें, जिससे वह अपने पुरुष की शक्ति बन अपने सभी तरह के कर्तव्यों का निर्वाह करती हुई धर्म के साथ परिवार का कुशल संचालन कर सके। संभवतः इसीलिए स्त्रियों को बीजासेन की पुतरिया सदैव ही गले में धारण करना आवश्यक होता है।

बीजासेन के अतिरिक्त अन्य अनेक लोक देवियां हैं, जिनकी शांति, सौभाग्य, रोगों, आपत्तियों आदि से रक्षा हेतु विभिन्न अवसरों पर पूजा होती है। बुंदेलखंड में जो देवियां पूजी जाती हैं, उनका संबंध विभिन्न कालों, जातियों, वर्गों, संस्कृतियों से है, पर ये देवियां किसी भी जाति, वर्ग, धर्म की हों, बुंदेली लोक मानस में इन सभी के लिए समान आदर व श्रद्धा की भावना पाई जाती है।

माय देवी : माय देवी पूजा साल में तीन बार होती है। चैत्र और क्वार माह की नवरात्रि पर नौंमी के दिन एवं दीपावली पर, इसे माय भरना कहते हैं। स्त्रियां किसी भीत पर या कोरे कपड़े पर पुतरियों के मुंह बनाकर इनकी पूजा करती हैं। शास्त्रों में गौर्यादि षोडशमात्रिका और सप्तघृत मातृका का उल्लेख आता है। माय पूजा मातृका पूजन ही है। इनमें कुलदेवी का आवाहन किया जाता है। मांगलिक अवसर पर कल्याण प्राप्ति और कार्य की निर्विघ्न संपन्नता

के लिए कहीं गोबर तो कहीं मिट्टी अथवा शक्कर की पुतलिया बनाकर उसकी प्रतिष्ठा की जाती है। विवाह के अवसर पर यह पूजा अनिवार्य होती है। विवाह कार्य संपन्न हो जाने पर गौरइया होती हैं, जिसमें सुहागिनों की पूजा के साथ गोरी या मातृकाओं का विसर्जन किया जाता है। इसका प्रसाद स्वरूप कोरा सगे-संबंधियों व कुटुंबियों को ही दिया जाता है। कुटुंब के सदस्य कहीं भी रहते हों, आकर इस पूजा को एक साथ करते हैं। इस प्रकार पूजा के बहाने परिवार में सामंजस्य व जुड़ाव बना रहता है।

षष्ठी देवी : लोक में यह पूजा छठी नाम से जानी जाती है। शिशु जन्म के छठवें दिन यह पूजा महिलाएं ही करती हैं। इसमें दीवाल पर गेरू से एक पुतरिया बनाकर पंचोपचार पूजा कर गुड़ आदि का भोग लगाया जाता है। पौराणिक मान्यता के अनुसार यह बाल रक्षक मातृका एवं सिद्ध योगिनी है, जो सदा बालकों की रक्षा करती हैं। तंत्र शास्त्रानुसार मृत वंध्या आदि दोषों की शांति एवं बालकों के विविध कष्टों की निवृत्ति के लिए इनकी उपासना फलप्रद है।

वैमाता : संस्कार एवं भाग्य शक्ति मातृका हैं। बुंदेलखंड में प्रसव पीड़ा के समय घर की बुजुर्ग महिलाएं कुलदेव, इष्टदेवी को मनाने के साथ ही वैमाता मैया की मनौती मानती हैं। इस पूजा में छलनी में जौ भर दिया जाता है और आड़ा-काड़ा एक प्रकार का यंत्र किया जाता है, फिर बालक के जन्म लेने के उपरांत छठी की रात को छठी के सामने अनार की कलम रख दी जाती है, जिससे वैमाता मैया बच्चे का भाग्य लिख सकें और रात्रि जागरण करते हुए वैमाता के गीत गाए जाते हैं। एक गीत निम्नवत है–

मेरो नगर इन्दर पुर गांव वैमाता है मेरो नाव।
जूरी को बांधो संयोग करनी करै सो पावै
मो लेखनी ने असुर संहारे पांचों पंडाहि जारे वारे
मो लेखनी तें खाहर कौन चार लाख चौरासी जौन

दशारानी : यह पूजा बुंदेलखंड में अपने मौलिक रूप में होती है। इसमें तिथि और मास का कोई विचार नहीं है। दशारानी की पूजा से धनधान्य की वृद्धि होती है, ऐसी लोक मानस में आस्था है। दशारानी की उपासना का प्रारंभ 'सूत के गड़े' द्वारा होता है। गड़ा लेने की भी एक विधि है–जब किसी गाय, घोड़ी अथवा स्त्री के पहला बच्चा होता है अथवा तुलसी के पौधे में जब प्रथम मंजरी निकले, तब गड़ा लिया जाता है। स्त्री के गड़ा लेनें में एक और प्रतिबंध है। उस

स्त्री का गर्भ किसी तंत्र-मंत्र या अन्य साधन द्वारा न रहा हो। गड़ा दस सूत्र का बनाया जाता है। नौ सूत्र धागे के और एक सूत्र जो गड़ा लेने वाली स्त्री होती है, उसके आंचल (साड़ी का दाहिना छोर) के धागे का होता है। जितनी स्त्रियां गड़ा लेती हैं, वे सब उस दिन से एकत्रित होकर दशारानी की कहानियां कहती हैं। दसवें दिन अपने-अपने घर पर गड़ा का पूजन करती हैं। पूजन के दिन उपवास करती हैं। घर को गाय के गोबर से लीप-पोत कर स्वच्छ करती हैं, भोग के लिए दस फरा बनाती हैं (पानी में उबली हुई पूड़ी)। चौक पूर कर एक पट्टे पर चंदन की दस पुतरियां बनाती हैं अथवा मिट्टी की दस डेलियां रखकर उनकी हरदी-अक्षत् से पूजा करती हैं। गड़ा को दूध में धोकर पट्टे पर रख हल्दी अक्षत से पूजती हैं। पूजन समाप्त होने पर परिवार की वृद्धा महिला दशारानी की कथा-कहानी कहती है। दस दिन अलग-अलग तरह की दस कहानियां कही जाती हैं। एक कथा निम्नवत है–

वर पै चढ़ीं दसारानी। वर सें उतरी पीपर पै चढ़ीं मोरी दसारानीं।
धन धान्य देय मोरी दसारानीं। जै होवै दसारानी।

इसकी पूजा की सामग्री कुएं में सिराई जाती है। जैसा कि स्पष्ट है कि पूजा का संबंध शिशु जन्म से है। शिशु के जन्म के बाद पहले दस दिन पहली बार, गर्धधारण करने वाली स्त्री एवं नवजात शिशु दोनों ही स्वास्थ्य की दृष्टि से बहुत नाजुक होते हैं। चूंकि स्त्री पहली बार गर्भधारण करती है, इसलिए और भी चिंता रहती है। जच्चा-बच्चा के ये दस दिन ठीक से निकल जाएं, इसके लिए दस सूत्रों का गंडा लेकर दशारानी से मनौती मानी जाती है। गंडे के दस सूत्र दस दिन के प्रतीक हैं। दसवें दिन दशारानी की पूजा कर पूजन सामग्री कुएं में विसर्जित कर स्त्रियां यह प्रार्थना करती हैं कि कुएं की भांति ही जच्चा के स्तनों से अपने बच्चे के लिए दूध की झिर कभी खत्म न हो और दोनों ही धनधान्य से आपूरित रहें। जनजीवन में गाय, घोड़ी, तुलसी की उपयोगिता विदित ही है, अतः ऐसी कामना इनके लिए भी की जाती है, पर लोक में इस पूजा का मूल उद्देश्य विस्मृत हो गया है और स्त्रियां अपनी किसी भी वांछित कामना की पूर्ति हेतु दशारानी का गंडा लेती हैं। उनकी पूजा करती हैं।

महालक्ष्मी देवी : पितृपक्ष में आश्विन कृष्णपक्ष माह की अष्टमी को महालक्ष्मी देवी का पूजन होता है। इस पूजा-व्रत को सुहागवती स्त्रियां अखंड सुहाग, धन-धान्य, सुख-समृद्धि की कामना से करती हैं। इसकी पूजा में गड़ा लिया

जाता है, जिसमें सोलह गांठें होती हैं। भाद्र शुक्ल अष्टमी से इस अनुष्ठान का आरंभ होता है। इस दिन स्त्रियां पास के नदी या तालाब पर नहाने जाती हैं। अपने सिर पर चालीस लोटे पानी डालती हैं और दूब सहित सोलह अंजलि से सूर्य को अर्घ्य देती हैं—इसे सोरा ढारना कहते हैं। घर आकर पंडित से गड़ा लेती है। इस गड़े की नित्य पूजा होती है। आश्विन कृष्ण अष्टमी को महापूजा होती है। इस दिन भी सिर से स्नान कर सोरा ढारे जाते हैं। इस व्रत के संबंध में सोलह की संख्या का बड़ा महत्त्व है। इसमें पपरिया, गुजियां, सुरा के कोरे पसारे जाते हैं। इस पूजा में सुरा (आटे में गुड़ मिलाकर गड़ा कर गोल मठरी की तरह बनाते हैं) बनाना अनिवार्य होता है। महालक्ष्मी के लिए बेसन-मैदे के नख से शिख तक के सोलह प्रकार के आभूषण बनाए जाते हैं। आटे के सोलह दीपक जलाए जाते हैं। पुरोहित पूजा करवाकर सोलह सोरापूजा करने वाली स्त्रियों के आंचल में देता है। चालीस सुरा पंडित को दिए जाते हैं। इस व्रत पर सोलह बोल की कहानी सोलह बार कही जाती है, जो इस प्रकार है—'आमौती दामौती रानी पोला परपाटन गांव, मगर सेन राजा, बम्मन बरुआ कहें कहानी, सुनो हो महालक्ष्मी रानी, हमसे काते तुमसों सुनते सोरा बोल की एक कानियां।'

कालिका देवी : यह पूजा वर्ष में एक बार अधिकांशतः आषाढ़ मास में शनिवार को की जाती है। इसमें सवा पाव या सवा सेर का प्रसाद बनता है। पूजा में नौ प्रकार की वस्तुओं को नौ जगह रखा जाता है। निम्न जातियों में कालिका की बहुत मान्यता है, पर अब उच्च वर्ग में भी इनकी पूजा का प्रचलन हो गया है। पूजन में बहुधा लाल रंग की वस्तुओं का प्रयोग होता है। कुछ समुदायों में बलि या प्रतीक बलि भी दी जाती है। पौराणिक मान्यता के अनुसार यह काली का रूप है।

शीतला माई : वैशाख की अष्टमी या नौमी को शीतला माता के पूजन का विधान है। प्रातः मंदिर में जाकर देवी को हलुवा, अठवाई, कौरी, फरा का भोग लगाते हैं। इसे बासेरा चढ़ाना कहते हैं। इस दिन बासी भोजन करने की परंपरा है। घर में अग्नि नहीं जलती। भोजन एवं देवी को चढ़ाने वाला प्रसाद एक दिन पूर्व रात्रि में बना लिया जाता है। प्राचीनकाल में चेचक आदि रोगों की शांति के लिए शीतला माता की उपासना-अर्चना की जाती थी—यह परंपरा ग्रामीण समाज में आज भी प्रचलित है। चेचक की देवी के रूप में शीतला देवी की मान्यता देश के अन्य भागों में भी है।

रक्षिका माई : जब बच्चा चलने लगता है, तब महिलाएं अपने बालक को रक्षिका माई के चरणों में डाल देती हैं और उन पर हाथ लगवाकर आपत्तियों से रक्षा हेतु उसकी कमर में काला धागा बांध देती हैं, जिसे रक्कस देना कहते हैं। यह प्रथा ग्रामीण अंचलों में आज भी है।

खेरे की भुवानी : इनके चबूतरे प्रायः गांव की सीमा पार हुआ करते हैं। सीमा को गेंउड़ौ भी कहते हैं, इसलिए इस देवी को गेंउड़े की देवी भी कहा जाता है। चबूतरे पर छोटी-सी मड़िया में लाल-काले रंग की मूर्ति होती है। गांव में महामारी या अन्य विपत्ति पर इनकी विशेष पूजा का आयोजन किया जाता है। एक बकरी का बच्चा अथवा मुर्गी, लाल रंग का कपड़ा, गोटी, चूड़ी, कचरा, महावर, दीपक और दारू से यह पूजा होती है। यह पूजा रात में होती है। पंडा के पूजा कराते समय गांव का गुनिया भी होता है। एक गुनिया वह होता है, जिसे खैर माता का भाव आता है। भाव आने पर वह अपना सिर विचित्र रूप से हिलाता है, उछलकूद करता है, भाव आने पर पंडा भूमि पर दारू और कहीं-कहीं रक्त डाल देता है, जिसे घुल्ला चाट जाता है।

मढ़ई देवी या हुलकी देवी : यह हैजा महामारी की देवी मानी जाती है। इनका वास जनविहीन मैदान में माना जाता है। इनके बारे में लोक में एक उक्ति है–

घरर-घरर नदिया वहै, मरई अनहावन जाय।
पटिया पारै रंग भरी सिंदूर भर लाई मांग।

हैजा या महामारी को गांव वाले हुलकी पड़ना भी कहते हैं। इसलिए इनका नाम हुलकी भी है। हुलकी देवी का संबंध हरदौल की भौजी, जो ओरछे के राजा जुझारसिंह की पत्नी थी, उनसे जोड़ा जाता है। जुझारसिंह का अपनी पत्नी से हरदौल को विष दिलवाए जाने का प्रसंग बुंदेलखंड में सर्वविदित है।

सावन-भादों के महीने में गाज 'बिजली' से रक्षा के लिए 'गाज परमेश्वरी' की पूजा की जाती है। अच्छी वर्षा की कामना से 'मेघासिन मईया' की पूजा की जाती है। सर्पों जैसे विषैले जंतुओं से रक्षा हेतु 'नाग माता', 'अहोई माता' की पूजा होती है। विभिन्न कामनाओं के उद्देश्य से बुंदेलखंड में अलग-अलग तिथियों में 'चौथ मैया, छट मैंया, परमेश्वरी, आसमाई की पूजा' होती है। मनौती के पूरे होने पर कुछ जातियों में 'आसमानी देवी' की पूजा होती है, जिसमें देवी को बकरे की बलि दी जाती है।

विवाह पर और मन्नत पूरी होने पर 'सुहागिले' करने की प्रथा है। इसमें सुहागवती स्त्रियों को आमंत्रित किया जाता है और भोजन कराकर माहुर लगा

सामर्थ्यानुसार सुहाग के चिह्न चूड़ी, बिछिया आदि देते हैं। यहां बीजासेन, कालिका, औसान बीवी या हुर्रेयां, संकटा देवी, आसोमाई, तुरत देवी, कसालो देवी आदि अनेक देवियों के साथ गणेश की सुहागिलें, रसगुल्ला की सुहागिलें आदि भी प्रचलित हैं।

बुंदेलखंड में 'सती माता' की पूजा भी प्रचलित है। यहां के गांव-गांव में सती के चौरे हैं। त्याग-बलिदान के कारण महान नारियों ने भी देवीवर्ग में स्थान पा लिया है।

बुंदेलखंड के ग्रामीण इलाकों में और भी न जाने कितनी देवियां होंगी, जिनकी गणना करना मुश्किल है। यद्यपि आज आधुनिक कहे जाने वाले शिक्षित वर्ग में देवी-देवताओं के पूजन में श्रद्धा और आस्था का क्षरण तो हुआ है, लेकिन आज भी बुंदेलखंड के गांवों में ही नहीं, शहरी क्षेत्रों के परिवार में विवाह आदि मांगलिक अवसरों पर देवी-देवताओं का पूजन परंपरागत तरीके से होता है। उनके मन के कोने में वही आदिम भय कुलबुलाने लगता है कि अमुक देवी-देवता की पूजा न करने से कहीं कोई अनिष्ट न हो जाए। इस आदिम भय से सदियों बाद भी वह निजात नहीं पा पाया है। और इसी आदिम मानसिकता के चलते इस वैज्ञानिक युग में भी देवी-देवताओं का वर्चस्व बना हुआ है, जो लोक संस्कृति की अविच्छिन्न धारा प्रवाहित करने में अपना योगदान दे रहे हैं। कहना न होगा, ये देवी-देवता अपने गर्भ में न जाने कितनी संस्कृतियों को, पूर्वजों की गौरव गाथाओं को संजोए, प्राकृतिक उपादानों का महत्त्व दर्शाते हुए यहां के पहाड़ों, पठारों, घाटों, मढ़ों-मंदिरों में विराजमान काल के न जाने कितने थपेड़ों-झंझावतों को झेलते हुए मानव की विकास यात्रा में अनवरत उनके साथ चल रहे हैं। उनको अभावों, कष्टों, विपरीत परिस्थितियों में जूझने की आत्मिक शक्ति दे रहे हैं। सामाजिक समरसता और सौहार्द पनपा रहे हैं

सच तो यह है कि विभिन्न देवी-देवताओं की पूजा-उपासना बुंदेलखंड की लोक संस्कृति की आत्मा है। पीढ़ी दर पीढ़ी से चले आ रहे ये देवी-देवता बुंदेलखंड की माटी से इतने एकाकार हो गए हैं कि यदि बुंदेली धरा से इन्हें निष्कासित कर दिया जाए, तो यहां की लोक संस्कृति श्रीहीन हो जाएगी।

स्त्री लोकपर्व नौरता

◆ *रामकिशोरी गुप्त*

बुंदेलखंड में अश्विन नवरात्रि में कन्याओं द्वारा माता दुर्गा की आराधना विशेष रूप से की जाती है, जिसे सुअटा अथवा नौरता के नाम से जाना जाता है। नौरता के साथ-साथ इसे सुअटा भी कहते हैं। 'सुअटा' की परंपरा बुंदेलखंड में सर्वत्र है। बुंदेलखंड के ग्रामीण अंचलों में कन्याओं के मन में आज भी इसके प्रति अटूट श्रद्धा, उमंग एवं उत्साह है। बड़े हर्षोल्लास के साथ वे अपने इस पारंपरिक पर्व को मनाती हैं।

सुअटा की अल्पनाएं, चौक, बेल-बूटे बनाने के लिए वे कई प्रकार के रंग तैयार करती हैं। कन्याएं सर्वप्रथम वर्षा की धुली हुई बालू में जो श्वेत रंग के पत्थर के टुकड़े मिले होते हैं, (जिन्हें 'दुधी' कहते हैं) इकट्ठे करती हैं। संगमरमर, सिलबट्टा, पटकुली (कत्थई रंग के पत्थर) आदि एकत्रित कर उन्हें पीसकर कपड़छान (कपड़े में छानना) कर विभिन्न रंगों से रंगती हैं। पत्थरों के अतिरिक्त भी रंग अन्य चीजों से बनाए जाते हैं, जैसे चावल को पीसकर लाल, पीले, हरे नीले रंगों के घोल में मिलाकर छाया में सुखाना। इसी प्रकार लकड़ी का बुरादा तथा ज्वार के आटे को रंगकर भी रंग बनाती हैं। इस प्रकार तैयार किए गए विभिन्न रंगों को वे

अलग-अलग पोटलियों पें या पात्रों में सहेजकर रख लेती हैं। हर कन्या के मन में यह बात रहती है कि उसके रंग अन्य कन्याओं की तुलना में मनमोहक हों।

सुअटा/ नौरता खेलने का स्थान पूर्व से ही निश्चित होता है, जो भवन के मुख्य द्वार के दाहिने अथवा बाईं ओर के चबूतरे पर होता है। दीवाल के किनारे चबूतरे पर नौ सीढ़ियों की, नीचे से ऊपर क्रमशः घटते क्रम में एक वेदी बनी होती है, जिसे पर्वत कहते हैं। सबसे नीचे की सीढ़ी में आगे की तरफ़ दो दीपक गड़े रहते हैं, जो दुग्धकुंड कहलाते हैं। इनमें दूध भर दिया जाता है तथा उसमें दूर्वादल के छोटे-छोटे गुच्छे डाल दिए जाते हैं। सबसे ऊपर वाली सीढ़ी का स्थान गौरा (गौरी) की मूर्ति स्थापना के लिए निश्चित होता है। वेदी अर्थात पर्वत के नीचे वाली दीवाल पर 5-6 फीट की ऊंचाई पर मिट्टी से चंदा और सूरज की आकृतियां बनाई जाती हैं। कहीं-कहीं इन्हीं के साथ सुअटा की मिट्टी की मूर्ति भी दीवाल पर बनाई जाती है। यह सब कार्य नवरात्रि प्रारंभ होने से पूर्व ही पूर्ण कर लिए जाते हैं।

प्रतिपदा के दिन से नौ दिन तक नौरता खेला जाता है। प्रतिपदा के दिन कन्याएं नहाते समय बाल अवश्य धोती हैं। इसके बाद नौ दिन तक बाल धोना वर्जित होता है। प्रतिपदा के दिन सूर्योदय से पूर्व कन्याएं सहेलियों के साथ अपनी-अपनी थालियों में रंग सजाकर नौरता हेतु सुनिश्चित स्थान पर पहुंचती हैं। यहां प्रत्येक कन्या हेतु पृथक-पृथक स्थान निश्चित रहता है, जहां वे विभिन्न आकार-प्रकार के चौक, सांतिया सुराती, मथानी का फूल, कमल का फूल, पिडी का चौक, विभिन्न देवी-देवताओं की आकृतियां तथा बेलबूटे बनाती हैं। इनमें विभिन्न प्रकार के रंग भरकर उन्हें चित्ताकर्षक बनाया जाता है। अल्पनाएं बनाते समय कन्याएं गीत भी गाती जाती हैं, जैसे–

ऊंची डगर की पीपरी नारे सुआ हो
जा तरैं लगी है हाट सुआ।
बिरजीं गौरा बेटी बाबुल से नारे सुआ हो
राजा बाबुल चुनरी रंगाव सुआ।
ढिक-ढिक लिखियो मोरो मायको, नारे सुआ हो
अंचरन माई के बोल सुआ।
माई बैठी मंझधरा, नारे सुआ हो
बाबुल पौर दुआर सुआ।

अर्थात मार्ग में विशाल पीपल वृक्ष के नीचे हाट (बाजार) लगी हुई है। वहां एक सुंदर चुनरी देखकर गौरा अपने पिता से उसी तरह की चुनरी रंगवा देने का आग्रह करते हुए कहती है कि ऐसी ही चुनरी मुझे भी रंगवा दीजिए। चुनरी की ढिकों (किनारी) पर यहां के अर्थात् मायके के सुंदर-सुंदर दृश्य बने हों और आंचल वाले भाग पर माता-पिता के प्यार भरे बोल लिखे हों। माता घर के आंगन में बैठी दिखाई देती हो और पिता पौर के द्वार (घर का प्रवेश द्वार) पर।

अल्पनाएं बनाने के बाद कांय डालने के लिए सभी कन्याएं खड़ी होकर गीत गाती हैं। इसके साथ एक कन्या दुग्धकुंड में दूर्वादल को डुबोकर वेदी पर छिड़कती जाती है। एक-एक करके सभी कन्याओं के पिता का नाम जोड़ते हुए गीत चलता है–

हिमांचल जू की कुंवरि लड़ायती, नारे सुआ हो,
गौरा बेटी, नेरा तो अन्हायें सुआ।
नेरा तो अन्हईयों बेटी, नो दिनो, नारे सुआ हो,
दसमें दिना करियो सिंगार सुआ।
अमुक जू की कुंवरि लड़ायंती, नारे सुआ हो,
अमुक बेटी, नेरा तो अन्हायें सुआ।

अर्थात् राजा हिमांचल की लाड़ली बेटी गौरा को उपदेश दे रही है कि बेटी नौ दिन तक स्नान-ध्यान करके सुआटा की पूजा, जप-तप करना और दसवें दिन अपना साज-शृंगार करना। इस प्रकार यह पर्व साधना पर्व है। कांय डाली जाने के बाद अगला गीत इस प्रकार गाती हैं–

तिल को फूल तिली को दानों, चंदा ऊंगे बड़े भुनसारे।
ऊंगन न होय वारो चंदा, हम घर पर होय लिपना-पुतना।
सास न होय दैहै गरियां, ननद न होय कोसे बिरना।
माई को कहो न करि हों, बाबुल को कहो न करि हों।
पानी की खेप न धरि हों, गोबर की हेल न धरि हों।
चकिया को डंडा न पकरि हों, तबा पै कुचइया न धरि हों।
वासी को कौर न दैहों, ताती होय तो लपलप खैंहो।

अर्थात बेटी कह रही है कि मेरे यहां सूर्य निकलने के साथ ही लिपाई-पुताई का कार्य हो चुका। मैं मायके में हूं। यहां सास नहीं है और न ही ननद, जो मुझे

गाली दे या मेरे भाई को कोसे। यहां मेरे ऊपर किसी का बंधन नहीं है। जो मेरे मन में आएगा, वही करूंगी। न मैं माता का कहना मानूंगी, न पिता की बात सुनूंगी। न पानी भरूंगी, न गोबर उठाऊंगी, न चक्की पीसूंगी, न रोटी बनाऊंगी। मुझे घर का कोई काम नहीं करना है। मां यदि नाराज होकर बासी भोजन खाने को देगी तो मैं मना कर दूंगी और अगर गरमागरम भोजन कराएगी तो झटपट खा जाऊंगी।

अपनी बेटी की इस प्रकार अटपटी बातें सुनकर माता बेटी को समझाते हुए कहती हैं–

खेल लो बेटी खेल लो माई बाबुल के राज
जब दुर जैहो बेटी सासुरे, सास न खेलन देय।
रात पिसावै पीसनो, बेटी दिबस गुबर की हेल।।

अर्थात हे पुत्री हमारे (माता-पिता) राज में तुम खूब खेल लो। ससुराल में सास थोड़े ही तुम्हें खेलने देगी। वहां वह तुमसे रात को चक्की पिसवाएगी और दिन में गोबर की हेल उठावाएगी। आगे कहती है–

दूरा के देसां दई हैं गौरा बेटी, दई है सबई बेटी।
को बेटी, तोहि लिवावन जै है, बुलावन जै है।।

अर्थात् हे बेटी गौरा तेरी ससुराल बहुत दूर है। तेरी और बहनें भी दूर देश में ब्याही हैं। इतनी दूर तुम्हें बुलाने के लिए, लिवाने के लिए कौन जाएगा। तब बेटी उत्तर देती है–

मोरी पीठ के भैया चन्दामल, भैया सूरजमल
जो दोऊ भैया, चार भतीजे लिवावन जै हैं, बुलावन जै हैं।
सिर गोला पांग संवारत जै हैं, पियरे पट पहनावत जै हैं।
लीला सी घोड़ी कुदावत जै हैं, लाल छड़ी चमकावत जै हैं।
वन की चिरैया चुगावत जै हैं, अन्ध कुंवल उघरावत जै हैं।
फूटे से ताल बंधावत जै हैं, उखटे बाग लगावत जै हैं।
नंगी डुगरियां ओढ़ावत जै हैं, भूखी डुकरियां जिमावत जै हैं।
कंवारी सी कन्या विवाहिता जै हैं, ब्याही सी बिटिया चलावत जै हैं।

अर्थात बेटी उत्तर देती है कि मेरी पीठ के अर्थात् मुझसे छोटे भाई चन्दामल और सूरजमल तथा चारों भतीजे (भाइयों के पुत्र) मुझे बुलाने जाएंगे और लिवाने जाएंगे। भाई और भतीजों की शान देखने योग्य है। वे नीली घोड़ी पर पीतवस्त्र

धारण किए हुए है, सिर पर पगड़ी बांधे तथा लाल छड़ी चमकाते हुए, सजधज के आएंगे। रास्ते में वन की चिड़ियों को चुगाते हुए, सूखे कुंओं को भराते हुए, फूटे तालाबों को बंधवाते हुए, सूखे बागों को लगवाते हुए, नंगी-भूखी वृद्धाओं को वस्त्र और भोजन देते हुए, कन्याओं का विवाह कराते हुए और विवाहित बेटियों को विदा कराते हुए वे मेरी ससुराल मुझे लिवाने हेतु पहुंचेंगे।

कल्पनाओं की इन उड़ानों के बाद बेटी ससुराल चली जाती है। कई वर्षों तक वह अपनी मां के घर नहीं आती। बहुत दिनों से बहन के न आने के कारण उसके भाई चंदामल और सूरजमल उसे लिवाने जाने के लिए तैयार हो रहे हैं। उन्हें तैयार हुआ देखकर मां कहती है–

सूरज की मैया जा कहें, नारे सुआ हो,
मोरे चंदा सूरज कहं जांय सुआ।
ओढ़ो कारी कामरी, बांधों, कपला गाय।
धन बिलासो माई बाप को,
मोरे सूरज विदेशे न जाव।

अर्थात् मेरे बेटा चंदा और सूरज तुम कहां जा रहे हो? कारी कमरियां ओढ़कर विश्राम करो, घर में बंधी कपिला गाय की सेवा करो। माता-पिता द्वारा संग्रहीत धन का उपयोग करके सुखपूर्वक घर में रहो। तुम्हें विदेश जाने की आवश्यकता नहीं है।

भाई-बहन के पवित्र प्रेम का आकर्षण, मां के कहने पर भी भाइयों को बहन के घर जाने से नहीं रोक पाता। वे बहन की ससुराल को चल देते हैं। इसके पहले वे कभी अपनी बहन के यहां नहीं गए थे। इसलिए वे पूछते-पूछते आगे बढ़ते हैं। एक कुएं के पनघट पर काफी महिलाएं जल भर रही थीं। दोनों भाई पूछताछ करने के लिए पनघट पर पहुंचते हैं, जिन्हें देखकर महिलाएं आपस में हँसी-मजाक करती हैं। ननद अपनी भाभी से कहती है कि तुम्हारा भाई आया है तो भाभी ननद से कहती है कि वह हमारा भाई नहीं; ननदोई है अर्थात तुम्हारा पति है। एक महिला ने दूसरी महिला से कहा कि इन दोनों की शक्लें तुमसे मिलती-जुलती हैं। ये दोनों मुझे तुम्हारे भाई जैसे लगते हैं। तब वह महिला ध्यान से उन्हें देखती है–

चौकन, चाकी-चौखुटी नारे सुअटा,
चौकी के चारऊ खूंट।

चौकन बैठे भइया डेढ़ सौ, नारे सुअटा,
तिन में भइया चंदा-सुरजमल कौन।
लाल पाग कारी ढाल के, नारे सुअटा,
लाल घुड़ल असवार।
चंदा सुरज भैया दोऊ खड़े, नारे सुअटा,
पकरें लौंग की डार।
लीली जो बांधौ भैया लौंग सें, नारे सुअटा,
धरियक धामों बिलमाव।
हम कैसे घामों बिलमाइये, नारे सुअटा,
जिनकी बहन परदेश।
घामों बिलमावें हमरे बाबुल, नारे सुअटा,
जिनने दई परदेश।

अर्थात् चौकियों के ऊपर डेढ़ सौ लोग बैठे हैं, जिनमें चंदा-सूरज कौन हैं, बहन ने काफी समय से इन्हें नहीं देखा था। इसलिए वह भाइयों को पहचानने में हिचकिचा रही है। ध्यानपूर्वक देखकर वह अपने भाइयों को कुछ-कुछ पहचान लेती है और कहती है कि नीली घोड़ी पर सवार लाल पागु बांधे, काली ढाल लिए मेरे भाई चंदा और सूरज आप लोग अपनी-अपनी नीली घोड़ी लौंग से बांधकर एक घड़ी विश्राम कर लो। महिला के मुख से ऐसे शब्द सुनकर चंदा और सूरज गद्‌गद हो जाते हैं। वे कहते हैं कि हम यहां विश्राम करने नहीं आए। हमारी बहन तो परदेश में पड़ी हुई है। हमारे पिता, जिन्होंने हमारी बहन को इतना दूर परदेश में ब्याह दिया और उसकी खबर नहीं ली, विश्राम वहीं कर सकते हैं। वे एक-दूसरे को पहचान कर आनंदित हो उठते हैं और बहन भाइयों को अपने घर लिवा ले जाती है।

गीत समाप्त होने के साथ ही वेदी (पर्वत) पूजन का कार्य संपन्न हो जाता है। इसके पश्चात सभी कन्याएं समूह में नौरता स्थल के रंगों से एक-दो रेखा बनाती हुईं मार्ग में कुछ दूरी तक चली जाती हैं। वहां मार्ग के बीचों-बीच रुककर मार्ग को थोड़ी जगह गोबर से लीपकर रंगों से भूत की आकृति बनाती हैं। सभी कन्याएं भूत के चारों ओर गोलाकार खड़ी होकर एक-दूसरे की हथेली पर थोड़ा-थोड़ा पानी डालते हुए थपथपाती हैं तथा गीत गाती हैं–

चिंटी-चिंटी कुर्रू दें—कुर्रू दें
बापें भइया राजी दें, राजी दें,
राजी ऊपर भात दें, भात दें।
भात ऊपर दहिया दे दहिया दे,
दहिया ऊपर मैया दे, मैया दे।
मैया ऊपर गैया दे भइया दे,
भइया ऊपर भौजइया दे, भोजइया दे।
भौजइया ऊपर भतीजो दें, भतीजों दें,
भतीजों ऊपर घोड़ा दें, घोड़ा दें।
घोड़ा मारी लाता, जा पड़ी गुजराता
गुजरात के बानियां, गोड़ मूड़ से तामियां।

गीत की उक्त पंक्तियों में पिता और भाई के प्रसन्न रहने की बात की गई है। दूध-दही के माध्यम से गौ-पालन एवं भात (चावल) के माध्यम से कृषि की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया है। बहन अपने भैया, भाभी और भतीजों की कामना करती है। उसकी सवारी हेतु घोड़े की भी कामना की गई है। गौरी पूजन के गीत के समाप्त होते ही सभी कन्याएं अपने-अपने घर वापस चली जाती हैं।

शाम को सभी कन्याएं पुनः नौरता स्थल पर इकट्ठी होकर सबेरे बनाई गई अल्पनाओं को साथ करके उन पर छुई या चूना की ढिक लगाकर खंड बनाती हैं और गोबर से लीपती हुई गीत गाती हैं—

येई गमा के गेंबड़े नारे सुआ हो
भूरी भैंस बिकाय सुआ
लै लो सुरजमल भैया मोल सुआ
तुम्हारी दुलैया रूखो खाय सुआ
खान दो बहिन मोरी खान दो
गठियन नइयां चौखे दाम सुआ।

अर्थात बहन अपने भाई से कह रही है कि गांव में भूरी भैंस बिकाऊ है। सूरजमल भैया! तुम इसे खरीद लो, क्योंकि तुम्हारी दुलहिन रूखा भोजन करती है। भइया उत्तर देता है कि मेरे पास पूंजी नहीं है।

प्रतिपदा से चौथ (चतुर्थी) तक यह क्रम चलता रहता है। चतुर्थी की शाम सभी एक साथ मिलकर अपने-अपने घर और पड़ोसियों के यहां जाकर गौरा क्रय

हैं। शाम को सभी कन्याएं शेष बचे रंगों को ले जाकर, नौरता स्थल पर सामूहिक रूप से एक बड़े से बड़ा तथा आकर्षक चौक अथवा देवी-देवताओं की आकृति रंगों द्वारा बनाती हैं। नित्य की तरह गीत गाकर गौरा रानी की कांय डालती हैं। इस दिन सभी कन्याएं भुने हुए चने या बूंदी घर से साथ में लाती हैं। सभी कन्याओं का पूरा समूह गोलाकार में एक साथ बैठता है। वे अपने साथ लाए हुए चना-बूंदी खाना शुरू करती है, जिसे 'हप्पू' कहते हैं। इसके साथ ही साथ यह गीत भी गाती हैं–

मोरी गौर को पेट पिरानो हप्पू
अमुक की भाभी को पेट पिरानो हप्पू

सभी सहेलियों के नाम लेकर उनकी भाभी के नाम अमुक कहती हुई मौज-मस्ती करती हैं।

अब प्रारंभ होता है नौरता का समापन सत्र 'ढिरिया'। मिट्टी के एक कोरे घड़े में चारों ओर छेद करके उसे सजाती हैं। घड़े के अंदर एक तेल का जलता हुआ दीपक रखती हैं, जिसे ढिरिया या झिरिया कहा जाता है। सभी सहेलियां इसे लेकर पड़ोसियों के घर गीत-गाती हुई पहुंचती हैं–

पूंछत-पूंछत आये हैं, नारे सुआ हो
कौन बड़े जू की पौर (हिमाचल जू की पौर) सुआ
पौरन बैठे भैया पौरिया, खिरकन बैठे छड़ीदार सुआ।
पौरन के सौ गए भैया पौरिया, खिरकन सो गए छड़ीदार सुआ
निकरौ दुलहइया रानी बाहिरें बिटियन देवतमोल सुआ
हम कैसे निकरें बइया बाहिरें नारे सुआ हो।
झोली में झरूले नोने पूत सुआ
तुम जिन जानों भौंजी मांगने, नारे सुआ हो, घर घर देत असीस सुआ
पूत जो पारौ जो भौंजी मांगने, बिटियन देव तमोल सुआ।
लै अच्छन भौजी निंग चलीं, नारे सुआ हो चंदन रिपटे पांय सुआ
चंदन रिपटी भौजी गिर परीं, नारे सुआ हो, अच्छत गये बगराय सुआ
जितने अच्छत भौजी भौं परे, नारे सुआ हो उतने दुलैया तोरे पूत सुआ
पूतन-पूतन भौजी घर भरे, नारे सुआ हो, बहुअन भरे चितसार सुआ
नारे सुआ....
पूछत-पूछत आये हैं नारे सुआ हो अमुक की पौर सुआ...

अर्थात् हम हिमांचल (गौरी के पिता) की पौर का पता पूछते-पूछते यहां तक आ पाए हैं। पौर में पौरिया (चौकीदार) बैठे हैं और खिड़कियों में छड़ीदार बैठे हुए हैं। घर की दुल्हन रानी बाहर आइए और बेटियों को अक्षत (तंदूल) प्रदान कीजिए। दुल्हन अंदर से उत्तर देती हैं कि हमारी गोदी में नन्हा-सा पुत्र झूल रहा है। प्रत्युत्तर में बिटियां कहती हैं कि हे भाभी आप हमें भिखमंगा न समझें, हम तो घर-घर जाकर आशीष देते हैं। आप पुत्र को पालने में लिटा दें और हमें अक्षत प्रदान करें। भाभी अक्षत लेकर बेटियों को देने के लिए आगे बढ़ती हैं कि चंदन लेपित आंगन में फिसलकर गिर जाती हैं और पूरे अक्षत फैल जाते हैं। यह देखकर बेटियां कहती हैं कि हे भाभी जितने अक्षत भूमि पर गिरे हैं, उतने ही पूत (पुत्र) तुम्हें प्राप्त हों। पुत्रों से तुम्हारा घर भर जाए और बहुओं से रनवास (रानियों का निवास) भर जाए। बुंदेलखंड में सधवा महिलाओं को बड़े-बूढ़ों द्वारा 'दूधन नहाओ पूतन फरो' असीस (आशीष) देने की प्राचीन परंपरा है।

भाभी के द्वारा अक्षत और रुपया प्राप्त होने पर उसकी थाली में 10-15 चावल छोड़ देती हैं अर्थात् पूरी थाली खाली नहीं करती तथा 4-6 चावल के दाने घर के अंदर फेंकती हैं। गीत का अंतिम बोल समाप्त होते ही जिस घर के द्वार पर ढिरिया लिए बेटियां खड़ी होती हैं, उस घर के पुरुष मुखिया का नाम लेकर बाद में घर की महिला सदस्य का नाम गीत में मिलाकर गाती हैं।

ढिरिया के अंदर जलते हुए दीपक के तेल का अपना अलग महत्त्व है। कहते हैं कि इसे लगाने से सेउआ (रोग) ठीक हो जाते हैं। अतः प्रत्येक घर में इस दीपक का थोड़ा-सा तेल ले लिया जाता है और बदले में उसी दीपक में और तेल डाल दिया जाता है। ढिरिया को पहले सिर पर रखकर चला जाता था, किंतु अब तो उसे हाथ में लेकर चला जाता है। मार्ग में जाते हुए यदि उसी मुहल्ले की अन्य ढिरियां मिल जाती हैं तो वे अपनी ढिरिया को छिपाते हुए गीत के बोल शुरू करती हैं, क्योंकि अन्य ढिरिया का मिलना ठीक नहीं माना जाता है।

ढिरिया में ढिरिया मिल गई मोरी सोत सुआ।

नौमी के दिन बासे चौक में कांय डाली जाती है। इस दिन वे अल्पनाएं नहीं बनाती हैं। आज की कांय डालने का नियम भी भिन्न होता है। आज कन्याएं दुग्धकुंड में जल भरती हैं। उसमें से कुम्हड़ा (कद्दू) के फूल से गौरा पर जल छिड़कती हैं। आज की कांय मोंगे-मोंगे (चुपचाप मौन धारण कर) डाली

जाती हैं (गीत को मन में गाती हैं)। नौरता स्थल पर झाड़ू लगाकर उसे साफ कर घर पर आकर नहाती हैं। मीठे खुरमा बनाकर दो बड़े दीये (जिन्हें मलियां कहते हैं) में रखकर नौरता स्थल पर जाकर गौर का पूजनकर होम तथा प्रसाद लगाकर घर वापस आती हैं। चतुर्थी और अष्टमी तिथि के जोड़े गए अंदाज को बाजार में बेचकर रुपयों को नौरता समाप्त होने पर आपस में बांट लेती हैं या फिर कभी खाद्य सामग्री खरीदकर नौरता स्थल पर ही भोजन आदि बनाकर मौजमस्ती करती हैं।

कन्या का विवाह हो जाने पर उसकी कांय नहीं डाली जाती। यदि वह ससुराल में है तो उसके माता-पिता उसको बुलाकर उद्यापन कराते हैं, जिसे नौरता उजाना कहा जाता है। इसके उद्यापन में बेसन के नमकीन और आटा में गुड़, मोयन डालकर मीठे पकवान बनाए जाते हैं—जैसे पपड़ी, गुझियां, गुनी, पूरी आदि। बेसन में तीपरा (तिकोण, तीन खूंट) चौपरा (चार खूंट) फूल, गुना, बतियां, शंकर गौराजी का गहना आदि बनाए जाते हैं। यहां एक बात ध्यान देने योग्य है कि इन पकवानों की संख्या नौ-नौ होती है। इनका आकार भले ही छोटा-बड़ा हो सकता है। पकवानों के साथ साड़ी, ब्लाउज, पायल, बिछिया, चूड़ी आदि सुहाग का सामान भी रहता है। पूजन के बाद पूरा सामान बांस की डलिया में रखकर लाल या पीले कपड़े से बांधकर लड़की की ससुराल भेजा जाता है, जहां पर कहा जाता है कि नौरता की डलिया आई है। ससुराल पक्ष वाले डलिया का समान थोड़ा-थोड़ा अपने हिसाब से अपने कुटुंब- परिवार तथा निकटतम संबंधियों के घर भेजते हैं।

नौ दिन तक कन्याओं के समूह के समूह सुअटा के माध्यम से मां गौरी की आराधना में लीन रहते हैं। बुंदेलखंड में ऐसी मान्यता है कि जो कन्याएं नवरात्रि में नौरता के सुअटा के माध्यम से माता गौरी की आराधना करती हैं तथा भादों मास में हरितालिका का व्रत रखती हैं, उन्हें भोले शंकर के समान पति एवं गणपति के सामान पुत्र प्राप्त होता है। सैकड़ों वर्षों से चला आ रहा कन्याओं का यह आराधना पर्व पाश्चात्य संस्कृति का शिकार हो चला है, जिसका बढ़ता हुआ प्रभाव शहरों में स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होने लगा है।

लोक चित्रकला में स्त्री

◆ *हरीमोहन पुरवार*

प्राचीन काल में जब मानव अपने जीवन की गति को बनाए रखने हेतु भोजन की तलाश में पशुओं की भांति इधर-उधर भटकता फिरता था, तब वह केवल प्रकृति पर आधारित था और उसी की उपासना किया करता था। रहने के लिए नदियों, झीलों और झरनों के निकट पाषाण की गुफाएं उनके घर थे। पशु-पक्षियों का शिकार उनका भोजन था। उस समय अपने रिक्त समय को वह नुकीले पत्थरों के माध्यम से पत्थरों पर आड़ी-तिरछी रेखाओं के द्वारा अपने आसपास के वातावरण को उकेरने का प्रयास किया करता था और उस प्राचीन पाषाणयुगीन मानव का यही प्रयास लोक चित्रकला के रूप में आज तक प्रतिष्ठित है। शैल गुफा चित्रों से आज तक की लोक चित्रकला की हजारों वर्षों की लंबी यात्रा ने इसमें समाज के तमाम ऐसे रंगों को भरा है, जिससे बंधुत्व, प्रेम जैसी अनेक सुंदर भावनाओं को लोक ने हृदयंगम किया है। लोक चित्रकला के माध्यम से जन-जीवन में प्राचीन ऋषियों, मुनियों द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों के प्रति विश्वास, कर्तव्य परायणता आदि की गहरी जड़ों को जमा दिया है,

जो सभ्यता-संस्कृति तथा सांस्कृतिक मूल्यों के रूप में आज तक अपनी विशिष्ट पहचान बनाए हुए हैं।

बुंदेली लोक चित्रकला में यहां के जनमानस की सीधी-सच्ची स्वाभाविकता का जहां दर्शन होता है, वहीं लज्जा, कमनीयता और हृदयग्राहिता भी परोक्ष, अपरोक्ष रूप से झलकती है। यहां की लोकचित्र कला के अनुपम उदाहरण यहां के जनमानस की आस्था, उसके आध्यात्मिक विश्वास एवं उसकी सामाजिकता के दृढ़ समर्थक हैं।

नारी बुंदेलखंड में पूजनीया एवं वंदनीया है। समाज में नारी के चार मुख्य स्वरूप दृष्टिगोचर होते हैं। ये चारों स्वरूप मां, बहन, पत्नी एवं पुत्री के रूप में जाने जाते हैं।

बुंदेली पर्वोत्सवों पर बनाए जाने वाले भित्ति आलेखनों के माध्यम से बुंदेली लोक चित्रकला का जो दर्पण हमें दिखलाई पड़ता है, उसमें नारी के मां स्वरूप का जो दर्शन होता है, वह सृष्टि की सृजनकर्त्री के रूप में पूज्य है।

चैत्र शुक्ल तृतीया को आदि शक्ति गौरी का व्रत संपूर्ण बुंदेलखंड की सधवा स्त्रियों के लिए अत्यंत उत्साहवर्धक है। गनगौर व्रत में जो आलेखन बनाया जाता है, उसमें एक विशाल नारी आकृति बनाई जाती है। उसके पेट पर व्रत से संबंधित कथानक के पात्रों का अंकन किया जाता है तथा पूजन आदि के बाद सायं बेला में अचरी का गायन होता है–

मैया के मठ में गोएं घनेरी, पौद बढ़ी बछड़न की। गौरी मैया...
मैया के मठ में बहुयें भौत है, भीर भई लरकन की। गौरी मैया...
मैया के मठ में घाम लगत है, वास भई घी गुर की। गौरी मैया...

चैत्र और बैसाख माह के कृष्ण पक्ष में संपन्न होने वाली नवरात्रि के आठ दिवस को दुर्गा अष्टमी के रूप में मनाया जाता है। चेचक के बचाव हेतु चेचक को शीतला माता की संज्ञा देकर आराधना उनके लोक चित्र आलेखन पर पूजन करके संपन्न की जाती है। दुर्गा अष्टमी या शीतला अष्टमी के चित्र आलेखन में रोली, सिंदूर तथा घी से मां की एक पुतरिया बनाकर उसके नीचे कलश, त्रिशूल, सांग, नीम का क्षोंका आदि चित्रित किया जाता है। मां को समुचित सम्मान देते हुए उनके चित्र के नीचे आसन का भी अंकन किया जाता है। पूजन के समय महिलाएं अचरी गाती हैं :

झूला हो अखेबर मइया झूला हो अखेबर में डरे हो मां
काहिर के झूला बने हो मां, अरे काहिर जोती चार भुमानी माई
झूला हो अखेबर में डरे हों मां...
मेरी मइया को जे झूला, बैठियों हो मां, उर को जे झुलावन हार रे माई
झूला हो अखेबर में डरे हों मां...
अरे देवी झूला झूलिये हो मां, अरे लंगुरा झुलावन हार रे माई
झूला अखेबर में डरे हो मां।

बैसाख, आषाढ़ अथवा माघ मास के किसी भी रविवार को आसमाई का पूजन किया जाता है। इस दिवस पर जो आलेखन यहां के घरों में बनाया जाता है, उसमें पान के पत्ते पर भूखमाई, प्यासमाई, नींदमाई के साथ-साथ आसमाई के चित्र का अंकन होता है। वस्तुतः मनुष्य के जीवन में भूख, प्यास व नींद का अत्यधिक महत्त्व है अर्थात् भूख-प्यास व नींद के अभाव में जीवन की कल्पना कर पाना भी बहुत मुश्किल है और इन तीनों में से किसी एक की पूर्ति न हो सकने की स्थिति में हमें आसमाई (आशा रूपी मां) के शरणागत होना पड़ता है। अतः इन चारों को नारी के साथ जोड़कर यहां का लोकमानस उसे अपनी भावभीनी पुष्पांजलि अर्पित करता है। इस अवसर पर भी यहां की स्त्रियां अचरी कराती हैं–

कैसे के दरसन पांऊरी, माई तोरी सकरी दुअरिया
सकरी दुअरिया मइया चंदन किवरिया
धरम धुजा फहराई, माई तोरी सकरी दुअरिया
माई के दुआरे एक अंधा पुकारे, देव नयन घर जांऊरी
माई तोरी...
माई के दुआरे एक बांझ पुकारे, देओ ललन घर जांऊरी
माई तोरी...
माई के दुआरे एक भूखा पुकारे, देओ भोजन घर जांऊरी
माई तोरी...
माई के दुआरे एक निरधन पुकारे, देओ माया घर जांऊरी
माई तोरी...

श्रावण शुक्ल नवमी को कजरी नौमी पर्वोत्सव मनाया जाता है, जिसमें स्त्रियां दीवार पर जगत्जननी मां जगदम्बा का चित्र बनाती हैं, फिर इस अवसर पर नेवले तथा मां के वात्सल्य से संबंधित कथा के पात्रों का अंकन किया जाता है। यह चित्रांकन मां की सार्वभौमिकता को प्रमाणित करता है, क्योंकि 'देवीभागवत पुराण' में भी मां की सार्वभौमिकता के विषय में कहा गया है—'सर्वे खल्विदमेवाहं नान्यदस्ति सनातनम।' अर्थात् यह सारा जगत मैं ही हूं, मेरे सिवा दूसरी कोई अविनाशी वस्तु नहीं है।

भाद्रकृष्ण पष्ठी को बलराम के जन्मदिन के रूप में हरछठ या अक्षय षष्ठी के रूप में मनाया जाता है। इस दिवस पर जो लोक भित्ति आलेखन किया जाता है, उसमें सबसे पहले अखिल ब्रह्मांड की नियंता मां भुवनेश्वरी की विशाल आकृति का चित्रांकन किया जाता है। फिर उनके आंचल स्थल पर बलरामजी के आयुध हल व भैंस का अंकन किया जाता है। मां के आशीर्वाद से अभिसिंचित यह लोक चित्रांकन अत्यंत प्रभावी होता है।

क्वांर कृष्ण पक्ष की अष्टमी को महालक्ष्मी पर्वोत्सव बुंदेलखंड में बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है। इस पर्व पर स्त्रियां दीवार पर मुकुटयुक्त मां महालक्ष्मी के चित्र का अंकन करती हैं। फिर उनके आंचल में समग्र सृष्टि का अंकन किया जाता है। मां के श्रीचरणों के नीचे कमलपुष्प का भी चित्रण किया जाता है। इस संपूर्ण आलेखन का ही विधिवत अर्चन-पूजन किया जाता है। इस आलेखन से मां महालक्ष्मी की कृपा पाने का बुंदेली लोक मानस का अपना अनुपम उद्यम है। इस अवसर पर स्त्रियां गाती हैं—

मैया महालक्ष्मी तुम सबपै किरपा करो
हो मैया महालक्ष्मी तुम सबपै किरपा करो
कैसे आई मैया, कहां से आई, का काम करो?
मैया महालक्ष्मी तुम...
समुद्र मथावे से, समुद्र से निकर के, देवतन को काम करो
मैया महालक्ष्मी तुम...
मैया तुम का करती, कौना के संग रैतीं, कैसे दया तुम करतीं
मैया महालक्ष्मी तुम...
निरधन धन देती, बिस्नू संग रैती, भकतन पै दया करतीं
मैया महालक्ष्मी तुम...

कार्तिक कृष्णपक्ष की अष्टमी को मां द्वारा अपने बच्चों के सुखमय भविष्य के लिए अहोई आठें व्रत को रखा जाता है। इस व्रत में दीवाल पर मां अहोई का विशाल चित्र बनाया जाता है। फिर उनके आंचल में आठ कोष्ठक बनाए जाते हैं। एक कोष्ठक में सेई व उसके बच्चों के चित्र अंकित किए जाते हैं तथा शेष सात कोष्ठकों में एक-एक पुत्र की पुतरी बनाई जाती है। पुत्रों के सातों कोष्ठकों में शुभ चिह्न सातिया, कलश, तुलसी बिरवा आदि का अंकन किया जाता है।

पुत्र के लिए मां से बढ़कर दूसरा कोई अन्य हितैषी हो ही नहीं सकता। वृहत धर्म पुराण (अध्याय-2 श्लोक 33) भी कहता है–

पितुरप्यधिका माता गर्भधारण पोषणात्।
अतो हि त्रिषु लोकेषु नास्ति मातृ समो गुरुः।

अर्थात्–पुत्र के लिए माता का स्थान पिता से भी बढ़कर है, क्योंकि वह उसे गर्भ में धारण कर चुकी है तथा माता के द्वारा ही उसका पालन-पोषण हुआ है। अतः तीनों लोकों में माता के समान दूसरा कोई गुरु नहीं है।

मां की महत्ता को स्वीकार करते हुए दिवारी, मांय का पूजन, ओक दुआस आदि पर भी यहां के जनमानस द्वारा लोक चित्रों को उकेरा जाता है।

बुंदेली लोक चित्र कला में बहन स्वरूप का अंकन बहन से संबंधित पर्वों पर बहुतायत में देखने को मिलता है। वैसे बहन से संबंधित दो विशिष्ट पर्वों पर ही यहां पर भित्ति चित्र उकेरे जाते हैं।

कार्तिक कृष्ण द्वितीया भाई-बहन के निःस्वार्थ प्रेम के रूप में मनाया जाता है। भाई दूज (दीपावली) के अवसर पर पृथ्वी पर गोबर से लिपाई करके उस पर भैया दूज लिखी जाती है। इसमें एक चौक के अंदर भाई-बहन के चित्र बनाए जाते हैं। फिर भाई जब अपनी बहन से टीका करवाने के लिए आता है, तब रास्ते में जो कंटक मिलते हैं, उनको प्रतीकात्मक रूप में दर्शाते हुए बहन द्वारा उन कंटकों के निवारणार्थ किए गए उपायों को भी प्रतीक रूप में दर्शाया जाता है।

चैत्र कृष्ण द्वितीया भी भाई-बहन के प्रेम के रूप में मनाई जाती है। होली में भाई दूज पर जो भूमि आलेखन किया जाता है, उसमें भाई-बहन के चित्रों के साथ भाई पर आने वाली विपत्तियों को दर्शाते हुए उसके समाधान का भी अंकन किया जाता है।

स्त्री का पत्नी स्वरूप हमारे धर्म ग्रंथों में अत्यधिक महत्त्व का बतलाया गया है। समाज की गति एवं विकास स्त्री के इसी स्वरूप से संभव है। विष्णुधर्मेत्तर पुराणों में वर्णन मिलता है–

या नारी प्रयता दक्षा, या नारी पुत्रिषी भवेत।
पतिव्रता पतिप्राणा सा नारी धर्म भागिनी।।

अर्थात–जो नारी सब कार्यों में प्रयत्नशील है, जो नारी सब कार्यों में दक्ष है, जो नारी पुत्र प्रसविनी है, जो नारी पतिव्रता है, जो नारी पति को प्राण समान प्यार करने वाली है, वह नारी धर्म भगिनी है। बुंदेलखंड में तीजा पर्व, कुनधुरनी पूनौ, करवा चौथ, हरियाली अमावस आदि पर्व नारी के पत्नी स्वरूप पर आधारित हैं।

भाद्र शुक्ल तृतीया को मां पार्वती के कठोर तप से प्रेरित होकर स्त्रियों द्वारा अपने अटल सुहाग एवं सौभाग्य हेतु तीजा व्रत किया जाता है। इस व्रत में जो आलेखन उकेरा जाता है, उसमें भगवान शंकर के पिंडीय रूप के साथ जलधारा के अंकन के मध्य में पार्वती की पुतरिया अंकित करके उनकी जल साधना को इंगित किया जाता है। इस आलेखन में पार्वतीजी की पुतरिया उल्टे रखकर की गई साधना को दर्शाया जाता है।

रात्रि बेला में पूजन के पश्चात स्त्रियां यह गीत बड़े मनोयोग से गाती हैं–

प्रथम बम्म गुरुचरन सुरसती, आदि मनालो महादेव जी
देवन में महादेव बड़े हैं, तिरियन में मांई पारबती जी
सबालाख परवत के ऊपर पंचमढ़ी तपा रये धूनी
खाये भंग चढ़ जाये रंग फिर मन घूमै भोला दानी
जी के मनै भावना जैसी, ती कौं तैसोई दयै संभू
अंधरन नैन कुढ़िन कौ काया, बांझन गोद भराये संभू
बोले नदियां करैं जवा पै, सुनो नाथ झाड़ी बारे
जोवन में तोरी काया वृद्ध भई, सेवा कौन करे दानी
बोले महादेव ज्वाष करै, फिर सुन लेव रै डंडा बातें
गुरु बिन ग्यान, भाग्य बिन साजन तप बिन राज मिलत नाहीं
जी की जैसी मनोकामना, पूरन करत संकर लहरी

आषाढ़ मास की पूर्णिमा को कुलवधू दिवस अथवा कुनघुसी पूनौ सोल्लास मनाया जाता है। इस दिवस पर घर की सास दीवार पर अपनी बहुओं की

आकृतिनुमा पुतरियां चित्रित करती हैं। आलेखन का अर्चन करने के पश्चात अपनी बहुओं को बुलाकर उनका अभिषेक कर उन्हें आशीर्वाद देते हुए उनकी पसंद की कुछ भेंट भी प्रदान करती हैं। मनृस्मृति (अध्याय-1, श्लोक 26) का भी यही निर्देश है–

प्रजनार्थं महाभागः पूजा ही गृहदीप्तयः।
स्त्रियः श्रियश्च लोकेषु न विशेषोअस्ति कश्चन।।

अर्थात–संतान को जन्म देने वाली होने के कारण स्त्रियां बड़ी ही भाग्यशालिनी हैं। वे घर का प्रकाश हैं। वस्त्राभूषणों से उनका आदर करते रहना चाहिए। इस अवसर पर घर की गृहिणियां मिल-जुलकर गातीं है–

मोरी चंदा चकोर, मोरी चंदा चकोर
काजर लगा के कोरई कोर, मोरी चंदा चकोर
अरे काजर काहे आंजे गोरी
तोरे तो नैना काजर बिन कारे
मोरी चंदा चकोर...

कार्तिक कृष्ण चतुर्थी को अपने सुहाग की दीर्घायु एवं उन्नति के लिए स्त्रियां यह व्रत रखती हैं। इस अवसर पर दीवार पर जो आलेखन बनाया जाता है, उसमें मुख्यरूप से गौरी माता उनके आभूषणों, उनके पुत्र गणेशजी तथा पति शिवजी के लिंगीय स्वरूप तथा तमाम घर-गृहस्थी की वस्तुओं का अंकन किया जाता है। इसी आलेखन में अपने पंच पांडव पतियों को हृदयंगम करते हुए द्रौपदी का अंकन अति महत्त्वपूर्ण है।

पत्नी धर्म का निर्वहन करने वाली घर की बहुओं को समर्पित श्रावण कृष्ण अमावस्या को मनाए जाने वाले हरियाली अमावस के पर्व के चित्रांकन में भी घर की बहुओं की पुतरियां अंकित की जाती हैं, जो विशेष प्रकार की होती हैं। प्रत्येक पुतरियों के दो-दो सिर व चार-चार हाथ बनाए जाते हैं। यह अंकन पत्नी का पति के साथ युग्म स्वरूप है, जिसे अर्द्धनारीश्वर की संज्ञा दी जा सकती है।

बुंदेली लोक चित्रकला में नारी के पुत्र स्वरूप का अंकन भी हमें उत्साहित करता है। बुंदेलखंड में हरी ज्योति उत्सव में नारी के पुत्री स्वरूप को मान्यता प्रदान की गई है। हरी ज्योति पर्व श्रावण कृष्ण अमावस्या को मनाया जाता है।

इस पर्व का मनोविज्ञान संभवतः यह है कि भगवान श्री हरि भी अपनी शक्ति के बिना अधूरे हैं। उनकी यह शक्ति हरि की ज्योति बनकर श्री हरि को ज्योतित करती है। यह शक्ति चराचर जगत की प्रणेता है। कन्या को ही आदि जगत जननी का स्वरूप हमारे शास्त्रों में कहा गया है। अस्तु कन्या पूजन करके हम श्री हरि की कृपा प्राप्त कर सकते हैं।

इस दिवस पर दीवाल पर घर की सभी कन्याओं को पुतरियों के रूप में चित्रित करके प्रत्येक पुतरिया के नीचे कन्या का नाम लिखा जाता है। फिर इस आलेखन के पूजन के पश्चात साक्षात पुत्रियों का अर्चन-वंदन करके उन्हें भेंट प्रदान की जाती है। इस अवसर पर घर की बुजुर्ग महिलाएं ढोलक की थाप पर गाती हैं–

जगतारन आ गई मोरे पाहुनी हो माय
हिंगलाजन आ गई मोरे पाहुनी हो माय
काहे के पटली मैया आसन डारो
सो काहे से पखारों दोई पांव। हिंगलाजन आ गई...
चंदन पटली मैया बैठन डारों
सो दूधुआ पखारों दोई पांव। हिंगलाजन आ गई...
कलाधारन आ गई मोरे पाहुनी हो माय
काहे के थारन माई भोजन परोसों, का हा कलोचन दूध
हिंगलाजन आ गई...
सोने के थारन मैया भोजन परोसों,
सो रूपा कलोचन दूध। हिंगलाजन आ गई।

पर्वों के लोक भित्ति चित्रकला के अलावा भी यहां के जनजीवन में चित्रकला के भिन्न-भिन्न प्रकार के आयाम देखने को मिलते हैं। यहां की स्त्रियां काली पक्की स्याही से अपने शरीर पर सुई द्वारा अलंकरण हेतु विभिन्न चित्रांकन कराती हैं। इस कला को 'गुदना' के नाम से जाना जाता है। यहां की जनजातियों में गुदना मात्र अलंकरण का पर्याय ही नहीं अपितु ईश्वरोपासना जैसा परम उद्देश्यपूर्ण भी है। यहां की मान्यता है कि इन गुदनों से बुरी आत्माओं के प्रभाव से बचा जा सकता है तथा बुरे ग्रहों के प्रभाव को भी नगण्य किया जाता है। यहां की सुहागिन स्त्रियां अपने वक्षस्थल के मध्य में पति परमेश्वर की चौकी तथा मां गौरी की पुतरिया अंकित कराती हैं।

यहां पर कालका जू (काली मैया) एवं बीजासेन देवी के पाटे भरने का भी काफी प्रचलन है। द्वार सज्जा के लिए द्वार के दोनों ओर कलशधारिणी नारी का अंकन भी बहुतायत में मिलता है। बुंदेलखंड की लोक चित्र कला में नारी का संपूर्ण भावनात्मक चित्रण देखने को मिलता है। वैसे भी यहां के जीवन की लोक मान्यता है कि इस जगत की समस्त विधाएं नारी का ही स्वरूप हैं। यही कथन 'दुर्गासप्तशती' (एकादश अध्याय, श्लोक 6) का भी है–

विद्याः समस्तास्वतव देवि भेदाः।
स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु।।

अर्थात समस्त विद्या और सब स्त्रियां देवी का ही रूप हैं।

प्राचीन स्थापत्य और कला में स्त्री

◆ *नागेश दुबे*

प्रागैतिहासिक काल से ही मनुष्य ने स्त्री-शक्ति को सर्वोच्च स्थान दिया है। उसने स्त्री को अपनी आराध्य देवी के रूप में प्रतिष्ठापित किया, अन्यथा सभी प्राचीन सभ्यताओं में, विश्व के अधिकांश देशों में स्त्री प्रतिमाएं क्यों उपलब्ध होतीं? कुछ विद्वानों के अनुसार मातृदेवी की उपासना किसी न किसी रूप में सैंधव निवासियों के मध्य भी प्रचलित थी। बुंदेखखंड में स्थित एरण से प्राप्त मातृदेवी की मृण्मय प्रतिमाओं तथा मुद्राओं में अंकित देवी आकृतियों से ज्ञात होता है कि प्राचीन काल से ही मातृदेवी की पूजा होती रही है।

प्राचीन बुंदेलखंड में दुर्गा पूजा का प्रचलन था। इसका प्रमाण कालंजर और अजयगढ़ से प्राप्त देवी दुर्गा की प्रतिमाएं हैं। अजयगढ़ से देवी दुर्गा की एक प्रतिमा प्राप्त हुई है, जिसमें उनको भक्तों के साथ दिखाया गया है।[1] खजुराहो के लक्ष्मण मंदिर की प्रतिमा में देवी सिंह पर ललितासन मुद्रा में आसीन हैं।[2] दुर्गा की सिंहवाहिनी प्रतिमा तुमैन (तुम्बवन) से भी प्राप्त हुई है।[3] दुर्गा की उपासना इतनी अधिक प्रचलित हुई कि सिक्कों पर भी देवी का अंकन करवाया गया। गुप्त

शासकों के सोने के कतिपय सिक्कों पर सिंहवाहिनी देवी का अंकन हुआ है, जो संभवतः दुर्गा का ही स्वरूप हैं।[4] भेड़ाघाट के चौंसठ योगिनी मंदिर में प्रधान प्रतिमा दुर्गा की है।[5]

प्राचीन साहित्य और शिल्प शास्त्रों में देवी के अनेक रूप वर्णित हैं। उनमें एक रूप पार्वती का भी है। कालंजर से प्राप्त पार्वती की प्रतिमा को स्थानक मुद्रा में प्रदर्शित किया गया है। उनके चारों हाथ में से एक हाथ में अक्षमाला, दूसरे में दर्पण, तीसरे में कमल तथा चौथे में कमंडलु प्रदर्शित हैं।[6] सिरोनखुर्द (ललितपुर) से पार्वती की त्रिमुखी प्रतिमा प्राप्त हुई है। देवी की चारों भुजाएं खंडित हैं। देवी विभिन्न आभूषणों से सुसज्जित है।[7] खुजराहो के जगदंबा मंदिर में पार्वती की चतुर्भुजी प्रतिमा है। मढ़परिया, बारहा, छिरारी, दमोह, नोहटा, हिंडोरिया तथा बरेठा में पार्वती की प्रतिमाएं उपलब्ध हैं। दमोह जिले में स्थित नोहटा के शिव मंदिर की भित्ति पर अलंकृत दो स्तंभ प्रकोष्ठों के मध्य स्थापन मुद्रा में पार्वती की चतुर्भुजी प्रतिमा स्थापित है।[8]

गुप्तकाल में देवी का महिषासुर मर्दिनी स्वरूप अधिक लोकप्रिय हुआ। चंदेल शासक कीर्ति वर्मन का अजयगढ़ शिलालेख देवी की वंदना से प्रारंभ होता है। महिषासुरमर्दिनी की एक प्रतिमा एरण से भी प्राप्त हुई है, किंतु उसमें उनका वाहन सिंह प्रदर्शित नहीं है। त्रिपुरी से प्राप्त एक शिल्प फलक पर महिषासुरमर्दिनी की खंडित प्रतिमा अंकित हुई है।[9] (सागर विश्वविद्यालय के पुरातत्त्व संग्रहालय) धुबेला संग्रहालय की एक महिषासुरमर्दिनी की प्रतिमा का अधिकांश भाग खंडित है। इसमें देवी महिषरूप में प्रदर्शित दैत्य का वध करती प्रदर्शित है। दमोह जिले के नोहटा में स्थित शिव मंदिर के अंतराल भाग की बाह्यभित्ति पर चामुंडा देवी का भयावह रूप अंकित है।

बुंदेलखंड की मूर्तिकला में देवी लक्ष्मी की अधिसंख्य प्रतिमाएं प्राप्त हुई हैं। देवगढ़ के दशावतार मंदिर में शेषशायी विष्णु प्रतिमा में लक्ष्मी भगवान विष्णु के चरण अपनी गोद में रखे हुए दबा रही हैं। खजुराहो में पद्महस्ता लक्ष्मी की मूर्ति विष्णु के साथ है। एरण से प्राप्त प्रतिमा में गजलक्ष्मी को ललितासन मुद्रा में कमलासन पर आसीन दिखाया गया है।[10] बांदकपुर के शिव मंदिर के परिसर में लक्ष्मी की मूर्ति है। गजलक्ष्मी की एक आसनमूर्ति देवगढ़ से प्राप्त हुई है। इस गुप्तकालीन मूर्ति का दाहिना हाथ अभयमुद्रा में है और बायं हाथ पद्मधारी है।[11] लक्ष्मीनारायण की एक प्रतिमा सागर से प्राप्त हुई है।

त्रिदेवियों में सरस्वती ज्ञान और विद्या की अधिष्ठात्री मानी गई हैं। प्राचीन बुंदेलखंड में सरस्वती की उपदेवी के रूप में उपासना की जाती है। इसका प्रमाण खजुराहो के जैन समूह मंदिर हैं। जबारी मंदिर के मंडप के पश्चिमी द्वार के बाएं पार्श्व में अनेक देवी-देवताओं के साथ सरस्वती की मूर्ति भी उत्कीर्ण है।[12] जगदंबा मंदिर, कन्दरिया महादेव मंदिर, वामन मंदिर, पार्श्वनाथ मंदिर, विश्वनाथ मंदिर में चंदेलकालीन सरस्वती की प्रतिमाएं स्थापित हैं। सरस्वती की छःभुजी प्रतिमा खजुराहो संग्रहालय में संरक्षित है। देवी के हाथों में एक वीणा है और शेष हाथ खंडित हैं। अजयगढ़ के रंगमहल मंदिर से सरस्वती की सुंदर प्रतिमा मिली है, जो अलंकरणों से सुसज्जित है। उनके हाथों में वीणा, अक्षमाला तथा पुस्तक है और नीचे उनका वाहन हंस अंकित है।[13]

प्राचीन बुंदेलखंड में गंगा एवं यमुना की मूर्तियों का निर्माण कुषाणकाल में होने लगा था। गुप्तकाल में गंगा-यमुना को देवी रूप मिला। मकरवाहिनी गंगा तथा कच्छपवाहिनी यमुना की कल्पना सर्वप्रथम गुप्तकाल में प्राप्त होती है। उन्हें मानवाकार रूपों में मंदिर के गर्भ की द्वार शाखाओं पर परिचारिकाओं सहित प्रतिपादित किया गया है। बुंदेलखंड में स्थित तिगवा, नचना, देवगढ़, नागोद, एरण आदि के मंदिरों में मानवीय रूप में गंगा-यमुना का रोचक अंकन हुआ है। जबलपुर, दमोह, छतरपुर, सागर और झांसी के संग्रहालयों में गंगा-यमुना की अनेक प्रतिमाएं प्रदर्शित हैं। गंगा नदी का प्रारंभिक चित्रण भरहुत में मिलता है। बेसनगर, तुमैन आदि स्थानों से कतिपय उत्कृष्ट प्रतिमाएं मिली हैं। गंगा-जमुना प्रायः गुप्ताकालीन मंदिरों के गर्भगृह के प्रवेश द्वार के दोनों ओर की शाखाओं के मध्य में या नीचे अंकित मिलती हैं। तुमैन से प्राप्त गंगा की प्रतिमा (ग्वालियर संग्रहालय) मकर पर खड़ी है। उनके दाहिने हाथ में पात्र है और दाहिनी ओर दो स्त्री परिचारिकाएं खड़ी हैं।[14] कालंजर में नीलकंठ मंदिर के प्रवेश द्वार पर निर्मित मकर एवं कच्छपवाहिनी गंगा और यमुना की मूर्तियां गुप्तकालीन हैं। अजयगढ़ के रंगमहल समूह के चौथे मंदिर में गंगा और यमुना की क्रमशः मकर तथा कच्छपारूढ़ त्रिभंग मुद्रा बड़ी ही सुंदर है। उनके हाथों में कलश का अंकन भी कलात्मक है। गंगा और यमुना सभी आभूषणों से सुसज्जित हैं। खजुराहो के देवी जगदंबा और पार्वती मंदिरों में स्थित वाहन मकर पर सवार गंगा की प्रतिमा है। विश्वनाथ मंदिर के गर्भगृह में भी गंगा की स्वतंत्र प्रतिमा अंकित है।[15]

गुप्तकाल में सप्तमातृकाओं का वैदिक अथवा पौराणिक देवताओं के साथ समन्वय हुआ। इनमें से माहेश्वरी, कौमारी और वैष्णवी की पूजा विशेष रूप से प्रचलित रही।

पन्ना जिले के नांदचांद नामक ग्राम में चौथी शताब्दी की वैष्णवी प्रतिमा ऊंचे सिंहासन पर आसीन है। वह भूरे पत्थर से निर्मित है तथा अद्वितीय रूप से सुंदर है। माहेश्वरी की एक प्रतिमा हरीसिंह गौर पुरातत्त्व संग्रहालय, सागर में है। पन्ना के नांदचांद नामक ग्राम से कौमारी की एक खंडित प्रतिमा प्राप्त हुई है। पन्ना संग्रहालय में ब्रह्माणी की एक प्रतिमा संग्रहीत है।[16] शिलाफलक के मध्य में ब्रह्माणी की एक आसन प्रतिमा है। टीकमगढ़ के मढ़खेरा नामक ग्राम से कौमारी की एक प्रतिमा प्राप्त हुई है।[17] स्थानक नागी की स्त्री रूप की प्रतिमा सीरोनखुर्द से प्राप्त हुई है। यह नागी प्रतिमा समभंग मुद्रा में प्रदर्शित है।[18] नागी की एक विशाल प्रतिमा (सागर विश्वविद्यालय का पुरातत्त्व संग्रहालय) पर सप्त-मातृकाओं का अंकन किया गया है।

बुंदेलखंड के बदोह और पठारी के मध्य पहाड़ी के दक्षिणी भाग की चट्टान पर सप्तमातृकाएं उत्कीर्ण हैं।[19] तुम्बवन (तुमैन) से प्राप्त ई. चौथी शती के एक शिलापट्ट पर सप्तमातृकाओं का अंकन है।[20] त्रिपुरी से गुप्त परिव्राजकयुगीन पांच स्त्री प्रतिमाएं प्राप्त हुई हैं। स्त्री प्रतिमाएं चतुर्भुजी हैं। डॉ. अजयमित्र शास्त्री ने इन्हें मातृका की प्रतिमाएं माना है।[21] गुप्तकाल में मातृका पूजन का प्रचलन था। शिल्प में मातृकाओं को उनसे संबद्ध वाहनों के साथ प्रदर्शित किया गया है।

बुंदेलखंड में देवी प्रतिमाएं यह प्रदर्शित करती हैं कि स्त्री को शक्ति, ज्ञान एवं वैभव प्रदान करनेवाली देवी के रूप में पूजा गया। शाक्त धर्म में स्त्री की धार्मिक प्रतिष्ठा है। विंध्यवासिनी देवी को मस्तक भेंट करने का दृष्टांत यह सिद्ध करता है कि स्त्री-शक्ति को देवी रूप मानकर उसके लिए सर्वस्व न्यौछावर करने की प्रवृत्ति बुंदेलखंड के निवासियों में प्रारंभ से ही विद्यमान थी।

बुंदेलखंड के मंदिरों की दीवारों तथा स्तंभों पर जीवन के विभिन्न पहलुओं को मूर्तियों व शिलाफलकों पर दिखाया गया है। इनमें नर्तकियों की नृत्य मुद्राएं और देवी-देवताओं की नृत्य भंगिमाएं भी शामिल हैं। इनमें से कुछ मुस्करा रही हैं, कुछ गंभीर मुद्रा में हैं। ऐसी असंख्य स्त्री मूर्तियां इन मंदिरों की बाहरी दीवारों और छज्जों पर बनाई गई हैं। चंदेलों द्वारा निर्मित खजुराहो की नृत्यरत स्त्रियों की मूर्तियों की विभिन्न नृत्य मुद्राओं और भंगिमाओं को उपांकित किया

गया है। इसमें एकल नृत्य अर्धमंडली और सामूहिक नृत्यों का भी बड़ा ही प्रभावी अंकन किया गया है। इन सबसे उस समय के नृत्य के महत्त्व और प्रभाव का पता चलता है।

बुंदेलखंड में नृत्यकला स्त्री प्रधान अधिक है। नृत्य की लोकप्रियता इतनी अधिक बढ़ गई थी कि परिवार के भीतर कन्याएं नृत्य सीखती थीं और मंदिरों में सामाजिक उत्सवों में तथा राजदरबारों में नृत्य तथा गान होते थे।[22] नृत्य ने एक पेशे का रूप धारण कर लिया था और लोगों के बीच नर्तकियों का काफी सम्मान था।[23] खजुराहो की सुंदर नर्तकी मूर्तियां नृत्यकला का उत्कृष्ट प्रमाण हैं।[24] देवगढ़ के दशावतार मंदिर में नर्तकियों के समूह नृत्य करने एवं वाद्य बजाने में मग्न हैं। सामंतों के मनोरंजन के लिए अनेक सुंदर नर्तकियां रखी जाती थीं।[25] सामंतों की स्त्रियां उत्सवों के अवसर पर नर्तकियों को आगे लेकर चलती थीं।[26] राजाओं के मनोरंजन के लिए नृत्य का आयोजन होता था। सांची के उत्तर तोरण द्वार के स्तंभ के ऊपरी भाग के भीतरी पट्ट पर स्त्री नृत्य का अंकन किया गया है। राजाओं की ओर से नियुक्त की गई गाणिकाओं का उल्लेख अर्थशास्त्र में मिलता है। राजा की ओर से गणिकाओं के लिए नृत्य शिक्षा का प्रबंध किया जाता था। गणिकाएं नृत्य में प्रवीण होती थीं।[27] उस समय नारियां संगीत एवं नृत्य में विशेष रुचि रखती थीं।[28]

खजुराहो में स्थित विश्वनाथ मंदिर की भित्ति पर उत्कीर्ण चित्र में एक स्त्री आकर्षक मुद्रा में खड़ी होकर एक वृक्ष का चित्र बनाती प्रदर्शित है।[29] कंदरिया महादेव मंदिर के बाएं बहिरंग और वामन मंदिर के दाहिने बहिरंग में भी स्त्रियां इसी तरह चित्रकारी करते हुए प्रदर्शित हैं। पार्श्वनाथ मंदिर में उत्कीर्ण स्त्री अपने बाएं हाथ में रंग का बर्तन लिए हुए दाहिने हाथ से चित्रकारी करते हुए दर्शनीय है।[30] विश्वनाथ मंदिर में एक स्त्री बाएं हाथ के तख्ते पर चित्रकारी करने में व्यस्त है।[31]

बुंदेलखंड स्थित बिलहरी अभिलेख से ज्ञात होता है कि युवराजदेव द्वितीय ने शैव आचार्य हृदयशिव को निमंत्रण दिया और निवेदन किया कि वे पवित्र नोहलेश्वर मठ का कार्यभार संभालें।[32] ऐसे में महारानी अल्हण देवी, जो नृसिंह देव की माता थीं, ने वैद्यनाथ मंदिर के पास एक मठ बनवाया, जो वर्तमान में कोडल ग्राम के नाम से जाना जाता है।[33] यहीं पर उन्होंने उपवन लगाए थे। रानी नोहला ने भी नोहलेश्वर में एक मठ का निर्माण करवाया था।[34]

नारियां भी मंदिरों के निर्माण में अधिक रुचि लिया करती थीं। अभिलेखों में ऊंचे और विशाल मंदिर के निर्माण का उल्लेख मिलता है। कलचुरि शासक युवराजदेव (केयूरवर्ष) की पत्नी नोहला ने नोहटा में भव्य शिव मंदिर के निर्माण का कार्य करवाया था।[35] वीर वर्मन के समय के अजयगढ़ अभिलेख में उल्लेख है कि उसकी पत्नी कल्याण देवी ने नंदी ग्राम में शिवमंदिर बनवाया था। खजुराहो के मंदिरों के निर्माण की परिकल्पना की पृष्ठभूमि में निश्चित रूप से चंदेल राजवंश की राजमहिषियों का योगदान व प्रेरणा रही होगी। पूर्व मध्यकाल में देवगढ़, खजुराहो, नोहटा, अजयगढ़, पन्ना आदि स्थानों पर प्राप्त मूर्तियों की निर्माण-परंपरा में राजमहिषियों का योगदान रहा है।

राजश्री वैभव संपन्न नारियों का अंकन कला में पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है। उनकी वेशभूषा, अलंकरण एवं सेवा में संलग्न अनुचारिणियां उनके वैभव का प्रदर्शन करती है। प्राचीन भारत के सिक्कों पर नारियों का अंकन देवी एवं नारियों के रूप में किया गया है। सिक्कों पर कमलधारिणी देवी लक्ष्मी का अंकन प्राप्त होता है। गुप्तकालीन मुहरों पर भी लक्ष्मी, दुर्गा, गंगा आदि की आकृतियां निर्मित की गई हैं। एरण से प्राप्त एक मृण्मुहर पर गजलक्ष्मी का अंकन किया गया है।

विविध कार्यों को करती स्त्रियों का चित्रण कला में प्राचीन काल से हुआ है। इनके चित्रणों में उसे मातृ और पत्नी रूप में तथा गृहकार्यों को करते हुए प्रदर्शित किया गया है। भरहुत और सांची की कला में ओखली में धान कूटते, आटा पीसते, गूंथते आदि कार्यों को करती हुई स्त्रियों को प्रदर्शित किया गया है। इन चित्रों में भोजन बनाती हुई एवं उसे परोसती हुई स्त्री, कमर पर घड़ा रखे जल लेने जाती स्त्री, फूल चुनते हुए, माला गूंथते हुए तथा पूजन सामग्री लिए हुए स्त्रियां अंकित हैं। कृषि कार्य करती नारी का अंकन भरहुत के स्तूप में मिलता है। नृत्य मूर्तियों में शृंगारित मुद्रा में स्थित रमणीय आभूषणधारिणी भद्र महिला जूड़ा ठीक करती, पंखा झलती हुई स्त्री तथा आसक्त स्त्री-पुरुषों के मिथुन दृश्यों का चित्रांकन है।[36] कला में स्त्रियों का आकर्षण एवं मोहक चित्रण है। झरने के नीचे बैठकर स्नान करती हुई, स्नानोपरांत वस्त्र धारण करती हुई, केशों को निचोड़ रही स्त्री का चित्रण हुआ है। गुप्तकालीन कला में दांपत्य जीवन से संबंधित चित्रों की अधिकता है। खजुराहो से प्राप्त चंदेलकालीन कलाकृतियों में भी लौकिक कार्य करती हुई स्त्रियों तथा क्रीड़ा करते हुए युगलों आदि का प्रदर्शन मिलता है। खजुराहो के विश्वनाथ मंदिर के पीछे छोटे मंदिर में पैर से कांटा निकालते हुए स्त्री

का सुंदर अंकन है। अपने मन को बहलाने के लिए प्राचीनकाल से ही स्त्रियां पशुपक्षियों को पाला करती थीं। मूर्तिकला में पशुओं एवं पक्षियों के साथ क्रीड़ा करते हुए उन्हें प्रदर्शित किया गया है। खजुराहो की मूर्तियों में कुछ स्त्रियां हाथों में पक्षी पकड़े हुए अत्यंत स्नेहपूर्ण दृष्टि से निहारती हुईं, उनसे बातें करती दर्शाई गई हैं। एक अन्य स्त्री हाथ में डंठल सहित आम का गुच्छा लिए है तथा बाएं हाथ की कलाई पर एक शुक पक्षी बिठाए प्रदर्शित है। खजुराहो की मूर्तिकला में पशुओं के साथ मनोरंजन करती हुई स्त्रियों के अनेक दृश्य हैं। एक स्त्री एक बच्चे को बाईं गोद में उठाए हुए है तथा दाहिने हाथ से आम का गुच्छा पकड़े हुए अंकित है। दाहिने पैर के पास बैठा छोटा-सा वानर उसकी चुनरी पकड़े हुए आम मांगने की मुद्रा में है। लक्ष्मण मंदिर के बाह्य भाग में पति-पत्नी की आलिंगन मुद्रा के साथ निकट ही एक वानर चित्रित है तथा पत्नी उस वानर की शैतानियों को झुक-झुककर देखती प्रदर्शित है। कंदारिया मंदिर के एक अन्य दृश्य में स्त्री के दाहिने पैर पर चढ़ते हुए एक वानर को प्रदर्शित किया गया है। सीरोनखुर्द से अंजन लगाती हुई एक अप्सरा प्रतिमा प्राप्त हुई है।[37]

खजुराहो की कला इस क्षेत्र में अपनी पूर्ण पराकाष्ठा पर पहुंची है। यहां के उत्तरी समूह के हिन्दू मंदिरों पर निरावरण स्त्रियों के चित्रों से ज्ञात होता है कि यहां पर विलासिता का प्रभाव अत्यधिक था, जिसे शिल्पियों ने अपनी कला द्वारा मुखरित किया है। यहां के दांपत्य जीवन से संबंधित रति चित्रों के अवलोकन मात्र से ही दर्शक के मन में विकारी प्रेम भाव जाग्रत हो जाता है। देवगढ़ में इससे कुछ कम विकसित रूप देखने को मिलता है। यहां के प्रेमी-प्रेमिका एक-दूसरे को निहारते प्रदर्शित हैं। खजुराहो की कला में एक स्त्री फरसा लिए हुए प्रदर्शित है। कोडल से प्राप्त एक प्रस्तर खंड पर आलस्ययुक्त अंगड़ाई लेती सुंदरी का अंकन है। एरण से प्राप्त तथा सागर विश्वविद्यालय के पुरातत्त्व संग्रहालय में प्रदर्शित एक शिलाफलक में स्खलितवसना अप्सरा का सुंदर चित्रण हुआ है। हिंडोरिया से प्राप्त स्त्री प्रतिमा आकर्षक मुद्रा में स्खलितवसना सुंदरी है। वह अपने दोनों हाथों से कटिभाग को नीचे खिसकाते हुए अधोवस्त्र को संभालती हुई दिखाई गई है। कोडल के शिव मंदिर की भित्ति पर द्विभंग मुद्रा में दर्पणा अप्सरा का अंकन है। वह दर्पण में अपनी मनमोहक छवि का अवलोकन कर रही है। दमोह से प्राप्त प्रसन्न मुद्रा में अप्सरा की प्रतिमा को अपने कान से मैल निकालते हुए प्रदर्शित किया गया है।

प्राचीन बुंदेलखंड की कला तथा स्थापत्य के विभिन्न क्षेत्रों में स्त्रियों का चित्रण अप्रतिम है। प्राचीन बुंदेलखंड की सांस्कृतिक चेतना तथा उत्थान में स्त्रियों ने अपनी सहभागिता प्रदर्शित की थी।

संदर्भ

1. सुशील कुमार सुल्लेरे : अजयगढ़ और कालंजर की देव प्रतिमाएं, पृ. 120, दिल्ली, 1987
2. कुसुम कुमारी जायसवाल : उत्तर भारत की प्राचीन हिन्दू देवी मूर्तियां, पृ. 109 दिल्ली, 1992
3. भगवान सिंह : गुप्तकालीन हिन्दू देव प्रातेमाएं, पृ. 7, दिल्ली, 1987
4. परमेश्वरीलाल गुप्त : गुप्त साम्राज्य, पृ. 500, वाराणसी, 1991
5. जयशंकर मिश्र : प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृ. 774
6. सुशील कुमार सुल्लेरे : पूर्वोक्त, पृ. 118
7. वंदना जैन : सीरोनखुर्द (ललितपुर) से प्राप्त मूर्तिकला का अध्ययन, पृ. 74, सागर, 2005
8. एम.एस. अमावस्या : डाहल क्षेत्र का सांस्कृतिक इतिहास, बालस्वरूप ग्राफिक्स, पृ. 67, इंदौर, 2004
9. उर्मिला प्रकाश : प्राचीन भारत में नारी, पृ. 172, भोपाल, 2001
10. नागेश दुबे, एरण की कला, पृ. 123-124, सागर, 1997
11. कुसुम कुमारी जायसवाल : पूर्वोक्त, पृ. 57
12. उर्मिला प्रकाश : प्राचीन भारत में नारी, पृ. 173
13. सुशील कुमार सुल्लेरे : पूर्वोक्त, पृ. 166
14. उत्तर भारतीय संघमित्र : अप्रधान हिन्दू देव-देवियों का प्रतिमा शास्त्रीय अध्ययन, पृ. 177, दिल्ली, 1994
15. वही, पृ. 182
16. कल्पना जड़िया : बुंदेलखंड क्षेत्र की मातृदेवी प्रतिमाओं का समीक्षात्मक अध्ययन, (अप्रकाशित शोध प्रबंध) पृ. 104, सागर, 1993
17. वही, पृ. 105
18. वंदना जैन : पूर्वोक्त, पृ. 71
19. संतोष कुमार वाजपेयी : गुप्तकालीन मूर्तिकला का सौंदर्यात्मक अध्ययन, पृ. 70, दिल्ली, 1992

20. वही, पृ. 105
21. वही
22. बी.एन. लुणिया : प्राचीन भारतीय संस्कृति पृ. 58, आगरा, 1966
23. परमेश्वरीलाल गुप्त : पूर्वोक्त, पृ. 535
24. उर्मिला प्रकाश : पूर्वोक्त, पृ. 240
25. शिव अनुराग पटैरिया : बुंदेलखंड, पृ. 187, भोपाल 2005
26. रामजी उपाध्याय : प्राचीन भारत की सामाजिक संस्कृति, पृ. 248-49, इलाहाबाद, 1963
27. अनीता मनोज शर्मा : उत्तर भारतीय सार्वजनिक जीवन में स्त्रियों का योगदान, पृ. 102, अप्रकाशित शोध प्रबंध
28. वाचस्पति गैरोला : भारतीय संस्कृति और कला पृ. 342, लखनऊ, 1985
29. कमलश्री : प्राचीन भारतीय युग में भारतीय संस्कृति को जैन नारियों का योगदान, (अप्रकाशित शोध प्रबंध) पृ. 395, सागर, 1979
30. उर्मिला प्रकाश : पूर्वोक्त, पृ. 238
31. कृष्णदत्त वाजपेयी : प्राचीन मथुरा की कला में स्त्रियों का योगदान, पृ. 494, लखनऊ
32. संजय बाबू सोनी : 'दमोह जिले के प्राचीन वस्तुशिल्प में मठ', बुंदेलखंड का सांस्कृतिक तथा राजनीतिक इतिहास (सं. नागेश दुबे) पृ. 194, सागर, 2006
33. उर्मिला प्रकाश : पूर्वोक्त, पृ. 109
34. वही, पृ. 108
35. ज्योति सराफ : 'प्राचीन भारतीय संस्कृति में राजकुल की नारियों का योगदान' (बुंदेलखंड के विशेष संदर्भ में) बुंदेलखंड का सांस्कृतिक तथा राजनीतिक इतिहास, सागर, 2006
36. प्रभुदयाल मीतल : ब्रज की कलाओं का इतिहास, पृ. 77, दिल्ली, 1977
37 वंदना जैन : पूर्वोक्त, पृ. 70

चंदेल कला में स्त्री

◆ *शरद सिंह*

चंदेल काल भारतीय इतिहास के पन्नों पर स्थापत्य एवं मूर्तिकला का स्वर्णिम युग कहा जा सकता है। इस युग की सामाजिक व्यवस्था को तत्कालीन मूर्ति शिल्प से जाना और समझा जा सकता है। जब इतिहास के पन्नों पर दर्ज किसी समाज का प्रश्न उठता है तो यह प्रश्न स्वयंमेव कौंध जाता है कि वह कैसा समाज था—विकसित या संकुचित। उस समय स्त्री की स्थिति क्या थी? क्या उसे समाज में पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त थे? क्या उसे समाज में उचित सम्मान प्राप्त था? कैसा था उसका जीवन? यही सारे प्रश्न चंदेलकालीन समाज और उसमें स्त्रियों की स्थिति के संदर्भ में उठना स्वाभाविक है। यूं भी चंदेलकाल का नाम आते ही खुजराहो की छवि आंखों में तैर जाती है और खुजराहो की पाषाण प्रतिमाओं की स्त्रियों की आकृतियों को देखकर देखनेवाला दांतों तले उंगली दबा लेता है। अतः इस प्रश्न के उत्तर को पाना आवश्यक लगने लगता है कि चंदेलकाल में स्त्रियों की क्या स्थिति थी।

चंदेलकाल से पूर्व सामाजिक नियमों ने स्त्रियों की स्वतंत्रता और अधिकारों को बाधित करना आरंभ कर दिया था, फिर चंदेलकाल में स्त्रियों की दशा क्या थी, इसे जानने के लिए चंदेलकाल की जीवंत मूर्तियों के रास्ते उस युग के विचारों तक पहुंचना होगा।

बुंदेलखंड की भूमि पर चंदेलों का राजनीतिक जीवन गुर्जर-प्रतिहार सम्राटों के सामंत के रूप में प्रारंभ हुआ। चंदेल अभिलेखों के आधार पर नन्नुक को प्रथम चंदेल राजा माना गया है। नन्नुक का शासनकाल सन् 825 ई. से 840 ई. था। नन्नुक का विरुद अथवा दूसरा नाम चंद्रवर्मा था। यद्यपि उसके लिए 'नृपति' अथवा 'महीपति' का ही प्रयोग अभिलेखों में किया गया है, जिससे अनुमान होता है कि गुर्जर-प्रतिहार सम्राट नागभट्ट द्वितीय के सामंत के रूप में नन्नुक ने अपनी शक्ति का विस्तार प्रारंभ किया था। इस प्रकार चंदेल साम्राज्य की नींव रखने का श्रेय नन्नुक को ही जाता है।

नन्नुक के बाद उसका पुत्र वाक्पति (845-865 ई.) चंदेलों का अधिपति बना। वाक्पति बुद्धि और वाणी का धनी था। खजुराहो के अभिलेखों में उसे पृथु और कुकुत्स्थ के समतुल्य बताया गया है। यद्यपि वाक्पति का विरुद भी 'क्षितिप' अथवा 'पृथ्वीपति' से अधिक नहीं रहा अर्थात वाक्पति की स्थिति भी गुर्जर-प्रतिहारों के सामंत की थी। उसने अपनी सामंतीय शक्ति का उपयोग विंध्य क्षेत्र में अपनी शक्ति के विस्तार करने में किया।

वाक्पति के दो पुत्र हुए, जयशक्ति और विजयशक्ति। जयशक्ति का जेजा अथवा जेज्जक तथा विजयशक्ति का विजय, विज्ज अथवा विज के नामों से भी उल्लेख मिलता है। वाक्पति के उपरांत जयशक्ति शासक बना। जयशक्ति की मृत्यु के बाद विजयशक्ति सिंहासनारूढ़ हुआ। इन दोनों भाइयों के शासनकाल की अवधि का सम्मिलित उल्लेख मिलता है, जिसके अनुसार उन्होंने सन् 865 ई. से 885 ई. तक शासन किया। अभिलेखों में दोनों भाइयों का उल्लेख भी साथ-साथ किया गया। एक महोबा अभिलेख के अनुसार जयशक्ति ने अपने नाम पर अपने राज्य का नाम जेजाकभुक्ति उसी प्रकार रखा था, जिस प्रकार पृथु ने भूलोक का नामकरण पृथ्वी किया था। जयशक्ति तथा विजयशक्ति दोनों ने अपनी राज्य शक्ति को सुदृढ़ बनाया। जयशक्ति ने शासन प्रबंध की ओर विशेष ध्यान दिया, जबकि विजयशक्ति ने समकालीन राजनीति में अपने वर्चस्व को बढ़ाया। उसने

सुदूर दक्षिण तक आक्रमण किए। विजयशक्ति ने पालशासक देवपाल के सहयोग के रूप में दक्षिण विजय में भूमिका निभाई। यद्यपि कुछ इतिहासकार इस तथ्य से सहमत नहीं है। फिर भी चंदेल शक्ति के विस्तार और वर्चस्व में श्रीवृद्धि के संबंध में जयशक्ति और विजयशक्ति के महत्त्वपूर्ण योगदान को नकारा नहीं जा सकता है।

विजयशक्ति के बाद उसका पुत्र राहिल (885-905 ई.) शासक बना। वह वीर योद्धा था। उसका शासनकाल लगभग शांतिपूर्ण रहा। उसके शासन के दौरान कोई महत्त्वपूर्ण घटना नहीं घटी।

राहिल की मृत्यु के पश्चात उसका पुत्र हर्षदेव (905-925 ई.) में सिंहासनरूढ़ हुआ। हर्षदेव ने चंदेलों की शक्ति-सामर्थ्य तथा ऐश्वर्य के एक नवीन युग का सूत्रपात किया। गुर्जर-प्रतिहार सम्राट महेन्द्रपाल की सन् 907 ई. में मृत्यु के पश्चात् कन्नौज में प्रतिहारों के मध्य गृहकलह उभर कर सामने आ गई। इस अवसर पर हर्षदेव ने भी अपनी राजनीतिक सक्रियता से काम लिया। राष्ट्रकूटों के आक्रमण से पराजित क्षितिपाल अथवा महीपाल को 917 ई. में पुनः सिंहासनासीन कराया। सामंत की स्थिति में होते हुए भी हर्षदेव ने गुर्जर-प्रतिहार वंश को पुनर्स्थापित करने में योगदान देकर चंदेलों की शांति और प्रतिष्ठा को दृढ़तापूर्वक स्थापित किया। हर्षदेव ने वैवाहिक संबंधों द्वारा भी चंदेल शक्ति को मजबूत किया। उसने स्वयं चाहमान की पुत्री कंचुका से विवाह किया। अपनी पुत्री नट्टदेवी का विवाह कलचुरी नरेश कोक्कल्ल से किया। हर्षदेव की इन नीतियों को उसके उत्तराधिकारियों ने अपनाया।

हर्षदेव की मृत्यु के पश्चात उसके पुत्र यशोवर्मन (925-950 ई.) ने साम्राज्य संभाला। उसने अपने पिता की नीतियों को अपनाते हुए पतनशील प्रतिहार साम्राज्य के अवशेषों पर चंदेलों के नवीन विकास का भवन खड़ा किया। उसने बंगाल में गौड़ से उत्तर पश्चिम में खष तक आक्रमण किए। खजुराहो अभिलेख (954 ई.) के अनुसार यशोवर्मन ने गौड़, खष, कोसल, चेदि, कुरू, मिथिला, मालवा, काश्मीर तथा गुर्जरों पर विजय प्राप्त की थी। उसकी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विजय कालंजर पर थी, जिसके द्वारा चंदेलों की गणना एक शक्तिशाली राजवंश के रूप में होने लगी। 954 ई. के खजुराहो अभिलेख के अनुसार यशोवर्मन ने एक भव्य विष्णु मंदिर का निर्माण कराया, जो वर्तमान समय में लक्ष्मण मंदिर

के नाम से जाना जाता है। इस मंदिर का स्थापत्य एवं अलंकरण चंदेलों की शक्ति एवं प्रतिष्ठा के अनुरूप विशिष्ट है। खजुराहो अभिलेख (954 ई.) के अनुसार इस मंदिर में प्रतिष्ठा हेतु बैकुंठनाथ की प्रतिमा यशोवर्मन को हेरम्बपाल के पुत्र हयपति देवपाल से प्राप्त हुई थी। वही प्रतिमा आज भी मंदिर में मौजूद है।

यशोवर्मन की मृत्यु पश्चात उसका पुत्र धंग (950-1008 ई.) सिंहासनारूढ़ हुआ। धंग का शासनकाल चंदेल इतिहास का महत्त्वपूर्ण शासनकाल है। इसी समय चंदेल और प्रतिहार राजवंशों के बीच नया अध्याय शुरू हुआ। उसने प्रतिहारों के विरुद्ध चंदेलों की स्वतंत्र सत्ता की घोषणा की। गोपाद्रि (ग्वालियर) पर विजय प्राप्त करके प्रतिहारों पर चंदेल की श्रेष्ठता सिद्ध कर दी। इस प्रकार धंग के समय चंदेल राज्य की सीमा कालिंजर से मालवा नदी तक, मालव नदी से कालिंदी तक, कालिंदी से चेदि राज्य तक, तथा चेदि राज्य से गोपाद्रि तक जा पहुंची। 1202 ई. के खजुराहो अभिलेख के अनुसार कोसल, क्रथ, सिंहल और कुंतल के शासक उसकी आज्ञा का पालन करते थे, जबकि कांची, आंध्र तथा अंग के शासकों की रानियां उसके कारावास में थीं। धंग ने गजनी के सुल्तान महमूद हम्वीर के विरुद्ध शासक जयपाल की सहायता की थी। मुस्लिम इतिहासकारों ने भी इसका उल्लेख किया है। धंग एक महान विजेता ही नहीं अपितु कला एवं स्थापत्य का महान संरक्षक भी था। उसके शासनकाल में विश्वनाथ और पार्श्वनाथ के श्रेष्ठतम मंदिरों का निर्माण हुआ। विश्वनाथ मंदिर का निर्माण उसने स्वयं कराया था, जबकि पार्श्वनाथ मंदिर का निर्माण उसके द्वारा सम्मानित पाहिल द्वारा कराया गया था।

धंग के बाद उसका पुत्र गंड (1008-1017 ई.) सिंहासन पर बैठा। उसके शासनकाल में शांति का वातावरण रहा। जगदंबा मंदिर और चित्रगुप्त मंदिर गंड के काल में ही निर्मित हुए थे।

गंड के पश्चात उसका पुत्र विद्याधर (1017-1029 ई.) शासक हुआ। विद्याधर ने चंदेलों के गौरव को चरमोत्कर्ष पर पहुंचा दिया। इतिहासकार इब्नुल-अथीर ने विद्याधर का 'बांदा' के नाम से उल्लेख करते हुए उसे अपने समय का भारत का सर्वाधिक शक्तिशाली शासक बताया है। विद्याधर ने कल्चुरियों एवं परमारों को पराजित नहीं किया, बल्कि सुलतान महमूद के द्वारा कालंजर पर किए गए दोनों आक्रमणों का (1019-1022 ई. में) वीरतापूर्वक विरोध किया। इतिहासकार

कृष्ण देव के अनुसार खजुराहो का विशालतम एवं श्रेष्ठतम कंदरिया महादेव मंदिर विद्याधर के समय निर्मित हुआ।

विद्याधर की मृत्यु के पश्चात कल्चुरियों और मुस्लिमों के आक्रमण बढ़ते चले गए। परवर्ती चंदेल नरेश आवश्यकता अनुरूप योग्य शासक सिद्ध नहीं हो सके। उन्होंने महोबा, अजयगढ़ और कालंजर के दुर्गों पर अपना ध्यान केंद्रित रखा। चंदेल शक्ति के क्रमशः पतन के साथ-साथ खुजराहो का महत्त्व भी क्षीण होता गया। फिर भी खजुराहो की मंदिर निर्माण परंपरा बारहवीं शताब्दी तक गतिमान रही। वामन, आदिनाथ, जवारी और चतुर्भुज मंदिर का निर्माण हुआ। शैव मंदिर दूला देव मंदिर का निर्माण बारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुआ। जय वर्मन के 1117 ई. के खजुराहो अभिलेख से पता चलता है कि कला की दृष्टि से परवर्ती चंदेल नरेशों ने खजुराहो के महत्त्व को कायम रखा। विजयपाल (1029-1051 ई.) कीर्तिवर्मन (1070-1098 ई.) और मदनवर्मन (1129-1163) के शासन काल में विभिन्न मंदिरों का निर्माण हुआ। इब्ने बतूता के विवरण से स्पष्ट होता है कि खजुराहो का राजनीतिक महत्त्व कम होने पर भी लगभग 1335 ई. तक मंदिर स्थापत्य तथा कलात्मकता गतिशील रही।

कैसा था चंदेलकालीन समाज

प्राचीन भारत में सामाजिक संरचना विभिन्न तत्वों पर आधारित थी। उसमें आश्रम एवं पुरुषार्थ का विशेष स्थान था। पारिवारिक संगठन को विशेष महत्त्व दिया जाता था। उल्लेखनीय है कि परिवार और समाज धार्मिक विधि एवं नियमों का एक व्यवस्था और परंपरा के रूप में पालन करते थे। प्राचीन भारतीय समाज में परिवार को बहुत अधिक महत्त्व दिया जाता था। प्राचीन ग्रंथों से तत्कालीन पारिवारिक संरचना एवं उसके संगठन पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। मानव जीवन में दांपत्य जीवन का संतति की दृष्टि से बहुत अधिक महत्त्व था। परिवार में पुत्र तथा पुत्री की स्थिति निर्धारित रहती थी। वृद्धों के प्रति प्राचीन भारतीय समाज में परंपरागत विचार थे।

परिवार मानव सभ्यता के विकास का वह रूप है, जो मनुष्य को सुव्यवस्थित, सुसंगठित एवं आपसी सहयोग की भावना से रहना सिखाता है। परिवार को समाज का एक ऐसा लघु रूप कहा जा सकता है, जिसमें हर आयु वर्ग के विभिन्न

विचारों वाले मनुष्य एक साथ रहते हैं तथा परस्पर सहयोग के द्वारा अपना संगठन बनाए रखते हैं। इस संगठन का आधार प्रायः संबंध तथा वैवाहिक संबंध होता है। परिवार के संबंध में आधुनिक समाजशास्त्रियों के जो विचार हैं, लगभग वही विचार प्राचीन भारतीय समाज में भी पाए जाते थे।

बर्गेस एवं लॉक के अनुसार, 'परिवार ऐसे व्यक्तियों का समूह है, जो विवाह, रक्त अथवा गोद लेने के संबंधों द्वारा संगठित है। एक छोटी-सी गृहस्थी का निर्माण करता है और पति-पत्नी, माता-पिता, पुत्र-पुत्री, भाई-बहन के रूप में एक दूसरे से अंतःक्रियाएं करता है तथा एक सामान्य संस्कृति का निर्माण और देख-रेख करता है।'

चंदेल समाज भी इन्हीं सामाजिक स्तरों से निर्मित था। उसमें भी जाति एवं धर्म का विशेष स्थान था, किंतु एक तथ्य ध्यान देने योग्य है कि चंदेल राजाओं ने जिस रुचि के साथ हिन्दू मंदिरों का निर्माण कराया, उसी रुचि के साथ जैन मंदिरों का भी निर्माण कराया, यहां तक कि बौद्ध प्रतिमाएं भी उन स्थानों से प्राप्त हुई हैं, जो कभी चंदेल साम्राज्य के अधीन थे। यह तथ्य समाज की सकारात्मक सोच का परिचायक है। खजुराहो की प्रतिमाओं में जातिगत कट्टरता के भी कोई प्रमाण नहीं मिलते हैं, जबकि देवता, राजा से लेकर किसान और सेवक तक की मूर्तियां उकेरी गई हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि उत्तरवैदिक युग में जब समूचा भारतीय समाज ऊंच-नीच के भेद तथा स्त्रियों को हीन समझने की रीति-नीति को अपनाने लगा था, चंदेल समाज स्वस्थ परंपराओं का निर्वाह कर रहा था। चंदेल समाज के विचार उस उच्चता तक पहुंच चुके थे, जहां समाज का हर वर्ग विस्तृत दृष्टिकोण का पोषक था अन्यथा क्या यह संभव हो पाता कि मंदिर की भित्तियों पर मिथुन मूर्तियों का उन्मुक्त भाव से अंकन किया जाए और राजा के विरुद्ध कोई विद्रोह न हो अथवा राजा के प्रति कोई घात न हो? यह संभव तभी हो सकता था, जब सामान्य जनता के विचारों में भी पर्याप्त खुलापन और सुदीर्घता हो, क्योंकि ये सभी मंदिर एक राजा के राजत्वकाल में नहीं अपितु एक वंश के कार्यकाल में निर्मित हुए। निःसंदेह ऐसे समाज में स्त्रियों को बहुमुखी विकास करने का अवसर अवश्य मिला होगा।

चंदेलकाल में स्त्रियों की स्थिति का लेखा-जोखा खजुराहो की मंदिर-भित्तियों पर प्रमाण-स्वरूप देखा जा सकता है। गुप्त काल तथा गुप्तोत्तर काल में दांपत्य

जीवन पत्नी की समर्पित भावना पर आधारित हो गया था। मनुस्मृति के अनुसार, 'पत्नी को चाहिए कि वह अपने पति की सेवा करे, उसके आदेशों का पालन करे तथा दासी की भांति उसके पैर दबाए और सेवा करे।'

मौर्य काल में पुत्रियों का विवाह कम आयु में किया जाने लगा, जिससे पुत्रियों की शिक्षा-दीक्षा का स्तर घट गया। परिवार में भी पुत्रियों का महत्त्व कम होने लगा, किंतु चंदेल काल में इन दोनों स्थितियों के प्रमाण नहीं मिलते हैं। चंदेल प्रतिमाओं में, विशेषरूप से खजुराहो की प्रतिमाओं में जहां स्त्री का प्रचुर अंकन है, तत्कालीन समाज में स्त्री के विविधि रूपों का सहजता से आकलन किया जा सकता है। ये प्रमुख रूप हैं–

1. देवी–खजुराहो के मंदिरों में स्त्री के देवित्व को विविध रूपों में प्रस्तुत किया गया है। इनमें मातृ देवी, शक्ति देवी, संहारिका तथा देव-अर्द्धांगिनी रूप प्रमुख है। देव प्रतिमाओं के साथ शक्ति की प्रतीक देवियों की पूजा के प्रचलन का उल्लेख महाभारत के भीष्म पर्व में तथा विराट पर्व में करते हुए देवी पूजा को आवश्यक बताया गया है। महाभारत काल में ही दुर्गा के विभिन्न रूपों का प्रथम परिचय मिलता है। उन्हें कौमारी, काली, कापाली, महाकाली, चंडी, कात्यायनी, कराला, विजया, कौशिकी, उमा, कान्तार-वासिनी आदि नामों से संबोधित किया गया है। 'महाभारत' के 'विराट पर्व' में ही दुर्गा को महिषासुर मर्दिनी कहा गया है। खजुराहो में लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा और दुर्गा के सभी रूपों की मूर्तियां हैं।

स्त्री की शक्ति को सम्मानित स्थान देने के लिए देवी की कल्पना की गई। यह कल्पना धीरे-धीरे इतनी काल्पनिक होती गई कि स्त्री और देवी के बीच गहरा विभाजन कर दिया गया। स्त्री लौकिक रही और स्त्री की शक्ति को देवी के रूप में अलौकिकता की मान्यता दे दी गई। इसका परिणाम यह हुआ कि संकट पड़ने पर स्त्री अपनी शक्ति को पहचानने के स्थान पर काल्पनिक अलौकिक स्त्री शक्ति का सहारा ढूंढ़ने लगी। खजुराहो में भी देवियों के रूप में स्त्री शक्ति को अलौकिक संपूर्ण कलात्मकता के साथ प्रस्तुत किया गया है। स्त्री के इस अलौकिक देवी रूप को पुरुषों के अलौकिक दैवीय रूप देवता से कहीं भी कम करके प्रदर्शित नहीं किया गया है। उदाहरणार्थ–लक्ष्मण मंदिर की आंतरिक प्रदक्षिणा में दाईं ओर देवी अंबा की सुंदर मूर्ति है, जिसमें अंबा के हाथों में जहां वरद मुद्रा है, वहीं पाश, पद्म और खप्पर हैं। जगदंबा मंदिर की

बाईं बहिर्भित्ति पर देवी शिवा को वरद एवं घट के साथ त्रिशूल, सर्पधारी प्रदर्शित किया गया है। खजुराहो में देवी योगेश्वरी की षट्भुज और दशभुज मूर्तियां हैं, जो शक्ति की क्षमता को दर्शाती हैं। षटभुज मूर्ति में शूल, त्रिशूल, घंटिका, सर्प, डमरू तथा खट्वांग धारण किए हैं। अष्टभुज मूर्ति में योगेश्वरी के हाथों में त्रिशूल, डमरू, खड्ग तथा खेटक हैं। दशभुज मूर्ति में त्रिशूल, खड्ग, घंटिका, अभय मुद्रा, खप्पर, खेटक, घट, दुरा और वरद मुद्रा है अर्थात् स्त्री शक्ति में जहां अभय रूपी वरदान देने, क्षमा करने की क्षमता होती है, वहीं वह असुर रूपी अमानवीय शक्तियों का विनाश भी कर सकती है।

खजुराहो में लक्ष्मी की चतुर्भुजी मूर्तियां हैं, जिनमें वरदमुद्रा तथा अभय मुद्रा प्रदर्शित है। वामन मंदिर के गर्भ गृह द्वार में अवस्थित मूर्ति में लक्ष्मी को कमल, चक्र एवं घट धारण किए हुए उत्कीर्ण किया गया है। लक्ष्मण मंदिर तथा कंदरिया महादेव मंदिर की आंतरिक प्रदक्षिणा में आसन मुद्रा में लक्ष्मी को कमल अमृत घट, वरद मुद्रा, अक्षमाला अथवा शंख धारण किए दिखाया गया है। खजुराहो संग्रहालय में संग्रहीत लक्ष्मी प्रतिमा की ऊपरी दो भुजाओं में कमल पुष्प है, जबकि प्रथम भुजा अभय मुद्रा में, चौथी भुजा में अमृत घट है। इसी प्रकार की एक अन्य प्रतिमा में देवी के प्रथम हाथ में बिल्व फल है तथा चौथा हाथ कटि पर अवस्थित है। लक्ष्मी के साथ गज का भी प्रदर्शन है।

वाहन की दृष्टि से खजुराहो में लक्ष्मी की एक अद्वितीय प्रतिमा है। आसन मुद्रा में लक्ष्मी अभय एवं अमृत घट धारण किए हैं। दो गज उनका जलाभिषेक कर रहे हैं, जबकि वाहन के रूप में सिंह उत्कीर्ण हैं। लक्ष्मी के साथ सिंह को वाहन के रूप में अंकित किए जाने का यह अद्वितीय उदाहरण है। इतिहासकार बी.सी. भट्टाचार्य ने लक्ष्मी के साथ सिंह वाहन के प्रचलन का समर्थन किया है। 'अंशुमद्भेदागम्' के अनुसार सरस्वती को वीणा, अक्षमाला, पुस्तक और कमलधारिणी होना चाहिए।

पार्श्वनाथ मंदिर की दाईं बहिर्भित्ति पर अंकित सरस्वती की प्रथम भुजा में वीणा, तृतीय भुजा में कमल तथा द्वितीय और चतुर्थ भुजा में वरद मुद्रा है, किंतु कंदरिया महादेव मंदिर की आधार भित्ति पर अंकित सरस्वती की प्रथम और चतुर्थ भुजा में वीणा, द्वितीय भुजा में पुस्तक और तृतीय भुजा में कमल है, जबकि विश्वनाथ मंदिर के गर्भगृह द्वार पर और चतुर्भुज मंदिर के गर्भ गृह

द्वार के उच्च स्तंभ पर अंकित प्रतिमाओं में सरस्वती के द्वितीय हाथ में कमलनाल, तृतीय हाथ में पुस्तक, शेष में वीणा प्रदर्शित है। वामन मंदिर की दाईं बहिर्भित्ति पर तथा पार्श्वनाथ और जगदंबा मंदिर की बाईं बहिर्भित्ति पर अंकित सरस्वती की मूर्तियों में उन्हें वरद् मुद्रा, कमल, पुस्तक, वीणा अथवा घट सहित दिखाया गया है। खजुराहो में सरस्वती की अन्य प्रतिमाएं भी हैं, जिनमें उनकी छह और आठ भुजाएं हैं।

खजुराहो में दुर्गा की विभिन्न प्रतिमाएं हैं, जिनमें उन्हें सिंह और हिरण वाहनों के साथ उत्कीर्ण किया गया है। विश्वनाथ मंदिर की आंतरिक प्रदक्षिणा में पार्श्व और वरद मुद्राधारी हैं, जबकि लक्ष्मण मंदिर के सामने, बाएं लघु मंदिर की बाहरी भित्ति पर वरद्मुद्रा, कमल और घटधारी हैं। सिंहवाहिनी श्रेणी में दुर्गा को वरद मुद्रा, त्रिशूल, पुस्तक और घटधारी दिखाया गया है। दुर्गा के हाथ में शस्त्रों के साथ पुस्तक का उत्खचन किया जाना इस बात को निरूपित करता है कि खजुराहो के मूर्तिशिल्पी संभवतः शस्त्र और शास्त्र के महत्त्व की समानता को प्रदर्शित करना चाहते थे, जबकि षट्भुजी प्रतिमा में सिंहवाहिनी दुर्गा को वरद्मुद्रा, त्रिशूल और कमंडलुधारी प्रदर्शित किया गया है। दुर्गा के अन्य रूप भी खजुराहो में प्रदर्शित हैं, जो इस प्रकार हैं—दुर्गा, नंदा, देवी, भुवनेश्वरी, सर्वमंगला, घंटाकर्णी, महिषासुरमर्दिनी। दुर्गा के उपरोक्त रूपों के अतिरिक्त कुछ अन्य रूपों की मूर्तियां भी खजुराहो में उत्कीर्ण हैं। ये रूप हैं—अम्बिका, त्रिपुरा, पार्वती, गौरा, अंबा, शिवा, योगेश्वरी आदि। इस प्रकार खजुराहो में शक्ति देवी दुर्गा और उनके विभिन्न रूपों की मूर्तियां हैं।

पुराणों में वर्णित कथा के अनुसार सप्त देवों, ब्रह्मा, महेश्वर, कुमार, विष्णु, वाराह, इंद्र और यम ने अपनी शक्तियां शिव की सहायता के लिए प्रदान की थीं। ये शक्तियां अपने-अपने देवों के अनुरूप नामों से जानी गई हैं।

आदिनाथ मंदिर तथा जगदंबा मंदिर की बाईं बहिर्भित्ति पर तथा वामन मंदिर के गर्भगृह द्वार के भीतरी भाग में देवी वैष्णवी की सुंदर मूर्तियां हैं, जिनमें वे वरद मुद्रा, गदा, चक्र और शंख धारण किए हैं तथा गरुड़ वाहन पर आसीन हैं। देवी मंदिर के गर्भगृह में, कंदरिया महादेव मंदिर की बाईं बहिर्भित्ति पर तथा चौंसठ योगिनी मंदिर में स्रुवा, पुस्तक और घटधारी, हंसवाहिनी मूर्तियां हैं, जिनमें से दो प्रतिमाओं में त्रिभुजी रूप है। लक्ष्मण मंदिर की दाईं बहिर्भित्ति पर अंकित

ब्रह्माणी की मूर्ति में उनके एक हाथ में कमंडलु भी अंकित है। कंदरिया महादेव मंदिर की बाईं बहिर्भित्ति पर अभयमुद्रा और सर्प से युक्त देवी महेश्वरी की सुंदर मूर्ति है। देवी चामुंडा के विभिन्न रूपों की मूर्तियां खजुराहो में हैं। इन्हें दो श्रेणियों में बांटा जा सकता है—(अ) रुद्र चामुंडा तथा (ब) सिद्ध योगेश्वरी।

दूलादेव मंदिर के गर्भ गृह द्वार पर रुद्र चामुंडा अर्थात कंकाली की डमरू, त्रिशूल, खप्पर तथा नरमुंडधारी षट्भुजी मूर्ति है। सिद्ध योगेश्वरी की मूर्तियां खजुराहो संग्रहालय में संग्रहीत हैं, जिनमें बारहभुजी देवी नग्न मानव का शरीर उठाए, क्रोधित मुद्रा में हैं। खजुराहो संग्रहालय में संग्रहीत वाराही की मूर्ति में देवी वृष वाहन के साथ खप्पर धारण किए हुए हैं। कंदरिया महादेव मंदिर और आदिनाथ मंदिर की बाईं बहिर्भित्ति पर त्रिमुखी कौमारी शक्ति एवं पाश धारण किए हैं तथा साथ में मयूर वाहन है। पार्श्वनाथ मंदिर की बाईं बहिर्भित्ति पर अंकित मूर्ति में एकमुखी तथा पुष्पधारिणी रूप हैं। इसमें भी मयूर वाहन अंकित है। सातवीं सप्तमातृका देवी इंद्राणी की एक भी स्वतंत्र मूर्ति खजुराहो में उत्खचित नहीं है। खजुराहो में सूर्या, सावित्री, रुद्रा, वारुणी, नरसिम्ही, सद्योजात, मनसा, मनोन्मानी तथा गंगा-यमुना की सुंदर मूर्तियां हैं।

इसी प्रकार ज्ञान की पूर्णता की परिचायक सरस्वती को मंदिरों की दीवारों पर प्रमुखता से स्थान दिया गया है। पार्श्वनाथ मंदिर की दाईं बहिर्भित्ति पर अंकित सरस्वती की प्रथम भुजा में वीणा, तृतीय भुजा में कमल तथा द्वितीय और चतुर्थ भुजा में वरद मुद्रा है, कंदरिया महादेव मंदिर की आधार भित्ति पर अंकित सरस्वती की प्रथम और चतुर्थ भुजा में वीणा, द्वितीय भुजा में पुस्तक और तृतीय भुजा में कमल है। विश्वनाथ मंदिर के गर्भगृह द्वार पर और चतुर्भुज मंदिर के गर्भ गृह द्वार के उच्च स्तंभ पर अंकित प्रतिमाओं में सरस्वती के द्वितीय हाथ में कमल नाल, तृतीय हाथ में पुस्तक, शेष में वीणा प्रदर्शित है। यहां यह तथ्य रेखांकित किए जाने योग्य है कि मानवीय बुद्धि की प्रदाता एक देवी को माना गया है, जो स्त्री स्वरूपा है। वह प्रकृति, संगीत और ज्ञान में सामंजस्य स्थापित करके मनुष्य को बौद्धिक पूर्णता प्रदान करती है तथा उसे अन्य जीवनधारियों से अलग, श्रेष्ठ बनाती है। वह बुद्धि देते समय स्त्री और पुरुष में भेद नहीं करती है। अतः जिस समाज में सरस्वती जैसी बुद्धिदायिनी की कल्पना को स्थापित किया गया तथा सर्वमान्यता द्वारा स्वीकार किया गया, उसी समाज में स्त्री को पुरुषों से कम

बौद्धिक क्षमता वाता माना जाना हास्यास्पद ही कहा जा सकता है, किंतु चंदेल कला में बुद्धिदायिनी सरस्वती को देवताओं के समतुल्य स्थान दिया गया है, जिससे अनुमान लगाया जा सकता है कि चंदेल समाज में स्त्री की बौद्धिकता का सम्मान किया जाता था।

2. अप्सरा—स्त्री के सौंदर्य को मापने का एक आधार 'अप्सरा' शब्द को माना जा सकता है। यह पृथ्वी पर उपस्थित समस्त स्त्रियों में सबसे अधिक सुंदर स्त्रियों के लिए प्रयुक्त किया जाता रहा है कि 'फलां अप्सरा जैसी सुंदर है' 'अप्सरा' यह भी एक काल्पनिक मापक है, जिसे इस पुरुष प्रधान समाज में स्त्रियों और पुरुषों दोनों के द्वारा स्वीकार किया गया। इस शब्द का भौतिक अर्थ है सर्वांग सुंदरी। इसी अर्थ को आधार बनाकर चंदेल कला में स्त्री के अप्सरा रूप को उत्खचित किया गया है।

जहां तक सौंदर्य का प्रश्न है तो सौंदर्य के संबंध में विद्वानों के भिन्न-भिन्न विचार पाए जाते हैं, किंतु सभी विद्वानों के विचारों में दो बिंदु समान रूप से मिलते हैं—(अ) सौंदर्य वह तत्त्व है, जो भावक, दर्शक या श्रोता को अभीभूत करे। (ब) किसी कलाकृति में सौंदर्य तब होता है, जब रूप, रंग, भाव, आकृति एवं प्रस्तुति में समानुपातिक संतुलन हो। इसी प्रकार सौंदर्य के स्वरूप के विषय पर भी दो बिंदुओं पर सर्वसम्मति पाई जाती है। सौंदर्य के ये दो स्वरूप हैं—(अ) नैसर्गिक (ब) निर्मित।

सौंदर्य की अवधारणा को एक शास्त्र का दर्जा भी दिया गया है। सौंदर्य शास्त्र को अंग्रेजी में 'ऐस्थेटिक्स' कहते हैं। एस्थेटिक्स यूनानी भाषा के 'एस्थेसिस' से उत्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ होता है ऐंद्रिय सुख की चेतना अथवा ऐंद्रिय संवेदना। इस प्रकार 'एस्थेटिक्स' शब्द का अर्थ होता है—'ऐंद्रिय संवेदना का शास्त्र'। इसी ऐंद्रिय संवेदना को चंदेलकला में अप्सरा के रूप में प्रदर्शित किया गया है, जिसमें स्त्री अपने सर्वांग सौष्ठव के साथ दिखाई देती है।

3. सेविका—चंदेल काल में स्त्री का सेविका रूप भी सामने रखा गया है, किंतु यह सेविका रूप लैंगिक भेद के आधार पर पुरुष की सेविका का नहीं वरन् आर्थिक स्तर के आधार पर है। रानी तथा नर्तकी की सेवा करती हुई स्त्री सेविका रूप में प्रदर्शित की गई है। सजने-संवरने के समय सहायिका के रूप में तथा कामकला के विभिन्न आसनों में सहायिकाओं के रूप में सेविकाएं उकेरी गई हैं।

उल्लेखनीय है कि किसी भी प्रतिमा में किसी भी सेविका के साथ किसी भी तरह का अन्याय अथवा अत्याचार होने के प्रमाण नहीं मिलते हैं। अतः यह माना जा सकता है कि सेविकाओं के साथ उदार व्यवहार किया जाता था।

4. कामकला निपुण—हिन्दू जीवन-व्यवस्थाओं में चार पुरुषार्थों—अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष में काम को भी अन्य तीन पुरुषार्थों के समकक्ष महत्त्वपूर्ण माना गया है। खजुराहो में प्रदर्शित मिथुन मूर्तियां सृजन हेतु काम को प्रदर्शित करती हैं, जिससे इनके तंत्र मार्ग से प्रभावित होने का भ्रम होने लगता है। मिथुन मूर्तियों में प्रदर्शित कामकला की विविध पद्धतियां एवं आसन यह प्रदर्शित करते हैं कि मनुष्य अपने जीवन से पूर्ण तृप्ति के बाद ही आध्यात्म की ओर प्रवृत्त हो सकता है तथा मोक्ष प्राप्त कर सकता है।

मंदिरों की बहिर्भित्तियों पर इस प्रकार का प्रदर्शन आधुनिक समाज में कौतूहल उत्पन्न करता है, किंतु मंदिरों और यौनाचार का पारस्परिक संबंध प्राचीनतम है। बेबीलोनिया के मिलित्ता मंदिर में प्रत्येक विवाहिता को एक बार जाकर विदेशी के साथ कुछ घंटे व्यतीत करने होते थे। इसी प्रकार ग्रीक अफ्रोदीती और रोमन वीनस के चारों ओर गणिकाओं में आवास होते थे। भारत के मंदिरों में देवदासी प्रथा भी चंदेलकाल से पुरातन है। कालिदास ने महाकाल की चरणधारिणी नर्तकियों का उल्लेख किया है, किंतु छठीं शताब्दी ईसवी में नग्न नारी मूर्तियों का उत्खचन तो किया जाता था, लेकिन मिथुन चित्रण का अभाव था। वज्रयान उदय यानी छठीं शताब्दी के निकट तांत्रिक परिपाटी का विकास हुआ और साधना का केंद्र नारी को बनाया गया। शाक्त धर्म में भी भोग द्वारा तंत्र सिद्ध करने की परिपाटी रही। विंध्याचल में नग्न कुमारी की पूजा प्रमुख अनुष्ठान था। औघड़, सहजिया, मरमिया आदि कापालिक पंथ तंत्र ज्ञान का प्रसार करते रहे। इस प्रकार की परिपाटियों ने मंदिर में मिथुर मूर्तियां के उत्खचन को सहज सार्वजनिक होने में मदद की होगी।

खजुराहो में प्रदर्शित मिथुन मूर्तियों में जिन आसनों का अंकन है, उनका उल्लेख प्राचीन ग्रंथ 'कामसूत्र' में मिलता है, जिनमें भुग्नक, व्यायत, अवलंबितक, धेनुक, संघाटक, गोयूथिक तथा अघोरत आदि का अंकन शिल्प सौंदर्य की दृष्टि से अनुपम है। इनकी अंतर्कियाओं को भी शिल्पियों ने सहज भाव से प्रस्तुत किया है। उदाहरणार्थ, धेनुक की अंतर्कियाएं हारिणबंध, छागल, गर्दभाक्रान्त, मार्जारललिततक

आदि का प्रदर्शन विविध मूर्तियों में है।

लक्ष्मण मंदिर की बहिर्भित्तियों पर रतिक्रिया में लिप्त युगल, मुख मैथुन, गोयूथिक (सामूहिक रतिक्रिया) तथा पशु-संभोग का उत्खचन है। इसी प्रकार दूलादेव मंदिर में मुखमैथुन, देवी जगदम्बा मंदिर में पशु आसन तथा लक्ष्मण मंदिर में गोयूथिक चित्रण प्रदर्शित किया गया है।

5. विविधकला पारंगत—चंदेलकाल में स्त्रियों को विविध कलाओं में दक्षता प्राप्त करने का भरपूर अवसर दिया जाता था। वे चित्रकला, नृत्य, गायन तथा वादन में निपुण होती थीं। इस तथ्य के अनेक उदाहरण खुजराहो की मूर्तियों में देखे जा सकते हैं।

निःसंदेह चंदेल नारियों की अभिरुचि में चित्रकला का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। खजुराहो मंदिर भित्तियों पर चित्रकला से संबंधित दो प्रकार के दृश्य मिलते हैं—1. दीवार पर चित्र बनाती हुईं तथा 2. चित्रफलक पर चित्रकारी करती हुईं।

नृत्य मुद्रा के समान आकर्षक मुद्रा में खड़ी हुई एक नारी को दर्शकों की ओर पीठ करके दाएं हाथ से चित्र बनाती हुई दर्शाया गया है। उसका दायां हाथ सिर से ऊपर उठा हुआ है। एक अन्य दृश्य में एक नारी दर्शकों की ओर पीठ करके दीवार पर चित्र बना रही है। इस दृश्य में उस नारी के द्वारा बनाए गए वृक्ष की शाखाएं भी स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती हैं। पार्श्वनाथ मंदिर में अपने बाएं हाथ में रंगों का पात्र लिए तथा दाएं हाथ से चित्र बनाती हुई नारी प्रतिमा है। यद्यपि इसमें दायां हाथ देह के पीछे छिपा हुआ होने के कारण दृष्टव्य नहीं है। दूसरे प्रकार के दृश्यों में एक नारी बाएं हाथ की उंगलियों में चित्रफलक पकड़कर दाएं हाथ से तूलिका (ब्रश) द्वारा चित्र बनाती हुई दिखाई गई है। इस प्रकार के दृश्य से युक्त अन्य प्रतिमाएं भी हैं।

खजुराहो मूर्तिशिल्प में नर्तकियों को बड़ी कलात्मकता के साथ उतारा गया है। कुछ नर्तकियों को इतनी कठिन मुद्रा में दिखाया गया है कि उनकी नृत्य मुद्राएं असंभावित सी जान पड़ती हैं। लक्ष्मण मंदिर के सामने बाईं ओर स्थित लघु मंदिर में एक नर्तकी को दर्शकों की ओर पीठ किए हुए नृत्य मुद्रा में दिखाया गया है, किंतु नर्तकी ने अपनी कमर को इस तरह मोड़ रखा है कि उसका मुख तथा वक्ष दर्शकों की ओर है। प्रथम दृष्टि में ऐसा प्रतीत होता है, जैसे उसकी

अधोदेह पर देह का ऊपरी भाग अलग से घुमाकर जोड़ दिया गया हो, किंतु दूसरी ही दृष्टि में यह कठिन नृत्य मुद्रा स्पष्ट हो जाती है।

इसी प्रकार की मुद्रा विश्वनाथ मंदिर की बाईं आंतरिक प्रदक्षिणा भित्ति पर तथा कदरिया महादेव मंदिर की बाईं एवं दाहिनी बहिर्भिति पर है, जिसमें नर्तकी ने अपनी देह के ऊपरी हिस्से को कमर से मोड़कर दर्शकों की ओर कर रखा है। लक्ष्मण मंदिर तथा कंदरिया महादेव मंदिर में एक अन्य नृत्यमुद्रा प्रदर्शित है, जिसे 'त्रिभंग' कहते हैं। इसमें नर्तकी के दोनों हाथों की उंगलियां उसकी देह के पृष्ठभाग में जाकर आपस में गुंथी हुई हैं।

एक अन्य मुद्रा में नर्तकी ने अपने दाएं पैर को मोड़कर दाएं हाथ से पकड़ रखा है तथा उसका चेहरा बाएं कंधे की ओर झुका हुआ है। नर्तकियां प्रायः अधोवस्त्र के रूप में चूड़ीदार पाजामा जैसा कसा हुआ वस्त्र पहनती थीं। यद्यपि उनका वक्ष स्थल अनावृत रहता था, जो कि आभूषणों से सुसज्जित रहता था।

खजुराहो मंदिर भित्तियों पर अनेक नारी मूर्तियां वाद्य यंत्र बजाती हुई प्रदर्शित हैं। इनसे स्पष्ट होता है कि 10वीं, 11वीं सदी में महिलाएं वाद्ययंत्र में रुचि रखती थीं।

विश्वनाथ मंदिर में बांसुरी बजाती हुई नारी का सुंदर शिल्पांकन है। उसने अपने दोनों हाथों की उंगलियों से बांसुरी थाम रखी है। वह सामने की ओर मुख किए हुए है तथा उसका शरीर आरामदायक मुद्रा में दाईं ओर तनिक झुका हुआ है। एक अन्य नारी मूर्ति में, जो वादन मुद्रा दर्शाई गई है, वह शिल्प सौंदर्य की दृष्टि से अत्यंत आकर्षक है। वादिका पैरों से गुणित बनाती हुई खड़ी है। वह दर्शकों की ओर देख रही है। उसने अपने दोनों हाथों से बांसुरी को पकड़कर अपने होंठों पर टिका रखा है। लक्ष्मण मंदिर में एक नारी दर्शकों की ओर पीठ करके खड़ी है तथा अधरों पर बांसुरी टिकाकर दोनों हाथों की उंगलियों से उसे बजा रही है। बांसुरी के अतिरिक्त तारवाद्य बजाती हुई नारी मूर्तियां भी हैं। वीणा, इकतारा तथा रबाब का वादन करते हुए दृश्य अंकित किए गए हैं। एक नारी को अपने दोनों हाथों से रबाब जैसा आयताकार तारवाद्य बजाते हुए दिखाया गया है।

ढोलक, मंजीरा, शंख, मृदंग, डमरू, तुरही, घंटा आदि वाद्य बजाती हुईं प्रतिमाएं प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। वामन मंदिर में एक नारी को लंबा इकतारा

बजाते हुए उत्कीर्ण किया गया है, जिसे उसने दोनों हाथों में थाम रखा है। जवारी मंदिर में स्त्री-पुरुष के समूह को विभिन्न प्रकार के वाद्ययंत्र बजाते हुए दिखाया गया है। जैसे—बांसुरी, शंख, वीणा, घंटा आदि। पूजा में प्रयुक्त होने वाला 'उपंग' नामक वाद्य भी प्रदर्शित है। लक्ष्मण मंदिर में दो पुरुषों को तबलानुमा वाद्य बजाते हुए दिखाया गया है, जिसमें एक नर्तकी भी दिखाई पड़ती है। ढोल और तबला बजाते हुए पुरुषों की कई प्रतिमाएं मंदिर भित्तियों पर हैं। अन्य प्रतिमाओं में ढोल, घंटा, मृदंग, तुरही, हार्प, डमरू, इकतारा, वीणा, शंख दिखाए गए हैं।

6. साक्षर—चंदेल काल में स्त्री को शिक्षा से वंचित नहीं किया जाता था वरन् स्त्री की शिक्षा के लिए शिक्षकों की व्यवस्था रहती थी। सहशिक्षा का प्रमाण भी एक प्रतिमा से प्राप्त होता है। इस प्रतिमा में पुरुष शिक्षक के सम्मुख एक स्त्री खड़ी है तथा वहां छात्र भी उपस्थित हैं। खजुराहो की मूर्तियों में अत्यंत कलात्मक ढंग से लेखन एवं पठन क्रिया को ढाला गया है। विश्वनाथ मंदिर में एक नारी को कागजों के पुलिंदे सहित दिखाया गया है। वह सामने खड़े पुरुष को कुछ समझा रही है। इसी मंदिर के अन्य दृश्य में एक नारी पुस्तक रखकर गुरु से पढ़ती हुई दिखाई गई है।

पत्रलेखन से संबंधित अनेक प्रतिमाएं खजुराहो में विद्यमान हैं। किसी में पत्र लिखती हुई नारी दिखाई गई है तो किसी में स्वाभाविक उत्सुकता का भाव लिए हुए पत्र पढ़ती हुई नारी अंकित है। एक से अधिक पत्र रखे हुए प्रसन्नचित्त नारी की प्रतिमा भी है, जबकि कंदरिया महादेव मंदिर में पत्र को देख-पढ़कर मधुरता से मुस्कराती हुई नारी उत्खचित है।

पत्र पढ़कर चिंतन में डूबी हुई नारी, उदासी से ग्रस्त, आंसू पोंछती हुई, आंखें बंद किए अथवा सप्रयास पत्र देखती हुई नारी का अत्यंत भावपूर्ण तथा कलात्मक अंकन है। एक नारी बायां हाथ अपने वक्ष पर रखे और दाएं हाथ में पत्र रखे हुए अंकित है। मानो वह पत्र पढ़ने के लिए अपना हाथ अपने वक्ष के मध्य रखे हुए हो। एक अन्य नारी दाएं हाथ में कलम तथा बाएं हाथ में पुस्तक थामे हुए दर्शाई गई है।

अपने बाएं हाथ में पत्र तथा दाएं हाथ में कलम पकड़कर पत्र लिखती हुई नारी प्रतिमा का एक से अधिक मंदिरों में सुंदर अंकन है। इस मुद्रा में वह सोचती हुई दर्शाई गई है कि पत्र में क्या लिखना है। इसी विचारपूर्ण मुद्रा में एक अन्य

स्त्री को पत्र के विषय पर आंख मूंदकर चिंतन करते हुए दिखाया गया है। दूलादेव मंदिर में एक नारी को दाएं हाथ में पत्र लेखन के लिए कागजों का पुलिंदा थामे हुए दिखाया गया है। वह बाएं हाथ में कलम पकड़कर उसे अपने होंठों के मध्य दबाकर विचार करती हुई अंकित है।

7. क्रीड़ाप्रिय—चंदेल समाज में स्त्रियों को खेलने-कूदने की छूट थी। वे अपने मनोरंजन हेतु गेंद द्वारा खेले जाने वाले खेल खेला करती थीं। खजुराहो की मंदिर भित्तियों के कुछ दृश्यों में नारियों को कंदुक क्रीड़ा में व्यस्त दिखाया गया है। इन दृश्यों में क्रीड़ा शैली मनोरंजन के भाव के साथ-साथ कलात्मकता का पुट लिए हुए है।

लक्ष्मण मंदिर में एक नारी दाएं हाथ से बाएं हाथ में गेंद उछाल रही है। वह पीछे की ओर से गेंद उछालने के प्रयास में है। इसी प्रकार के दृश्य जगदंबा मंदिर, लक्ष्मण तथा कंदरिया महादेव मंदिर की भित्तियों पर भी हैं। इनमें एक दृश्य ऐसा भी है, जिसमें एक नारी एक छोटे बालक के साथ है। वह बालक उसके पैरों के पास बैठकर गेंद लपकने को तत्पर है।

8. सजने-संवरने में निपुण—मानव के अपने हृदय में स्थित कोमल भावनाओं के प्रति चेतना जाग्रत होने की आरंभिक अवस्था से ही प्रसाधन की प्रवृत्ति मानव जीवन का अभिन्न अंग रही है। नागरिक जीवन से दूर रहने वाले अनपढ़ वनवासी मानव भी प्रसाधन को अपनाते हैं, वे कृत्रिम प्रसाधनों के स्थान पर प्राकृतिक प्रसाधनों का प्रयोग करते हैं। कण्व ऋषि की पालित कन्या शकुंतला के संबंध में कालिदास ने वर्णन किया है कि वह वनलता और वन पल्लवों से अपनी सज्जा करती थी। जब दुष्यंत ने शकुंतला को प्रथम बार देखा और उसकी ओर आकृष्ट हुआ था, शकुंतला ने उस समय वृक्ष का वल्कल (छाल) पहना था। फिर चंदेल समाज मानवीय सौंदर्य के प्रति विशेष ध्यान देनेवाला समाज था।

यूं भी शृंगार को स्त्री के अधिकार के रूप में माना जाता है। चंदेलकालीन स्त्रियां भी शृंगार के प्रति असीम रुचि रखती थीं। वे आभूषण पहनने में रुचि रखती थीं, उन्हें काजल लगाना, पाउडर लगाना और विभिन्न प्रकार की केश सज्जा करना पसंद था।

विश्वनाथ मंदिर की प्रदक्षिणा पथ की आंतरिक भित्ति में बांसुरी बजाती एक नारी की मूर्ति है, जिसने बालों को एक सुंदर जूड़े में बांध रखा है, जो पार्श्व में

गर्दन के ऊपर स्थित है। यह आभूषण से सुसज्जित है। जूड़े का एक बंध ऊपर की ओर, एक बंध नीचे की ओर स्थित है। इसी प्रकार लक्ष्मण मंदिर तथा विश्वनाथ मंदिर में उपरोक्त प्रकार का बंधयुक्त केश विन्यास दिखाया गया है, जो आभूषणों से सुसज्जित है। विश्वनाथ मंदिर की पट्टिका में विशेष प्रकार के शीश आभूषण से सज्जित जूड़ा प्रदर्शित है, जो कि जटा के समान सिर के ऊपर बंधा है। कंदरिया महादेव मंदिर में पीछे गर्दन पर बेलनाकार जूड़ा दिखाया गया है। लंबी डोर वाली बेंदी प्रदर्शित है, जिसमें मांग स्पष्ट नहीं दिखाई दे रही है। बेंदी का निचला हिस्सा दोनों कंधों पर लटक रहा है। ऊपरी हिस्सा जूड़े से ऊपर होता दिखाई पड़ रहा है।

प्रसाधन के प्रति अभिरुचि का अनुमान मूर्तियों के सज्जापूर्ण अंकन को देखकर सुगमता से लगाया जा सकता है। चंदेलकाल में प्रसाधन के अभिन्न अंग मुखचूर्ण (पाउडर) का प्रयोग किया जाता था। कंदरिया महादेव की बाईं बहिर्भित्ति, वामन मंदिर की बाईं बहिर्भित्ति तथा संग्रहालय में रखी प्रतिमा में एक सुंदरी को एक हाथ में मुखचूर्ण लगाने का साधन (पफ) तथा दूसरे हाथ में दर्पण रखे हुए दर्शाया गया है।

नेत्र सज्जा में सहायता हेतु बाल परिचारक अथवा परिचारिका प्रसाधन सामग्री लेकर खड़ी रहती थी। लक्ष्मण मंदिर में एक सुंदरी एक हाथ में दर्पण तथा दूसरे हाथ में शलाका से अंजन लगाती हुई प्रदर्शित है। इसमें निकट ही एक बाल परिचारक भी दिखाई पड़ रहा है। नेत्रों के सौंदर्य में वृद्धि के लिए भौंहों को भी सुसज्जित एवं व्यवस्थित किया जाता था। खजुराहो के मूर्ति शिल्प में कमान के समान तराशी हुई सुंदर भौंहों का अंकन स्पष्ट दृष्टिगत है।

मस्तक सज्जा हेतु बिंदी का प्रयोग किया जाता था। इसे दर्पण देखकर स्वयं लगाया जाता था। उंगली को बिंदी वाले पदार्थ में डुबोकर उंगली से बिंदी लगाई जाती थी। विश्वनाथ मंदिर की बाईं बहिर्भित्ति, विश्वनाथ मंदिर की दाईं बहिर्भित्ति, भरतचित्रगुप्त मंदिर की दाईं बहिर्भित्ति एवं विश्वनाथ मंदिर की पार्श्व बहिर्भित्ति में अंकित नारी प्रतिमा में एक स्त्री को बिंदी लगाते हुए दिखाया गया है, जो दूसरे हाथ में एक दर्पण रखे हुए है। एक अन्य प्रतिमा में एक स्त्री अपनी उंगली बिंदी के पात्र में डुबोती हुई दिखाई गई है। बिंदी का पात्र उसके दूसरे हाथ में है। पुरुषों में यही प्रथा तिलक के रूप में प्रचलित थी।

9. योद्धा एवं आखेटक—खजुराहो मूर्तिकला में कई ऐसे दृश्य हैं, जो सिद्ध करते हैं कि तत्कालीन नारियों में शस्त्र विद्या के प्रति अभिरुचि थी। आत्मरक्षा एवं शिकार के उद्देश्य से वे शस्त्र धारण करती थीं। कंदरिया महादेव एवं जगदंबा मंदिर के आधार फलक पर एक नारी को ऐसा भाला रखे हुए दिखाया गया है, जिसके एक सिरे पर तीन पत्तियों के आधार पर धारदार चाकू जुड़ा हुआ है। वामन मंदिर में एक नारी को परशु धारण किए हुए तथा एक अन्य नारी को धनुषबाण सहित प्रदर्शित किया गया है। इस नारी के बाएं हाथ में धनुष है, जिस पर दाएं हाथ से उसने धनुष पर तीर चढ़ाया हुआ है तथा वह तीर छोड़ने को तत्पर है। उसके कंधे पर तरकश बंधा हुआ है, जिसमें कुछ अन्य तीर रखे हुए हैं।

दूलादेव मंदिर में एक नारी हाथ में चाकू लेकर आक्रमण करने को तत्पर दिखाई गई है। एक अन्य प्रतिमा में एक नारी को बड़ी तलवार थामे हुए दिखाया गया है। अपने दाएं हाथ से उसने तलवार की नोक पकड़ रखी है।

10. माता—खजुराहो संग्रहालय में संग्रहीत मूर्ति में देवी के ऊपरी दो हाथों में पाश तथा दर्पण है, जबकि नीचे के दो हाथों में शिशु है, जिसे वे स्तनपान कराने को उत्सुक हैं। कंदरिया महादेव तथा मतंगेश्वर में भी माता और शिशु की प्रतिमाएं हैं, जो चंदेल समाज में मातृत्व के प्रति सम्मानभाव की सूचक हैं।

मूर्तियों में उत्खचित स्त्री के विविध रूपों को सूक्ष्मता से परखने के बाद चंदेलकाल में स्त्रियों की स्थिति का आकलन सहजता से किया जा सकता है। उस समय स्त्रियां मात्र भोग्या ही नहीं थीं, जैसा कि मिथुन प्रतिमाओं को देखकर कभी-कभी लोग भ्रमित हो जाते हैं। स्त्री को कामकला में जिस प्रकार पुरुषों के समकक्ष निपुण दर्शाया गया है, ठीक उसी प्रकार विभिन्न ललितकलाओं तथा पठन-पाठन में स्त्रियों की दक्षता इस बात को प्रमाणित करती है कि चंदेल समाज स्त्रियों के प्रति समभाव रखता था। यह भी विचारणीय है कि चंदेल शासकों में पुरुष शासक ही हुए, स्त्री शासक एक भी नहीं हुई, किंतु स्त्रियों को शस्त्र विद्या तथा युद्धकला सिखाई जाती थी। वह युग राजाओं के परस्पर युद्धों एवं साम्राज्य-विस्तार के निमित्त किए जाने वाले युद्धों का समय था। चंदेलवंश के राजा भी इसके अपवाद नहीं थे। उन्होंने भी अपना वर्चस्व बनाए रखने तथा अपनी सत्ता का विस्तार करने के लिए समय-समय पर युद्ध किए।

स्मृतिग्रंथों में सतीप्रथा का उल्लेख नहीं मिलता है। मनु तथा याज्ञवल्क्य ने भी विधवा स्त्री के सती होने के संबंध में अपने स्मृतिग्रंथ में कोई चर्चा नहीं की है, जिससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि स्मृतिकाल में सती प्रथा नहीं पाई जाती थी। लगभग 400 ई. के बाद के ग्रंथों में विधवाओं के सती होने के कुछ प्रकरण मिलते हैं। वात्सयायन, कालिदास और शूद्रक ने अपने ग्रंथों में सती होने की घटना का उल्लेख किया है। गुप्तकाल (लगभग 510 ईसा) में गोपराज की पत्नी पति के हूणों के विरुद्ध लड़ते हुए मारे जाने पर सती हुई थी, किंतु उनके द्वारा शासित क्षेत्रों में उनके काल में एक भी सती-पत्थर नहीं मिलते हैं अर्थात् चंदेलकाल में सती प्रथा जैसी कुरीति नहीं थी।

गुप्त एवं गुप्तोत्तर काल में स्त्रियों की सामाजिक दशा में निरंतर गिरावट आई। लगभग 900 ई. तक युद्ध के दौरान अपहृत स्त्रियों के प्रति समाज का दृष्टिकोण रहा कठोरतापूर्ण, फिर भी उन्हें प्रायश्चित-अनुष्ठान के बाद पति एवं परिवार द्वारा स्वीकार कर लिया जाता था, किंतु 11वीं शती से मुस्लिम आक्रमणकारियों द्वारा अपहृत स्त्रियों के लिए समाज में कोई स्थान न रहा, जिसका दुष्परिणाम सती प्रथा में वृद्धि के रूप में सामने आया। क्षत्रियों में पति के युद्ध में पराजित होने की स्थिति में स्त्रियां आत्मदाह करने लगीं। इस प्रथा को 'जौहर' कहा जाता था। कई स्त्रियां सामूहिक रूप से भी जौहर करती थीं। चंदेलकालीन प्रतिमाओं में जौहर से संबंधित एक भी दृश्य नहीं मिलता है।

गुप्त एवं गुप्तोत्तर काल में अनेक जातियों में पुत्रियों के जन्म को दुःख का कारण समझा जाने लगा था। 'कथासरित्सागर' के अनुसार पुत्र को सुख का स्रोत तथा पुत्री को दुःख का मूल कहा गया। इस काल में उच्च अथवा धनिक वर्ग की पुत्रियों को ही उच्च शिक्षा पाने का अवसर मिल पाता था, फिर भी शील भट्टारिका, विजयांका तथा देवी आदि विदुषी स्त्रियों ने अपने ज्ञान से समाज में विशिष्ट स्थान पाया। स्मृतिग्रंथों में पुत्री के यौवनारंभ से पूर्व ही उन्हें विवाहित जीवन में प्रवेश करा देने का निर्देश दिया गया है। बृहदयम् के अनुसार 'प्रत्येक पिता को चाहिए कि वह अपनी पुत्री का विवाह उसके दसवें वर्ष की आयु तक कर दे, अन्यथा उसे (पिता को) पाप का भागी बनना पड़ेगा।'

फिर भी चंदेलकालीन एक भी प्रतिमा ऐसी नहीं है, जिसमें किसी बालिका को वधू के रूप में अथवा युगल में रूप में दिखाया गया हो। आशय यह कि

चंदेलकाल में बाल विवाह भी नहीं था। यदि रहा भी होगा तो उसका प्रतिशत न्यूनतम रहा होगा, क्योंकि प्रत्येक स्त्री-प्रतिमा वयस्क आयु की है।

सूत्र और स्मृतिकाल में स्त्रियों की स्वतंत्रता पर कुछ प्रतिबंध लगा दिए गए थे। बाल्यावस्था में वे अपने पिता के, यौवनावस्था में अपने पति के और वृद्धावस्था में पुत्र के संरक्षण में रहती थीं। उनका पूर्णतः स्वतंत्र रहना अनुचित समझा जाता था। पति के घर में पत्नी का महत्त्व रहता था। वह सामुदायिक कार्यक्रमों में तथा शास्त्रार्थों में भाग ले सकती थी। लगभग छठी सदी ई.पू. पाणिनी ने अपने ग्रंथ अष्टाध्यायी में स्त्रियों को 'असूर्यम्पश्या' कहा है अर्थात् जिन्हें सूर्य की किरणें भी स्पर्श नहीं कर पाती थीं। भारत पर यवन, शक, कुषाण आदि विदेशी जातियों के आक्रमण प्रारंभ हो गए थे, जिसके कारणों स्त्रियों का सतीत्व भी सुरक्षित नहीं रह गया था। बाणभट्ट के 'हर्षचरितम्' में राजश्री को 'अरुणांशुकावगुंठितमुखी' (जिसने लाल रेशम का पर्दा मुख पर डाला हुआ हो) कहा गया है। जो स्पष्ट रूप से सातवीं सदी में पर्दे की प्रथा को सूचित करता है। 'मृच्छकटिकम' में विवाह के समय वधू के मुख के पर्दे से ढके होने का वर्णन है। दूसरी सदी ईपू के लगभग स्त्रियों में पर्दे की जिस प्रथा का प्रारंभ हुआ था, वह सातवीं-आठवीं सदी तक अवश्य विद्यमान रही।

गुप्तोत्तरकाल में लगभग 600 से 1200 ईस्वी में संपन्न परिवारों में पर्दे की प्रथा का चयन प्रारंभ हो चुका था, किंतु चंदेल साम्राज्य में यदि पर्दे की प्रथा होती तो चंदेलकालीन एकाध प्रतिमा तो ऐसी होती, जिसमें स्त्री को पर्दाधारिणी दिखाया गया होता। ऐसी एक भी प्रतिमा का न पाया जाना इस तथ्य का द्योतक है कि चंदेल समाज में स्त्रियां पर्दा करने को बाध्य नहीं थीं। पवन के. वर्मा ने अपनी पुस्तक 'द ग्रेट इंडियन मिडिल क्लास' में लिखा है कि 'मध्यवर्ग के मनोजगत में झांकने के लिए उसका यौनविषयक रवैया सर्वाधिक दिलचस्प आयाम प्रस्तुत करता है। जाहिर है इस मामले में हमारा अतीत ताजगी और खुलेपन से परिपूर्ण था। खजुराहो और कोर्णाक की प्रस्तर मूर्तियां यौन और कामेच्छा को महत्त्व देने वाली साहसपूर्ण अभिव्यक्तियां हैं।' निःसंदेह ये मूर्तियां स्त्रियों की दैहिक-मनोदैहिक स्वतंत्रता की भी परिचायक हैं। चंदेलकला में स्त्री का जो स्वरूप उभरकर सामने आता है अथवा तत्कालीन समाज में स्त्री की दशा से साक्ष्य के रूप में दिखाई देता है, उसमें स्त्री देश के अन्य भू-भाग की स्त्रियों की अपेक्षा शक्तिसंपन्न दिखाई

देती है। चंदेलकालीन स्त्री अपने शारीरिक सौष्ठव एवं सौंदर्य का प्रदर्शन करती, कामकला में अग्रणी होकर सहयोगी बनती, बांसुरी, रबाब, डफ आदि वाद्ययंत्र बजाती, कलात्मक, शास्त्रीय नृत्य करती देखी जा सकती है। शस्त्र चलाने का भी उसे अधिकार था। समाज में स्त्रियों की सुदृढ़ स्थिति को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि चंदेलकाल बुंदेलखंड की स्त्रियों का स्वर्णिम काल था।

संदर्भ

1. वासुदेवशरण अग्रवाल : भारतीय कला, वाराणसी, 1966
2. वासुदेवशरण अग्रवाल : हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पटना 1953
3. कनिंघम, अलक्जेंडर : आर्कियोलोजिकल सर्वे आफ इंडिया, द्वितीय संस्करण
4. कृष्णदत्त वाजपेयी : हिस्ट्री एंड कल्चर ऑफ सेंट्रल इंडिया, अहमदाबाद, 1984
5. कृष्णदत्त वाजपेयी : कल्चरल हिस्ट्री आफ इंडिया, भाग एक कानपुर, 1985
6. कृष्णदत्त वाजपेयी : मध्यप्रदेश का पुरातत्व, भोपाल, 1970
7. सांकलिया : एच.डी. हिस्ट्री एंड कल्चर ऑफ द इंडियन पीपुल
8. डॉ. शरद सिंह : खजुराहो की मूर्तिकला के सौंदर्यात्मक तत्त्व, 2006
9. डॉ. शरद सिंह : प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास, 2008
10. डिस्ट्रिक्ट गजेटियर ऑफ छतरपुर

स्त्री की विशेषभूषा और आभूषण

◆ *प्रतिभा अवस्थी*

प्रत्येक अंचल की स्त्रियों की वेशभूषा उस क्षेत्र विशेष की संस्कृति की परिचायक है। बुंदेली स्त्रियों में लहंगा, घघरिया, फरिया, नुगरौ आदि पहनने की विशेष प्रथा है। चयेटा की चुनरिया जिस पर विविध रंगों के छोटे-छोटे चौखटे बने रहते हैं, स्त्रियां अधिक पसंद करती हैं।

बुंदेलखंड की ग्रामीण स्त्रियों में लहंगा विशेष लोकप्रिय है। लहंगे को लोकभाषा में लैंगा/लैंहगा/घाघरा घंघरिया कहते हैं। यह रंगीन छींट का बना होता है, विशेषकर लाल रंग का होता है। यह अत्यधिक घेर का चुन्नरों वाला होता है। ऊपर वाले संकरे हिस्से को, जिसमें नाड़ा डाला जाता है, नेफा कहते हैं। नाड़े को कमर पर कसकर (बांधकर) लहंगा पहना जाता है। यह उठने-बैठने में सुविधाजनक होता है। लहंगे में लगाए जाने वाले गोटे को चीन कहते हैं, शादी के अवसर पर दुल्हन को पहनाया जाने वाला लहंगा गल्ता कहलाता है। यह जरी, गोटा तथा सलमा-सितारे लगाकर तैयार किया जाता है। बारह हाथ के गोल घेर का सूती छींट का लहंगा जोरो कहलाता है। छोटी लड़कियों के लहंगे घंघरिया कहलाते हैं।

लंहगे के ऊपर पोलका (ब्लाउज) पहना जाता है। इसकी लंबाई लहंगे के प्रारंभ भाग तक होती है। यह सामने से खुला होता है, जिसे बटन लगाकर पहना जाता है। ढीला होने के कारण पहनने एवं उतारने में सुविधाजनक होता है। शादी के लिए तैयार किए पोलका में सलमा-सितारे, जरी-गोटा का काम रहता है। पोलका को मिजाई भी कहते हैं? पोलका के नीचे पहने जाने वाला एक छोटा एवं चुस्त वस्त्र चोली/अंगिया कहलाता है। पहले गांवों में स्त्रियां अधिकांशतः चोली ही पहनती थीं, किंतु अब आजकल इसे पोलका के नीचे ही धारण किया जाता है। बुजुर्ग स्त्रियां चोली का प्रयोग प्रायः नहीं करती हैं।

स्त्रियों में धोती का प्रचार प्राचीन काल से ही रहा है। पहले सात, आठ और नौ गज की लंबी धोती कांछ लगाकर पहनने की प्रथा थी, किंतु आज इसका स्थान पांच और छह मीटर की साड़ियों ने ले लिया है। साड़ी को देहाती भाषा में धोती/धुतिया/जनानी धोती कहते हैं। साड़ी का सिर पर डाला जाने वाला पल्ला छोर/पल्लू कहलाता है। साड़ियों के रंग चटक लाल, हरे, गुलाबी और नीले होते हैं।

लहंगा पोलका के साथ पहना जाने वाला पतला वस्त्र चुरी/ फरिया/ उढ़िनिया / चुनरिया/ चुनरी/ ओढ़नी कहलाता है। लहंगा पहनने के बाद चुनरिया को ओढ़कर शरीर ढंक लिया जाता है। तीन-चार गज लंबी छींट फरिया कहलाती है। चयेटा मढ़ी हुई चुनरिया स्त्रियां विशेष रूप से पसंद करती हैं। सुंदरता बढ़ाने एवं लोकलाज से मुंह ढांकने के लिए चुनरी का प्रयोग किया जाता है। लहंगे के साथ पहना जाने वाला एक लंबा वस्त्र लुंगड़ौ/नुगरौ कहलाता है। धोती के साथ बिछौरा पहनने की प्रथा है, जो सूती या रेशमी कपड़े का लंबा-चौड़ा वस्त्र है, जिसे संपूर्ण ऊर्ध्व शरीर को ढंका जाता है। शादी के अवसर पर यह अवश्य उपयोग में लाया जाता है। स्त्रियां जब घर से बाहर निकलती हैं, तब वे सूती पिछौरा धोती के ऊपर डाल लेती हैं, तब से चादर / चदरिया / सैला कहते हैं। जिस प्रकार मुसलमानों में 'बुरका' का रिवाज है, उसी प्रकार हमारे यहां पिछौरा का रिवाज है।

लड़कियां घंघरिया के अतिरिक्त अब सलवार, कुरती और फिराक (फ्राक) पहने भी दिखाई देती हैं। सलवार-कुरती के साथ जब चुनरी ली जाती है, तब वह दुपट्टा कहलाती है। लड़कियों की फ्रॉक में झालर लगाने की विशेष प्रथा है।

स्त्रियां जो जूते पहनती हैं, वे बाहाना/बाहना कहलाते हैं। खेतों में काम करने जाते समय इन्हें अधिक पहना जाता है। शेष समय चप्पल पहनने का प्रचलन अब अधिक है।

आभूषणों एवं शृंगार का संबंध प्रायः स्त्रियों से ही होता है। वैसे तो पुरुष भी आभूषण धारण करते हैं, पर स्त्रियों की तुलना में बहुत कम। आभूषणों से क्षेत्र विशेष की संस्कृति की झलक मिलती है। शरीर के अवयवों पर धारण किए जाने वाले आभूषणों के माध्यम से लोक रुचि का भी आभास होता है। आभूषणों को नारी की शोभा और पुरुषों के गाढ़े दिनों का साथी कहा गया है। श्रीमती ऐनी बेसेंट ने आभूषणों को किसानों का परंपरागत 'सेविंग्स बैंक' कहा था। स्त्रियां अपनी आर्थिक क्षमता के अनुसार जेवरों का चयन करती हैं और धारण करती हैं। लोकभाषा में आभूषण के लिए गहना/जेवर शब्दों का प्रयोग होता है। होशंगाबाद जिले की स्त्रियों के पास निम्नलिखित गहने विशेष रूप से देखने को मिलते हैं—झुमकी, बूंदा, कनफूल, बारीं, बेसर, ठुसीं, कंठा, हंसली, हमेल, करधौंनी, पेंजना, लच्छा, झांजें, पायल, बिछिया, बाजूबंद बरा, कंगना, हतफूल, मुंदरी, छला आदि। बन्ना और बन्नी (बनरा और बनरी) शृंगार गीतों में स्त्रियों की विशिष्ट आभूषण रुचि का संकेत मिलता है।

सिर के आभूषण

सिर के आभूषणों में माथे पर धारण किए जाने वाले आभूषण आते हैं। आंखों के ऊपर वाले भाग को माथा कहते हैं। स्त्रियां अपने माथे पर बेंदा, बीज, शीशफूल, रेखड़ी, केकरयान, झूमा-पलरी, बूंदा, लड़ें या सांकड़ें (सांकलें) पहनती हैं। बेंदा और बीज जंजीर के सहारे स्त्रियां अपनी मांग पर धारण करती हैं। ये सोने और चांदी दोनों के होते हैं। बेंदा, बीज और शीशफूल के बिना विवाह, शुभ नहीं माना जाता है। बेंदे के साथ सांकड़ें लगाई जाती हैं। रेखड़ी चांदी की गोल ठप्पानुमा होती है, जिसे डोरे की सहायता से स्त्रियां अपनी मांग पर सजाती हैं। बीज सोने का गोल गेंद की तरह का आभूषण होता है, जिसमें तीन धागे या जंजीरें होती हैं। बीच का धागा या जंजीर पीछे चोटी में तथा दाएं-बाएं कान के पास बालों में बांधे जाते हैं। ठप्पाकर पान आकृति का सोने या चांदी का आभूषण केकरयान कहलाता है। इसमें पीछे चपड़ा (लाख) भरा होता है। गोल ठप्पादार सोने या चांदी के आभूषण को पान कहते हैं। यह केकरपान के पीछे पहना जाता है। चांदी का लंबा और काफी चौड़ा आभूषण झूमा पलरी कहलाता है। इसे सिर में दाएं तरफ पहनते हैं। शीश फूल बीज की तरह चांदी का आभूषण है, लेकिन यह बीज से काफी बड़ा होता है।

कान में आभूषण

कान के आभूषणों में बारी, झुमकी, कुंडल, कनफूल (कर्णफूल) ऐरन, दुर, घुला पहने जाते हैं। कान के आभूषण पहनने के उद्देश्य से ही बचपन में कन्छेदन कराने की प्रथा प्रचलित है। कर्ण आभूषण सोने एवं चांदी, दोनों के होते हैं। कान में पहना जाने वाला आभूषण, जो गोल आकृति का होता है तथा जिसमें जड़ाऊ काम भी होता है, करनफूल / कनफूल कहलाता है। कान में धारण करने का पतला और चपटा जेवर ऐरन कहलाता है। कान में लटकने वाला आभूषण झुमकी/झुमका कहलाता है। कानों में पहनने के गोल छल्ले को बाला/कुंडल कहते हैं। बच्चों के कान में पहनाए जाने वाले छोटे बाबा वारी बाली कहलाते हैं। कान के ऊपरी भाग में छेद करके पहने जाने वाले आभूषण को बारी / बाली कहते हैं। इसे ही तरकी या तीसरी बारी भी कहते हैं। इनमें छोटे मोती भी पड़े रहते हैं। स्त्रियों के पहनने के सोने के गोल बड़े छल्ले कुंडल कहलाते हैं। कान का पतला और चपटा जेवर ऐरन कहलाता है। स्त्रियों के पहनने का आभूषण, जिसमें सांकल सिर के ऊपर तक रहती है, झारें/झालें कहलाता है। बड़े कसलादार कर्ण आभूषण को तरुकला कहते हैं। कर्णफूल और झुमकी की ठुल्ली से सांकल ऊपर तक पड़ी रहती है, जिसे ढारें कहते हैं। ढुल्ली कर्णफूल या झुमकी की डंडी को कहते हैं। ये ढारें कान के ऊपरी हिस्से में फंसाई जाती हैं। ढारों में लगे हुए बोरों का समूह गुच्छी कहलाता है।

नाक के आभूषण

नाक के आभूषण पहनने के लिए स्त्री-पुरुष दोनों ही नाक छिदवाते हैं। स्त्रियां नाक में आभूषण अधिक पहनती हैं। नाक में लौंग पहनते हैं, जो सोने की बनी होती है। इसमें ऊपर एक छोटी सी फूलाकृति अथवा गोलाकृति बनी होती है। लौंग की डंडी को ठुल्ली कहते हैं। यह ठुल्ली नाक के छिद्र में डाली जाती है, जो नाक के अंदर निकल जाती है। इसे एक पेंच लगाकर बंद किया जाता है। यह पेंच ठेंपी या खील कहा जाता है। बड़ी लौंग पुंगरिया कहलाती है। इसकी ऊपरी सतह पर मोती जड़े होते हैं। इससे नाक की शोभा बढ़ जाती है। छोटी लड़कियों को पहनाई जाने वाली तांबे की बालीं/ बारी कहलाती है। नथनी/नथ सोने की बड़े गोल आकार की बाली होती है, जिसे विशेष रूप से

शादी के समय ही लड़की को पहनाया जाता है। इसमें मोती की लड़ अथवा सोने की जंजीर या डोरा बांधकर उसे कान के पास बालों में क्लिप की सहायता से बांधा जाता है, जिससे नथ संभली रहती है। नथ स्त्रियों को विशेष प्रिय रहती है। मुस्लिम स्त्रियों में प्रचलित नाक का एक आभूषण, जो नाक के नीचे वाले हिस्से में बीचोबीच पहना जाता है, बुल्लाक कहलाता है। यह चांदी का होता है।

गले के आभूषण

गले में पहना जाने वाला सबसे प्रचलित आभूषण जंजीर / माला / सांकल है। यह सोने अथवा चांदी की होती है। इसमें एक से लेकर सात तक की लड़ें होती हैं। लड़ियों को लर कहते हैं। लर के अनुसार इनके नाम सांकल, दुलारी, तिलरी, पचलरी, सतलरी सांकल हैं। सोने के पत्र को काटकर गोल गुरिया बनाई जाती है। इन गुरियों से गले के आभूषण कंठा और कुंठी बनाए जाते हैं। छोटे गुरियों से गले की माला कंठी और बड़े गुरियों की माला कंठा कहलाता है। गुरियों से बनी माला, जिसके बीच की गुरिया लंबी और बड़ी होती है, कुंठिया कहलाती है। चांदी का बना गले का एक आभूषण खंगवारी कहलाता है। यह ठोस चांदी की होती है। खंगवारी का ऊपर का भाग, जहां काम होता है, पट्टी कहलाता है। उसके ऊपर दोनों तरफ फंसाने को कुंडे लगे रहते हैं। कुंडे को जिससे फंसाया जाता है, वह गुछेरा कहलाता है। मध्य का भाग सपाट होता है। खंगवाटी के समान ही ठोस चांदी का बना चपटा तथा चौकोर आकृति का आभूषण हंसुली कहलाता है। काले मजबूत डोरे में चांदी के पुराने सिक्कों की माला कठला कहलाती है। सोने की मुहर की माला अद्धा कहलाती है। कठला और अद्धा में पांच या सात सिक्के या मोहरें होती हैं। पीछे फंदा लगा होता है, जिसे ऊपर सरकाकर इसे पहना या उतारा जाता है। सोने के छोटे-छोटे तीन गुरियों की लड़ों के हार को तिदाना कहते हैं। छोटे दाने का तिदाना बिचोली कहलाता है। सोने का तिदाने की आकृति का आभूषण ठुसी/ठुस्सी कहलाता है। चांदी का हार चंदेरिया/चंदनहार कहलाता है। सोने का ठप्पादार तिदाना करमा कहलाता है। सोने अथवा चांदी के बेलबूटेदार नमूनों के लटकने वाले लंबे आभूषण को हार कहते हैं। सोने के गोल छोटे-छोटे दानों या गुरियों की माला गटरमाला कहलाती है। दो-तीन लरों की गोल चैन मोहनमाला/गुंज कहलाती है। सोने की मुहरों के

बीच में पान के आकार के स्वर्णपत्र की माला को हमेल कहते हैं। बच्चों को गले में काले डोरे में सोने, चांदी या तांबे के ताबीज पहनाए जाते हैं। ये ताबीज बच्चों को दूसरों की बुरी नजर से बचाने के लिए पहनाए जाते हैं, जिसे हाय कहते हैं। बच्चों को सर्दी-जुकाम से बचाने के लिए चांदी का चंद्रमा चंद्रा काले डोरे में पहनाया जाता है।

कमर के आभूषण

कमर के आभूषणों में करधौना/करधौनी/करधन/करधना सबसे अधिक पहनी जाती है। साधारण परिवार की स्त्रियां चांदी की करधौनी पहनती हैं तथा उच्च घराने की स्त्रियां सोने की करधौना बनवाती हैं। इसमें कई लरें होती हैं। इन लरों को मिलाकर इसे चौड़ा किया जाता है। कहीं-कहीं इसमें चांदी के गुरिये लगे होते हैं, जो बाजने होते हैं। एक लर की करधौनी को कड्डोरा कहते हैं। जिस कड्डोरा में नीचे चांदी की पतली सांकल की झांलरें लगी रहती हैं, उसे झलरया कड्डोरा कहते हैं। एक चौड़ी पट्टी का बना कमर का एक अन्य आभूषण कमरपट्टा/कमर पट्ट कहलाता है। यह अधिकतर सोने का होता है। स्त्रियां कमर में प्रायः एक पतली लर या सांकर/सांकल पहनती है। सांकर सोने और चांदी दोनों की बनती है। करधौनी कमर की सुंदरता को बढ़ाती है तथा साथ ही यह कमर पर कसी धोती को संभाले रहती है।

हाथ के आभूषण

हाथ के आभूषणों में कलाई, हथेली के पृष्ठ भाग, उंगलियों और बाजुओं में पहने जाने वाले आभूषण आते हैं। उंगलियों में मुंदरी/मुंदरिया/अंगूठी/छला/छल्ला बांक पहनने का रिवाज है। उंगलियों के ये सभी आभूषण सोने, चांदी, पीतल, गिलट, तांबा, लोहा आदि धातुओं के बने होते हैं। ये अपनी पसंद के अनुसार रूप, रंग और आकार के बनवाए जाते हैं। सात धातुओं के मिश्रण से बनी अंगूठी सप्तधातु मुंदरी कहलाती है। नग या कंकड़जड़ी मुद्रिका जड़ाऊ मुंदरी कहलाती है। नगों में पुखराज, नीलम, गोमेद, माणिक, पन्ना, हीरा आदि अपनी हैसियत एवं रुचि के अनुरूप जड़वाए जाते हैं। हाथ की सभी उंगलियों में अंगूठी पहनी जाती है। छल्ला में सोने-चांदी अथवा तांबे के तार के दो-तीन गोल घेरे होते हैं। तंत्र-मंत्र के रूप में भी ग्रहों से छुटकारा पाने के लिए अंगूठी पहनते हैं, जो रत्नों से बनी

होती है। नौरत्न, हीरा, पन्ना, पुखराज, मोती, मणिक, गोमेद, मूंगा, लहसुनिया से बनी अंगूठी नौरत्नी-मुंदरी कहलाती है।

हथेली के पीछे वाले हिस्से में स्त्रियां पांच लरों वाली जंजीर में गठित एक पानफूल पहनती हैं, जिसे हतफूल/हथफूल कहते हैं। हथफूल की जंजीरों में अंगूठी लगी रहती है, जिन्हें उंगुलियों में फंसा लिया जाता है। कलाई में दो जंजीरों को, जो हथफूल में नीचे कलाई की तरफ लगी रहती हैं, कुंदे द्वारा फंसा दिया जाता हैं। हथफूल से हथेली के पीछे का हिस्सा पूरा ढंक जाता है। साथ ही हाथ की सुंदरता भी बढ़ जाती है।

कलाई में विभिन्न आकार-प्रकार के कई आभूषण धारण किए जाते हैं। इनमें मुख्य रूप से ककना, ककनिया / कंगनवा, चूड़ी, बंगड़ी, बताने, छल्ला, गजरा, पटेली, नौगरे, बेलचूड़ी, इमरती का चूड़ा इत्यादि पहने स्त्रियां अधिक दिखाई देती हैं। ककना चांदी के छोटे-छोटे छिद्र वाले जेवर को कहते हैं। इसमें किनारों पर छोटे-छोटे रवा होते हैं। चूड़ा चांदी का चिकना गोल तथा अंदर से पीला जेवर है। यह पूरा जुड़ा नहीं होता है। मध्य में कटा रहता है। इमरती के चूड़े में घुमावदार लहरिया बनी होती हैं। यह ठोस चांदी का बना होता है। छल्ला भी चूड़ा जैसा ही होता है। इसमें चांदी की पटली में रवा उठे रहते हैं। यह कील द्वारा बंद करके पहना जाता है। बंगडी ठोस चांदी की सादी और फूलवाली दो प्रकार की देखने को मिलती हैं। गजरा ठोस चांदी के होते हैं, जिनमें बीच-बीच में चांदी के घुंघरू और गोल गेंद लगी होती है। मध्य भाग में जालीदार कटाव रहता है। बताने ठोस चांदी के होते हैं, जिनमें थोड़ी-थोड़ी दूरी पर कुंडों के सहारे घुंघरू के गुच्छे बोरा लगे रहते हैं। चांदी की चौड़ी पट्टी के ऊपर चांदी के नुकीले कांटे लगा आभूषण कटीलो गजरा कहलाता है। जाली वाले बताने छलबल/छलबलें कहलाते हैं। बंगटी के समान सोने का आभूषण बेलचूड़ी/फूलचूड़ी कहलाता है। संतान-सप्तमी व्रत में पहने जाने वाले कड़े को चूरा/चुरिया/चूड़ा कहते हैं। यह ठोस चांदी का बना होता है। पहुंचा/कोंचा में पहनने के चौड़ी पट्टी के आभूषण पटली कहलाते हैं। दोनों बाजुओं की ओर नुकीली कलसादार पटली नौंगरी/नौंगरे कहलाती है।

कुहनी के ऊपर बांह में पहने जाने वाले आभूषणों में बाजूबंद/भुजबंद, बांकड़े/बांके, बोंटा/बोंहटा/बुंहटा विशेष प्रचलित हैं। बाजूबंद चांदी का बना होता है, जिसे डोरे की सहायता से बांह पर बांधा जाता है। बांकड़ा ठोस चांदी

का बना होता है। यह अंग्रेजी के 'एस' आकार के घुमावदार घेरों का बना हुआ गोल आभूषण है। बांटा ठोस चांदी का गोल चिकना चूड़ा की आकृति का आभूषण है।

पैर के आभूषण

पैर में पहने जाने वाले आभूषणों में उंगलियों में पहने जाने वाले आभूषण तथा पांव में पहने जाने वाले आभूषण आते हैं। पैर की उंगलियों में स्त्रियां बिछिया/मछरी, मछरिया/छल्ली, छिंगटी, पात्तें/पटली पहनती हैं। पैर के अंगूठे में चुटकी, छल्ला, अंगठांत धारण किया जाता है। छिंगुटी का छल्ला छिंगटी कहलाता है। एक सांकन से जुड़ी चारों मछली पटली/पातें कहलाती हैं। पैर की उंगलियों में पहनने के छल्ला मछरी या छल्ली कहलाते हैं। कलसादार छल्ली बिछिया कहलाती है। पैर के अंगूठे में पहनने का छल्ला चुटकी, छला कहलाता है। उंगलियों में पहनी जाने वाली बड़ी बिछिया लच्छा कहलाती है। ये सभी आभूषण चांदी के होते हैं। आजकल गिलिट के अधिक देखने को मिलते हैं। पैर के पंजे में पहनने का पान के पत्ते की आकृति का चांदी का आभूषण बांक कहलाता है। ये सभी आभूषण केवल विवाहिता स्त्री ही पहन सकती हैं। ये सधवा शृंगार के जेवर हैं।

पांव में स्त्रियां पायल, लच्छा, कड़ी, रमझूल, पायजेब पैदना/पैंजना, अनोखा, टोड़ल, घुन्सी रूलें, इत्यादि धारण करती हैं। ये सभी जेवर चांदी या गिलिट के ही बनते हैं। पैरों में सोने के आभूषण धारण करना अशुभ माना जाता है। चांदी के तार के उमठे हुए कड़े लच्छे कहलाते हैं। इन्हें स्त्रियां एक-एक पैर में आठ-दस और बारह तक पहनती हैं। पायजेब चांदी की वजनी और घुंघरू के बोरा लगी होती हैं। इसमें विभिन्न प्रकार के चिड़ी, पान और सांट के नमूने लगे होते हैं। इनको पहनकर चलने से रुन-झुन की आवाज होती है। सादी सांकल अथवा पान के पत्ते के आकार का या कैटी के अथवा गोलाकृति का बिना आवाज वाला आभूषण पायल कहलाता है। चांदी की पत्ती के गोल कड़े, जिनमें वजन के लिए केकड़ भी डाल देते हैं, पैंजना कहलाते हैं। पैर का एक ठोस चांदी का बना आभूषण/पैंदना कहलाता है, जो गोल कड़ानुमा होता है। पैंजना से छोटे कौड़ीदार आभूषण टोड़ल कहलाते हैं। ये गुच्छेदार बिजौरा दो किस्म के होते हैं। इनकी बनावट में थोड़ा-बहुत अंतर मिलता है। इनमें चांदी के गुरियों का एक गुच्छा लगा होता है।

एकाएक अथवा दो-दो बोओं के कलसादार टोड़ल गुट्या गुच्छया टोड़ल कहलाते हैं। कीचड़ कौड़ीदार कड़ी के हाथ से बनाए हुए टोड़ल एवं बुंदकी टोड़ल, घुन्सी तथा खेदार टोड़ल बिजोरा/बिजोरया टोड़ल कहलाते हैं। ठोस चांदी के घुमावदार आभूषण को तोड़ा कहते हैं। इनमें किनारों पर फूल बने होते हैं। इन्हें पेंच लगाकर पहना जाता है। पायलों में कुंडे लगे होते हैं, जिन्हें फंसाकर बंद किया जाता है। स्त्रियां जब पायजेब, पायल, पैंजना पहनकर चलती हैं, तब उससे मधुर स्वर छमछम या रुनझुन निकलता है। लच्छों के नीचे पहना जाने वाला पट्टीदार गहना, जिसमें घुंघरू लगे होते हैं, छागल कहलाता है। पांवपोरा भी पैरों की उंगलियों में पहना जाता है। यह चांदी का लरों वाला आभूषण है।

विभिन्न अवसरों पर विभिन्न वस्त्र एवं आभूषण धारण किए जाते हैं, जिनमें लोकरुचि एवं क्षेत्र के रीति-रिवाजों व प्रथाओं का अनुमान होता है।

बालिकाओं के पारंपरिक खेल

◆ *वर्षा सिंह*

प्रत्येक लोक संस्कृति का अपना महत्त्व होता है। उसकी अपनी उपादेयता होती है। लोक संस्कृति वे जड़ें होती हैं, जिन पर लोक सभ्यता का वृक्ष फूलता-फलता है। लोकसंस्कृति बचपन से लेकर वृद्धावस्था तक मनुष्य को जीवन जीने की कला सिखाती है। बुंदेली लोक संस्कृति भी जीवन के अनुरूप मनुष्य को ज्ञान प्रदान करने में सक्षम रही है। इस तथ्य का एक उदाहरण उन खेलों के रूप में देखा जा सकता है, जिन्हें बालिकाएं सहज भाव से बड़ी रुचि के साथ खेलती हैं। इन्हें खेलने के लिए उन्हें कहीं जाकर प्रशिक्षण प्राप्त नहीं करना पड़ता है, वे सहज प्रवृत्ति से इन खेलों में प्रवृत्त होती हैं और परस्पर सहयोग एवं अनुभवों के आदान-प्रदान से इनमें कौशल प्राप्त करती हैं। साधारणतः देखने में ये खेल मात्र मनोरंजनार्थ प्रतीत होते हैं, किंतु वस्तुतः ये बालिकाओं को जीवन के अनुभवों से जोड़ने तथा उन्हें भावी जीवन के लिए तैयार करने का कार्य करते हैं।

बुंदेली बालिकाएं जिन खेलों को खेलती हैं, उन पर विस्तृत दृष्टि डालने से उन खेलों की उपादेयता का पता चलता है। इन खेलों को भी स्थान के अनुरूप

दो भागों में बांटा जा सकता है—अंतः क्रीड़ा (इनडोर गेम) तथा बहिर्क्रीड़ा (आउटडोर गेम)। जिन खेलों को कमरे, आंतरिक आंगन, छज्जे, अटारी अथवा छत पर खेला जा सकता है, वे अंतः क्रीड़ा की श्रेणी में आते हैं। इसके विपरीत जिन खेलों को बाहरी आंगन, मैदानों, खलिहान के परिसर में खेला जाता है, वे बहिर्क्रीड़ा कहलाएंगे।

बुंदेलखंड की बालिकाओं में जो खेल अधिक लोकप्रिय हैं तथा परंपरागत रूप से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक प्रवाहित होते आ रहे हैं, वे हैं—चपेटा, काना दुआ, सोलह गोटी, बग्गा, लंगड़ी धप्पा अथवा गपई समुद्र, गुंइयां बट्ट, घोर-घोर रानी, घोड़ा पादाम साई, रस्सी-कूद, अंगुल-वित्ता, रोटी-पन्ना, पुतरा-पुतरियां, छिल-छिलाव, आंख-मिंचउव्वल, लंगड़ी, छुआउल, छुक-छुक दाना आदि। इन खेलों का बालिकाओं के जीवन में क्या महत्त्व है, ये खेल बालिकाओं को किस प्रकार उन्हें उनके भावी जीवन के लिए तैयार करते हैं, इन दोनों प्रश्नों के उत्तर जानने के लिए इन खेलों पर दृष्टि डालना आवश्यक है।

चपेटा : बुंदेली बालिकाओं में चपेटा का खेल अत्यंत लोकप्रिय है। यूं तो यह खेल सावन के महीने में अधिक खेला जाता है, किंतु अन्य समय भी बालिकाओं में इसके प्रति रुचि कम नहीं होती है। यह अंतःक्रीड़ा श्रेणी का खेल है। इसे दो या दो से अधिक बालिकाएं खेल सकती हैं। इसे घनाकार पासों से खेला जाता है। इन्हें गुट्टे और चपेटा भी कहा जाता है। ये चपेटे मिट्टी, लाख अथवा लकड़ी के बने होते हैं। इन चपेटों को विविध रंगों से रंगकर आकर्षक बनाया जाता है। इन पर किसी तरह के अंक अथवा अंक-संकेत नहीं होते हैं अपितु इन चपेटों की संख्या खेल के छोटे अथवा बड़े होने का निर्धारण करती है। इनकी संख्या प्रायः पांच, सात, नौ एवं ग्यारह होती है। यह संख्या उपलब्धता एवं इच्छा के अनुसार कम या अधिक भी हो सकती है। बने-बनाए चपेटे उपलब्ध न होने पर पत्थर के छोटे-छोटे लगभग गोल, चिकने टुकड़े भी चपेटों के रूप में खेलने के काम आते हैं।

सबसे पहले चपेटों को एक हाथ से जमीन पर बिछा दिया जाता है। फिर एक चपेटे को उछालकर उस अवधि में दूसरा चपेटा उठाया जाता है, जितनी अवधि में उछाला गया चपेटा नीचे आने पर वापस हाथ में रोक लिया जाए। यह पद्धति चपेटों को बिछाने और उठाने के क्रम में विविधता लाकर हर बार अपनाई

जाती है। चपेटा के खेल को भांति-भांति खेला जाता है। जैसे—मुट्ठी में चपेटों को भरकर, पहले एक चपेटा उछाला जाता है। फिर उछाले गए चपेटे के नीचे आने से पूर्व मुट्ठी के सभी चपेटे जमीन पर रख दिए जाते हैं, फिर इसी क्रम को दोहराते हुए सभी चपेटों को जमीन पर से उठा लिया जाता है। इस तरह खेलते समय एक हाथ का ही प्रयोग किया जाता है। एक अन्य प्रकार के चपेटे के खेल में एक हाथ की उंगली तथा अंगूठे को भूमि पर टिकाकर द्वार जैसी आकृति बना दी जाती है तथा एक चपेटे को उछालते हुए शेष चपेटों को एक-एक करके उस द्वार से भीतर दूसरी ओर सरकाया जाता है। सभी चपेटे दूसरी ओर सरक जाने पर उन्हें एक चपेटा उछालते हुए एक हाथ अथवा दोनों हाथों की मदद से समेट लिया जाता है।

इस खेल को मुख्य रूप से सावन अर्थात् वर्षा ऋतु में खेले जाने का चलन इसलिए शुरू हुआ होगा, क्योंकि पहले वर्षा ऋतु में लिपाई-पुताई आदि घरेलू काम तथा खेती-बाड़ी के बाहरी काम थम जाते थे। बालिकाओं के पास समय अधिक होता था तथा वे बारिश के कारण घर से बाहर निकलकर भी नहीं खेल पाती थीं। यह खेल बालिकाओं में हस्तचालन, हस्तकौशल, एकाग्रता तथा परस्पर मेलजोल की प्रवृत्ति का विकास करता है। यह बालिकाओं को घर पर बैठे होने के उपरांत भी सजग और स्फूर्त बनाए रखता है।

काना दुआ : यह एक ऐसा खेल है, जिसे मुख्य रूप से बालिकाएं एवं स्त्रियां खेलती हैं, किंतु यह उन बालकों में भी लोकप्रिय है, जो पशु चराने जंगल जाते हैं। इस खेल को कम से कम दो और अधिक से अधिक चार बालिकाएं एक साथ खेल सकती हैं। इस खेल में भूमि पर एक चौकोर आकृति बनाई जाती है, जिसे चार-चार लकीरों से बांटते हुए छोटे-छोटे पच्चीस खाने बनाए जाते हैं। इनमें चारों किनारों पर स्थित खानों के मध्य खाने को 'घर' के रूप में गुणा के चिह्न से चिह्नित किया जाता है तथा बीचो-बीच के खाने को मुख्य घर के रूप में चिह्नित करते हैं। किनारे के चारों घर चार खिलाड़ी बालिकाओं के होते हैं, जहां वे अपनी चार-चार गोटियां रखती हैं। चारों बालिकाओं की गोटियां अलग-अलग रंगों की होती हैं।

इसमें पासे के रूप में चार कौड़ियों का प्रयोग किया जाता है। कौड़ियां उलटी और सीधी पड़ने के अनुसार घरों की गिनती करके उतने घर गोटी को आगे

बढ़ाया जाता है। रास्ते में आने वाली दूसरे की गोटी को 'मारने' का भी प्रावधान रहता है। जिस खिलाड़ी की गोटियां सबसे पहले मुख्य घर में पहुंच जाती हैं, वह विजयी कहलाती है।

चारों कौड़ियां सीधी पड़ने पर चौवा (चार) और चारों कौड़ियां उल्टी पड़ने पर अट्ठा (आठ) का अंक माना जाता है। मात्र एक कौड़ी उल्टी पड़ने को काना (एक) तथा दो उल्टी पड़ने पर दुआ (दो) माना जाता है। इसीलिए नाम काना-दुआ अथवा अट्ठा-चौवा पुकारा जाता है। इसे बड़े रूप में आठ कौड़ियों और इक्यासी खानों तक का खेला जाता है।

यह खेल बालिकाओं में अपने घर तथा अपने परिवार के सदस्यों के प्रति उत्तरदायित्व की भावना जगाता है। अपने परिवार के सदस्यों को हर प्रकार के संकट से बचाने के लिए उन्हें जागरूक बनाता है। इसके साथ ही गिनती और जोड़-घटाने का अभ्यास भी कराता है।

सोलह गोटी : इसमें सोलह गोटियों का प्रयोग किया जाता है। गोटियों को एक-एक करके आगे बढ़ाया जाता है तथा जो खिलाड़ी दूसरे की गोटियों को मारती हुई अपने घर से दूसरे के घर अपनी सारी गोटियों पहले पहुंचा देती है, वह विजयी घोषित होती है।

यह खेल जीवन में स्पर्द्धा की भावना के महत्त्व को सिखाता है। यह संकटों को दूर करके उन पर विजय पाने का साहस और कौशल बढ़ाता है। आखिर बालिकाओं को बड़ी होने पर अपने तथा अपने परिवार के लिए कई प्रकार के संघर्ष से सतत् जूझना पड़ता है। उस समय यह खेल उनके अवचेतन मस्तिष्क को साहस बंधाता है कि बचपन में सोलह महारथियों जैसी सोलह गोटियों पर जिस तरह विजय प्राप्त की थी, उसी प्रकार हर संकट से जूझा जा सकता है।

बग्गा : यह खेल गोटियों का खेल होता है। इसमें कौड़ियां या पासे नहीं होते हैं। इसमें इक खिलाड़ी के पास एक गोटी होती है, जो बग्गा कहलाती है। दूसरी खिलाड़ी के पास छह गोटियां होती हैं। बग्गा का अर्थ होता है 'बाघ' तथा छह गोटियां बकरियों की भांति होती हैं, जो शेर को घेरने का प्रयास करती हैं। वहीं शेर छहों बकरियों को मारने का प्रयास करता है। बग्गा द्वारा सभी छह गोटियों को मार दिए जाने पर बग्गा वाली खिलाड़ी की जीत हो जाती है। बग्गा भी संकटों से जूझते हुए उन पर विजय हासिल करने की शिक्षा देता है। यदि

शत्रु बहुसंख्यक भी हों तो घबराए बिना उनका सामना करने की युक्ति इस प्रकार के खेलों से आती है, जो समूचे जीवन में संघर्षों के विरुद्ध अडिग खड़े रहने का साहस देती है।

लंगड़ी धप्पा अथवा गपई समुद्र : यह 'इनडोर' खेल है। इस खेल में आंगन या छत पर चार-चार के दो क्रम में आठ चौकोर घर बनाए जाते हैं। प्रत्येक घर में एक अंक लिखते हुए आठों घरों में एक से आठ तक अंक लिख दिए जाते हैं। उनके ऊपर समुद्र के रूप में अर्द्ध गोल बनाया जाता है। इसे दो या दो से अधिक बालिकाएं खेल सकती हैं। प्रत्येक बालिका के पास एक पत्थर का चपटा टुकड़ा होता है, जिसे 'खपरा' या 'खपरी' कहती हैं। इसे शुरू करने के लिए 'एक' अंक के घर में खपरा डाला जाता है। फिर एक पैर से लंगड़ी कूदते हुए सभी घरों को पार करके एक अंक के घर में आकर खपरे को पैर से सरकाकर बाहर निकाला जाता है। आठों घर से खपरे को लंगड़ी कूदते हुए सरका लेने के बाद 'समुद्र' में खड़े होकर खपरे को पीठ पीछे आठों घरों की ओर उछाला जाता है। खपरा जिस घर में गिरता है, उस पर खिलाड़ी का अधिकार कहलाता है। उस पर उसे अपने दोनों पैरों पर खड़े होने का अधिकार होता है, जबकि दूसरी खिलाड़ी को उसे लंगड़ी कूद में फलांग कर जाना पड़ता है।

गपई समुद्र शारीरिक संतुलन और शारीरिक स्वास्थ्य का खेल है। यह खेल भावी जीवन के लिए एक सुगठित देहयष्टि बनाने में सहायक होता है। इसे एक उत्तम व्यायाम भी कहा जा सकता है। इसके साथ ही यह विपरीत परिस्थितियों का सामना करने की मनोदशा का विकास करता है। बालिकाओं में शारीरिक एवं मानसिक दृढ़ता उत्पन्न करने में यह खेल महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

नदी-पहाड़ : इस खेल में ऐसे स्थान को चुना जाता है, जहां कुछ ऊंचे स्थान हों तो कुछ नीचे स्थान हों। यह 'आउटडोर' खेल है। इसमें ऊंचे स्थानों को पहाड़ मान लिया जाता है और नीचे स्थान को नदी। नीचे स्थान अर्थात् नदी में दाम देने वाली लड़की होती है, जो एक पहाड़ से दूसरे पहाड़ पर जाने वाली लड़कियों को छूने और पकड़ने का प्रयास करती है। जिस लड़की को नदी वाली लड़की छू देती है, फिर उसे दाम देना पड़ता है।

यह खेल बाढ़ जैसी प्राकृतिक विपदाओं के समय अपना बचाव करने की शिक्षा देता है। जैसे नदी में बाढ़ आने पर ऊंचे स्थानों पर चढ़कर सुरक्षित रहा

जा सकता है, जबकि ऐसे समय नदी में उतरने से जान भी जा सकती है। यह जीवन-रक्षा के गुर बताने वाला खेल है।

गुंइयां बट्ट : 'गुंइयां' का अर्थ होता है सहेलियां। जैसा कि इस खेल का नाम है गुंइयां बट्ट अर्थात् यह खेल द्वीबीजी अनाज के दाने को दो भागों में बांटने जैसा सहेलियों को अलग-अलग करने की कूटनीति वाला खेल है। इसमें दो लड़कियां दो पक्ष के रूप में खड़ी होती हैं तथा उनके पास जोड़ों के रूप में दो-दो लड़कियां क्रमशः आती-जाती हैं। जोड़ा बनाकर आने वाली प्रत्येक लड़की अलग-अलग वस्तु अपनी मुट्ठी में छुपा लेती है, जैसे एक लकड़ी का टुकड़ा रखती है तो एक पत्थर का टुकड़ा। वे दोनों लड़कियां मुख्य दोनों लड़कियों के पास आकर कहती हैं :–

हिली-मिली दो बालें आईं

मुख्य लड़कियां कहती हैं–

फोड़ दई, फटकार दई

इस पर जोड़े वाली लड़की कहती हैं–

कोऊ लै लकड़ी, कोऊ ले पत्थर

मुख्य लड़कियों में से वह लड़की, जिसकी मांगने की बारी होती है, अपनी इच्छानुसार वस्तु मांग लेती है।

हमें चाऊने लकड़ी

इस प्रकार लकड़ी रखने वाली लड़की उसके पक्ष में चली जाती है और लड़कियों का जोड़ा टूट जाता है, किंतु इसी के साथ नया जोड़ा बनता जाता है। अंततः लड़कियों के दो समूह तैयार हो जाते हैं।

यह खेल बालिकाओं को जीवन के उस पक्ष से परिचित कराता है, जहां उन्हें मां का घर छोड़कर ससुराल जाना पड़ता है और पुरानी सहेलियों के स्थान पर नयी सहेलियां बनानी पड़ती हैं। पुराने रिश्तों के स्थान पर नए रिश्तों के साथ सामंजस्य बिठाना पड़ता है। इसके अतिरिक्त यह खेल भावी जीवन में अपने समान विचारों वाली स्त्रियों को अपने पक्ष में करने का हुनर भी सिखाता है।

घोर-घोर रानी : इस खेल में बालिकाएं एक-दूसरे का हाथ पकड़कर गोलाकार खड़ी हो जाती हैं। इस गोल घेरे के बीचो-बीच रानी के रूप में एक बालिका खड़ी होती है। घेरेवाली लड़कियां वृत्त के रूप में घूमती हुई रानी से पूछती हैं–

घोर-घोर रानी, कित्ता-कित्ता पानी?

रानी अपने दोनों हाथों से टखनों तक संकेत करके उत्तर देती है—

इत्ता-इत्ता पानी!

लड़कियां फिर पुछती हैं—

घोर-घोर रानी, कित्ता-कित्ता पानी?

रानी अपने दोनों हाथों से घुटनों तक संकेत करके उत्तर देती है—

इत्ता-इत्ता पानी!

लड़कियां फिर पूछती हैं—

घोर-घोर रानी, कित्ता-कित्ता पानी?

रानी अपने दोनों हाथों से कमर तक संकेत करके उत्तर देती है—

इत्ता-इत्ता पानी!

लड़कियां फिर पूछती हैं—

घोर-घोर रानी, कित्ता-कित्ता पानी?

रानी अपने दोनों हाथों से सीने तक संकेत करके उत्तर देती है—

इत्ता-इत्ता पानी!

लड़कियां फिर पूछती हैं—

घोर-घोर रानी, कित्ता-कित्ता पानी?

रानी अपने दोनों हाथों से कंधे तक संकेत करके उत्तर देती है—

इत्ता-इत्ता पानी!

लड़कियां फिर पूछती हैं—

घोर-घोर रानी, कित्ता-कित्ता पानी?

रानी अपने दोनों हाथों से सिर तक संकेत करके उत्तर देती है—

इत्ता-इत्ता पानी!

लड़कियां फिर पूछती हैं—

घोर-घोर रानी, कित्ता-कित्ता पानी?

रानी अपने दोनों हाथों से सिर से ऊपर तक संकेत करके उत्तर देती है—

इत्ता-इत्ता पानी!

...और इसके बाद रानी घेरा तोड़कर भागने का प्रयास करती है। जिस स्थान से वह घेरा तोड़कर भाग निकलती है, उस स्थान की लड़की को रानी बनकर दाम देना पड़ता है।

यह खेल मानों समूचे स्त्री जीवन को प्रतिबिंबित करता है और जीवन को सिर उठाकर जीने की कला सिखाता है। इस खेल में धीरे-धीरे पानी के स्तर का चढ़ना, स्त्रियों पर होने वाले अन्याय और अत्याचार के निरंतर बढ़ते दबाव का प्रतीक है। वहीं यह खेल सिखाता है कि जब पानी सिर से ऊपर चला जाए तो घेरा तोड़कर निकल जाना चाहिए अर्थात् जीवन में जब अन्याय और अत्याचार सहन-शक्ति की सीमा से बाहर जाने लगे तो विरोध करना चाहिए।

घोड़ा पादाम साई : इस खेल में एक बालिका को छोड़कर शेष सभी बालिकाएं गोल घेरा बनाकर बैठ जाती हैं। उनके मुंह घेरे के भीतर की ओर रहते हैं तथा बाहर की ओर पीठ होती है। घेरे से अलग एक बालिका हाथ में गमछानुमा कपड़ा या दुपट्टा लेकर घेरे के बाहर चक्कर लगाती है। चक्कर लगाते हुए वह बोलती जाती है–

घोड़ा पदाम साई, पीछे देखो मार खाई...

कहीं-कहीं यह वाक्य इस तरह से भी बोला जाता है–'घोड़ा है दीमान साई, पीछे देखो मार खाई...' जो बालिका पीछे मुड़कर देखती है, उसे चक्कर लगानेवाली बालिका कपड़े से पीठ पर मारती है। उचित अवसर देखकर वह किसी एक बालिका के पीछे कपड़ा रख देती है। यदि उस बालिका को कपड़ा रखने का पता चल जाता है तो वह कपड़ा उठाकर चक्कर लगाने वाली बालिका को तब तक दौड़ाती है, जब तक वह उसके स्थान पर आकर न बैठ जाए। यदि बालिका को कपड़ा रखे जाने का पता नहीं चलता है तो चक्कर लगाने वाली बालिका चक्कर लगाकर उसके पीछे आती है और उसे कपड़े से मारती हुई तब तक दौड़ाती है, जब तक वह दौड़ती हुई वापस आकर अपने स्थान पर न बैठ जाए।

यह खेल जीवन में सदैव सजग बने रहने का पाठ पढ़ाता है। यह बताता है कि सजग न रहने पर मुसीबतों में फंसकर दंडित होना पड़ता है।

रस्सी-कूद : इस खेल में लड़कियां अपने कद के हिसाब से लंबी रस्सी लेकर रस्सी को दोनों हाथों में पकड़कर घुमाती हुईं रस्सी पर से कूदती हैं। यह कूदना कई प्रकार का होता है, जैसे दोनों पैरों से, एक पैर से, साइकिल चलाने की भांति तथा दाएं-बाएं उछलते हुए कूदना इत्यादि। एक बार दो लड़कियां रस्सी को पकड़कर घुमाती हैं और एक या दो या तीन लड़कियां (रस्सी की लंबाई के अनुसार) रस्सी पर से कूदती हैं।

यह खेल शारीरिक संतुलन, व्यायाम और आपसी सामंजस्य का खेल है। यह शारीरिक व्यायाम के रूप में सबसे उत्तम खेल माना जाता है। स्वस्थ और सुदृढ़ शरीर अच्छे जीवन की बुनियाद होता है।

अंगुल-बित्ता : इस खेल में दो लड़कियां अपने हाथों की उंगलियों से बढ़ते क्रम में ऊंचाई का निर्माण करती जाती हैं। उदाहरण के लिए वे पहले बैठकर अपने हाथों के पंजे परस्पर सटाकर जमीन पर टिकाती हैं, जिसे दूसरे पक्ष की लड़कियां पार करती हैं। फिर वे बीते से ऊंचाई बढ़ती हैं। इसके बाद पैर के पंजों पर दोनों हाथों के बीच एक के ऊपर एक टिकाकर ऊंचाई बनाती हैं, जिसे दूसरे पक्ष की लड़कियों को ऊंचे कूदकर पार करना पड़ता है। यदि कोई लड़की कूदते समय हाथों से छू जाती है तो उसे 'मरा' (आउट) मान लिया जाता है।

यह खेल भी व्यायाम और आपसी सामंजस्य का सुंदर उदाहरण है। यह शारीरिक क्षमता को बढ़ाता है तथा भविष्य में हर तरह के घरेलू एवं बाहरी कामों को करने की शारीरिक क्षमता बढ़ाता है।

रोटी-पन्ना : यह बालिकाओं में सबसे लोकप्रिय है और जीवनोपयोगी खेल है। इस खेल में बालिकाएं स्वतः प्रेरणा से स्त्रियों के द्वारा किए जाने वाले घर-गृहस्थी से जुड़े कार्यों को करती हैं। इसे 'घर-घर' खेलना भी कहा जाता है। इस खेल में बालिकाएं भोजन पकाने के खिलौने के बरतन आदि से खेलती हैं तथा भोजन पकाने का नाटक करती हैं। वे भोजन पकाती हैं, अपने परिवारवालों को खिलाती हैं, घर का रख-रखाव करती हैं, कुल मिलाकर वे सभी कुछ वह दोहराती हैं, जो उनके घर में उनसे बड़े वास्तविक जीवन में करते हैं।

रोटी-पन्ना बालिकाओं को अपने भावी जीवन के लिए स्वतः प्रशिक्षित होने का अवसर देता है। वे घर-प्रबंधन से लेकर बाजार जाने, बच्चों को स्कूल पहुंचाने, चिकित्सक बनने, शिक्षिका बनने आदि की कला का भी अनुकरण करती हैं। यह सब उनके भावी जीवन में उन्हें सहायक सिद्ध होता है तथा उनके भीतर जिम्मेदारी का भाव पैदा करता है।

पुतरा-पुतरियां : इसे 'गुड्डे-गुड़िया' का खेल भी कहते हैं। इस खेल में बालिकाओं के दो पक्ष होते हैं। एक पक्ष पुतरा (गुड्डे) के पक्ष का होता है तथा दूसरा पक्ष पुतरी (गुड़िया) के पक्ष का होता है। दोनों पक्ष अपने-अपने गुड्डा-गुड़िया का लालन-पालन करते हैं तथा उनका परस्पर विवाह करते हैं।

यह खेल सामाजिक परंपराओं का अनुकरण करना सिखाता है तथा भावी जीवन को समाज के रीति-रिवाजों से जोड़ने का मानस तैयार करता है।

छिल-छिलाव : यह एक बहुप्रचलित खेल है। इसमें किसी प्रकार की खेल-वस्तु की आवश्यकता नहीं होती है। इस खेल में एक लड़की अन्य लड़कियों को छूने का प्रयास करती हुई दाम देती है तथा शेष लड़कियां आंगन या मैदान में यहां-वहां दौड़कर स्वयं को बचाने का प्रयास करती हैं। दाम देने वाली लड़की जिस लड़की को छू देती है, फिर उसे दाम देना पड़ता है। इस प्रकार दौड़ने में कमजोर लड़की को बार-बार दाम देने की नौबत आती है, जबकि स्फूर्त और तेज लड़कियां दाम देने से बची रहती हैं।

यह खेल जीवन में तेजी और स्फूर्ति के महत्त्व को स्थापित करते हुए शारीरिक स्वास्थ्य एवं सौष्ठव में वृद्धि करता है।

आंख-मिंचौवल : इस खेल में एक लड़की की आंखों पर कपड़े की पट्टी वांध दी जाती है। अन्य लड़कियां उसके आसपास उपस्थित रहती हैं, जिन्हें दौड़-दौड़ कर छूना होता है। जिस लड़की को वह छू देती है, फिर उसे आंखों पर पट्टी बांधकर दाम देना पड़ता है।

यह खेल ध्वनियों के प्रति संवदेनशील बनाता है। यह इस बात के लिए भी प्रशिक्षित करता है कि विपरीत से विपरीत परिस्थिति में भी धैर्य और सजगता अपनाकर कठिनाइयों पर विजय प्राप्त की जा सकती है।

लुका-छिपी : इस खेल को 'आइस-पाइस' (हाइड एंड सीक) भी कहा जाता है। इस खेल में दाम देने वाली लड़की किसी एक स्थान पर आंख बंद करके खड़ी हो जाती है और दस, बीस, तीस तक जोर-जोर से गिनती गिनती है। इस दौरान शेष लड़कियां यत्र-तत्र स्थानों पर छिप जाती हैं। दाम देने वाली लड़की निर्धारित गिनती पूरी होते ही छिपी हुई लड़कियों को ढूंढ़ना शुरू कर देती है। यदि वह सब लड़कियों को ढूंढ़ने में सफल हो जाती है तो सबसे पहले ढूंढ़ी जाने वाली लड़की को दाम देना पड़ता है। इस क्रम से यह खेल चलता रहता है।

यह खेल छिपी हुई वस्तुओं को ढूंढ़ने तथा धैर्य रखने की क्षमता का विकास करता है और भावी जीवन में ये दोनों क्षमताएं पग-पग पर सहायक सिद्ध होती हैं।

लंगड़ी छुआउल : इस खेल में एक लड़की एक पैर से कूदती हुई अन्य लड़कियों को छूने का प्रयास करती है। वह जिस लड़की को छू देती है, फिर उसे

लंगड़ी कूदते हुए दाम देना पड़ता है। यह खेल आंगन जैसे सीमित स्थान पर खेला जाता है। यह 'इनडोर' खेल है।

यह खेल शारीरिक व्यायाम का काम करता है। इस प्रकार के खेल स्वास्थ्य के लिए उत्तम होते हैं, क्योंकि ये शरीर को सुदृढ़ता प्रदान करते हैं।

छुक-छुक दाना : इस खेल में एक चौकार आकृति बनाई जाती है। चार लड़कियां उस चौकोर आकृति के चार कोनों में बैठ जाती हैं। उनके बीच एक लड़की खड़ी होती है, जो एक-एक करके चारों लड़कियों के पास जाती है और प्रत्येक लड़की से कहती है—

'छुक-छुक दाना, छुक-छुक दाना'

इस प्रकार वह दाना मांगती है। लड़कियां दाना देने का अभिनय करती हुई कहती हैं—

'ये लो दाना, ले लो दाना'

जब मांगने वाली लड़की एक कोने से दूसरे कोने और दूसरे कोने से तीसरे कोने पर जाती है, उस दौरान लड़कियां दौड़कर आपस में घर बदलती हैं। मांगने वाली लड़की भी पलभर को खाली छूटने वाले घर पर अधिकार करने का प्रयास करती है। जिस लड़की के घर पर वह अधिकार कर लेती है, फिर उस लड़की को दाम देना पड़ता है।

यह खेल जीवन में छल-कपट से बचना सिखाता है। यह इस बात का पाठ पढ़ाता है कि कोई भी व्यक्ति लाचारी का अभिनय करके अधिकारों को छीन सकता है और लाचार बना सकता है।

पारंपरिक खेलों की उपादेयता : बुंदेली बालिकाओं के जीवन में पारंपरिक खेलों का महत्त्व सदैव बहुत अधिक रहा है, क्योंकि बुंदेलखंड में देश की स्वतंत्रतापूर्व राजनीतिक अस्थिरता के कारण बालिकाओं का जीवन घर की चौखट के भीतर सिमटा रहा, जिससे उनका शारीरिक और मानसिक विकास बाधित हो सकता था, यदि उन्हें खेलों के द्वारा विकास का अवसर नहीं मिलता। उपर्युक्त वर्णित पारंपरिक खेलों ने बालिकाओं को अपनी शारीरिक एवं मानसिक क्षमता (स्किल) बढ़ाने का भरपूर मौका दिया। देश की स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी बुंदेलखंड में विकास की दर अपेक्षाकृत धीमी रही, जिसके कारण औपचारिक खेलों की पर्याप्त सुविधाएं बालिकाओं को नहीं मिल सकती थीं। ऐसी स्थिति में स्वप्रेरित खेलों ने उनके जीवन को मनोरंजन के साथ-साथ सुदृढ़ता प्रदान की।

उपर्युक्त वर्णित प्रमुख खेलों के अतिरिक्त भी अनेक पारंपरिक खेल हैं, जो बालिकाओं के जीवन को मनोरंजन के बहाने दिशा-निर्देश देने का काम करते हैं। अब साक्षरता के साथ अंत्याक्षरी जैसे खेल भी बुंदेली बालिकाओं के पारंपरिक खेलों में जुड़ गए हैं।

जहां एक ओर चपेटा, काना दुआ, सोलह गोटी, बग्गा जैसे खेल संकटों को दूर करके उन पर विजय पाने का साहस और कौशल बढ़ाते हैं, वहीं दूसरी ओर लंगड़ी धप्पा अथवा गपई समुद्र, घोड़ा पादाम साई, रस्सी-कूद, अंगुल-बित्ता, छिल-छिलाव, आंख-मिंचौवल, लंगड़ी छुआउल जैसे खेल शारीरिक संतुलन के साथ-साथ व्यायाम और आपसी सामंजस्य की शिक्षा देते हैं। घोर-घोर रानी जैसे खेल अन्याय का विरोध करना सिखाते हैं। वहीं छुक-छुक दाना जैसे खेल छल-कपट के प्रति सचेत रहने की चेतना जगाते हैं। रोटी-पन्ना, पुतरा-पुतरियां जैसे खेल गृहस्थ जीवन, पारिवारिक एवं सामाजिक व्यवस्थाओं के प्रति संवेदनशील बनाते हैं। इस प्रकार बुंदेली बालिकाओं के जीवन में पारंपरिक खेल जीवन के पाठ की भूमिका निभाते हैं।

रानी दुर्गावती

◆ *सुरेश मिश्र*

बुंदेलखंड की दक्षिणी सीमा नर्मदा नदी को माना जाता है और नर्मदा के उत्तर का वह क्षेत्र, जिसमें आज सागर, दमोह, जबलपुर, नरसिंहपुर, होशंगाबाद, रायसेन, विदिशा के जिले आते हैं, एक जमाने में रानी दुर्गावती के उस विस्तृत राज्य का हिस्सा था, जो सोलहवीं सदी में गढ़ा राज्य के नाम से विख्यात था और जो भारत के हृदयस्थल में सतपुड़ा तथा विंध्याचल की उपत्यका तथा नर्मदा की घाटी में करीब एक लाख किलोमीटर तक फैला हुआ था। इस दृष्टि से रानी दुर्गावती को बुंदेलखंड का शासक मानना समीचीन होगा।

गढ़ा राज्य का चरमोत्कर्ष दुर्गावती के ससुर संग्राम शाह के समय हुआ। संग्राम शाह ने 1510 से 1543 तक गढ़ा राज्य का शासन किया और उसके समय गढ़ा राज्य का विस्तार भारत के मध्य भाग में एक विशाल क्षेत्र में फैला हुआ था। दुर्गम क्षेत्र में स्थित यह विशाल राज्य संग्राम शाह के निधन के बाद लगभग ढाई

सौ साल तक विद्यमान रहा। उसके उत्तराधिकारियों में केवल उसकी पुत्रवधू दुर्गावती ने ही उसके समान शक्ति का उपभोग किया।

संग्राम शाह के दो पुत्र थे--दलपति शाह और चंद्र शाह। दलपति शाह का विवाह संग्राम शाह के जीवन में ही लगभग 1542 ई. में चंदेलवंश की कन्या दुर्गावती से हुआ। दुर्गावती राठ और महोबा के चंदेल राजा सालवाहन की पुत्री थी। संग्राम शाह का निधन 1543 ई. में हो गया था। ज्येष्ठ होने के कारण दलपति शाह उसका उत्तराधिकारी बना। शासन प्रारंभ होने के कुछ समय बाद दुर्गावती को एक पुत्र प्राप्त हुआ, जिसका नाम वीरनारायण रखा गया। गढ़ा राज्य के दुर्भाग्य से दलपति शाह शासन-सुख का उपभोग अधिक समय तक न कर सका। शासन के सातवें वर्ष यानी 1550 ई. में दलपति शाह की मृत्यु हो गई और उस समय उसके पुत्र वीरनारायण की आयु 5 वर्ष की थी।[1] मृत्यु के समय राजा की आयु लगभग पैंतीस वर्ष की थी। दलपति शाह की असामयिक मृत्यु के बाद उसके पांच साल के बेटे वीरनारायण का राज्यारोहण गढ़ा राज्य के सिंहासन पर हुआ और उसकी मां दुर्गावती को उसकी संरक्षिका बनाया गया।

दुर्गावती को विरासत में संग्राम शाह द्वारा स्थापित विशाल राज्य मिला। रानी दुर्गावती को भी शासन कार्य का कोई अनुभव नहीं था, लेकिन राज्य के वरिष्ठ अधिकारियों का समर्थन रानी और वीरनारायण को था। इसलिए रानी का पक्ष मजबूत था। अंत में रानी ने अधार कायस्थ और मान ब्राह्मण नामक दो महत्त्वपूर्ण अधिकारियों की सलाह से वीरनारायण को राजसिंहासन पर बिठाया[2] तथा वास्तविक शक्ति स्वयं अपने हाथ में रखी।

शासन शक्ति हाथ में आते ही रानी ने अत्यंत सक्रियता से प्रशासनिक कार्य करना प्रारंभ किया। अपनी योग्यता से रानी ने प्रशासन की जटिल समस्याओं और राजकार्य को दक्षता से संभाला। उसने अपने 'साहस तथा योग्यता का परिचय दिया। दुर्गावती ने अपनी दूरदर्शिता से अनेक महान कार्य किए।'[3] वस्तुतः वीरनारायण का राज्य काल दुर्गावती के प्रभाव का काल था और उस अवधि में वही सारे क्रियाकलापों की सूत्रधार थी। जिस समय रानी दुर्गावती ने गढ़ा राज्य की बागडोर हाथ में ली, तब गढ़ा राज्य रीवा, रतनपुर, चांदा, बरार, मियाना, अफगानों रायसेन और सूरवंश के अधीन दिल्ली सल्तन से घिरा हुआ था। सौभाग्य से इन सभी राज्यों में से केवल दिल्ली सल्तनत ही गढ़ा राज्य से मजबूत थी, शेष

सभी राज्य उससे निर्बल थे। इस कारण अधिकांश पड़ोसी राज्यों से दुर्गावती को परेशानी की आशंका नहीं थी।

दलपति शाह के समय गढ़ा राज्य की राजधानी वर्तमान दमोह जिले में स्थित सिंगौरगढ़ था, पर दलपति की मृत्यु के बाद रानी दुर्गावती ने राजधानी के लिए अपने राज्य के दूसरे महत्त्वपूर्ण किले चौरागढ़ को अधिक उपयुक्त समझा और उसे अपनी राजधानी बनाया।[4] शासन के प्रारंभ में रानी का संघर्ष मियाना अफगानों से हुआ, जिसमें वह विजयी हुई।[5]

शेरशाह ने जिस शुजात खां को मालवा का गवर्नर नियुक्त किया था, उसने 1545 में शेरशाह की मृत्यु के उपरांत मालवा में अपनी स्वतंत्र सत्ता स्थापित कर ली। 1556 में उसकी मृत्यु होने के बाद मालवा का शासक उसका पुत्र बाजबहादुर बना। गद्दी पर बैठने के शीघ्र बाद बाजबहादुर ने गढ़ा राज्य पर आक्रमण कर दिया, लेकिन उसे पराजय का मुंह देखना पड़ा।[6] यह घटना 1556 और 1562 के मध्य की है, क्योंकि बाजबहादुर के शासन के ये ही वर्ष थे। मालवा के विख्यात शासक को हराने से रानी दुर्गावती का यश चारों ओर फैल गया। इस समय तक अकबर मुगल सम्राट के रूप में सत्तारूढ़ हो चुका था और दिल्ली के राजनीतिक वातावरण में दुर्गावती की विजय की चर्चा ने अवश्य स्थान पाया होगा।

मैथिल विद्वान महेश ठाकुर रानी दुर्गावती के समय पुरोहित पद पर थे। मैथिल ब्राह्मणों को प्रश्रय देने की परंपरा गढ़ा राज्य में अंत तक कायम रही और ये मैथिल विद्वान विभिन्न पदों को सुशोभित करते रहे। रानी दुर्गावती के दरबार के एक अन्य विद्वान थे पद्मानाभ भट्टाचार्य। रानी के प्रोत्साहन पर उन्होंने संस्कृत में दो ग्रंथों की रचना की—दुर्गावती प्रकाश या समयालोक और वीरचम्पू।[7]

वल्लभ संप्रदाय के सुप्रसिद्ध संत विट्ठलनाथजी रानी दुर्गावती के समय गढ़ा पधारे थे। दक्षिण प्रवास से लौटते समय वे गढ़ा में रुके थे, जहां रानी दुर्गावती ने उनके दर्शन किए और उनसे दीक्षा ली। रानी ने गुसाईं विट्ठलनाथजी को 108 ग्राम दान में दिए, जिसे गुसाईंजी ने अपने साथ दक्षिण से आए तैलंग ब्राह्मणों में बांट दिया। यह विवरण 'दौ सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' नामक ग्रंथ में मिलता है।

इस समय तक मुगल सम्राट अकबर सत्तारूढ़ हो चुका था। 1556 में पानीपत के दूसरे युद्ध में हेमू को परास्त करने के बाद उसका सिंहासन स्थिरता प्राप्त कर चुका था। 1562 में मालवा के शासक बाजबहादुर को परास्त करके वह मालवा को मुगल साम्राज्य में शामिल कर चुका था। इससे गढ़ा राज्य की उत्तर-पश्चिमी सीमा मुगल साम्राज्य के मालवा सूबे से टकराने लगी। गढ़ा राज्य के उत्तर-पूर्व में स्थित मुगल प्रदेश के कड़ा मानिकपुर का प्रशासक आसफखां था। आसफखां का मूल नाम अब्दुल मजीद था।

गढ़ा की सीमा तक आसफखां के पहुंचने पर भी रानी को चिंता नहीं हुई, क्योंकि उसे अपनी सेना की शक्ति, अपने साहस तथा अपनी योग्यता पर भरोसा था। आसफखां ने एक दूरदर्शी कूटनीतिज्ञ की भांति पहले मित्रता का द्वार मुक्त रखा और इसी बीच वह चुपचाप गढ़ा-राज्य के संचार साधनों, आय-व्यय और आंतरिक स्थिति जानने के लिए गुप्तचरों और अनुभवी व्यापारियों को भेजता रहा। शीघ्र ही उसने यह जानकारी एकत्र कर ली कि गढ़ा राज्य में कितनी संपत्ति है और कहां-कहां धन छुपा रखा है। उसने पाया कि गढ़ा राज्य को बिना अधिक कठिनाई के विजित किया जा सकता है। बादशाह की आज्ञा से दस हजार घुड़सवार एकत्र करके उसने गढ़ा पर विजय के लिए कमर कस ली। शाही आदेश से मुहब्बत अली खान, मुहम्मद मुराद खान, वजीर खान, बाबाई काकशाल, नाजिर बहादुर, आक मुहम्मद और इस प्रदेश के अनेक इक्तादार आसफखां के साथ हो लिए। पहले आसफखां दमोह की ओर बढ़ा, जो जबलपुर से 104 किलोमीटर उत्तर में है। दमोह पहुंचते-पहुंचते छोटे-मोटे सरदारों के शामिल हो जाने के कारण आसफखां की घुड़सवार सेना की संख्या काफी हो गई। अबुलफ़ज़ल लिखता है कि इस समय की रानी उपेक्षा के मद में चूर थी और अपना समय राज्य की स्मृद्धि में लगा रही थी।

रानी को एकाएक समाचार मिला कि आसफखां दमोह पहुंच चुका है। इससे रानी के सैनिकों में हलचल मच गई। उनमें से अधिकांश अपने परिवार की सुरक्षा के लिए भाग खड़े हुए। रानी के पास केवल पांच सौ सैनिक रह गए। रानी ने इस संकट के समय भी अपना साहस नहीं खोया और मुगल सेना की ओर आगे बढ़ी।

अपूर्ण तैयारी के बावजूद रानी को युद्ध के लिए सन्नद्ध देखकर रानी के दीवान अधार कायस्थ ने वस्तुस्थिति से रानी को अवगत कराया। उसने रानी को

सैनिकों के पलायन के कारणों का और शत्रु की सेना की विशालता का परिचय भी दिया। रानी अपने सैनिकों के पलायन से अत्यंत क्षुब्ध थीं।

रानी ने उत्तेजित होकर अधार से कहा, "अपमानजक जीवन से सम्मानपूर्ण मृत्यु बेहतर है। यदि अकबर स्वयं यहां आता तो उसके प्रति सम्मान प्रकट करना मेरे लिए उचित था, किंतु यह आसफखां क्या समझे कि रानी का पद क्या होता है? यही सबसे उत्तम होगा कि मैं वीरतापूर्वक मृत्यु का आलिंगन करूं।" स्थिति निर्बल देखकर रानी के अधिकारियों ने उसे सलाह दी कि युद्ध के लिए सन्नद्ध होना श्रेष्ठ है, किंतु विचार-विमर्श न करना बुद्धिमत्ता न होगी। उन्होंने परामर्श दिया कि किसी सुरक्षित स्थान में सेना के पुनः एकत्र होने तक युद्ध न करना ही फिलहाल बेहतर होगा। रानी को यह परामर्श ठीक लगा। रानी सेना सहित गढ़ा के पश्चिम के सघन जंगलों में चली गई।

रानी के इस अप्रत्याशित स्थगन से दमोह में रुका आसफखां चौंक गया। उसने दमोह से अपना शिविर उठाया और स्वयं गढ़ा की ओर बढ़ा। रास्ते में इसी समय उसे रानी की स्थिति की सूचना मिली। आगे बढ़कर आसफखां ने गढ़ा में अपनी एक सेना छोड़ी और रानी के पीछे निकल पड़ा।

नर्रई में रानी की स्थिति अत्यंत विकट थी। उसे अब सुरक्षात्मक युद्ध ही लड़ना था, अपने अधिकारियों को संबोधित करते हुए रानी ने कहा कि अपनी सेना एकत्र होने तक यदि वे कहीं अन्यत्र शरण लेना उचित समझें तो वैसा करें, किंतु खुद उनका विचार ऐसा नहीं है। आखिर कब तक वह जंगलों में छिपती फिरेंगी। जिन्हें जाना हो, वे जा सकते हैं, उन्हें वह मुक्त करती हैं। अब उनके सामने दो ही रास्ते हैं—मत्यु या विजय। रानी के ओजपूर्ण वक्तव्य ने अपना काम किया और यह जानते हुए भी कि मृत्यु सुनिश्चित है, उसके सारे सैनिकों ने, जिनकी संख्या लगभग 5000 थी, युद्ध करने का निश्चय किया। दूसरे दिन समाचार आया कि नाजिर मोहम्मद, आक मुहम्मद और बहादुर सैनिकों की एक बड़ी टुकड़ी ने घाटी, जहां से नरही को रास्ता जाता था, के सिरे पर अधिकार कर लिया और दुर्गावती के हाथियों के फौजदार अर्जुनदास बैस को वीरगति प्राप्त हुई। यह समाचार सुनकर रानी ने कवच और शिरस्त्राण धारण किया और एक हाथी पर सवार होकर युद्ध के लिए चल पड़ीं। उसने अपने सैनिकों को संबोधित करते हुए कहा, "जल्दबाजी मत करो, शत्रु को घाटी प्रवेश करने दो, फिर हम चारों ओर

से उन पर टूट पड़ेंगे और उन्हें खदेड़ देंगे।" जैसा रानी ने अनुमान लगाया था, वैसा ही हुआ। दोनों पक्षों के अनेक सैनिक धराशायी हुए और शाही पक्ष के तीन सौ सैनिक नष्ट हुए। इस युद्ध में रानी की विजय हुई।

दूसरे दिन सुबह आसफखां तोपखाना लेकर आया और घाटी में प्रवेश की किलेबंदी करके उसकी सेना ने पर्वतों में प्रवेश किया। युद्ध के जोश में रानी अपने हाथियों में से सर्वश्रेष्ठ और ऊंचे तथा तेज हाथी सरमन पर बैठकर बाहर निकलीं। उसने अपनी सेना को सन्नद्ध करके हाथी बांटे और युद्ध के लिए तैयार हो गईं।

रानी के पुत्र राजा बीरसा (वीरनारायण) ने अत्यंत वीरता का प्रदर्शन किया। शम्सखान मियाना और मुबारक बिलूच ने बहादुरी से युद्ध किया। राजा बीरनारायण ने तीन बार शाही फौज को पीछे हटाया, किंतु तीसरी बार वह घायल हो गया। जब रानी ने यह सुना तो उसने अपने विश्वस्त अनुचरों को आज्ञा दी कि वे उसे युद्ध से हटाकर कहीं सुरक्षित जगह पर ले जाएं। उन्होंने रानी की आज्ञा का पालन किया और उसे चौरागढ़ के किले में ले गए। इस कारण अनेक लोग युद्धभूमि छोड़कर चले गए और रानी की सेना अब काफी कम हो गई।

किंतु रानी के निश्चय में कोई कमी नहीं आई और वह अपने अनुचरों के कंधे से कंधा मिलाकर सघन संघर्ष करती रही। इतने में एक तीर रानी की दाईं कनपटी पर लगा। उसने साहस के साथ उसे निकलकर फेंक दिया, किंतु तीर का फल घाव के भीतर ही रह गया। उसी समय एक दूसरा तीर आकर रानी की गर्दन में घुस गया। उसे भी उसने साहस से निकाल दिया, किंतु अत्यधिक पीड़ा होने के कारण रानी मूर्च्छित हो गई। इससे रानी की सेना अपना साहस खो बैठी और उसके पैर उखड़ने लगे। कुछ क्षण उपरांत रानी को जब होश आया तो उसने देखा कि पराजय सुनिश्चित है। रानी ने अपने महावत अधार सिंह बखीला (बघेला) से कहा, "मैंने तुम्हें शिक्षित करने और आगे बढ़ाने का हमेशा प्रयास किया, जिससे तुम किसी दिन मेरे काम आ सको। आज मैं युद्ध में हार गई हूं। ईश्वर न करे कि अपने नाम और सम्मान से मुझे हाथ धोना पड़े और कहीं शत्रु के हाथ में पड़ जाऊं। एक निष्ठावान सेवक की भांति कार्य करो और मुझे इस तेज कटार से समाप्त कर दो।" अधार सिंह इतना निर्मम कार्य करने के लिए तैयार न हो सका। तब रानी ने क्रोधित होकर अधार को यह कहते हुए फटकारा, "क्या तुमने मेरे लिए यही अपमान चुना है।"

और रानी ने अपनी कटार निकाली और स्वयं अपने पर आघात किया और वीरगति को प्राप्त हो गईं। रामनगर शिलालेख में कहा गया है कि रानी ने अपने हाथ के खड्ग से स्वयं अपना सिर काटा, 'संविक्षतालक्षविपक्षबाणैः स्वापाणि खड्गेनशिरःस्वकीयम।' पर यह विश्वसनीय नहीं है।

यह युद्ध 1564 में हुआ। जिस स्थल पर रानी ने वीरगति पाई थी, वहां आज रानी की समाधि है और उसके निकट रानी के हाथी की भी समाधि है।

श्रेष्ठ घुड़सवार और निपुण योद्धा होने के साथ ही साथ रानी कुशल बंदूकची और अच्छी तीरंदाज थीं। अबुलफजल कहता है कि वह सदैव शिकार पर जाती और बंदूक से जानवरों का शिकार करती थीं। उसकी आदत थी कि जब शेर दिखने का समाचार उसे मिलता तो वह उसे बिना मारे जल भी ग्रहण न करती थीं। वह साहसी थीं और अपनी दूरदर्शिता से उन्होंने महान कार्य किए।

रानी में शौर्य की कमी न थी। नारी होने पर भी उन्होंने संकट के समय पुरुषोचित धैर्य और साहस का परिचय दिया। आसफखां के आक्रमण के समय निर्बल सैन्य स्थिति होने पर भी रानी युद्ध के लिए सन्नद्ध थी। जब उनके सलाहकारों ने उन्हें पीछे लौटने की सलाह दी तो उन्होंने बुद्धिमत्तापूर्वक उसे स्वीकार करके दूरदर्शिता का ही परिचय दिया। नर्रई के रणक्षेत्र में उसकी युद्ध योजना के कारण ही प्रारंभ में गौंड सेना को विजय प्राप्त हुई। बाद में रानी की सलाह न मानने के कारण ही सेना को पराजय का मुंह देखना पड़ा। रानी में नेतृत्व कौशल कम नहीं था। नर्रई में आसफखां के प्रारंभिक आक्रमण के समय उसने सैनिकों को जो ओजस्वी उद्‌बोधन दिया, उससे सैनिकों में उत्साह का संचार हुआ। जब युद्ध में उनके सैनिक घायल हो जाते थे तो वह खुद देखभाल करती थीं।

रानी बहुत स्वाभिमानी थीं। आसफखां के सम्मुख समर्पण करने के लिए वह इसलिए तैयार नहीं हुईं कि आसफखां उसकी बराबरी का नहीं था। नर्रई के रणक्षेत्र में रानी के घायल हो जाने के उपरांत जब महावत अधार सिंह बघेरा ने रानी को कटार मारने में अपनी असमर्थता बताते हुए रानी को युद्धभूमि से बाहर ले जाने का प्रस्ताव किया तो रानी ने इसे अपने सम्मान के विरुद्ध समझा और महावत को खूब फटकारा। अंत में सम्मान की रक्षा के लिए ही रानी ने आत्मघात किया।

रानी कुशल प्रशासिका थीं। वह राजकार्य में सक्रिय भाग लेती थीं। उन्होंने अनेक महान कार्य किए। इन कार्यों से उसका शासन सुदृढ़ हुआ और जनता का

स्नेह भी उन्हें मिला। गौंड राजवंश के इतिहास में जितनी कीर्ति दुर्गावती ने अर्जित की, उतनी उस वंश के किसी शासक ने नहीं की। रानी ने जनहित के कितने ही कार्य किए। आज भी जबलपुर स्थित रानीताल दुर्गावती की स्मृति को ताजा बनाता है। रानीताल के निकट चेरीताल उसकी किसी दासी (चेरी) द्वारा निर्मित किया गया था। उसके मंत्री अधार कायस्थ ने जबलपुर के निकट अपने नाम पर एक तालाब अधारताल बनवाया। वास्तव में गढ़ा के आसपास रानी के समय के अनेक सार्वजनिक हित के कार्य संपन्न हुए।

रानी ने योग्य मुसलमानों को भी ऊंचे पद दिए। शम्सखां मियाना और खानजहां डाकीत उसकी सेना के योग्य अधिकारी थे। खानजहां डाकीत ने मुगलों के विरुद्ध लड़ाई लड़ते हुए अपने प्राण दिए थे। विद्वानों को रानी ने समुचित प्रश्रय दिया और उनके प्रति सम्मान भी बरता। उसके दरबार में महेश ठक्कुर तथा दामोदर ठक्कुर जैसे अप्रतिम विद्वान थे। गोप महापात्र तथा नरसिंह महापात्र को भी रानी ने सम्मानित किया।

रानी स्वभाव से धार्मिक महिला थीं। वल्लभ संप्रदाय के गुसाईं विट्ठलनाथ जब पहली बार 1558 में गढ़ा आए, तब रानी ने न केवल उनका भव्य स्वागत किया, बल्कि उनसे दीक्षा ली और 108 ग्राम दान में दिए। इस संप्रदाय के स्वामी चतुर्भुजदास ने भी गढ़ा में अनुकूल वातावरण पाकर वहां एक मंदिर की स्थापना कर डाली। यह मंदिर आज भी गढ़ा के पचमठा के क्षेत्र में विद्यमान है।

'गढेशनृपवर्णनसंग्रहश्लोकाः' नामक परवर्ती कृति में कवि केशव ने दीक्षित दुर्गावती के समय के गढ़ा-राज्य की तीन विशेषताएं बताया है कि उसके चारों ओर उपजाऊ भूमि है, बीच में नर्मदा नदी है और विदुषी दुर्गावती वहां की रानी हैं।

उर्वरा सर्वतो भूमिः मध्यतो नर्मदा नदी।
विज्ञा दुर्गावती राज्ञी गढ़ाराज्ये त्रयोगुणाः।।

संदर्भ

1. अकबरनामा दो, पृ. 326
2. अकबरनामा दो, पृ. 326 रामनगर शिला लेख, श्लोक 19, हाल पृ. 14
3. अकबरनामा दो, पृ. 327
4. अकबरनामा दो, पृ. 325

5. अकबरनामा दो, पृ. 327
6. फरिश्ता, तारीख-ए-फरिश्ता, जिल्द चार, अंग्रेजी अनुवाद रैवर्टी, (1829), पृ. 277, फरिश्ता गलती से दुर्गावती को रामकृष्ण सिंह की विधवा कहता है। अकबरनामा दो, अंग्रेजी अनुवाद एस. बैवरिज, पृ 327 और तबकात ए अकबरी, जिल्द तीन अनु. डे विविल इंडि, 1939, भाग 3, पृ. 330 भी देखिए।
7. हिन्दी विश्वकोष सं. बसु 28, पृ. 574 समयालोक की पांडुलिपि, बीकानेर संग्रहालय में है और उसका क्रमांक 2414 है। वीरचम्पू की पांडुलिपि सरस्वती भंडार, किला रीवा में है और उसका प्रकाशन प्राच्य विहार, कलकत्ता द्वारा किया गया है।

मस्तानी बाजीराव

◆ *भगवानदास गुप्ता*

मध्यकालीन भारतीय इतिहास में वैसे तो रजिया सुल्तान और हब्शी गुलाम जमालुद्दीन याकुत, रूपमती-बाजबहादुर, नूरजहां-जहांगीर, औरंगजेब-हीराबाई आदि की कई प्रेम-गाथाएं प्रसिद्ध हैं, पर पेशवा बाजीराव–प्रथम और मस्तानी की प्रणय कथा तो एकदम अनोखी ही है। मस्तानी के जन्म, वंश आदि का कोई भी विश्वसनीय विवरण उपलब्ध नहीं है। बुंदेलखंडी परंपरागत लोककथाओं के अनुसार बंगश-बुंदेला युद्ध (1727-29) में जब पन्ना राज्य के संस्थापक सुप्रसिद्ध महाराज छत्रसाल बुंदेला (1649-1731) अपनी वृद्धावस्था में परिवार सहित जैतपुर[1] के किले में इलाहाबाद के मुगल सूबेदार मुहम्मद खां बंगश द्वारा घेर लिए गए, तब सब ओर से निराश होकर अस्सी वर्षीय छत्रसाल ने पेशवा बाजीराव प्रथम को तुरंत बुंदेलखंड आकर बंगश से त्राण दिलाने की याचना करते हुए एक पद्यबद्ध पत्र भेजा। कहा जाता है कि यह पत्र सौ दोहों का था और इसके वाहक और कोई नहीं, स्वयं कवि भूषण थे। जन-स्मृति में इस पत्र की केवल दो पंक्तियां ही सुरक्षित रह पाई हैं–

जो गति ग्राह गजेन्द्र की, सो गति भई है आज।
बाजी जात बुंदेल की, राखो बाजी लाज।।

पेशवा बाजीराव तब सैनिक अभियान पर देवगढ़ में थे। वे वहां से ससैन्य कूच करते हुए गढ़ा मंडला होकर बुंदेलखंड आ पहुंचे। उन्होंने बंगश को जैतपुर का घेरा उठाकर बुंदेलखंड से जान बचाकर भाग जाने पर विवश कर दिया और वृद्ध छत्रसाल की आन रख ली। इस सामयिक सहायता से कृतज्ञ होकर छत्रसाल ने बाजीराव को अपना तृतीय पुत्र मानकर पन्ना राज्य के तीसरे भाग का उत्तराधिकारी घोषित किया और जनश्रुति के अनुसार मस्तानी भी इसी समय उन्हें भेंट की।[2]

परंतु कैप्टन पांग्सन के सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'ए हिस्ट्री ऑफ दी बुंदेलाज' के अनुसार पेशवा बाजीराव को मस्तानी बुंदेलखंड से ही प्राप्त हुई थी और वह एक मुसलमान कन्या थी।

पेशवा दफ्तर के एक बेनाम और बिना तारीख के पत्र का लेखक मस्तानी के बाजीराव के पास होने पर संतोष व्यक्त करते हुए लिखता है, "साहेबापासी मस्तान आहे त्यावरून आम्हासहि समाधान आहे। या मधें काही अनमान असत तरी साहेबाचे पायाची आण आहे। आमचा काही परामर्श न केला। साहेब थोर आहेत। आम्ही विनती लेहावी यैसा काही अर्थ नाहीं, परंतु लौकिक बहुतस जाला आहे की आम्हापासू न पोरी हिरोन घेतली, यैसा विचार जाला आहे यैसे न कीजै।"

स्वामी के पास मस्तान (मस्तानी) है, इसलिए हमको भी संतोष है। अनुमान होता है कि पूना आने पर मस्तानी अपने साजिंदों और संरक्षकों के साथ पेशवा से कहीं अलग रहती रही होगी, पर जैसे-जैसे पेशवा बाजीराव का आकर्षण उसके प्रति बढ़ता गया, वैसे-वैसे वे उसे अपने साथ महलों में सदैव रखने को आतुर होते गए और किसी दिन उन्होंने मस्तानी को उसके डेरों से बुलाकर महलों में ही रोक लिया होगा। यह बात मस्तानी के संरक्षक को आंस गई होगी और उसने उपर्युक्त पत्र नम्र शब्दों में स्पष्टतः पेशवा के इस कार्य पर क्षोभ प्रकट करते हुए लिखा होगा। वह यह इंगित करने में भी नहीं चूका कि इससे पेशवा की बदनामी होगी। हो सकता है कि मस्तानी इसी व्यक्ति के संरक्षण में पूना आई हो। सुप्रसिद्ध इतिहासकार श्री गोविंद सखाराम सरदेई का

भी मत है कि उपर्युक्त पत्र का लेखक कोई ऐसा व्यक्ति प्रतीत होता है, जो तरुण कन्याओं को नृत्य-गान की शिक्षा देकर उन्हें धनिकों या श्रीमंतों को बेच दिया करता था।[3] ऐसी प्रथा उस समय उत्तरी भारत में विशेष प्रचलित थी और संभव है कि छत्रसाल ने ऐसे ही किसी व्यक्ति से मस्तानी लेकर पेशवा बाजीराव को भेंट की हो। तारीखे-मुहम्मद-शाही के अनुसार भी मस्तानी एक 'कांचनी' (नृत्यांगना) ही थी।[4]

बांदा के नवाबों की एक पुरानी वंशावली इतिहासकार दत्तात्रेय बलवंत पारसनीस को सागर के सूबेदार से प्राप्त हुई थी। इस वंशावली में एक उल्लेख इस प्रकार था कि "बाजीराव बल्लभ पेसुवा साहब दखन से हिन्दुस्थान में परनावाले राजा छत्रसाल ने बुलाए, राजा के ऊपर रुहेलखंड से बंदस (बंगस) की फौज ने चढ़कर परना का राज खाली किया और राजा को जेरवारबहद किया। उस वक्त राजा ने पूना को खत भेजकर बुलाए, सो पेसुवा साहब की सवारी आय कर परना के ऊपर लढ़ाई पर बंगस को भगा दिया और राजा छत्रसाल को गादी पर कायम किया। उस वक्त तीन हिसे राज के करके येक हिसा पेसुवा साहब को दिया और महाल से मस्तानी औरत कबूल सूरत थी, सो राजा ने पेसुवा साहब को दी।"[5]

कुंवर कन्हैयाजू की नागरी प्रचारिणी पत्रिका (भाग 9) में प्रकाशित एक लेख के अनुसार मस्तानी छत्रसाल की मुगलानी उप-पत्नी से उत्पन्न कन्या थी।[6] यहां इस बात की ओर ध्यान आकर्षित किया जा सकता है कि छत्रसाल ने निर्विवाद रूप से पेशवा बाजीराव को अपना दत्तक पुत्र और तदनुसार अपने राज्य के एक-तिहाई भाग का उत्तराधिकारी घोषित किया था। ऐसी स्थिति में छत्रसाल निश्चय ही अपनी कन्या को, चाहे वह उनकी उप-पत्नी से ही क्यों न उत्पन्न हो, अपने घोषित पुत्र पेशवा बाजीराव को न देते, न पेशवा ही अपनी ऐसी 'बहन' को स्वीकार करते। वस्तुस्थिति यह प्रतीत होती है कि मस्तानी छत्रसाल की किसी दरबारी मुसलमान नृत्यांगना की उदीयमान पुत्री रही होगी, जिसे उन्होंने सामान्य रूप से, जैसी कि उस समय राजे-रजवाड़ों में आम प्रथा थी, पेशवा बाजीराव को भेंट कर दी होगी। मराठी बखरों में भी मस्तानी को छत्रसाल की दासी की कन्या या उनकी मुसलमान नर्तकी की कन्या ही कहा गया है। कहीं भी उसे छत्रसाल की औरस पुत्री नहीं माना गया है। सन् 1836 में लिखी पेशवाओं की एक पुरानी

बखर में मस्तान संबंधी यह उल्लेख है कि जब बाजीराव छत्रसाल की सहायता को बुंदेलखंड गए, तब छत्रसाल ने उन्हें अपने राज्य का एक भाग दिया और 'आपण कलावंतील' राखली होती तिची कन्या एक बहुत चांगली होती तो बाजीराव साहेब पेशवे यांस देऊन पांच लक्ष रुपयाचा सरंजाम तिचे लुगड़े चोली बद्दल देऊन निरोप दिला।''

(अर्थात् छत्रसाल ने एक कलावंतनी रखी थी, जिसकी एक बहुत उत्तम कन्या थी। उसको बाजीराव साहब पेशवा को देकर पांच लाख रुपये का संपूर्ण सामान उसके लुगड़े-चोली के निमित्त देकर उसकी बिदा कर दी।)

मराठा साम्राज्य की एक छोटी बखरी में भी केवल यह लिखा है कि छत्रसाल ने पेशवा को एक खूबसूरत कलावंतनी (नर्तकी या वेश्या) मस्तानी नजर की। गोरेलाल तिवारी के अनुसार भी मस्तानी पन्ना दरबार की एक वेश्या की पुत्री थी।[7]

सोहनी की 'पेश्व्यांची बखर' के अनुसार मस्तानी पहले किसी शहाजत खां के पास थी। इस शहाजत खां ने निजाम पर आक्रमण कर दिया और निजाम द्वारा छत्रपति शाहू से सहायता की याचना की जाने पर पेशवा बाजीराव के अनुज चिमणाजी आपा ने शहाजत खां पर आक्रमण कर किया। शहाजत खां की सेना बुरी तरह पराजित होकर भाग निकली और शहाजत खां की एक कलावंतनी मस्तानी चिमणाजी के हाथ पर पड़ गई। शहाजत खां इस युद्ध में मारा गया और बंदी मस्तानी ने संरक्षण के अभाव में स्वयं को असहाय पाकर विष खाकर आत्महत्या करने की सोची। तब चिमणाजी ने उसे बाजीराव के संरक्षण का आश्वासन देते हुए कहा कि, ''मेरे अग्रज बाजीराव साहब बुंदेलखंड गए हैं, वे आने पर तेरा प्रतिपालन करेंगे।'' किंतु स्वाभिमानिनी मस्तानी बाजीराव की अंकशायिनी तभी बनी, जब बाजीराव ने यह वचन दिया कि अगर उसके गर्भ से बाजीराव के कोई पुत्र हुआ तो उसे बाजीराव की जागीरों में से उत्तराधिकार मिलेगा। निम्नलिखित एक छंद का इस प्रसंग में उल्लेख किया जाता है :

मस्तानी नामे भुवनेकरम्या, अन्यानरा दृष्टसिही अगम्या।
स्वस्त्रीस ही किंबहुना सुनम्या, वेश्या असे शाजतखान गम्या।

(मस्तानी नाम की संसार में एक ही सुंदरी है, जो दूसरे मनुष्यों की दृष्टि तक को अगम्य है। अपनी स्त्रियों की तरह ही वह नम्य है। यह वेश्या शाजत खां को सुलभ है।)[8]

एक अन्य लोकश्रुति यह भी है कि गोदावरी के तट पर सन् 1728 में कभी निजाम और पेशवा बाजीराव में आमना-सामना हो गया। यहां एक मध्यरात्रि को निजाम की छावनी की ओर से एक पंद्रह-सोलह साल का सुंदर-सा सैनिक वेशधारी तरुण घोड़ा दौड़ाता हुआ पेशवा के डेरों में दाखिल हुआ। पेशवा के सामने प्रस्तुत किए जाने पर इस तरुण ने उन पर यह भेद खोला कि वह वास्तव में एक पठान बालिका है। उसका नाम मस्तानी है और निजाम ने उसके पिता को कत्ल कर उसे और उसकी मां को अपने हरम में डाल लिया था। उसने पेशवा से कहा कि वह उसके सौंदर्य और शौर्य की प्रसिद्धि से आकर्षित होकर उनके पास शरण लेने आई है। बाजीराव मस्तानी की अनोखी आन-बान और सहज सुंदरता पर मुग्ध हो गए और उन्होंने उसे अपने संरक्षण में ले लिया।[9]

सन् 1841 के पेशवा बाजीराव संबंधी एक विवरण में तो मस्तानी को निजाम की पुत्री ही बता दिया गया है। इस विवरण के अनुसार एक बार पेशवा बाजीराव ने औरंगाबाद पर चढ़ाई कर दी। निजाम सेना सहित घिर गया और विवश होकर उसे बाजीराव से संधि-वार्ता करनी पड़ी। उसकी बेगम और हरम की अन्य महिलाओं ने बाजीराव के शौर्य और उसके पुरुषोचित सौंदर्य की बड़ी प्रशंसा सुन रखी थी। अतएव उन्होंने निजाम से आग्रह किया कि वह बाजीराव को हरम में उनसे मिलने ले आएं। बेगम और हरम की महिलाएं चिक के पीछे बैठी थीं। बाजीराव बेगम को सलाम कर चिक के दूसरी ओर बैठ गए। बेगम और अन्य सभी महिलाएं बाजीराव के शिष्ट व्यवहार और उनकी सुंदरता से बड़ी ही प्रभावित हुईं। निजाम की बेगम ने स्वयं परदा हटाकर बाजीराव को अपने हाथ से पान का बीड़ा दिया और उन्हें तरह-तरह के कीमती वस्त्र और जवाहरात भेंटकर सम्मानित किया। इतना ही नहीं, बाजीराव के चले जाने के पश्चात बेगम ने निजाम को सलाह दी कि क्यों न अपनी एक कुंवारी शहजादी का विवाह बाजीराव से करके उनसे अपने संबंध दृढ़ कर लें? बाजीराव सभी तरह से योग्य वर है। निजाम को यह सलाह भा गई और बाजीराव की कटार से निजाम की शहजादी का विवाह हो गया। मस्तानी यही शहजादी थी। इसी विवरण के अनुसार मस्तानी के बाजीराव से दो पुत्रियां और एक पुत्र हुए थे, पर दोनों पुत्रियों की मृत्यु हो गई, केवल एक पुत्र रह गया, जो कालांतर में शमशेर बहादुर के नाम से प्रसिद्ध हुआ।[10]

इस प्रकार स्पष्ट है कि मस्तानी की उत्पत्ति विवादग्रस्त है, फिर भी उसका छत्रसाल द्वारा ही पेशवा बाजीराव प्रथम को भेंट किया जाना अधिक संभव प्रतीत होता है। मस्तानी का प्रथम उल्लेख बाजीराव के पुत्र नाना साहब के विवाह (11 जनवरी, 1730) के अवसर पर आता है, जबकि 'मिसकीण मस्तान कलावंत' और उसके साजिंदों को कीमती वस्त्र आदि इनाम में दिए गए थे। यहां यह बात ध्यान देने योग्य है कि पेशवा बाजीराव छत्रसाल को बंगश के विरुद्ध सहायता देकर अपने बुंदेलखंड के अभियान से जुलाई, 1729 में लौटकर पूना आए थे। अस्तु यह बहुत संभव है कि पेशवा को मस्तानी छत्रसाल से ही प्राप्त हुई हो।[11] पॉग्सन का ग्रंथ 'ए हिस्ट्री ऑफ दी बुंदेलाज' सन् 1828 में प्रकाशित हुआ था, तब आम धारणा के अनुसार ही उन्होंने यह लिखा होगा कि बाजीराव मस्तानी को बुंदेलखंड से लौटते समय ले गए थे। पॉग्सन के इस कथन का उल्लेख इस अध्याय के प्रारंभ में ही किया गया है। इस अनुमान की पुष्टि लोकश्रुतियों के साथ ही इस बात से और हो जाती है कि बाजीराव और मस्तानी के पुत्र शमशेर (1734-61) को पेशवा बाजीराव की मृत्यु के बाद उसकी बुंदेलखंड की छत्रसाल-प्रदत्त जागीरों में ही उत्तराधिकार दिया गया था। इसी शमशेर बहादुर के वंशज ही बाद में बांदा के नवाबों के नाम से प्रसिद्ध हुए।[12]

मस्तानी जब पेशवा बाजीराव को प्राप्त हुई, तब उसकी वय लगभग 14-15 वर्ष की थी। पेशवा के महलों में वार्षिक गणेश-उत्सव और गोकुल-अष्टमी जैसे धार्मिक अवसरों और त्योहारों पर वह अपनी ललित कलाओं का सुंदर प्रदर्शन करती थी। उसने अपने अप्रतिम सौंदर्य और नृत्य-गान से पेशवा को अपने ऊपर मुग्ध कर लिया था। मस्तानी कोरी नर्तकी ही न थी। तारीखे-मुहम्मदशाही के अनुसार वह तलवार और भाला चलाने में किसी भी मराठा सैनिक जैसी ही दक्ष थी और बाजीराव के सैनिक अभियानों में उनके घोड़े के साथ ही बराबर एक ऊंचे घोड़े पर चलती थी।[13] पेशवा बाजीराव के मार्च, 1737 के दिल्ली के सुप्रसिद्ध अभियान में भी वह उनके साथ थी और दिल्ली से लौटते समय मुगल सेना के अग्रदल के कुछ सैनिकों ने बाजीराव और मस्तानी को घोड़े की जीन पर विश्राम करते, खाते-पीते और मौज मनाते हुए देखा था।[14]

मस्तानी के इन्हीं गुणों ने पेशवा को वशीभूत कर लिया था। उसके प्रति उनकी आसक्ति दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही गई। मस्तानी भी हिन्दू ललनाओं की

तरह बाजीराव से प्रेम करती थी। उसने हिन्दू खान-पान, भाषा, रहन-सहन आदि सभी अपना लिया था और अपनी मृत्यु तक उसके सभी आचार-व्यवहार, ब्राह्मण कुल-वधुओं की तरह ही रहे। पेशवा बाजीराव का कठोर सैनिक जीवन उसके प्रेम से अनुप्राणित हो उठा। सन् 1734 में जब मस्तानी ने एक पुत्र को जन्म दिया, तब तो वह बाजीराव की और भी कृपापात्र हो उठी। यह पुत्र शमशेर बहादुर था। पेशवा बाजीराव द्वारा पूना में निर्मित सुप्रसिद्ध शनिवारवाड़े में मस्तानी और उसके पुत्र के लिए सन् 1736 में एक अलग कक्ष का निर्माण करवाया गया, जो आज भी मस्तानी महल के नाम से प्रसिद्ध है। इस महल की ओर से शनिवारवाड़ा के परकोटे का दूसरा द्वार बाहर की ओर खुलता था, उसका नाम भी पेशवा की प्रियतमा के नाम पर मस्तानी दरवाजा रखा गया। बाद में उसे अलीबहादुर दरवाजा भी कहा जाने लगा था। मस्तानी इस प्रकार अपने पुत्र शमशेर बहादुर के साथ शनिवारवाड़े में ही मस्तानी महल में बाजीराव के पास रहती रही और उसकी मृत्यु के पश्चात उसके पुत्र शमशेर बहादुर और पौत्र अलीबहादुर का निवास स्थान भी यही रहा।[15] पूना-सास्वड मार्ग पर वड़की के पास दीवा के जंगल में स्थित मस्तानी तालाब भी संभवतः बाजीराव की ही प्रेरणा से सन् 1739 में निर्मित हुआ था।[16]

पेशवा का मस्तानी के प्रति आकर्षण बढ़ता ही गया। कहा जाता है कि मस्तानी के संपर्क में बाजीराव मांस और मदिरा का सेवन करने लगे थे, लेकिन बाजीराव के सैनिक जीवन और सुदूरवर्ती प्रदेशों में उनके अभियानों में एक सद्गृहस्थ धर्मपरायण ब्राह्मण का शुद्ध जीवन व्यतीत करना सुसाध्य नहीं था। राजपूत राजा तथा उत्तरी भारत के हिन्दू भी सामिष भोजन करने लगे थे और स्वच्छंद रूप से मदिरा और धूम्रपान करते थे। बाजीराव में भी उनके संसर्ग से इन आदतों का पड़ जाना कुछ अस्वाभाविक प्रतीत नहीं होता। यह हो सकता है कि मस्तानी के प्रति गहरी आसक्ति ने उनकी इस प्रवृत्ति में कुछ और अधिक योग दिया हो।

बाजीराव और मस्तानी के आपसी संबंध धीरे-धीरे जन-साधारण की चर्चा के विषय बन गए थे। बाजीराव के कारण मस्तानी को महलों में पेशवा की विधिवत विवाहिता पत्नी काशीबाई की तरह ही महत्त्व दिया जाने लगा था। सुप्रसिद्ध नाना फडनीस के पिता बाबूराव फडनीस ने 27 नवंबर, 1737 के

अपने एक पत्र में इसका उल्लेख करते हुए लिखा था, "सौभाग्यवती काशीबाई व मस्तानी यांकड़े न्यून्यता होत नाहीं।" (सौभाग्यवती काशीबाई व मस्तानी के बीच कोई कमी नहीं बरती जाती।)[17] पेशवा के पारिवारिक संबंधियों तथा अन्य ब्राह्मणों को यह असह्य हो गया। सन् 1739 में रघुनाथराव के यज्ञोपवीत के समारोह और सदाशिवराव के विवाह के अवसर पर उच्च पदस्थ और कुलीन ब्राह्मणों ने इन उत्सवों में मस्तानी के कारण भाग लेना अस्वीकार कर दिया।[18] इससे मस्तानी के प्रति पेशवा के कुटुंबीजन और क्षुब्ध हो उठे। फिर एक बार जब बाजीराव छत्रपति शाहू से भेंट करने गए, मस्तानी को भी अपने साथ ले गए। तब राजा शाहू ने क्रोधित होकर बाजीराव को अपनी उपस्थिति में आने का निषेध कर दिया।[19] सतारा के अन्य भद्र लोगों ने भी बाजीराव को मस्तानी के प्रति इतनी आसक्ति के लिए बहुत ही बुरा-भला कहा और उससे पूर्ण रूप से संबंध विच्छेद करने के लिए उन पर दबाव डाला, परंतु बाजीराव का प्रेम अडिग था। उन पर इस सबका कोई प्रभाव नहीं पड़ा और उनके तथा मस्तानी के संबंध पूर्ववत् ही रहे।

बाजीराव पर उपर्युक्त बातों का कुछ भी असर होते न देख उनके निकट संबंधियों का रोष मस्तानी के प्रति और भी बढ़ गया और नाना साहब और चिमणाजी आपा ने नवंबर, 1739 में मस्तानी को शनिवारवाड़े में उसी के महल में बंद कर चौकी बैठा दी।[20] इसी समय मस्तानी ने नाना साहब को एक पत्र लिखा था। मस्तानी के कहे जानेवाले केवल इसी एक पत्र का उल्लेख मिलता है। यह पत्र इस प्रकार है :

"सेवेसी विज्ञापना—साहेबी रात्रीस वाडिया भवल्या वसावयासी आज्ञा केली आहे, कि हे पळून जातील, तरी जाऊ न द्यावी। तरी साहेबांस बसवास असेल कि राव साहेब यांसी चौरून नेतील अथवा रात्रि दिवसां हर तजविजी ने जातील, ऐसे कितेक गोष्ठी ने खतराच असेल तरी आज्ञा होईल तर वाडियातील दाहा वायको जेथे निजत असतील त्यांत निजावयासी तेथेच येत जाईन। येसे साहेब धणी आहेत जे आज्ञा होईल त्या प्रमाणो वर्तणूक करू। हे तस्लीमात।"[21]

(सेवा में निवेदन है कि—साहब ने वाड़े के इर्द-गिर्द चौकी बिठाने का आदेश दिया है कि कहीं ये भाग न जाएं, इन्हें जाने न दें। इसलिए बिना साहब (स्वामी) से पूछे जाना नहीं हो सकेगा, क्योंकि साहब को ऐसा लगता है कि

राव साहब (पेशवा) इसे चोरी से निकाल ले जाएंगे अथवा रात में या दिन में कोई-न-कोई इंतजाम कर ले जाएंगे। ऐसी कितनी बातों का खतरा होगा, फिर भी यदि आज्ञा हो तो वाड़े की दस औरतें जहां सोती हों, वहां उन्हीं में सोने जाया करूं। साहब ही धनी (स्वामी) हैं जैसी आज्ञा देंगे, वैसा ही करूंगी। यह तस्लीम पहुंचे।)

बाजीराव ने मस्तानी के बंदी बनाए जाने के समाचार तो सुने, परंतु लोकलज्जा के कारण वे तुरंत ही पूना आकर उसकी मुक्ति का कोई उपाय नहीं कर सके और भग्न हृदय होकर पूना न आकर पाटस चले गए। इधर मस्तानी किसी युक्ति से 24 नवंबर को बंदीघर से निकलकर पेशवा के पास जा पहुंची। पेशवा के पुत्र नाना साहब ने लिखा, "मस्तानी येथून गेली। मोठा संदेह आम्हाविशी होता, तो वारला।"[22] अर्थात मस्तान यहां से गई। हमको जिसका बड़ा भय था, सो घटित हुआ। मस्तानी के पीछे-पीछे महादजीपंत पुरंदरे, मोरशेट काका आदि, जो कि पेशवा के परिवार के शुभचिंतक थे, पाटस पहुंचे और पेशवा को समझा-बुझाकर पुनः मस्तानी को पूना वापस ले गए।[23] बाजीराव को मस्तानी का वियोग सहन नहीं हो सका। जीवन से वे विरक्त हो उठे। उनकी स्वाभाविक उत्फुल्लता जाती रही और स्वास्थ्य भी तेजी से गिरने लगा। इससे सभी चिंतित हो उठे। बहुत उपचार करने पर उनके स्वास्थ्य में कुछ सुधार के लक्षण तो दिखे, पर फिर भी उनकी सहज प्रसन्नता नहीं लौट सकी। इसी को लक्षित करके ही उनके अनुज चिमणजी आपा ने अपनी माता राधाबाई को 28 दिसंबर, 1739 के पत्र में लिखा है कि "वह (पेशवा बाजीराव) अब पहले से बहुत अच्छे हैं और ईश्वर ने चाहा तो उनकी प्रसन्नता पुनः लौट आएगी, पर मुझे भय है कि वे एक कारण (मस्तानी के कारण) से दुखी हैं।"[24]

बाजीराव ने अपने तप्त हृदय की शांति के लिए मदिरा और अन्य नशीली वस्तुओं का सेवन अधिक कर दिया। उनका हृदय मस्तानी के वियोग से फटा जा रहा था, पर वे निरुपाय थे। पारिवारिक शांति और कुल प्रतिष्ठा ने अजेय और सेनापति बाजीराव के हाथ बांध दिए थे। उनके शीघ्रता से फिर गिरते हुए स्वास्थ्य से माता राधाबाई, पत्नी काशीबाई, भाई चिमणाजी आपा और ज्येष्ठ पुत्र नाना साहब बहुत ही चिंतित हो उठे।[25] उन्होंने बहुत प्रयत्न किए कि बाजीराव मस्तानी को भूल जाएं, पर व्यर्थ! अंत में मस्तानी को कैद में समाप्त कर देने की योजना

बनाई जाने लगी, पर छत्रपति शाहू के सहमत न होने से वह कार्यान्वित न हो सकी। शाहू समझते थे कि इस हृदय-विदारक कार्य से बाजीराव पर बहुत ही अहितकर प्रभाव पड़ेगा और संभवतः वे अपने सर्वश्रेष्ठ सेनापति को ही खो दें। गोविंद खांडेराव चिटणीस द्वारा इसलिए शाह ने 12 जनवरी, 1740 के अपने एक पत्र में नाना साहब को यह परामर्श प्रेषित किया कि "मस्तानी को बाजीराव को सौंप दिया जाए। बाजीराव को पश्चाताप होने पर ही उनका मोह दूर होगा। मस्तानी को बंदी रखकर उनका हृदय न तोड़ें।"[26]

पर साहू के परामर्श की ओर ध्यान न देकर मस्तानी को बंदी बनाने का निश्चय कर लिया गया और 14 जनवरी को चिमणाजी आपा ने अपने भतीजे नाना साहब को लिखा कि वह किसी प्रकार मस्तानी का विश्वास प्राप्त कर लें ताकि उसे आसानी से बंदी बनाया जा सके। इसके तुरंत बाद ही 26 जनवरी को नाना साहब ने धोखा देकर मस्तानी को पूना के पर्वती बाग में बंदी बना लिया।[27] इसी समय के लगभग दक्षिण के निजाम के पुत्र नासिरजंग ने गोदावरी पार कर पेशवा बाजीराव के अधिकृत प्रदेश पर आक्रमण कर दिया। बाजीराव का ध्यान कुछ समय के लिए युद्ध में बंट गया, पर फरवरी के अंत में नासिरजंग ने पराजित होकर संधि कर ली।[28] बाजीराव का हृदय फिर मस्तानी के लिए आतुर हो उठा। मस्तानी को बंदी जीवन से छुटकारा न दिला पाने की अपनी असमर्थता उनके हृदय को बेधने लगी। उनका स्वास्थ्य बड़ी तेजी से फिर गिरने लगा, जिससे चिंतित होकर चिमणाजी आपा ने नाना साहब को 7 मार्च, 1740 के एक पत्र में लिखा कि "जब से हम नासिरजंग के युद्ध के पश्चात अलग हुए, तब से मैंने पूज्य राव (बाजीराव) का कोई समाचार नहीं पाया। मैंने उनके अशांत हृदय को सांत्वना देने के पूर्ण प्रयत्न किए, पर उनका प्रभाव उल्टा ही पड़ा। मैं नहीं जानता कि हमारे भाग्य में क्या है। मेरे पूना लौटने पर हमें उसे (मस्तानी) उनके पास भेज ही देना चाहिए।" पर उनका यह सुझाव व्यर्थ ही गया। इधर बाजीराव की दशा निरंतर बिगड़ती जा रही थी। अस्तु चिमणाजी ने 29 मार्च के एक दूसरे पत्र में फिर मस्तानी को बाजीराव के पास भेज देने का आग्रह किया।[29] पर यह उपचार शीघ्र न हो सका और भग्न हृदय बाजीराव अपनी मस्तानी के प्रेम की पवित्र स्मृति और उससे मिलने की साध लिए ही सोमवार 28 अप्रैल, सन् 1740 को नर्मदा के तट पर रावेरखेड़ी नामक स्थान

पर दूसरे लोक को प्रयाण कर गए। उनकी पत्नी काशीबाई और छोटा पुत्र जनार्दन उनकी मृत्यु के समय उनके निकट ही थे, लेकिन मस्तानी, जिसे देखने के लिए उनके नेत्र तरस रहे थे, वहां न थी, अपितु सामाजिक बंधनों के परे उनका मिलन शीघ्र ही होने वाला था। बाजीराव की मृत्यु का समाचार पूना पहुंचते ही मस्तानी ने भी अपनी देह त्याग दी। यह स्पष्ट नहीं कि मस्तानी की मृत्यु शोक के आवेग में हुई अथवा उसने आत्महत्या कर ली। एक ऐसी जनश्रुति भी है कि पेशवा बाजीराव की दाह क्रिया के समय वह उनकी चिता में प्रवेश कर सती हो गई।[30]

मस्तानी हिन्दू न थी, पर बाजीराव के प्रेम ने उसे हिन्दू पतिव्रता पत्नी के सभी गुणों से विभूषित कर दिया था। बाजीराव से भेंट के अनंतर उसका जीवन हिन्दू कुल-वधुओं की तरह ही बीता और उसे जो ऐच्छिक मृत्यु मिली, उससे तो किसी भी पत्नी को ईर्ष्या हो सकती है। इसलिए महाराष्ट्र में उसे सती-सुहागिन ही माना जाता रहा है। शमशेर बहादुर के विवाह के अवसर पर उसके नाम पर सुहागिनों को भोजन कराए जाने का भी उल्लेख मिलता है।[31] आज भी पूना से 20 मील दूर पावल[32] नामक छोटे-से ग्राम में उसके मकबरे को देखकर पथिकों के हृदय में उसके अमर प्रेम की स्मृति सजीव हो उठती है।

संदर्भ

1. जैतपुर, महोबा से 19 मील पश्चिम।
2. जर्नल ऑफ एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, सन् 1878 में विलियम इर्विन का लेख, 'बंगश नवाब्स ऑफ फर्रूखाबाद' पृ. 268-304; लेटर मुगल्स (इर्विन), भाग 2, पृ. 106-108 : पेशवा बाजीराव फर्स्ट मराठा एक्सपेंशन (दिघे) पृ. 106-108, 201 लाइफ एंड टाइम्स ऑफ छत्रसाल बुंदेला (डॉ. भगवानदास गुप्त) पृ. 81-89; सरदेसाई, भाग 2, पृ. 106-108; बाजीराव इन दी लैंड ऑफ ब्रेव बुंदेलाज (दत्तो वामन पोतदार), हिस्टोरिकल एंड इकनामिक स्टडीज, फर्ग्युसन कॉलेज पूना, फरवरी, 1941, पृ. 1-8। छत्रसाल द्वारा पेशवा बाजीराव को तृतीय पुत्र घोषित कर अपने राज्य का तिहाई भाग दिए जाने से संबंधित पत्र के लिए परिशिष्ट-1 देखिए।
3. मराठी रियासत, भाग 5, पुण्यश्लोक शाहू, पृ. 403-404।
4. सरदेसाई, भाग 2, पृ. 178।
5. पारसनीस, पृ. 83-84, पाद टिप्पणी।

6. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, जिल्द 9, पृ. 182-83।
7. भारतवर्ष, भाग 2, ऐतिहासिक चर्चा, पृ. 8-9, 11-12 : गोरे, पृ. 271
8. भारतवर्ष, भाग 2, पृ. 4-7; मराठी रियासत, भाग 5, पृ. 403-404।
9. नागेश बापट विनायक कृत 'थोरले बाजीराव पेशवे चरित्र', पृ. 35; भारतवर्ष, भाग 2, ऐतिहासिक चर्चा, पृ. 5-6।
10. ऐतिहासिक पत्रें यादी बगैरे (सरदेसाई काले), लेखांक 496, पृ. 498-99।
11. बाजीराव इन दी लैंड ऑफ ब्रेव बुंदेलाज, दत्तो वामन पोतदार, हिस्टोरिकल एंड इकानामिक्स स्टडीज, फर्ग्युसन कॉलेज पूना, फरवरी 1941, पृ. 8; सरदेसाई, भाग 2, पृ. 178, पे.द. भाग 30, 363।
12. सरदेसाई भाग 2, पृ. 108; बाजीराव फर्स्ट दी ग्रेट पेशवा (सी.के. श्रीनिवासन), पृ. 80।
13. लेटर मुगल्स (इर्विन), भाग 2, पृ. 297, सरदेसाई, भाग 2, पृ. 178।
14. लेटर मुगल्स (इर्विन), भाग 2, पृ. 297।
15. हिस्टोरिकल जीनिऑलॉजीज (सरदेसाई), पृ. 98; शनिवार पैलेस (जी.एच. खरे), पृ. 7-10, 19; पारसनीस, पृ. 84, पाद टिप्पणी। शनिवारवाड़े के संबंध में अधिक जानकारी के लिए इस अध्याय के अंत में परिशिष्ट-3 देखिए।
16. ऐतिहासिक संकीर्ण साहित्य, खंड चौथा, पृ. 40; पे.द., भाग 9, 38।
17. पवार घराण्याचा इतिहासांची साधने (मा.वि. गुजर), लेखांक 78; पे.द., भाग 18, ले. 12
18. सरदेसाई भाग 2, पृ. 179।
19. भारत इतिहास संशोधक मंडल त्रैमासिक, जिल्द 6 में दिवेकर का 'मस्तानीची हकीकत व ति पुण्यांतील वाडा' शीर्षक लेख, पृ. 404।
20. वही।
21. इतिहास संग्रह, ऐतिहासिक टिप्पणी, भाग 2, पृ. 12; महाराष्ट्र इतिहास मंजरी, पृ. 216
22. दिवेकर का लेख, पृ. 405।
23. वही, पृ. 405; सरदेसाई, भाग 2, पृ. 179।
24. पे.द., भाग 9, 35।
25. पे.द., भाग 30, 250, 334; पे.द., भाग 9, 32।
26. पे.द. भाग 9, 32
27. सतारा., भाग 2, 275; इतिहास संग्रह, ऐतिहासिक चर्चा, भाग 2, पृ. 9-12।
28. बाजीराव फर्स्ट एंड मराठा एक्सपेंशन (दिघे), पृ. 201।
29. बाजीराव फर्स्ट दी ग्रेट पेशवा (श्रीनिवासन), पृ. 128; पे.द., भाग 9, 33।

30. हिस्टोरिकल रिकाड्र्स कमीशन की सत्रहवीं प्रोसिडिंग्स (दिसंबर, 1940, पृ. 47-51) में श्री वसंत दीनानाथ राव का 'ए ट्रेजडी ऑफ मस्तानी' शीर्षक लेख भी देखें। श्रीनिवासन कृत 'बाजीराव फर्स्ट दी ग्रेट पेशवा', पृ. 128; दिवेकर का पूर्व उद्धृत लेख 'मस्तानी ची हकीकत वृति पुण्यातील वाड़ा', भारत इतिहास संशोधक मंडल त्रैमासिक, जिल्द 6।

31. भाग 27, 81।

32. पावल मस्तानी की जागीर थी। पावल में उसकी समाधि, मस्जिद और गढ़ी के अवशेष अब भी विद्यमान हैं। बाजीराव मस्तानी के वंशज शमशेर बहादुर, अलीबहादुर आदि अपने परिवार सहित, कभी पावल के महलों में और कभी पूना के शनिवारवाड़े में स्थित मस्तानी महल में रहा करते थे।

रानी लक्ष्मीबाई

◆ *क्षमाशंकर पाण्डेय*

शक्ति का स्वरूप स्त्री होते हुए भी शौर्य और बीरता को प्रायः पुरुषों की ही विरासत समझा जाता है, पर 'वज्रादपि कठोराणि, कोमलम् कुसुमादपि' का साकार विग्रह तो भारतीय नारियों में ही मिलता है। बुंदेलखंड की सीमा को निर्धारित करने वाले वीर छत्रसाल की मां वीरांगना सारंधा की परंपरा बाद में जिस स्वरूप में पुष्पित-पल्लवित हुई, उस वीर रमणी का नाम था रानी लक्ष्मीबाई। भले ही स्त्री दो कुलों का प्रतिनिधित्व करती रही हो, पर उसकी पहचान तो उसकी कर्मभूमि ससुराल से ही होती है। लक्ष्मीबाई के संदर्भ में भी यह अपवाद नहीं है। काशी के अस्सी मुहल्ले में 1835 ई. में जन्मी मणिकर्णिका के मनू, छबीली और लक्ष्मीबाई बनने की अलग ही कहानी है। अपनी विजय यात्रा में मराठे महाराष्ट्र छोड़कर उत्तर भारत में यत्र-तत्र बस गए थे। पिता मोरोपंत भी इस क्रम में वाराणसी के अस्सी मुहल्ले में रहने लगे थे, जहां उनकी द्वितीय पत्नी चिमाबाई से गोविंद तांबे ने जन्म लिया था। यह वही गोविंद तांबे थे, जिनसे महाश्वेता देवी की भेंट अहमदाबाद इतिहास कांग्रेस में गोविंद की वृद्धावस्था में हुई थी, जो खुद

'झांसी की रानी' की जीवनी लिखना चाहते थे, पर उम्र की असमर्थता के कारण जिन्होंने अपनी सारी सामग्री महाश्वेता देवी को सौंप दी, जिन्होंने बाद में अपना उपन्यास 'झांसी की रानी' 1956 में बांग्ला में प्रकाशित किया, जिसका हिन्दी अनुवाद सन् 2000 में हुआ।

लक्ष्मीबाई अपने शौर्य, मानवीय गुणों एव स्वतंत्रता समर में अपनी आहुति के कारण भारतीय इतिहास में व्यक्ति से ज्यादा चरित्र और लगभग मिथ बन चुकी हैं। तेईस वर्ष की तरुणाई में बलिदान देने वाली इस वीरांगना को आधार बनाकर इतना कुछ लिखा गया है कि संभवतः 1857 के किसी एक चरित्र को आधार बनाकर इतना नहीं लिखा गया। अठारह सौ सत्तावन के बारह वर्ष के अंदर ही कल्याण सिंह कुडरा काननूगो ने 'झांसी को राइसौ' लिखा। 1953 में सहयोगी प्रकाशन मंदिर दतिया से प्रकाशित इस ग्रंथ की पुष्पिका में अंकित है कि, 'इति झांसी को राइसौ बाई की लराई कौ संपूरन। मिति भादों, वदी 4 गुरूर संवत् 1926 मुकाम दलीप नगर लिख्यांस प्रधान जुगुल किशोर कुड़रा पोथी मजकूर की धरू।' स्पष्ट है कि जुगुल किशोर कुड़रा ने संवत! 1926 अर्थात् 1869 में घरू पोथी तैयार कराई। आशय यह कि यह रचना इससे पूर्व ही हो चुकी थी। कहने का मतलब यह कि झांसी की लड़ाई और उसकी नायिका लक्ष्मीबाई अपने जीवनकाल में लोगों की आशाओं का केंद्र थी और शहादत के बाद प्रेरणा स्रोत बन चुकी थीं। 1857 के बाद के दिनों में और उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जिस वीरांगना पर आधारित कृतियां आईं, वह लक्ष्मीबाई ही थीं, फिर वे चाहे कुड़रा हों, गोडसे हों या पारसनीस। किसी अन्य नायक पर आधारित कृतियों की सूचना नहीं मिलती। बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में ही 1857 को प्रेरणा स्रोत मानकर राष्ट्रवादी लेखन शुरू हुआ। डॉ. प्रदीप सक्सेना ने अपने ग्रंथ अठारह सौ सत्तावन और नवजागरण के प्रश्न में 1908 से लेकर 1947 तक लक्ष्मीबाई पर लिखित ग्रंथों की चर्चा करते हुए उन रचनाकारों का नामोल्लेख किया है, जिन्होंने लक्ष्मीबाई को उपजीव्य बनाया। इस क्रम में वे कृष्ण रमाकांत गोखले, रुद्रमूर्ति, ईशदत्त पांडेय, श्रीराम शर्मा, वृंदावन लाल वर्मा, मधुसूदन चतुर्वेदी, आनंद मिश्र, राधेश्याम वशिष्ठ, सुदर्शन चक्र, हरिमोहन लाल श्रीवास्तव, श्रीनाथ सिंह, खेम सिंह नागर, सुभद्रा कुमारी चौहान, शांतिनारायण, सूर्यकुमार वर्मा एवं मदनेश प्रभृति रचनाकारों का उल्लेख करते हैं। यह सूची महारानी लक्ष्मीबाई की लोक स्वीकृति एवं लोकप्रियता का साक्ष्य है। यह तो रचनात्मक साहित्य का नमूना था, आलोचनात्मक,

विवेचनात्मक और लोक साहित्य को सम्मिलित कर लेने पर यह सूची और लंबी होगी। अपने शौर्य एवं व्यक्तित्व के बल पर साहित्य में उपजीव्य बनकर इतना स्थान घेरनेवाली वे विरल महिला हैं। संभवतः आधुनिक भारत के इतिहास में ऐसा कोई अन्य स्त्री व्यक्तित्व नहीं है। तलवार से अपनी कहानी लिखने वाली नायिका को कलमकारों का इतना स्नेह मिलना केवल वीर पूजा की ही परिणति नहीं है, अपितु यह सृजन के नए गवाक्ष खोलती मातृशक्ति का अभिनंदन भी है, जिसने पुरुष वर्चस्व के समय और क्षेत्र में अपना लोहा मानने को समाज को विवश कर दिया। इस क्रम में यह तथ्य भी उल्लेख्य है कि तेईस वर्ष की तरुणाई में बलिदान देने वाली इस वीर रमणी पर जिन दो महिलाओं सुभद्रा कुमारी चौहान और महाश्वेता देवी ने लिखा, वे इस लेखन के समय क्रमशः बाईस और छब्बीस वर्ष की ही थीं। अपनी पहचान और प्रेरणा की तलाश करते हुए इन लोगों ने लक्ष्मीबाई को आविष्कृत किया था।

लक्ष्मीबाई का एक सामान्य परिवार से झांसी के राजपरिवार में पहुंचना भी एक रोचक कथा है। यह राजपथ नहीं, बल्कि थी संघर्षों से भरी एक डगर, जिसमें समयानुसार बानक बनते गए। काशी छोड़कर बिठूर, नाना राव पेशवा के यहां मोरोपंत तांबे का आना, मणिकर्णिका यानी मनू का नानाराव की मुंहबोली बहन छबीली में रूपांतरण उस जीवन नाटक के दृश्य हैं। कृष्णाराव के दो पुत्रों सदाशिव और मोरोपंत में से मोरोपंत 1818 में पेशवाई समाप्त होने के बाद बाजीराव के भाई चिमाजी अप्पा के साथ उनका कामकाज देखने के लिए काशी आ गए। उस समय उन्हें पचास रुपये मासिक की वृत्ति मिलती थी। वहीं काशी के अस्सी मुहल्ले में मां भागीरथी बाई की कोख से 19 नवंबर, 1835 को पुत्री मणिकर्णिका यानी मनू या छबीली का जन्म हुआ। मनू और छबीली उनके दुलार के नाम थे। मनू को मां का स्नेह लंबी अवधि तक नहीं मिल सका। चार वर्ष की अल्पायु में ही मां का वियोग मनू को सहना पड़ा। मां अपनी जीवन यात्रा पूरी कर अनंत यात्रा पर निकल पड़ी। बेटी को मां-बाप दोनों का स्नेह पिता को ही देना पड़ा। दुलार में मोरोपंत मनू को छबीली कहकर पुकारते थे। चिमाजी की मृत्यु के उपरांत मोरोपंत फिर बाजीराव के पास बिठूर आ गए। यहां बाजीराव के दत्तक पुत्र नाना राव और उनके भाइयों—बाला साहब और राव साहब के साथ मनू भी बड़ी होने लगी। कुछ तो रुचि और कुछ किसी बालिका के अभाव के कारण बालकों की सारी शिक्षा मनू भी ग्रहण कर ही रही

थी, जिसमें घुड़सवारी, शस्त्र-संचालन, युद्ध विद्या आदि सम्मिलित थे। युद्ध के लिए तन को मजबूत करने वाले व्यायाम भी चल रहे थे। नाना साहब की मुंहबोली बहन 'छबीली' इन सारे कार्यों में उनसे कहीं न कहीं बीस ही साबित होती थी। इस प्रसंग में यह कहना अनुचित न होगा कि स्वतंत्रता संग्राम में उनका जो शौर्य प्रकट हुआ, उसका बीज वपन और तैयारी बिठूर में ही हुई थी। अनुकूल वातावरण पाकर बीज पल्लवित-पुष्पित हुआ।

समय का पहिया आगे बढ़ता गया। झांसी के राजा गंगाधर राव की पत्नी की मृत्यु हुई। राज्य का कोई उत्तराधिकारी न था। इस क्रम में बानक ऐसे बने कि 13 वर्षीय मनू प्रौढ़ राजा गंगाधर राव की पत्नी बनकर झांसी आ गई और यहां उनका नामकरण हुआ लक्ष्मीबाई। यह नाम ही बाद में उनकी पहचान बन गया। यह भाग्य का ही खेल कहा जाएगा कि पेशवा बाजीराव के सामान्य कर्मचारी मोरोपंत तांबे की पुत्री झांसी की रानी होने का गौरव प्राप्त कर सकी। तेरह वर्षीय बालिका का प्रौढ़वय राजा गंगाधर राव से विवाह कहीं से भी योग्य विवाह नहीं था, पर यह भाग्य लेख ही उन्हें ऐसी भूमिका में उतारने वाला सिद्ध हुआ कि वे स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास का एक उज्ज्वल पृष्ठ बन गईं। कला-प्रिय और विलासप्रिय गंगाधर राव का शरीर भी रोग जर्जर ही था। उनकी रुचियों से लक्ष्मीबाई का बहुत तालमेल नहीं था, पर अपनी तरफ से सामंजस्य स्थापित करने की कोशिश उन्होंने की। सोलह वर्ष की आयु में लक्ष्मीबाई को पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई। यह सौभाग्य उनके हिस्से अल्पावधि तक ही रहा। तीन महीने का होकर पुत्र दिवंगत हो गया। गंगाधर राव ने तो पुत्र शोक में बिस्तर ही पकड़ लिया। लक्ष्मीबाई के जीवन में हो रही सौभाग्य और दुर्भाग्य की आंख-मिचौली के बीच उनकी स्थिति का अनुमान सहज ही किया जा सकता है। राज्य को उत्तराधिकारी मिलने की संभावना लगभग क्षीण थी। ऐसे में अपने संबंधियों में से ही एक बालक आनंद राव को दत्तक पुत्र के रूप में स्वीकार किया गया, जो बाद में दामोदर राव के रूप में जाना गया।

दत्तक पुत्र की सूचना कंपनी सरकार को दी गई। इसी बीच गंगाधर राव भी गोलोकवासी हुए। डलहौजी की ड्राक्ट्रिन ऑफ लैप्स की नीति लागू हो चुकी थी, जिसका ग्रास तमाम देशी रियासतें बनती जा रही थीं। झांसी भी इससे नहीं बची। दत्तक को उत्तराधिकारी स्वीकार नहीं किया गया। रानी ने अपनी शक्ति

भर पत्राचार एवं अन्य माध्यमों से राज्य को बचाने की कोशिश की, पर जब सारे प्रयास असफल हो गए और कंपनी के अधिकारी जब राज्य के अधिग्रहण के लिए आए तो स्वाभिमान से भरी रानी ने वह प्रसिद्ध घोषणा की 'मैं अपनी झांसी नहीं दूंगी'। अपने प्राण रहते शक्तिभर वे इसके लिए जूझीं। लोक और विशेषतः बुंदेली लोक में लक्ष्मीबाई अपने जिन गुणों के लिए याद की जाती हैं, वे गुण हैं शौर्य और अपने से ज्यादा अपने लोगों की परवाह, जिसका साक्ष्य इस गीत में मिलता है—

खूब लड़ी मरदानी, अरे झांसी वाली रानी,
बुरजन-बुरजन तोपें लगा दई
गोला चलाए असमानी
अरे झांसी वाली रानी, खूब लड़ी मरदानी।
सगरे सिपहियन को पेड़ा जलेवी
अपने चबाई गुड़-धानी
अरे झांसी वाली रानी, खूब लड़ी मरदानी।

झांसी संग्रहालय में सुरक्षित पांडुलिपि में झांसी को बलवंत नगर और बलवंतपुर भी कहा गया है। उस झांसी की रानी के बलिदान को सीमित करने के प्रयास भी कम नहीं हुए। कहीं उन्हें अपने स्वार्थ के लिए लड़ने वाली कहा गया तो कहीं कामुक कहकर उनकी चरित्र हत्या का प्रयास किया गया। लक्ष्मीबाई के जीवन पर 1890 के दशक में एक अंग्रेज ने एक नाटक लिखा। इसमें दिखलाया गया था कि कामातुर लक्ष्मीबाई ने एक अंग्रेज अफसर को अपने मोहपाश में बांधना चाहा, जिसे उस अफसर ने ठुकरा दिया। यह प्रसंग उस साजिश का ही परिणाम था, जिसमें अंग्रेजी सत्ता द्वारा देश के चरित नायकों की चरित्र हत्या सुनियोजित ढंग से की गई थी। पुरावशेष एवं बहुमूल्य कृतियों के पंजीकरण अधिकारी डॉ. ओमप्रकाश लाल श्रीवास्तव ने झांसी की रानी के पत्रों के हवाले से यह सिद्ध किया है कि अंग्रेजों के विरुद्ध रानी का युद्ध केवल अपने अधिकारों की रक्षा के लिए नहीं था, बल्कि वे अंग्रेजों से अपने देश को बचाना चाहती थीं। बानपुर के राजा मर्दन सिंह को संबोधित कुवार सुदि 14 संवत् 1914 को लिखा उनका पत्र जहां एक ओर उनकी दृष्टि स्पष्ट करता है, वहीं दूसरी ओर देश-द्रोहियों से सावधान रहने तथा कार्य योजना की भी सूचना देता है। पूरा पत्र इस प्रकार है—

श्री

श्री महाराजाधिराज श्री महाराज श्री राजा मर्दन सिंह बहादुर जूदेव एते श्री महारानी श्री रानी लक्ष्मीबाई जूदेवि के वाचनै आपर अपुन के समाचार भले चाहिजें, इहां के समाचार भले हैं, आपर पाती दिवान गनेश जूलिआये से पढ़कर खुशी भई आपर अपुन की वह हमारी व राजा शाहगढ़ और नाना साहब व तात्या टोपे की जो सलाह परीथी के सुराज भयाचाहिजें अंग्रेजों को शासन न भओ चाहिजें ऐसी हमारी राय हैं जै सुराज होवो चाहिजें भारत अपनों ही देश है और बानपुर के किले में अपुन ने तोपें व गोला ढरवाये हैं ई बात की बिदेशियों का जाहर नहीं भओ चाहिजैं आपसे टीकमगढ़ की रानी लड़ई सरकार व नत्थे खां दीवान विदेशियों की मदद में है ई बात मा ज्यादा खियाल रखने हैं औ इह बात जो है सो दिवान गनेशजू जाहर कर हैं सो जानवी पाती समाचार देवे में आवे मिती कुंवार सुदि 14 सम्वत् 1914

मु. झांसी

मुहर

यह पत्र लक्ष्मीबाई के अन्य क्रांतिनायकों के साथ संपर्क एवं संवाद का तो साक्ष्य है ही, युद्धजन्य उनकी सक्रियता का भी साक्ष्य है।

युद्ध की सक्रियता और संगठन के बीच किस प्रकार अपने व्यवहार एवं सक्रियता से लक्ष्मीबाई ने एक नए परिवेश एवं माहौल का सृजन किया, उसका एक अलग ही अध्याय है। उनकी दैनिक जीवनचर्या में जहां समाज संगठन, सेना संगठन, स्त्री संगठन आदि सम्मिलित थे, वहीं वे अपने को भी सबल एवं सशक्त बनाए रखने का भी प्रयास करती थीं। विष्णु भट्ट गोडसे वरसईकर ने उनकी दिनचर्या का वर्णन करते हुए लिखा है कि, "बाई साहब का नित्यक्रम इस प्रकार से था, कसरत आदि का शौक उन्हें बचपन से था ही, सो स्वतंत्रता मिलने पर उन्होंने फिर से आरंभ किया। तड़के ही उठकर व्यायामशाला में जोर करना, जोड़ी फिराना वगैरह, फिर घोड़े पर सवार होकर घूमने के लिए जाना, घेरे में चक्कर लगाना, दीवार फांदना, खाई पार करना, घोड़े के पेट से चिपककर बैठना इत्यादि तरह-तरह की कसरत करना; कभी-कभी हाथी पर भी सवार होकर निकलती थी। इस तरह सात-आठ बजे तक मेहनत करने के बाद जलपान करती थीं। बाई साहब को नहाने का बड़ा शौक था। रोज गरम पानी के पंद्रह-बीस हंडे लगते।" इस तरह व्यायाम के द्वारा सुदृढ़ की हुई देह ही थी, जो झांसी से लेकर कालपी

तक बिना रुके घोड़ा दौड़ाती चली गई थी, जो उस काल में बड़े योद्धाओं के लिए भी सहज नहीं था।

लक्ष्मीबाई के कार्यों में स्त्री सेना का संगठन एक विलक्षण कार्य माना जाता है। महारानी स्वयं सैन्य शिक्षा प्राप्त थी। सखी भाव का विस्तार करते हुए उन्होंने न केवल महिलाओं को संगठित किया, बल्कि उन्हें महत्त्वपूर्ण दायित्व भी दिया। मोतीबाई जो नर्तकी थी एवं खुदाबख्श की प्रेमिका थी, वह तोपखाने से संबद्ध थी। काशीबाई जासूसी विभाग देखती थी। झलकारी की गाथा तो अलग अध्याय बन ही चुकी है, सुंदर और मुंदर तो उनके साथ अंत तक बनी रहीं और अंतिम युद्ध में शहीद हुईं। उल्लेख्य है कि विभिन्न जाति वर्गों की पर्दे और पुरुषों के अनुशासन में बंधी रहने को अभिशप्त ये महिलाएं अगर हीनता ग्रंथि से मुक्त होकर स्वतंत्रता समर में बलिदान दे सकीं तो इसके पीछे रानी की ही प्रेरणा और प्रयास था। समाज में जब स्त्री जागरण की कहीं कोई आहट नहीं थी, तब एक छोटे से इलाके में ही सही, स्त्रियों को स्वाभिमान से दीप्त कर सशक्त बनाना लक्ष्मीबाई के व्यक्तित्व के एक विशिष्ट आयाम का परिचायक है। विष्णु भट्ट ने लक्ष्मीबाई के एक विशिष्ट गुण की चर्चा करते हुए लिखा है कि अश्व परीक्षा करने में बाई अद्वितीय थीं। उस समय उत्तर हिन्दुस्तान में तीन ही आदमियों का नाम लिया जाता था। एक नाना साहब पेशवा, एक बाबा साहब आपटे ग्वालियर वाले और लक्ष्मीबाई झांसी वाली। यह विवरण बताने को पर्याप्त है कि पुरुष वर्चस्व के क्षेत्र में भी उन्होंने अपनी श्रेष्ठता सिद्ध की थी।

झांसी की यह रणचंडी नायिका अपने अवसान से थोड़े ही काल बाद मिथ बन गई थी। इसे मिथ बनाया लोक में उनकी स्वीकार्यता ने। जैसे एक बड़ा चर्चित चित्र मिलता है, जिसमें रानी घोड़े पर सवार, पीठ पर दामोदर राव को बांधे दांतों से घोड़े की लगाम दबाए, दोनों हाथों से तलवार चलाते चित्रित है। इस चित्र में चित्रकार की कल्पना ज्यादा प्रभावी है, तथ्य नहीं। सच्चाई यह है कि युद्धकाल में दामोदर राव की उम्र बारह वर्ष की थी, चित्र में दिखाए छोटे बालक की नहीं। इसी प्रकार यह भी किवदंती है कि रानी घोड़े पर सवार होकर किले से कूदी थीं, जबकि सच्चाई इसके विपरीत थी। उस समय का वर्णन करते हुए विष्णु भट्ट ने लिखा है कि, "बाई साहब रात के बारह बजे सब तैयारी करके किले से बाहर निकलीं। मोरोपंत तांबे आदि जितने सगे-संबंधी थे, वे सब भी हथियारबंद होकर घोड़े पर सवार होकर साथ हो गए। हरेक की कमर में मोहरें बंधी थीं। खजाने

में जो कुछ अर्थ था, वह सब हाथी पर लादा गया और उसे बीच में किया गया। साथ में दो सौ पुराने और जान पर खेल जाने वाले सरदार थे। इसके अलावा सबेरे अंग्रेजों के छक्के छुड़ाने वाले एक हजार दो सौ विलायती बहादुर भी चल रहे थे। बाई साहब पाजामा, स्टाकिन बूट वगैरह पुरुष वेशधारण किए हुए थीं और हरबे हथियार से पूरी तरह लैस थीं। बाई साहब जिस घोड़े पर सवार थीं, वह एकदम सफेद था, ढाई हजार रुपये में खरीदा गया था और राजरत्न के समान ही उसका आदर था। उस घोड़े पर बैठकर पीछे रेशमी दुपट्टे से अपने बारह वर्ष के दत्तक पुत्र को बांधकर और साथ में केवल एक रुपये की रेजगारी लेकर महारानी बाहर निकली थी।'' यह विवरण झांसी छोड़ने की पूरी तैयारी का साक्ष्य तो देता ही है, महारानी की निस्पृहता का भी प्रमाण है, जिसमें अपनी जरूरत के लिए कम से कम लिया गया है।

रानी का झांसी छोड़कर कालपी जाना और वहां की पराजय के बाद ग्वालियर पहुंचना; एक सोची-समझी रणनीति का हिस्सा था। जैसा कि सावन सुदी 14 सोम. सं. 1994 को कालपी से मर्दन सिंह को लिखे पत्र से स्पष्ट है। पत्र इस प्रकार है—

श्री

श्री महाराजाधिराज श्री महाराजा श्री मर्दन सिंह बहादुर जूदेव ऐते श्री महारानी श्री रानी लक्ष्मीबाई जू देवि के बाचने अपार उहां के समाचार भले चाहिजें, इहां के समाचार भले हैं। आपन-अपुन की पाती आई सो हाल मालूम भऔ और से लिखी कै आप सागर को कूच करैं, उहां दो कंपनी बीच में साहबन की हैं, उनको भारत बखेड़त साहगढ़ को राजा को लिवाउत फौज के सीधे कालपी कूंच करें इहां से हम व तात्या तोपे व नाना साहब फौज की तैयारी में लगे हैं, सो आप सीधे नोटघाट पर ह्यूरोज की फौज को भारत बखेड़त कालपी कूंच करें। इहां से कम आप सब जने मिल के ग्वालियर में अंगरेजन पर धावा करें, अब देर न करना चाहिजें देखत पाती के समाचारदेवे में आज सावन सुदी 14 सोम. सं. 1994 मुकाम कालपी।

मुहर

इस तरह अपनी शक्ति भर बारह दिनों तक झांसी में प्रतिरोध, फिर कालपी पहुंचकर वहां युद्ध की तैयारी, ग्वालियर पर कब्जा और अंत में अपने ध्येय के लिए समर्पित 18 जून, 1858 को कोट की सराय के मोर्चे पर गंभीर

रूप से जख्मी होकर प्राण त्यागने तक वे ज्वलंत अग्निशिखा की तरह व्याप्त रहीं। लक्ष्मीबाई का सारा संघर्ष केवल पराजयों की ही गाथा नहीं था। झांसी में उन्होंने अंग्रेजों को लोहे के चने चबवा दिए थे। मउरानीपुर और बरुआसागर के मोर्चे पर अंग्रेजों को रानी से हार का मुंह देखना पड़ा। अब यह दूसरी बात है कि गद्दारों और सीमित साधन और शक्ति के कारण उन्हें यथोचित सफलता नहीं मिली। इतना ही नहीं पुरुष प्रधान व्यवस्था में वे अपनी बात पूरी तरह मनवा भी नहीं पाती थीं, इसका एक प्रमाण ग्वालियर में मिला। वहां विजय के बाद, जो सत्रह-अठारह दिन मिले, उसे विलास एवं ऐश्वर्य प्रदर्शन में लगा दिया गया, जबकि रानी इस अंतराल का उपयोग युद्ध की तैयारी में करना चाहती थीं, पर पेशवा के आगे उनकी राय की क्या बिसात। परिणाम पराजय के रूप में मिला, पर यह पराजय भी गौरवपूर्ण थी। रानी के अंतिम क्षणों का वर्णन पं. सुंदरलाल ने 'भारत में अंग्रेजी राज' में किया है यथा, ''रानी अपनी तलवार से मार्ग काटती हुई आगे बढ़ीं। अचानक एक गोली उनकी सहेली मंदरा को आकर लगी। मंदरा घोड़े से गिरकर समाप्त हो गई। रानी ने तुरंत मुड़कर अपनी तलवार से उस गोरे सवार पर वार किया, जिसकी गोली ने मंदरा को समाप्त किया था। सवार कटकर गिर पड़ा। रानी फिर आगे बढ़ीं। सामने एक छोटा-सा नाला था। एक छलांग के बाद अंग्रेज सवारों का रानी को छू पाना असंभव हो जाता; किंतु दुर्भाग्यवश रानी का घोड़ा नया था।

पिछले संग्रामों में उनके कई प्यारे घोड़े उनके नीचे समाप्त हो चुके थे। घोड़ा बजाय छलांग मारने के नाले के उस पार चक्कर खाने लगा। अंग्रेज सवार अब और अधिक निकट आ पहुंचे। रानी चारों ओर से घिर गईं। रानी उस समय बिल्कुल अकेली रह गईं। उसने अकेले ही तलवार से उन सबका मुकाबला किया। एक सवार ने पीछे से आकर रानी के सिर पर वार किया। सिर का दाहिना भाग अलग हो गया, दाहिनी आंख भी निकलकर बाहर आ गई। फिर भी रानी घोड़े पर टूटी हुई तलवार चलाती रहीं। इतने में एक वार रानी की छाती पर हुआ। सिर और छाती दोनों से खून के फौवारे छूटने लगे। बेहोश होते हुए रानी ने अपनी तलवार से उस गोरे सवार को, जिसने उनकी छाती पर वार किया था, काटकर गिरा दिया, किंतु इसके बाद लक्ष्मीबाई की भुजा में और शक्ति न रह गई।'' जीवन से ज्यादा मृत्यु को गौरवपूर्ण बनाने वाली इस वीर रमणी की प्रशंसा करते हुए अंग्रेज सेना के कमांडर ह्यूरोज ने कहा था, ''हालांकि वे एक महिला थीं,

लेकिन बहादुरी में जवाब नहीं और विद्रोहियों की सर्वोत्तम सैनिक नायिका थीं। यह विद्रोहियों में एक पुरुष थीं।''

रानी का युद्ध कौशल, उनकी संगठन शक्ति, उनका संयम और साहस तो वरेण्य थे ही, एक शासक के रूप में भी वे कम सफल नहीं थीं। इसका सबसे बड़ा प्रमाण झांसी का बारह दिनों तक चलने वाला प्रतिरोध था, जो जन सहयोग के बिना कदापि संभव नहीं था और अलोकप्रिय शासक को कदापि जन सहयोग नहीं मिलता। विष्णु भट्ट ने लिखा है कि, ''अपनी प्रजा की बाई साहब बड़ी फिकर रखती थीं और राजकाज में खुद मेहनत करने में भी कभी आगा-पीछा नहीं करती थीं। झांसी के अमल में वरुआ सागर नाम का एक छोटा-सा शहर है। यहां चोरों ने बड़ा उपद्रव मचाया और प्रजा को बहुत पीड़ित किया। तब उन्होंने स्वयं वरुआ सागर जाकर वहीं पंद्रह दिन मुकाम किया और चोरों का पता लगाकर कुछ को फांसी दी, कुछ को कैद किया और इस तरह प्रजा को निर्भय किया।'' यह विवरण उनकी प्रजा वत्सलता का ही है। दंडनीय को दंड और सम्मान्य को सम्मान, यह उनके चरित्र की सहज विशेषता थी।

वस्तुतः लक्ष्मीबाई भारतीय इतिहास के अग्निवर्षी दिनों का वह अमिट अध्याय हैं, जो निरंतर भावी पीढ़ी का प्रथ प्रदर्शन करता रहेगा। बुंदेली मातृशक्ति का यह अप्रतिम उदाहरण स्त्री सशक्तीकरण का प्रारंभिक शिलालेख है, जिस पर आधुनिक भारत में स्त्री जागरण का महल खड़ा हुआ है। सीमित जीवन में भी वे धुंधुआते हुए नहीं अपितु प्रज्ज्वलित होकर तपती रहीं। यह उनके यश और गौरव का साक्ष्य है। बुंदेली मातृशक्ति की यह ज्योति अरूप रहकर भी अपनी सुगंध से समाज में व्याप्त है।

वीरांगना झलकारीबाई

◆ *अनिता भारती*

भारत की प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की बलिवेदी पर कुर्बान होने वाली वीरांगना झलकारीबाई का नाम अब इतिहास के काले पन्नों से बाहर आकर पूर्ण चांद के समान चारों ओर अपनी आभा बिखेरने लगा है। जातीय पूर्वग्रहों के चलते भारत के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की वीर सेनानी, दोस्ती व वचन निभाने की खातिर अपने प्राण उत्सर्ग करने वाली, साहस, वीरता, स्वाभिमान, ओज, उत्साह की अनोखी मिसाल वीरांगना झलकारीबाई की कीर्ति इतिहास के क्रूर पृष्ठों में अनेक वर्षों तक कैद रही, पर ऐसा कब तक संभव था। आखिर एक न एक दिन तो उनका नाम और वीरता देश के सामने प्रकट ही होनी थी।

सांवले रंग की गुलाबी खूबसूरती लिए, सुंदर-सुडौल-मजबूत देहयष्टि वाली वीरांगना झलकारीबाई का जन्म 22 नवंबर, 1830 को झांसी के पास भोजल गांव में हुआ। इनके पिता का नाम सदोवा तथा माता का नाम जमुना था। इनके माता-पिता बेहद गरीब थे। गरीबी में जीवन जीते हुए भी परिवार के लोगों में कठिन परिस्थितियों से लड़ने की हिम्मत और ताकत की कोई कमी नहीं थी।

झलकारी बहुत छोटी थी, तभी इनकी माताजी का देहांत हो गया था। झलकारी बाई का लालन-पालन पिता ने बड़े लाड़-प्यार से किया। झलकारी को वे अपना बेटा-बेटी दोनों मानते थे। झलकारी बाई कोरी जाति की थीं तथा उनके पिता बुनकर समुदाय के थे। वे कपड़े बुनने का काम करते थे। झलकारी बाई में बचपन से ही मानसिक और शारीरिक ताकत की कमी नहीं थी। इसकी गवाह कुछ घटनाएं हैं, जो उनकी बहादुरी और हिम्मत को बयां करती हैं। वह बेहद निडर थी। घर के ईंधन के इंतजाम के लिए वह बेखौफ़ बियाबान बीहड़ जंगलों में अकेली ही चली जाती थी। जब झलकारी मात्र तेरह-चौदह वर्ष की ही थी, तब वह एक बार जंगल में लकड़ियां लेने गई। शाम को लौटते समय बाघ ने अचानक उस पर हमला कर दिया। उस समय झलकारी बिल्कुल निहत्थी थी। बाघ के अचानक हमला करने पर भी झलकारी तनिक नहीं घबराई और एक मोटी सी लाठीनुमा लकड़ी लेकर बाघ से भिड़ गई और बाघ को मार डाला।

यह खबर पूरे गांव में जंगल की आग की तरह फैल गई। लोग दूर-दूर से आकर उस बहादुर, निडर कन्या से मिलने आए। ऐसी ही एक और घटना है, जब झलकारी ने अकेले गांव के जमींदार के घर में घुसे डाकुओं को ललकारते हुए उन पर हमला कर भागने पर विवश कर दिया। यह 1950 की बात है।

गांव के मुखिया झलकारी की वीरता, साहस, हिम्मत के आगे नतमस्तक हो गए। मुखिया ने झलकारी को अपनी बेटी मान लिया। ऐसी ही एक और घटना है, जब झलकारी ने हिम्मत नहीं हारी और डाकुओं को भागने पर मजबूर कर दिया। बात अक्टूबर, 1952 की है। झलकारी की वीरता के चर्चे पूरी झांसी में फैल गए। झलकारी की वीरता के चर्चे पूरनमल कोरी ने भी सुने। पूरन कोरी झांसी के राजा गंगाधर राव अर्थात् रानी लक्ष्मीबाई के पति की सेना में सिपाही था तथा तोपची के पद पर तैनात था। पूरन स्वयं बहुत बहादुर सिपाही तथा एक जाना-पहचाना पहलवान था। अपनी जीवन-संगिनी के रूप में वह मन ही मन निडरता और साहस की मूर्ति झलकारीबाई की कामना करने लगा। इसलिए उसने झलकारीबाई की बहादुरी के कारनामों से मुग्ध होकर उसके पास विवाह का प्रस्ताव भिजवाया। झलकारीबाई के पिता ने ऐसे सुयोग्य वर के रिश्ते को सहर्ष मंजूर कर लिया। झलकारीबाई और पूरन कोरी का वैवाहिक जीवन सुख से बीतने लगा। पूरनमल ने झलकारीबाई को तीर, तलवार, भाला, बरछी, बंदूक और घुड़सवारी सिखाई। झलकारीबाई देखते-देखते इन कलाओं में प्रवीण हो गई। उसकी बहादुरी

के किस्से झांसी की रानी लक्ष्मीबाई ने भी सुने। रानी लक्ष्मीबाई हिम्मती और बहादुर लोगों का बहुत मान करती थीं और बहादुर औरतों का तो और भी ज्यादा। रानी लक्ष्मीबाई ने झांसी के अंदर ही स्त्रियों की सेना 'दुर्गा सेना' बनाई थी। एक बार बसंत पंचमी के दिन गौरी पूजन के हल्दी-कुंकुम के त्योहार मनाने के लिए रानी लक्ष्मीबाई ने महल में झांसी की सभी महिलाओं को आमंत्रित किया। इस त्योहार का उद्देश्य महिलाओं में आपसी प्यार व सद्भाव जगाना तथा एक-दूसरे से परिचय प्राप्त करना होता था। महाराष्ट्र में यह त्योहार अब भी मनाया जाता है, लेकिन इस बार इस त्योहार को मनाने का एक अलग उद्देश्य था। अंग्रेजों की वक्र दृष्टि झांसी पर पड़ चुकी थी। इसका कारण था राजा गंगाधर राव का बेऔलाद रह जाना। राजा गंगाधर विलासी प्रवृत्ति के राजा थे। वे अधिक समय नाच-गाने और भोग-विलास में बिताया करते थे। अंग्रेजों की झांसी पर टेढ़ी दृष्टि देख रानी चिंतित हो उठीं। वह इस समारोह के माध्यम से झांसी की वीर स्त्रियों की खोज करके उन्हें अपनी सेना में भर्ती करना चाहती थीं, जो अंग्रेजों से लड़ने की हिम्मत भी रखती हों। महल में रानी ने झलकारीबाई को भी आमंत्रित किया। हल्दी-कुंकुम के समय जब रानी ने झलकारीबाई का घूंघट उठाकर देखा तो रानी लक्ष्मीबाई हैरान हो गई। झलकारी और लक्ष्मीबाई दोनों की सूरतें एक जैसी थीं, जैसे दोनों सगी बहनें हों। महिला सेना दुर्गा दल का कार्य था कि वह रानी को झांसी के राजपाट की देखभाल में उनकी विश्वासपात्र बनकर झांसी की सुरक्षा में अपना योगदान दे। रानी लक्ष्मीबाई किसी भी क्षेत्र में महिलाओं को कमतर नहीं मानती थीं। स्त्रियां सबल हों, मजबूत हों, बहादुर हों, घर के चूल्हे चौके के अलावा वे देश व लोगों के हित के लिए भी कुछ काम करें। रानी की इस बात को आगे बढ़-चढ़कर बढ़ाया झलकारी बाई ने।

रानी लक्ष्मीबाई और झलकारीबाई दोनों हमउम्र थीं। केवल दोनों हमशक्ल ही नहीं, बल्कि दोनों के अंदर गुण भी एक समान थे। दोनों बहुत बहादुर और साहसी थीं। दोनों बचपन से ही मुसीबतें झेलती आई थीं। दोनों ने बचपन में ही अपनी मां को खो दिया था। दोनों को ही झांसी से बहुत प्रेम था। दोनों को जुल्मी अंग्रेजों और उनके कार्यों से बेहद घृणा थी। दोनों महल और झांसी के लोगों को कैसे सुरक्षित रखा जाए, इस पर घंटों बातें तथा सलाह-मशवरा करतीं। झलकारीबाई बहादुर होने के साथ-साथ आदमी को परखने में कभी मात नहीं खाती थी। अपने लूटपाट के कारनामों से सन्नाम हो चुके सागर सिंह को अपनी दूरदृष्टि के कारण

ही झांसी की सेना में जोड़ पाई। जब झांसी में युद्ध हुआ तो उस युद्ध के दौरान सागर सिंह ने झांसी के किले के एक फाटक खांडेराव गेट की सुरक्षा की जिम्मेदारी पूरी ईमानदारी और कर्तव्यनिष्ठा से निभाई।

महाराज गंगाधर की मृत्यु के उपरांत राज्य का भार रानी लक्ष्मीबाई पर आ गया। रानी लक्ष्मीबाई ने झांसी की बागडोर बड़ी बहादुरी और हिम्मत से संभाली थी। झांसी की सुरक्षा के लिए रानी और झलकारीबाई दोनों कई-कई घंटे घुड़सवारी, कलाबाजी, आखेट, बंदूक का अभ्यास करती तथा उसके उपरांत दोनों घोड़ों पर सवार होकर जंगलों की ओर निकल जातीं।

रानी के झांसी संभालते ही और रानी के दत्तक पुत्र गोद लेने के फैसले को अंग्रेजों ने मानने से इंकार कर दिया और झांसी को अपने अधीन करने के लिए रानी लक्ष्मीबाई की पांच हजार रुपये महीना की पेंशन बांध दी। यह रानी और झांसी की आजादी-पसंद जनता का अपमान था। इस फैसले का रानी ने कड़ा विरोध किया और पेंशन को ठुकरा दिया। रानी और झांसी के नागरिकों के ऐसे कड़े विरोध को देखकर अंग्रेजों ने झांसी राज्य को अपने कब्जे में लेने की ठान ली और अपने फैसले पर अटल रहते हुए झांसी को अंग्रेजी इलाके में मिलाने का ऐलान कर दिया। यह सन सत्तावन का समय था। रानी ने अपनी झांसी देने से इंकार करते हुए हुंकार भरकर अंग्रेजों को कहा, 'मैं अपनी झांसी नहीं दूंगी'। अपनी झांसी और अपनी रानी को बचाने के लिए झांसी का एक-एक बच्चा मरने-मारने को तैयार था और उनमें सबसे आगे थी वीरांगना झलकारीबाई।

झांसी का युद्ध शुरू हो गया। झांसी के किले के औरछा गेट पर तोपची दुल्हाजू तैनात था। झलकारी और पूरन तथा उनके अन्य साथी उन्नाव भंडेरी गेट पर तैनात थे। खांडेराव गेट पर सागर सिंह और दक्षिण में गौरा तनकर खड़ा था। युद्ध में झलकारी की सखियां वीरबाला, सुंदर, काशी, मोती, भक्ति जूही भी शामिल होकर महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने को तैयार थीं। अंग्रेजों की सेना जिस ताकत से झांसी पर कब्जा करने के लिए चारों ओर से झपटी थी, उससे दुगनी ताकत से झांसी के किले के अंदर से उन्हें जवाब दिया गया था। उन्नाव फाटक का मोर्चा देखकर अंग्रेजों के पैर उखड़ने लगे, उनकी हिम्मत जवाब देने लगी। झलकारीबाई, पूरनमल तथा उनके साथियों ने गोलियों की बौछार करके अनेक अंग्रेज सैनिकों को धराशायी कर दिया, जिससे अंग्रेज एकदम घबरा गए। अंग्रेजों को समझ में आ गया कि इतनी ताकत से वह झांसी का बाल भी बांका नहीं कर पाएंगे।

इसलिए उन्होंने रानी को हराने और युद्ध जीतने के लिए कूटनीति का सहारा लिया। अंग्रेजों ने रानी झांसी की सेना के एक विश्वासपात्र दीवान दुल्हाजू को लालच देकर खरीद लिया। दीवान दुल्हाजू ने झांसी से गद्दारी की तथा वह लालच में पड़कर अंग्रेजों से मिल गया। उसने लड़ाई के निर्णायक समय में ओरछा गेट खोल दिया। अंग्रेजी फौज झांसी नगर में घुस आई और चारों ओर मार-काट मचाने लगी। चारों तरफ तबाही का मंजर नजर आने लगा। दुल्हाजू की गद्दारी की खबर से झांसी के बहादुर अत्यंत क्रोधित हो उठे। उन्होंने अपने प्राण किले और रानी की सुरक्षा के लिए न्यौछावर कर दिए। झलकारीबाई ने अति वीरता का प्रदर्शन करते हुए उन्नाव भंडेरी बुर्ज से द्वंद्व मचा दिया। उसे झांसी और रानी दोनों को बचाने की चिंता ज्यादा थी। रानी झांसी भी अंग्रेजों से लोहा ले रही थी, पर रानी की फौज छोटी थी और अंग्रेजों की सेना विशाल थी। रानी ने झांसी की दुर्दशा और भीषण हत्याकांड देख अपने प्राणों का अंत करने की सोची, परंतु झलकारीबाई ने रानी को झांसी छोड़ने की सलाह दी। इसी बीच झलकारी को खबर मिली की उसके पति पूरन युद्ध में शहीद हो गए। झलकारी एक बार तो अपने पति के शहीद होने की बात सुन स्तब्ध रह गई, पर दूसरे ही पल उसने अपने आपको संभाल लिया। उसके सम्मुख सबसे बड़ा दायित्व रानी लक्ष्मीबाई और झांसी के उत्तराधिकारी बालक दामोदर राव की सुरक्षा का था। किले में तेजी से कब्जा करती अंग्रेजी सेना को देख झलकारीबाई और सबकी आपस में यही सलाह बनी की रानी लक्ष्मीबाई दामोदर राव को किले से बाहर ले जाकर उसकी रक्षा करें तथा बाहर जाकर झांसी की रक्षा के लिए अन्य लोगों से मदद लें। झलकारी ने तय किया कि जब तक रानी किले से बाहर सुरक्षित ना निकल जाए, तब तक वह किले के अंदर रानी लक्ष्मीबाई की वेशभूषा में अंग्रेजों को धोखा देने के लिए युद्ध करती रहेगी।

4 अप्रैल, 1858 की रात रानी को दामोदर राव को पीठ से बांधा तथा घोड़े पर सवार होकर भांडेरी फाटक से सुरक्षित बाहर निकल गई। झलकारी ने देखा कि रानी सुरक्षित निकल गई है तो उसने फिर धुआंधार गोलाबारी आरंभ कर दी, ताकि अंग्रेज टुकड़ी रानी का पीछा ना कर सके तथा रानी सुरक्षित कालपी पहुंच जाए। उसी दिन यानी 4 अप्रैल, 1858 को झलकारी ने रानी की वेशभूषा पहनी तथा शस्त्रों के साथ घोड़े पर चढ़कर लड़ने लगी। वह हू-बहू रानी लक्ष्मीबाई जैसी लग रही थी। अब अंग्रेज झलकारी को ही रानी समझकर उससे उलझे हुए थे।

किले पर अंग्रेजों का बढ़ता आधिपत्य देखकर भी झलकारी बाई ने साहस नहीं डिगाया और अपना रौद्र रूप धारण किए अंग्रेजी सेना में मार-काट मचा दी। कहते हैं झलकारीबाई ने 12 घंटे तक अनवरत युद्ध किया और अंग्रेज यही समझते रहे कि रानी ही उनसे युद्ध कर रही है। किले में अंग्रेजों द्वारा की जा रही भयंकर हिंसा और रक्तपात से किलेवासियों को बचाने के लिए वह किले से बाहर निकल आई ! अंग्रेजों से लड़ते-लड़ते आखिरकार झलकारीबाई पकड़ ली गई। उसे जनरल ह्यूरोज के सामने पेश किया गया। दीवान दुल्हाजू राव झलकारीबाई को देखकर हैरत में पड़ गया और चिल्लाकर बोला, 'अरे यह तो कोरी लड़की झलकारी है, रानी लक्ष्मीबाई नहीं।' अंततः जनरल ह्यूरोज ने उसे गोलियों से छलनी कर दिया। जनरल ह्यूरोज ने झलकारी की हिम्मत एवं बहादुरी से प्रभावित होकर कहा था, ''यदि भारत की 1 प्रतिशत महिलाएं भी उसके जैसी हो जाएं तो ब्रिटिशों को जल्दी ही भारत छोड़ना होगा।''

रानी लक्ष्मीबाई को सुरक्षित बचाने में वफादारी का सबूत पेश करने वाली दलित वीरांगना झलकारीबाई देश के हित में कुर्बान हो गई। अपनी मातृभूमि की रक्षा, वफादारी तथा भारत की आजादी के लिए झलकारीबाई ने अपने प्राणों की बाजी लगा दी और शहीद हो गई। झलकारीबाई के शहीद होने की तिथि 4 अप्रैल मानते हैं तथा कुछ लोग 5 अप्रैल मानते हैं। इस संदर्भ में भी कई कहानियां प्रचलित हैं। किसी का मानना है कि झलकारीबाई को अंग्रेजों द्वारा फांसी की सजा दी गई और कुछ का मानना है कि उनका शेष जीवन अंग्रेजों की कैद में बीता। यह भी कहानी पढ़ने को मिलती है कि पकड़े जाने पर जब झलकारीबाई को न्यायालय में पेश किया गया, तब अंग्रेज न्यायाधीश ने उसे उम्रकैद की सजा सुनाई। झलकारी ने भरी सभा में अंग्रेजी न्याय की खिल्ली उड़ाते हुए उन्हें तुरंत झांसी से लौट जाने का आदेश दिया। चिढ़े हुए अंग्रेज अफसरों ने बौखलाकर तुरंत उस पर फौजी मानहानि तथा बगावत का आरोप सिद्ध किया और देशभक्त वीरांगना झलकारीबाई को तोप के मुंह से बांधकर उड़वा दिया गया। एक अन्य जगह भी झलकारीबाई को अंग्रेजों द्वारा तोप से उड़ाकर मार डालने का भी वर्णन मिलता है। 'झलकारीबाई' की लेखिका अनसूया अनु ने लिखा है, ''झलकारी अंग्रेजी सेना के हाथ पड़ तो गई, लेकिन वह उनके हाथ मरना नहीं चाहती थीं। उसने अपनी सखी वीरबाला से अपने सीने में कटार उतार देने को कहा। सखी वीरबाला हिचकिचाई, लेकिन झलकारी के आग्रह ने उन्हें मजबूर कर दिया।

वीरबाला के हाथों अपनी जीवन लीला समाप्त कर वह सदा के लिए सो गईं।" प्रसिद्ध लेखक वृंदावन लाल वर्मा ने पहली बार झलकारीबाई का उल्लेख अपने उपन्यास 'झांसी की रानी' में किया था। उनके अनुसार रानी और झलकारीबाई के संभ्रम का खुलासा होने के बाद ह्यूरोज ने झलकारीबाई को मुक्त कर दिया था। उनके अनुसार झलकारीबाई का देहांत एक लंबी उम्र जीने के बाद हुआ था। लेखक श्रीकृष्ण सरल ने भी अपनी पुस्तक Indian Revolutionaries: A Comprehensive Study, 1757-1961, Vol. 1 में उनकी मृत्यु लड़ाई के दौरान हुई ही बताया है। कोरी जाति के लोगों के साथ-साथ दलित साहित्यकारों का भी मानना है कि झलकारीबाई अंग्रेजों के खिलाफ लड़ते-लड़ते शहीद हो गई थी। प्रसिद्ध दलित साहित्यकार 'राज' और दलित दस्तावेज के लेखक एम.आर. विद्रोही ने भी उनको युद्ध में ही लड़ते-लड़ते शहीद होना बताया है।

झलकारीबाई के शौर्य, पराक्रम, हिम्मत, सूझ-बूझ की गाथा आज भी बुंदेलखंड की लोकगाथाओं और लोकगीतों में सुनी जा सकती है।

वीरांगना मानवती

◆ *मीरा चंद्रा*

सन् 1848 में झांसी राज्य के आसपास डाकुओं का बड़ा जोर था। प्रधानमंत्री राघव रामचंद्र पंत के कठोर नियंत्रण के बावजूद डाकू काबू में नहीं आ रहे थे। खुमान सिंह नाम का एक सिपाही डाकुओं से मुकाबला करते हुए खेत रहा था। खुमान की मृत्यु के पश्चात उसकी विधवा पत्नी मानवती घरों में मंजाई कर (महरी) अपने इकलौते पुत्र वीरसिंह सहित अपना जीवन निर्वाह करने लगी।

सन् 1849 में मानवती की साधारण-सी भूल पर झांसी के हैहय वंशीय क्षत्रीय समाज ने उसका सामाजिक बहिष्कार कर दिया। इन्हीं दिनों राजा गंगाधर राव का द्वितीय विवाह उत्सव कोठी कुआं की हवेली में हो रहा था। दुखित मानवती को लक्ष्मीबाई की जनप्रियता विदित हो चुकी थी, वह रानी के दर्शन के सुनहरे स्वप्न देखने लगी। मानवती सामाजिक बहिष्कार से अति दुखित थी। इस कारण उसने मंगल उत्सव का ध्यान नहीं किया और रानी को अपनी करुण व्यथा सुनाने के लिए महल के पास हाथीखाना में बैठ गई। रानी का डोला विदा होकर इसी मार्ग से आनेवाला था।

बंदीजन राजा गंगाधर राव और लक्ष्मी रानी की जय बोलते आ रहे थे। शहनाई की मधुर ध्वनि से राजपथ भर गया था। ऐसे आनंद के समय मार्ग में मानवती का करुण-क्रंदन सुन हलकारों ने उसको मार्ग से विलग हो जाने को ललकारा, परंतु मानवती की वह करुण पुकार और उसके मार्ग से हट जाने की हलकारों की कठोर आज्ञा रानी को सुनाई दे चुकी थी। रानी लक्ष्मीबाई का हृदय नारी की करुण पुकार सुन द्रवित हो गया। उन्होंने तुरंत कहारों से अपना डोला रोकने को कहा। डोला रुका और रानी ने उस विधवा नारी की व्यथा-कथा सुन अपने हाथों उसको शीतल जल पिलाकर धैर्य बंधाया और महल को प्रस्थान किया।

कुछ समय व्यतीत होने पर विधवा मानवती स्त्री-सेना में और उसका षोडष वर्षीय पुत्र वीर सिंह पुरुष-सेना में भर्ती हो गया। बाद में जब झांसी पर विपत्ति के बादल उमड़े, तब मानवती और उसके पुत्र वीरसिंह ने आत्म-बलिदान किया—

शीश झुका चरणों में फिर अबला ने वचन उचारा।
जन्म जन्म मानूंगी रानी मैं अहसान तुम्हारा।
प्राणदान दे चलीं आप रह गई भावना मेरी।
चुका सकेगी क्या इसका बदला चरणों की चेरी।
किंतु विनम्र प्रार्थना है यह रानी जी सुन लेना।
भेजे पतिता भेंट कभी चरणों में आश्रय देना।
देकर धैर्य चली विधवा को झांसी की महारानी।
हृद अंचल में करुण भाव ले दृग अंचल में पानी।

अनंत चतुर्दशी (तीन दिसंबर) के दिन दूत द्वारा उसने रानी को संदेश भेजकर झांसी राज्य को टीकमगढ़ में मिलाने को कहा। इसी वाद-विवाद में युद्ध का होना घोषित किया गया। कवि मदनमोहन दुबे 'मदनेश' कृत 'झांसी रायसौ' में जो बुंदेली में है, यह वर्णन कुछ भिन्न है।

कवि मदनेश ने नत्थेखां का झांसी जवारों के मेला के अवसर पर आना, मुरली मनोहर के मंदिर के मैदान में उनके हाथी के बिगड़ जाने से मेले का रस-भंग होना और रानी लक्ष्मीबाई का मुरली मनोहर के मंदिर के समीप मेले का दृश्य देखने के लिए तख्त पर बैठना वर्णित किया है। कवि ने यह भी कहा कि जब रानी ने मेले का ऐसा हाल देखा, तब उन्होंने जांच-पड़ताल कर नत्थेखां को मेले से बाहर होने

का आदेश दिया। इससे दीवान नत्थेखां क्षुब्ध हो रानी से विवाद कर टीकमगढ़ चला गया। श्री मदनेश का वर्णन नीचे उद्धृत है :

दोहा— मुरलीधर मंदिर विसैं डारो तखत सुपान।
श्री महारानी लक्ष्मीबाई विराजी आन।
कवित्त— ताई समै चढ़कें गजेन्द्र पै पठान आन,
घुसो घमसान आन देत है उठेला को।
हाथी कों महावती नै बीच विचलाय राखौ,
चारो ओर झूमें झुके हल्ला भयो हेला को।
कवि 'मदनेश' आय बाई के अगाड़ी अड़ौ,
हटत न फील लखौ कारन झमेला को।
भगे नर नार भीर छटकें मैदान भई,
महा रस भंग कर दयौ भरे मेला को।
दोहा— बाई ने दीनौं हुकम को यह का कौ आय।
कहौ वेग लै जाय गज, ऊधम रयौ मचाय।
कवित्त— दीनों हुकम जायकें सिपाई समझाय कई,
कोहो आय कांसें नईं नैंक सरमात हौ।
मेला मांय कैसो तुम ऊधम मचाय राखौ,
देख कैं परायौ सुख नैक ना सिहात हौ।
कवि 'मदनेश' जग्त रानी जू विराजी यहां,
तिनकौ हिये में भय तनक खात हौ।
मान लेव जाऔ न घटाऔ मान, मान कही,
सौच कै बताऔ अब जात कै न जात हौ।

रानी लक्ष्मीबाई को दत्तक पुत्र न मिले, एलिस भी इस षड्यंत्र में शामिल हुआ। इधर अंग्रेज भी रानी लक्ष्मीबाई के प्रति षड्यंत्र रचने लगे। नत्थेखां ने टीकमगढ़ की रानी लड़ई को अपनी वाक्पटुता से फुसलाकर झांसी पर बीस सहस्र बुंदेले सैनिकों को लेकर धावा बोल दिया।

इसी युद्ध में मानवती ने अपना शौर्य दिखाया। उसके पुत्र वीर सिंह ने भी बलिदान देने में कसर न रखी। अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए उसने भमानीशंकर तोप पर स्वयं को बलि चढ़ाने के लिए प्रस्तुत कर दिया। इससे द्रवित हो रानी ने वात्सल्य भाव से उस सैनिक को रोका :

चतुरंगनी सैन सज करके नत्थेखां चढ़ आया।
डेरा डाल दिया झांसी पर रण का बिगुल बजाया।
दुर्ग द्वार पर बुंदेलों की चमक उठीं तलवारें।
कर्ण भेद कर हृदय गूंजती वीरों की हुंकारें!
देख गुर्ज चढ़ दृश्य वीरबाला ने हुकम सुनाया।
शीघ्र गुलाम गोसखां ने झुककर आदाब बजाया।
चढ़ी गुर्ज पर तोप भमानीशंकर सुमर भमानी।
और तोपची ने जिसके पूजन की रीति बखानी।
चलती जब यह प्रथम एक सैनिक की बलि लेती है।
फिर बन काल-रूप अरिदल में प्रलय मचा देती है।
सुन गाथा सैनिक दल से इक वीर सामने आया।
और भमानीशंकर पर बलि देने शीश झुकाया।
देख दृश्य रानी के नयनों बही अश्रु की धारा।
शिथिल हुए सब अंग कमल वन मनों तुषार संहारा।

रानी लक्ष्मीबाई ने जब उस साहसी वीर सैनिक को आत्म बलिदान करते हुए देखा तो उनके युगल नेत्रों से अश्रुधारा बह निकली और वह सैनिक वीरसिंह के प्रति दृढ़ता से बोली :

तुच्छ राज्य पर निर्पराध का खून न बहने दूंगी।
विधवा के इस वीर बहादुर को नहिं मरने दूंगी।

रानी के इन वात्सल्यपूर्ण वचनों को सुन वीरसिंह साहस के साथ कहने लगा कि मुझे मेरी माता की आज्ञा है कि 'बेटा! अपनी मातृभूमि की रक्षा हेतु अपने प्राणों को हँसते-हँसते उत्सर्ग कर देना, जिससे झांसी के पानी की लाज रहेगी और मेरा दूध उज्ज्वल होगा।'

बोला वह प्रणवीर महारानी की सुनकर वाणी।
मातृभूमि पर हँस हँस करते सदा वीर कुर्बानी।
माता का उपदेश यही है मुझे सुनो महारानी।
वत्स! लजाना नहीं दूध मेरा झांसी का पानी।
बलि वेदी पर बलि दे अपना मैं प्रण पूर्ण करूंगा।
हैहय कुल उज्ज्वल होगा, नहिं पीछे कदम धरूंगा।

इन साहसपूर्ण वचनों को कहते-कहते सैनिक वीर सिंह के हृदय में मातृभूमि पर बलि देने की भावना जाग्रत हो गई, उसके भाल पर तेज झलकने लगा। शीघ्र उसने अपनी म्यान से तलवार खींची। एक क्षण को उस स्थल पर बिजली-सी कौंधी दिखाई दी, पश्चात रानी ने देखा कि वीर सिंह का धड़ से कटा हुआ सिर भमानीशंकर तोप के सम्मुख अपनी मातृभूमि के हेतु चढ़ा हुआ हँस रहा है।

झांसी के वीर सैनिकों की मार से टीकमगढ़ की फौज भाग खड़ी हुई। जब नत्थेखां ने यह देखा, तब वह व्यूह बना कुंवर कटीली बालों पर तेगा का वार करने को टूट पड़ा, परंतु वीरांगना मानवती ने ये देख शीघ्र उस वार को साहस के साथ अपनी ढाल अड़ाकर रोका और क्रुद्ध हो अपने भुजबल को तोल भाले से ऐसा वार किया कि नत्थेखां मूर्छित हो घोड़े से नीचे आ गिरा। जब वह होश में आया तो उसका सिर लज्जा से झुका था, क्योंकि वह स्त्री के वार से धराशायी हुआ था। क्रोधित हो उसने धोखे से मानवती पर दोबारा वार किया। मानवती वीरगति को प्राप्त हुई और इस प्रकार वह मातृभूमि की रक्षा के लिए मरकर भी अमर हो गई। इसका वर्णन इन पंक्तियों में देखिए :

देख पराजय व्यूह बना नत्थेखां सन्मुख आया।
कुंवर कटीली बालों पर तेगा का वार चलाया।
मानवती नै ढाल अड़ा कर अपने सम्मुख झेला।
सम्हल सकोप तोल भुजबल को बढ़कर भाला मेला।
हुआ मूर्छित उठा शीघ्र दौड़ा फिर तान दुधारा।
हृदय नहीं सकुचा विधवा नारी के शीश प्रहारा।
आहत होते मानवती ने बोली जय रानी की।
समर भूमि में दिखी वीरता झांसी के पानी की।

अंत में वीर रघुनाथ सिंह ने जब नत्थेखां से युद्ध छेड़ा, तब वह पराजित हो; अपने अस्त्र-शस्त्र छोड़ रणभूमि से भाग खड़ा हुआ। नत्थेखां के रणभूमि से भागते ही उसकी सेना अपने अस्त्र-शस्त्रों को छोड़ प्राण बचाकर भाग खड़ी हुई। रानी लक्ष्मीबाई की विजयश्री के नारों से आकाश गूंज उठा। विजयोन्मत्त वीर सिपाही, जो अस्त्र-शस्त्र शत्रु रण में छोड़ गए थे, उनको और वीरांगना मानवती के शव को दुर्ग के अंदर उठा लाए।

वीरांगना मानवती की लाश को देखकर रानी लक्ष्मीबाई के हृदय में अपार दुःख भर उठा। उनका धैर्य टूट गया और वे विह्वल होकर दोनों नयनों से अश्रु

बहाती हुई बहन-बहन कहकर मानवती को अपने हृदय से लगाकर रुदन करने लगीं–

रण आंगन से मानवती की लाश दुर्ग में आई।
रानी अति व्याकुल होकर दृग अश्रुमाल पहिनाई।
बहिन-बहिन! कह मानवती को अपने हृदय लगाया।
धन्य धन्य तुमने पानी के बदले खून बहाया।

तत्पश्चात महारानी लक्ष्मीबाई ने धैर्य धारण कर किले की सिंह पौर के प्रांगण में अपने हाथों चंदन की चिता रच मानवती का विधिवत दाह-संस्कार किया–

रानी ने फिर हृदय धैर्य धर चंदन चिता सजाई।
मिली ज्योति में ज्योति वीर गति मानवती ने पाई।

वीरांगना मानवती और उसके पुत्र वीर सिंह का मातृभूमि के लिए अपूर्व बलिदान सन् 1857 में अंग्रेजों से स्वतंत्रता संग्राम छेड़ने के लिए महारानी लक्ष्मीबाई का प्रेरणा-स्रोत बना।

रानी अवंतीबाई

◆ *ब्रजेश कुमार श्रीवास्तव*

रानी अवंतीबाई का जन्म मध्यप्रदेश के सिवनी जिले के मनकेड़ी गांव में हुआ था। उनके पिता का नाम जुझार सिंह एवं माता का नाम कृष्णाबाई था। ये जाति के लोधी थे। जुझार सिंह का परिवार 187 गांवों का मालगुजार था।[1] अवंतीबाई का विवाह रामगढ़ रियासत के राजा विक्रमाजीत के साथ संपन्न हुआ। वे अत्यधिक ईमानदार एवं निर्भीक पुरुष थे। विडंबना यह कि गद्दी पर बैठने के कुछ ही दिनों पश्चात वह उन्माद रोग से पीड़ित होकर विक्षिप्त हो गए। उसकी पत्नी रानी अवंतीबाई पर तो जैसे मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ा। उसके दोनों ही पुत्र अमान सिंह एवं शेर सिंह अभी अल्पवयस्क थे। रानी अवंतीबाई ने अपने ज्येष्ठ पुत्र अमान सिंह की ओर से राज्य का कार्यभार अपने हाथों में ले लिया।[2]

गवर्नर जनरल लार्ड डलहौजी ने रामगढ़ राजा की मानसिक स्थिति खराब बताकर रामगढ़ राज्य को 1855 में कोर्ट आफ वार्ड्स के अंतर्गत कर दिया एवं राज्य की व्यवस्था हेतु एक सरबराहकार (प्रबंधक) रामगढ़ में नियुक्त कर दिया।[3] यहीं से असंतोष का आरंभ हुआ। रानी अवंतीबाई को यह अच्छा नहीं लगा। वह

योग्य थी और समझती थी कि वह पति की मानसिक अवस्था ठीक न होने की स्थिति में राज्य का कार्यभार बखूबी संचालित कर सकती है। रानी ने अपने दीवान सुकई की सहायता से राजकाज भली-भांति संभाल लिया था। इस प्रकार अंग्रेजों एवं रामगढ़ की रानी के बीच संघर्ष की भूमिका निर्मित हुई। मंडला के डिप्टी कमिश्नर एच.एफ. वाडिंगटन ने रानी के बारे में लिखा था कि, ''राजा विक्रमाजीत तो अपनी रानी एवं सुकई दीवान के हाथ की कठपुतली है और ये दोनों ही कामकाज के मुखिया हैं एवं परिवार के वास्तविक मैनेजर हैं।[4]

रानी अवंतीबाई अंग्रेजों से अत्यंत नाराज थीं। वह आसपास के जागीरदारों एवं उवारीदारों से मिलकर अंग्रेजों के विरुद्ध रणनीति तैयार कर रही थी। 31 मई, 1857 का दिन अखिल भारतीय स्तर पर अंग्रेज विरोधी लोगों ने उनके विरुद्ध विद्रोह हेतु नियत किया था। क्रांति हेतु क्रांति का प्रतीक चिह्न चपाती गांव-गांव भेजी जा रही थी। एक और प्रतीक लाल कमल का फूल छावनी-छावनी भेजा जा रहा था।[5] इसी क्रम में चपाती रामगढ़ भी पहुंची, जिसे रानी अवंतीबाई ने ले लिया। रानी अवंतीबाई ने क्रांति का संदेश अपने स्वजाति व्यक्तियों एवं अन्य प्रमुख व्यक्तियों को कागज की पुड़ियों में भिजवाया। प्रत्येक पुड़िया में एक छोटा-सा कागज का टुकड़ा और एक सादी चूड़ी थी। कागज पर संदेश इस प्रकार थे—'देश की रक्षा के लिए या तो कमर कसो या चूड़ी पहनकर घर में बंद हो जाओ। तुम्हें धर्म-ईमान की सौगंध है, जो इस कागज का सही पता बैरी को दो।[6] इससे पता चलता है कि रानी अवंतीबाई अंग्रेजों के विरोध हेतु आसपास के लोगों को एकजुट कर रही थी।

बुंदेलखंड में इस समय 1857 की क्रांति के दो अंग्रेज विरोधी खतरनाक त्रिकोण निर्मित हो चुके थे। एक त्रिकोण था झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, शाहगढ़ राजा बखतबली एवं बानपुर राजा मर्दन सिंह का। इन तीनों ने मिलकर सागर स्थित अंग्रेजों की हालत खराब कर रखी थी। दूसरा खतरनाक त्रिकोण रामगढ़ की रानी अवंतीबाई, शहपुरा के लोधी ठाकुर विजय सिंह एवं सोहागपुर के बघेल ठाकुर गरूल सिंह के मध्य निर्मित हुआ। इन तीनों ने मिलकर आसपास के अंग्रेज अधिकारियों की हालत पतली कर दी। इन तीनों के भय से 8 सितंबर, 1857 को रात 9 बजे सोहागपुर का तहसीलदार जबलपुर आ गया। उसने वाडिंगटन को बताया कि विद्रोहियों की संख्या निरंतर बढ़ रही है। वह इनका मुकाबला करने

में असमर्थ था, अतः जबलपुर आ गया है। सोहागपुर के तहसीलदार की तरह ही शहपुरा का तहसीलदार शामजी लाल भी मंडला भाग गया।[7]

शहपुरा का लोधी ठाकुर विजय सिंह लोधी, रामगढ़ की रानी अवंतीबाई लोधी का रिश्तेदार था। शहपुरा रामगढ़ से लगभग 55 कि.मी. उत्तर-पश्चिम में स्थित था एवं मंडला से लगभग 80 कि.मी. की दूरी पर स्थित था। रानी अवंतीबाई, विजय सिंह एवं गरूल सिंह के विद्रोह को आसपास के लोगों का तेजी से समर्थन मिल रहा था। इसी बीच जबलपुर में एक ऐसी घटना घटित हुई, जिसने आग में घी का काम किया। गढ़ा राजवंश के वंशज शंकर शाह एवं उसका पुत्र रघुनाथ शाह जबलपुर में विद्रोह का नेतृत्व कर रहे थे। अंग्रेजों ने इन्हें गिरफ्तार कर एक संक्षिप्त मुकदमे के पश्चात 18 सितंबर, 1958 को तोप से उड़ा दिया।[8] इस घटना ने अंग्रेजों के विरुद्ध लोगों को और अधिक भड़का दिया। अंग्रेजों को इससे लाभ की अपेक्षा हानि अधिक हुई। इस घटना ने रानी अवंतीबाई एवं उसके साथियों को और अधिक उत्तेजित कर दिया। इन्होंने इस घटना का लाभ उठाकर ज्यादा से ज्यादा लोगों को अंग्रेज विरोधी संघर्ष में शामिल किया।

रानी अवंतीबाई के विद्रोही तेवरों को देखकर जबलपुर कमिश्नर अत्यधिक नाराज हुआ। उसने रानी अवंतीबाई को निर्देश दिया कि वह मंडला जाकर डिप्टी कमिश्नर से मिले और संधि करे। साथ ही धमकी भी दी कि यदि वह ऐसा नहीं करेगी तो परिणाम भुगतने के लिए तैयार रहे। रानी अवंतीबाई भला इन धमकियों से कहां डरने वाली थी। ब्रिटिश अधिकारी से मिलने के स्थान पर उसने अंग्रेजों से युद्ध की तैयारियां आरंभ कर दीं। उसने अपने साथियों से कहा कि वह जीवन की अंतिम श्वास तक अंग्रेजों से संघर्ष करेगी। रानी अवंतीबाई ने अपने साथियों को संबोधित करते हुए कहा कि, 'भाइयो, जब भारत मां गुलामी की जंजीरों से जकड़ी हो, तब हमें सुख से जीने का कोई हक नहीं। मां को मुक्त कराने के लिए ऐशो-आराम को तिलांजलि देनी होगी। खून देकर ही आप अपने देश को आजाद कर सकते हैं।'[9]

रानी अवंतीबाई के नेतृतव में रामगढ़ में लोग एकत्रित होने लगे। 25 सितंबर, 1857 को क्रांतिकारियों ने शहपुरा में तहसील व थाने पर आक्रमण कर दिया। सरकारी कर्मचारी भाग खड़े हुए। कचहरी व थाने की इमारतें जलाकर खाक कर दी गई। विद्रोहियों के बढ़ते प्रभाव को देखकर रामगढ़ स्थित अंग्रेजों का सरबराहकार भाग खड़ा हुआ। इस घटना से समझा जा सकता है कि रामगढ़ की

रानी अवंतीबाई के विद्रोही तेवरों से सरकारी कर्मचारी कितने अधिक आतंकित थे। इस प्रकार मंडला जिले के विद्रोह में रानी अवंतीबाई की रियासत रामगढ़ की भूमिका बढ़ती जा रही थी।[10] अवंतीबाई के नेतृत्व में विद्रोह की तीव्रता भी बढ़ती जा रही थी। 3 अक्टूबर, 1857 तक सोहागपुर, शहपुरा व रामगढ़ पूर्णतः विद्रोह की चपेट में आ चुके थे। 24 अक्टूबर को अवंतीबाई ने रामनगर (गौड़ शासकों की पुरानी राजधानी) पर कब्जा कर लिया। इसके बाद रानी ने घुहारी एवं बिछिया पर कब्जा कर लिया।[11]

रानी के बढ़ते प्रभाव को नियंत्रित करने के लिए वाडिंगटन ने 26 अक्टूबर को एक पुलिस की टुकड़ी रामनगर भेजी। इस टुकड़ी को मुंह की खानी पड़ी। बड़ी मुश्किल से वे जान बचाकर मंडला पहुंचे। रानी अवंतीबाई के बढ़ते वर्चस्व का उल्लेख नरसिंहपुर के डिप्टी कमिश्नर कैप्टन टर्नर द्वारा बंबई सरकार के सचिव एंडरसन को लिखे पत्र में इस प्रकार मिलता है—'52वीं बंगाल इंफेंट्री रेजीमेंट के सैनिक रानी के साहस से प्रभावित होकर प्रशासन के विरुद्ध हो गए और रातों-रात मंडला सैनिक छावनी खाली हो गई। सैनिक भी विद्रोहियों से जा मिले।[12]

26 सितंबर, 1857 को रानी अवंतीबाई के नेतृत्व में रानी के भाई सीताराम, दीवान सुकई एवं सुकई के बेटे हीरालाल ने रामगढ़ में 650 रुपये के खजाने को अपने कब्जे में ले लिया। वहां के सरकारी कर्मचारियों ने बाध्य होकर रामगढ़ छोड़ दिया।[13] रानी अवंतीबाई ने शहपुरा के ठाकुर विजय सिंह के साथ मिलकर मंडला पर धावा बोलने की योजना बनाई। इससे मंडला के अंग्रेज कर्मचारियों में दहशत फैल गई। मंडला के महाजनों ने इस खतरे से बचने के लिए तहसीलदार से कहा कि महाजनों की रक्षा हेतु इनके खर्चे से 72 रुपये अतिरिक्त लेकर पुलिस की व्यवस्था की जाए। डिप्टी कमिश्नर वाडिंगटन ने यह खबर पाकर मंडला की सुरक्षा हेतु कमिश्नर से कुछ सेना की मांग की।[14]

उल्लेखनीय है कि मंडला पर आक्रमण के दौरान वाडिंगटन का रानी से संघर्ष हुआ। वाडिंगटन जान बचाकर मंडला से भाग गया। वाडिंगटन का पुत्र हार्डी रानी के पास छूट गया। रानी ने बड़प्पन का परिचय देते हुए हार्डी को अंग्रेजों के पास पहुंचा दिया। वाडिंगटन ने कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए संदेश भिवजाया कि 'रानी साहेब को सलाम देना और कहना कि वह बगावत छोड़ दें। हम प्रयास करेंगे कि सरकार उन्हें माफ कर दे।[15] रानी ने बगावत छोड़ने के स्थान पर अपने प्रयास और तेज कर दिए।

योजना बनाई। वाडिंगटन के अभियान में लेफ्टिनेंट कार्कवार्न एवं बार्टन भी थे। रामगढ़ को चारों ओर से घेर लिया गया। रानी अवंतीबाई रामगढ़ छोड़कर जंगल में चली गई एवं छापामार युद्ध आरंभ किया। रानी द्वारा महल छोड़ते ही वाडिंगटन ने रामगढ़ किले पर अधिकार कर लिया। कार्कवार्न को रामगढ़ का प्रभार देकर 21 अप्रैल, 1858 को वाडिंगटन एवं बार्टन विद्रोहियों के दमन हेतु चले गए।[16]

रानी अवंतीबाई एवं उसका परिवार, शहपुरा का विजय सिंह, सोहागपुर का गरूल सिंह आदि कई विद्रोही रामगढ़ छोड़कर चले गए एवं रीवा राज्य में शरण ली।[17]

विद्रोहियों के अन्य प्रमुख गढ़ों—रामगढ़ एवं सोहागपुर पर भी ब्रिटिश सेना का कब्जा हो गया। 12 फरवरी, 1859 को विजय सिंह ने शहपुरा स्थित अधिकारियों के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया। उसके बाद सोहागपुर के गरूल सिंह ने भी आत्मसमर्पण कर दिया।[18] इससे पूर्व 5 फरवरी, 1859 को रामगढ़ के राजा विक्रमाजीत, उसके दो पुत्र अमान सिंह एवं शेर सिंह, सुकोई दीवान आदि ने रामगढ़ में वाडिंगटन के शिविर में आत्मसमर्पण कर दिया था। जबलपुर के कमिश्नर डब्ल्यू.सी. अर्सकाइन ने इस शर्त पर वाडिंगटन को उन्हें क्षमा करने की अनुमति दी थी कि वे ब्रिटिश अधीनता स्वीकार करने के साथ-साथ अधिक राजस्व देने का वादा करें।[19]

अर्सकाइन की शर्त मानते हुए वाडिंगटन ने रामगढ़ राजा विक्रमाजीत एवं उनके पुत्रों द्वारा दी जाने वाली उबारी की राशि, जो कि 2917 रुपये थी, बढ़ाकर 6000 रुपये करने की सिफारिश कर दी।[20]

5 फरवरी, 1859 को रानी अवंतीबाई के परिवार ने आत्मसमर्पण कर दिया, किंतु आत्मसमर्पण करने वालों की सूची में रानी का नाम नहीं मिलता। अब प्रश्न उठता है कि रानी कहां गई? रानी का क्या हुआ? हम यदि पीछे मुड़कर देखें तो पाते हैं कि विद्रोह के प्रमुख केंद्रों—रामगढ़, शहपुरा एवं सोहागपुर पर अंग्रेजों ने आधिपत्य कर लिया। समस्त बुंदेलखंड में क्रांति का अंग्रेजों द्वारा दमन कर दिया गया। क्रांति की प्रमुख अगवा झांसी की रानी लक्ष्मीबाई 18 जून, 1858 को शहीद हो गई। ऐसी स्थिति में रानी अवंतीबाई एवं उनके सहयोगियों का साहस जाता रहा। न तो उनके पास धन था और न पर्याप्त सेना। अतः 3 जुलाई, 1858 को शहपुरा के ठाकुर विजय सिंह ने

वाडिंगटन को याचिका भेजी कि उन्हें क्षमा कर दिया जाए।[21] रानी अवंतीबाई एवं विजय सिंह ने लेफ्टिनेंट वर्टन को याचिका और संदेश भेजे कि उन्हें क्षमा किया जाए। डिप्टी कमिश्नर वाडिंगटन ने इस संबंध में लिखा है कि रामगढ़ की रानी और विजय सिंह प्रार्थनापत्र और संदेश भेजते रहे हैं। आखिरी प्रार्थनापत्र के साथ नजर के रूप में एक रुपया भी था, जिसका तात्पर्य यह था कि वे समर्पण करना चाहते हैं, मुझे विश्वास नहीं कि वे ऐसा करेंगे।[22]

चूंकि रानी अवंतीबाई ने वाडिंगटन के बेटे हार्डी के साथ अच्छा बर्ताव किया था। अतः वाडिंगटन की थोड़ी-बहुत सहानुभूति रानी के साथ थी। वाडिंगटन ने 30 जुलाई, 1858 को जबलपुर कमिश्नर को रानी के पक्ष में पत्र द्वारा इन शब्दों में समझाया कि 'रामगढ़ राजा विक्रमाजीत असहाय एवं एकदम बुद्धू हैं, इसे देखते हुए यह पक्का है कि उसका विद्रोह से कोई वास्ता नहीं है। उसके बड़े बेटे की उम्र 20 वर्ष होने के बावजूद उसमें भी बुद्धि की कमी है। दूसरा बेटा 18 साल का है और बहुत छोटा है। मैं रानी की तरफ देखता हूं तो मुझे लगता है कि उसके प्रति नरमी का बर्ताव किया जाए, क्योंकि पागल पति, अज्ञानी-अपढ़ बेटे के कारण वह अपने आसपास के लोगों से मार्ग-दर्शन लेने को मजबूर थी। उसका खास सलाहकार और स्नेह भाजन (Paramour) रामगढ़ का वियारी सोनी और रानी के दो भ्राता अमेरिती दादू और सीताराम दादू विद्रोह के नेताओं और उकसाने वालों में थे। मैं जरूर इस बात के लिए रानी को दोषी मानता हूं कि उसने लोगों को विद्रोह के लिए भड़काया और सिर्फ एक ही बात विचार करने की है—क्या उसे परिस्थितियों का शिकार माना जाए और यह कि वह यदि चाहती भी तो भी वह और कुछ नहीं कर सकती थी और यह भी विचार किया जा सकता है कि बाद में जो असुविधाएं उसने भुगती हैं और उसके पति की जमींदारी जब्त कर ली गई है, इसे ही उसके अपराध की सजा मान लिया जाए।[23]

30 जुलाई को वाडिंगटन ने उपर्युक्त वर्णित जो पत्र लिखा, उसके अनुसार पता चलता है कि निम्न विद्रोहियों को जीवन और गुजरबसर स्वीकृत हो गई।

(1) रामगढ़ का राजा एवं अवंतीबाई का पति विक्रमाजीत, (2) रानी का पुत्र अमान सिंह, (3) राजा का कामदार सुकोई दीवान (4) शहपुरा का विजय सिंह एवं (5) सोहागपुर का गरूल सिंह।

इस तरह विद्रोहियों के समर्पण करने के पश्चात क्षमादान की सिफारिश मंजूर कर ली गई। रानी अवंतीबाई ने क्षमा हेतु याचिका तो दी, मगर 5 फरवरी,

1859 को समर्पण नहीं किया। रानी अवंतीबाई के बारे में इससे पहले की जानकारी हमें 4 दिसंबर, 1859 तक ही मिलती है।

1857 की क्रांति के दमन के पश्चात इंग्लैंड की महारानी विक्टोरिया ने क्षमा की घोषणा जारी की थी। 13 नवंबर, 1858 को वाडिंगटन ने कमिश्नर को संदेश भेजा कि उसने महारानी द्वारा क्षमा की घोषणा की प्रति रामगढ़ के विद्रोहियों को भेज दी है। इस पर रानी अवंतीबाई ने महारानी की घोषणा के उत्तर में अपना इलाका वापस पाने की बाबत पूछा।[24]

इसके पश्चात रानी के बारे में जानकारी मिलती है कि वह रीवा रियासत के विद्रोही ठाकुर रणमत सिंह के साथ मिलकर पुनः विद्रोह की योजना बना रही थी।[25] रानी अवंतीबाई के बारे में यह जानकारी 4 दिसंबर, 1958 की है, इसके पश्चात रानी के बारे में किसी भी प्रकार की कोई खबर प्राप्त नहीं होती। रानी 5 फरवरी के पहले ही मारी गई अथवा बाद तक जीवित रही, इस बारे में कोई प्रामाणिक जानकारी नहीं मिलती।

रानी अवंतीबाई का आखिर हुआ क्या? इस संबंध में कुछ जानकारियां इस प्रकार मिलती हैं–

(1) रानी अवंतीबाई ने युद्ध का केंद्र डिंडोरी, शहपुरा, जबलपुर मार्ग पर देवहारगढ़ नामक पहाड़ी पर बनाया था। वाडिंगटन ने जब रानी से आत्मसमर्पण की बाबत कहा तो रानी ने जवाब दिया, 'लड़ते-लड़ते मर जाऊंगी, परंतु परदेशियों की मार से दबूंगी नहीं और रानी ने देवहारगढ़ पर्वत से युद्ध जारी रखा। युद्ध के दौरान रानी घायल होकर गिर पड़ी, नाजुक स्थिति देखकर रानी ने कटार भोंककर अपनी जीवन लीला समाप्त कर ली। रानी के विश्वस्त उमराव सिंह ने रानी का अंतिम सस्कार किया।[26]

(2) मंडला जिला गजेटियर में बताया गया है कि रामगढ़ की रानी ने रानी दुर्गावती का अनुसरण करते हुए स्वयं को कटार मारकर आत्महत्या कर ली ताकि उसे बंदी न बनाया जा सके।[27]

(3) द्वारका प्रसाद मिश्र ने लिखा है कि रानी अवंतीबाई अंग्रेजों से युद्ध करते हुए घिर गई। वीरांगनाओं की गौरवशाली परंपरा के अनुरूप उसने बंदी होने की अपेक्षा मृत्यु को श्रेष्ठतर समझा और क्षण भर में अपने घोड़े से उतरकर अपने परिचारक के हाथ से तलवार छीनकर उसने अपनी छाती में घुसेड़ ली। जब वहां अंग्रेज पहुंचे, तब वह मरणासन्न थी। सिविल सर्जन ने उसे जीवित रखने का

अत्याधिक प्रयास किया, किंतु उसकी आत्मा को बंदी न रख सकी। विजेताओं के हाथ उसका निर्जीव शरीर आया। अपनी प्रसिद्ध पूर्वजा रानी दुर्गावती के समान उसने रणक्षेत्र में अंतिम सांस तक अपनी स्वतंत्रता की रक्षा करते हुए वीरगति प्राप्त की।[28]

इस आधार पर यही कहना होगा कि रानी अवंतीबाई ने अंग्रेजों से लड़ते हुए, स्वयं ही कटार भोंककर अपनी जीवन लीला समाप्त कर ली थी। संभव है कि सभी विद्वानों ने यह कथन 1912 के मंडला गजेटियर के आधार पर ही व्यक्त किया हो। गजेटियर में रानी की मौत का उल्लेख किस आधार पर किया गया है, इस संबंध में कोई स्रोत नहीं मिलता। ऐसा प्रतीत होता है कि रानी लक्ष्मीबाई अंग्रेजों से लड़ते हुए जब हार गई तो उसने अंग्रेजों से अपनी रक्षा हेतु स्वयं मौत को गले लगा लिया। संभवतः इसी आधार पर रानी अवंतीबाई के संबंध में भी कहानी गढ़ ली गई होगी।

संदर्भ

1. रघुनाथ सिंह 'मधूप' : वीरांगना अवंतीबाई लोधी, पृ. 1-4, 1993
2. एस.एल. नागौरी, प्रणवदेव : 1857 के क्रांतिकारी, जयपुर, पृ. 201
3. सुरेश मिश्र : रामगढ़ की रानी अवंतीबाई, पृ. 14, भोपाल, 2004
4. वही, पृ. 19
5. बी.के. श्रीवास्तव : भारतीय इतिहास की विषयवस्तु, पृ. 193, आगरा, 2010
6. 1857 के क्रांतिकारी, पृ. 201
7. रामगढ़ की रानी अवंतीबाई, पृ. 19
8. जबलपुर जिला गजेटियर, 1972, पृ. 94-95
9. 1857 के क्रांतिकारी, पृ. 202
10. जबलपुर डिस्ट्रिक्ट बंडल करसपॉन्डेंस, केस फाइल क्रमांक 70-71, दिनांक 28.09.1857
11. एग्नेस ठाकुर : महाकोशल में 1857 की क्रांति, पृ. 89, जबलपुर, 2008
12. सीक्रेट कन्सल्टेशन, फारेन डिपार्टमेंट पृ. 7-8, फाइल क्रमांक 529-531, 1857
13. जबलपुर डिस्ट्रिक्ट बंडल करसपॉन्डेंस, पृ. 77-78, दिनांक 12.10.1857
14. रामगढ़ की रानी अवंतीबाई, पृ. 22-23
15. महाकोशल में 1857 की क्रांति, पृ. 92
16. मध्यप्रदेश के रणबांकुरे, पृ. 41
17. रामगढ़ की रानी अवंतीबाई, पृ. 38

18. वही, पृ. 48
19. राज्य अभिलेखागार, मंडला जिला करसपॉन्डेंस पृ. 1-2, फाइल क्रमांक 75-84, 5 फरवरी, 1859
20. वही, पृ. 5-6
21. जबलपुर डिवीजन मंडल करसपॉन्डेंस, पृ. 261-62, दिनांक 5 जुलाई, 1858
22. वही, पृ. 265-266, 12 जुलाई, 1858
23. वही, पृ. 278-81, दिनांक 30 जुलाई, 1858
24. वही, पृ. 345 दिनांक, 13 नवंबर, 1858
25. वही, पृ. 355, दिनांक, 4 दिसंबर, 1858
26. महाकोशल में 1857 की क्रांति, पृ. 93
27. मंडला जिला गजेटियर, पृ. 40
28. द्वारका प्रसाद मिश्र : मध्यप्रदेश में स्वाधीनता आंदोलन का इतिहास, पृ. 90, भोपाल, 2002

रानी लड़ई सरकार

◆ *मशकूर अहमद कादरी*

बुंदेल वंश के महाराजा धरमपाल सिंह सन् 1817 में ओरछा की गद्दी पर बैठे। इन्होंने सन् 1834 तक ओरछा राज्य पर शासन किया। राजमाता महारानी लड़ई सरकार महाराजा धरमपाल सिंह की पत्नी थी। लड़ई सरकार योग्य, चतुर तथा कुशल राजनीतिज्ञ महिला थी। महाराजा धरमपाल सिंह की मृत्यु सन् 1834 में हुई। धरमपाल के वृद्ध पिता विक्रमजीत सिंह ने पुनः शासन संभाला और उसी वर्ष उनकी भी मृत्यु हो गई। मृत्यु से पहले विक्रमजीत सिंह ने तेज सिंह को गोद लिया था। तेज सिंह को उनका उत्तराधिकारी बनाया गया।[2] सन् 1834 में तेज सिंह ओरछा, ओरछा राज्य की गद्दी पर बैठे है।

तेज सिंह निःसंतान थे और वे अपना उत्तराधिकारी गोद लेना चाहते थे। इसके लिए लार्ड मेटकॉफ से अनुमति चाही, मेटकॉफ के द्वारा उन्हें गोद लेने की अनुमति मिल गई और तेज सिंह ने सुजान को गोद लिया, लेकिन लड़ई सरकार सुजान सिंह को गोद लिए जाने के विरोध में थी। सुजान सिंह विजना के जागीरदार हृदयशाह के पुत्र थे।[3] राजा तेज सिंह बुंदेला की मृत्यु सन् 1841 में हुई। सुजान सिंह को ओरछा राज्य का उत्तराधिकारी घोषित किया गया। सुजान सिंह राज्याभिषेक के समय अल्पायु थे। राजमाता लड़ई रानी को उनका प्रशासक

नियुक्त किया गया। इसी समय राज्य में उथल-पुथल का दौर प्रारंभ हो गया। सुजान सिंह के पिता हृदयशाह ओरछा राज्य के प्रशासक बनना चाहते थे, 'राजमाता लड़ई सरकार को कंपनी सरकार द्वारा 1842 में विधिवत रूप से रीजेंट (प्रशासक) बना दिया गया।''[4]

इसके बाद हृदय शाह एवं सुजान सिंह के भाई देवी सिंह ने प्रशासक बनने एवं लड़ई सरकार को हटाने के प्रयास तेज कर दिए। इन्होंने राज्य के पुराने कर्मचारियों एवं पदाधिकारियों को हटाकर नए कर्मचारी एवं पदाधिकारियों की नियुक्ति कर राज्य में अस्थिरता का वातावरण उत्पन्न कर दिया। इससे राजभक्त एवं पुराने कर्मचारियों में असंतोष उत्पन्न हो गया। पुराने पदाधिकारी राजमाता लड़ई रानी के नेतृत्व में संगठित हो गए। इस प्रकार राज्य में स्पष्ट रूप से दो दल बन गए। प्रथम हृदय शाह एवं देवी सिंह ने जो अपने समर्थक पदाधिकारी नियुक्त किए थे, वह 'नया राजदल' कहलाया। दूसरा, पुराने पदाधिकारी एवं राजभक्त, जो राजमाता लड़ई सरकार के समर्थन में संगठन वना, वह 'पुराना राज दल' कहलाया। इस प्रकार नया राजदल एवं पुराने राजदल बन गए।[5] इन दोनों दलों में संघर्ष की स्थिति निर्मित हो गई। इसी घटनाक्रम में हृदय शाह ने सुरक्षा की दृष्टि से सुजान सिंह को झांसी ब्रिटिश रेजीडेंट के पास भेज दिया।[6] जब सुजान सिंह झांसी से टीकमगढ़ वापस आ रहे थे तो पुराना राज दल के समर्थकों ने सुजान सिंह के काफिले पर हमला कर दिया, जिसमें नया राजदल के अनेक समर्थक मारे गए।

सुजान सिंह को ब्रिटिश रेज़ीडेंट की सुरक्षा में टीकमगढ़ लाया गया। 1842 के बुंदेला विद्रोह में सुजान सिंह विद्रोहियों के प्रति समर्थन का भाव रखते थे। इस बात की सूचना लड़ई ने कंपनी सरकार को भेज दी। किसी प्रकार ओरछा का शासन कंपनी सरकार की मदद से चलता रहा। सन् 1854 में देवी सिंह ने अपने भाई सुजान सिंह की जहर देकर हत्या कर दी।[7] लड़ई सरकार ने कंपनी सरकार को इस बात से अवगत कराया कि देवी सिंह के इस कृत्य से जन भावना को ठेस पहुंची, जनता भड़क सकती है तथा राज्य में गृहयुद्ध की स्थिति निर्मित हो सकती है। देवी सिंह ने राज्य की राजनीतिक स्थिति को भांपकर विद्रोह कर दिया। कंपनी सरकार ने देवी सिंह को विद्रोही तथा हत्यारा घोषित कर, बंदी बना दिया और मंदसौर जेल भेज दिया। कुछ समय बाद उन्हें नौगांव छावनी में नजरबंद कर दिया गया।

सुजान सिंह की मृत्यु के बाद राजमाता लड़ई सरकार ने दिगौड़ा के जागीरदार और बड़ा गांव व वंशज मर्दान सिंह के पुत्र हम्मीर सिंह को गोद लिया। रानी ने हम्मीर सिंह को ओरछा राज्य का उत्तराधिकारी घोषित किया। उस समय हम्मीर सिंह की आयु मात्र 4 वर्ष थी। डलहौजी ने घोषित किया कि ओरछा प्रथम श्रेणी का राज्य है और इसे अपना उत्तराधिकारी चुनने का पूर्ण अधिकार है। अतः "लार्ड डलहौजी ने इस गोद को स्वीकार किया और हिन्दू कानून के अनुसार वैध बतलाया।"[8]

हम्मीर सिंह की अल्पावस्था के कारण प्रशासनिक कार्य लड़ई की देख-रेख में संपन्न होते थे तथा महारानी स्वयं रीजेंट थी। रानी लड़ई ने प्रशासनिक सहायता हेतु दीवान नत्थे खां को अपना वजीर नियुक्त किया। रानी लड़ई ने हम्मीर की शिक्षा का उचित प्रबंध किया, अंग्रेजी की शिक्षा के लिए दिल्ली के प्रेमनारायण को और हिन्दी की शिक्षा के लिए पं. रघुनंदन प्रसाद पांडेय को नियुक्त किया।

ओरछा राज्य का 'वजीर' नत्थे खां योग्य तथा साहसी व्यक्ति था। वह रानी लड़ई का विश्वास पात्र था। 1842 के बुंदेला विद्रोह में ओरछा राज्य की स्थिति तटस्थ रही थी। राजमाता लड़ई सरकार कुशल राजनीतिज्ञ महिला होने के साथ-साथ महत्त्वाकांक्षी थी। उसे अपने वंश-कुल के सम्मान का पूरा-पूरा खयाल था। मराठों के द्वारा ओरछा के बुंदेला वंश का अपमान किया गया था और कुछ इलाके छीन लिए थे। संभवतः इसी कारण बुंदेला राजा विक्रमाजीत को ओरछा राज्य की राजधानी सन् 1783 में टेहरी स्थानांतरित करनी पड़ी थी। सन् 1785 में टेहरी का नाम भगवान कृष्ण के उपनाम 'टीकमजी' के नाम पर टीकमगढ़ किया गया।"[9]

1842 का बुंदेला विद्रोह दबा दिया गया, लेकिन अनेक बुंदेला सरदार और जागीरदार, जो बुंदेला विद्रोह का नेतृत्व कर रहे थे, अब भी सक्रिय थे। लड़ई रानी के समक्ष तटस्थ रहना आसान नहीं था। ओरछा में पहले से कंपनी का मित्र राज्य था। इसी समय 1857 का संग्राम आरंभ हो गया। लड़ई सरकार ने इसका राजनीतिक लाभ लेना चाहा और झांसी को शत्रु राज्य घोषित कर दिया। झांसी पूर्व में ओरछा राज्य का हिस्सा थी। मराठों ने ओरछा से झांसी के साथ-साथ बरूआ सागर क्षेत्र ले लिया था तथा मोहनगढ़ परगने का कर भी झांसी राज्य वसूल करता था।

इस समय का लाभ उठाकर लड़ई रानी ने अपने 'वजीर' नत्थे खां को झांसी पर आक्रमण का आदेश दे दिया। रीजेंट महारानी लड़ई सरकार का आदेश पालन करते हुए नत्थे खां ने 9 अगस्त, 1857 को झांसी पर आक्रमण कर दिया।

रानी लड़ई ने झांसी राज्य के विरुद्ध पन्ना, छतरपुर, बिजावर, चरखारी, दतिया, रियासतों के राजाओं सहित तरीचर, लोहरगंवा आदि के जागीरदारों को आमंत्रित किया और 4000 पैदल, 1000 घुड़सवार, 64 हाथी, 94 तोपों की एक सेना संगठित की।''[10] इस संयुक्त सेना ने नत्थे खां के नेतृत्व में बरूआ सागर विजित कर लिया। रानी झांसी ने लड़ई रानी को पत्र लिखा। सार यह था कि लड़ई सरकार जैसा चाहेगी, वैसा ही किया जाएगा, आक्रमण रोक दिया जाए। लड़ई सरकार ने इस पत्र पर ध्यान नहीं दिया, क्योंकि वह झांसी राज्य पाना चाहती थी।

नत्थे खां ने 27 अगस्त, 1857 को रानी लक्ष्मीबाई को पत्र लिखा कि, ''झांसी ओरछा राज्य का अंग है। आप झांसी खाली कर दें, ओरछा में आप जहां चाहें, वहां जगह दे दी जाएगी और रहने का प्रबंध कर दिया जाएगा।'' कुछ दिन यथास्थिति रही। 1858 के प्रारंभ में ह्यूरोज और लड़ई रानी की भेट कम्हैडी में हुई। रानी ने अपना पक्ष बहुत ही प्रभावशाली रूप से उसके समक्ष रखा और उसे आश्वस्त किया कि ओरछा कंपनी सरकार का मित्र राज्य है, जो कंपनी का शत्रु है, वह ओरछा का शत्रु है। इसी कारण ओरछा ने झांसी पर आक्रमण किया।

1858 में झांसी के पतन के बाद अंग्रेजों ने ओरछा राज्य की सहायता के प्रति आभार व्यक्त किया। ब्रिटिश सरकार ने मोहनगढ़ परगने का शुल्क, जो झांसी को ओरछा देता था, वह मुक्त कर दिया। ओरछा राज्य के सहायक राज्यों एवं जागीरदारों को पुरस्कृत किया गया। वजीर नत्थेखां को कैलगवां की जागीर प्रदान की गई। सन् 1862 में ब्रिटिश सरकार ने ओरछा राज्य को गोद लेने के लिए स्थायी रूप से अधिकृत कर दिया।

इस प्रकार लड़ई सरकार ने अपनी राजनीतिक कुशलता से अपने राज्य को सुरक्षित रखा और राज्य हित में अनेक इच्छित कार्य किए। सन् 1868 में राजमाता लड़ई सरकार का देहांत हो गया।[12]

राजमाता लड़ई सरकार एक कुशल राजनीतिज्ञ थीं। उन्होंने अपने राज्य और वंश की सुरक्षा, वृद्धि के लिए अनेक राजनीतिक षड्यंत्रों को विफल कर स्वयं को स्थापित किया। यथा—सुजान सिंह के राज्यारोहण के पश्चात हृदय शाह व देवी सिंह के षड्यंत्र को विफल कर स्वयं प्रशासक बनकर ओरछा राज्य को सुरक्षित किया। उन्होंने अंग्रेजों से ओरछा राज्य को गोद लेने के अधिकार को वैध स्वीकार कराया, जबकि पड़ोसी राज्य झांसी गोद लेने के अधिकार के प्रयास में विफल रहा। रानी लड़ई ने राज्य विस्तार के लिए अनेक राज्यों और जागीरदारों का समर्थन

प्राप्त किया, यह भी उनकी राजनीतिक सफलता थी। लड़ई सरकार ने ओरछा को राजनीतिक सम्मान दिलाया और अपने खोए हुए इलाके पुनः प्राप्त किए तथा राज्य को करमुक्त कराने में सफलता प्राप्त की। 1862 में गोद लेने का स्थायी अधिकार दिलाने में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की।

राजमाता लड़ई सरकार ने बुंदेला वंश की खोई प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित किया। उन्होंने तत्कालीन समाज में प्रचलित सती प्रथा जैसी अमानवीय प्रथा को सन् 1847 में ओरछा राज्य में समाप्त किया और सती प्रथा निषेध कानून लागू किया। उनके संरक्षण में हम्मीर सिंह ने सन् 1866-67 में सवाई महेंद्र हाईस्कूल का निर्माण टीकमगढ़ में कराया, जो क्षेत्र का पहला हाईस्कूल था।

वस्तुतः राजमाता लड़ई सरकार अपने राज्य एवं वंश के प्रति समर्पित महिला प्रशासक थी। उनका राजनीतिक तथा प्रशासनिक तंत्र मजबूत था। रानी ने अपने राज्य की सुरक्षा एवं विकास के लिए अपने कर्तव्यों का निर्वहन दृढ़ता से किया। वे कुशल राजनीतिज्ञ, समाज के उत्थान एवं शिक्षा के प्रति जागरूक एवं कुरीतियों एवं कुप्रथाओं की घोर विरोधी थीं।

संदर्भ

1. के.पी. त्रिपाठी : बुंदेलखंड का वृहद इतिहास, टीकमगढ़, पृ. 33, 1991
2. टीकमगढ़, गजेटियर, पृ. 69
3. ओरछा स्टेट गजेटियर, 1907, पृ. 35
4. वही, पृ. 36
5. के.पी. त्रिपाठी : बुंदेलखंड का वृहद इतिहास, टीकमगढ़, पृ. 33, 1991
6. ओरछा गजेटियर, 1907 पृ. 35
7. टीकमगढ़ गजेटियर, पृ. 70
8. ली वार्नर : लाइफ ऑफ डलहौजी 1904, लंदन पृ. 154
9. दि इम्पोरिकल गजेटियर आफ इंडिया वाल्यूम-XIX पृ. 241
10. भगवान दास माहौर : लक्ष्मीबाई रासो, भाग-2, पृ. 9
11. रानी लक्ष्मीबाई का लड़ई रानी को पत्र, 14/08/1857
12. नत्थे खां का झांसी रानी को पत्र-27.08.1857
13. टीकमगढ़ गजेटियर, पृ. 72

क्रांतिकारी ताईबाई

◆ *कुमारेन्द्र सिंह सेंगर*

जनपद जालौन की पहली महिला क्रांतिकारी ताईबाई जालौन रियासत के राजा बालाराव की बहन थी। ताईबाई का विवाह सागर के नारायण राव से हुआ था, परंतु विवाहोपरांत ताईबाई अपने पति सहित जालौन के किले में ही निवास करने लगी। राजा बालाराव की मृत्यु के पश्चात उनकी पत्नी रानी लक्ष्मीबाई के द्वारा शासन का संचालन उचित रूप से नहीं हो पा रहा था, इधर परिस्थितियों के विषम होने के कारण जालौन को अंग्रेजों ने अपने अधिकार में भी ले लिया था। ताईबाई अपने पूर्वजों का ऐसा अपमान नहीं देख पा रही थीं। अंग्रेजों से बदला देने के लिए उनके भीतर स्वाधीनता क्रांति का अंकुर फूटने लगा, इसी कारण उन्होंने गुपचुप तरीके से अपनी योजना को क्रियान्वित करने का विचार बनाया।

कानपुर में क्रांति की शुरुआत होने की सूचना 6 जून, 1857 को उरई पहुंची। इसके पश्चात यहां भी क्रांतिकारियों ने कार्यवाही प्रारंभ कर दी। क्रांति का आरंभ होते ही जालौन के डिप्टी कमिश्नर कैप्टन ब्राउन ने भागने में ही अपनी

भलाई समझी। कैप्टन ने भागते समय गुरसराय के राजा केशवदास को पत्र लिखकर जालौन में शांति स्थापित करने में सरकारी अधिकारियों की सहायता करने को कहा। राजा केशवदास मौकापरस्त व्यक्ति था, उसने अपने पूरे कार्यकाल में उसी का साथ दिया, जिसका पलड़ा भारी होता था। इससे पूर्व वह अंग्रेजों की दया पर ही गुरसराय पर अपना राज्य चला पा रहा था। कैप्टन के पत्र के बाद केशवदास ने जालौन में ताईबाई तथा अन्य क्रांतिकरियों के तेवर देखे तो उसने ताईबाई का साथ देने में ही अपनी भलाई समझी। कैप्टन के पत्र की भाषा में फेरबदल करके उसे सरकार चलाने के अधिकार-पत्र के रूप में परिवर्तित कर लिया। केशवदास ने अपने दोनों पुत्रों के साथ जालौन आकर अन्य सरकारी अधिकारियों को भगाकर किले पर अधिकार कर लिया। केशवदास के इस कृत्य को ताईबाई आदि ने क्रांतिकारियों का सहयोग समझकर धन-बल से उसकी सहायता की। इधर ताईबाई अन्य क्रांतिकारी गतिविधियों का संचालन करने लगी और राजा केशवदास पर विश्वास कर बैठी।

केशवदास की कुछ गतिविधियों से लगता था कि कभी वे क्रांतिकारियों के पक्ष में हैं और कभी लगता कि वे अंग्रेजों के पक्ष में हैं। इस बारे में एक घटना को प्रमुखता से देखा जाता है। जालौन में क्रांति के पश्चात दो अंग्रेजी डिप्टी कलेक्टर पशन्हा और ग्रिफिथ को बंदी बना लिया गया था। जब तक कानपुर में नाना साहब, तात्या तोपे क्रांतिकारी के रूप में और जालौन में ताईबाई की सक्रियता रही, तब तक केशवदास ने इन अंग्रेज अधिकारियों को बंदी बनाए रखा। अंग्रेज नाराज न हो जाएं, इस कारण से केशवदास ने उन्हें मारा भी नहीं और फिर कानपुर में क्रांतिकारियों की पराजय के साथ ही केशवदास ने दोनों अंग्रेज अधिकारियों को परिवार सहित सकुशल कानपुर पहुंचा दिया।

इस घटना के बाद से ताईबाई को विश्वास हो गया कि केशवदास अंग्रेजों के लिए कुछ भी कर सकता है। इधर पराजित क्रांतिकारी कानपुर से भागकर कालपी आ गए। तात्या टोपे भी अक्टूबर, 1857 को ग्वालियर के विद्रोही सैनिकों के साथ जालौन आ पहुंचे। ताईबाई ने तात्या टोपे के साथ मिलकर केशवदास को वापस गुरसराय जाने पर विवश कर दिया। इस घटना के बाद तात्या ने ताईबाई के पांच वर्षीय पुत्र गोविंद को जालौन की गद्दी पर बिठाकर ताईबाई को संरक्षिका घोषित कर दिया। इस कार्यवाही से जालौन में क्रांतिकारियों की सरकार का गठन हो गया और पेशवाई राज्य की स्थापना हुई। ताईबाई ने

इसके बाद भी अपनी गतिविधियों को विराम नहीं लगने दिया। क्रांतिकारी गतिविधियों के आगे के संचालन हेतु ताईबाई ने तात्या तोपे को तीन लाख रुपये की सहायता प्रदान की।

क्रांतिकारियों की सरकार बन चुकी थी और ताईबाई ने सफल संचालन के लिए प्रधानमंत्री तथा अन्य अधिकारियों की नियुक्ति की। ताईबाई ने अद्‌भुत क्षमता से अत्यल्प समय में एक बड़ी सेना का गठन करके उसे तात्या तोपे के साथ कानपुर पर अधिकार करने के लिए भेज दिया। कई हमलों में विजय भी प्राप्त हुई, परंतु पूर्ण अधिकार प्राप्त न हो सका। अंततः दिसंबर में एक युद्ध में इस सेना की भयानक पराजय हुई। यह सेना हताश मन से वापस लौट आई। ताईबाई यह भलीभांति समझती थी कि यदि इस समय हिम्मत हारी तो क्रांतिकारियों में जोश पैदा करना मुश्किल हो जाएगा। इस कारण से ताईबाई ने अपने व्यक्तिगत जेवरों और कीमती वस्तुओं को बेचकर प्राप्त धन से सेना का पुनः गठन किया।

जालौन में क्रांतिकारियों का स्वतंत्र राज्य पहले से ही स्थापित था, ताईबाई ने सहयोग के लिए चरखारी नरेश से सहायता मांगी। अंग्रेजों के हितैषी चरखारी नरेश ने सहायता देने से मना कर दिया तो ताईबाई ने तात्या तोपे के नेतृत्व में अपनी सेना के द्वारा चरखारी पर विजय प्राप्त की। अपनी समूची सेना के खर्चों, युद्ध खर्चों, वेतन आदि का भार ताईबाई स्वयं ही उठाती रहीं। अपनी सूझ-बूझ और कुशल नेतृत्व क्षमता के कारण ताईबाई ने संपूर्ण जनपद में अंग्रेजों का नामोनिशान भी न रहने दिया।

ताईबाई की बढ़ती शक्ति से अंग्रेज भी परेशान थे। एक ओर क्रांतिकारी घटनाएं हो रही थीं और रानी लक्ष्मीबाई, नाना साहब आदि की गतिविधियों के साथ-साथ ताईबाई का शासन अंग्रेजों को रास नहीं आ रहा था। इस समय तक कालपी क्रांतिकारी घटनाओं के संचालन का केंद्र बन चुका था। मई, 1858 में कोंच के युद्ध में क्रांतिकारियों की पराजय से अंग्रेजों को जनपद में पुनः घुसने का मौका मिला। कोंच में अंग्रेजों की विजय उनकी कूटनीति के कारण ही नहीं, अपितु सैनिकों की अनुशासनहीनता के कारण हुई। इस पराजय के बाद तात्या टोपे वापस आने के स्थान पर ग्वालियर चले गए। इधर ताईबाई असमंजस में थीं और अंग्रेज भी जालौन के स्थान पर कालपी किले पर कब्जा करना चाह रहे थे। इसका कारण एक तो वे क्रांतिकारियों की शक्ति को सीधे तौर पर कम करना

चाहते थे और दूसरी ओर ताईबाई के साथ संघर्ष में अंग्रेज अपनी शक्ति को कम नहीं करना चाहते थे।

कोंच में विध्वंस करने के बाद अंग्रेजों ने सीधे कालपी की ओर रुख नहीं किया और न ही सीधे तौर पर ताईबाई से युद्ध किया। अंग्रेजों ने नयी कूटनीति का इस्तेमाल करते हुए ताईबाई के सहयोगियों को मिटाना शुरू कर दिया। इसके लिए उन्होंने युद्ध का नहीं वरन नरसंहार का सहारा लिया। सबसे पहले हरदोई के जमींदार अंग्रेजी सेना के कोपभाजन बने। भयंकर लूटपाट और नरसंहार किया, एक दर्जन से अधिक क्रांतिकारियों को खुलेआम पेड़ से लटकाकर फांसी की सजा दे दी गई। अंग्रेजों का नरसंहार जारी रहा, अब वे ताईबाई से सीधे न टकराकर जनता को निशाना बना रहे थे। ताईबाई ने नरसंहार को रोकने का उपाय भी किया, किंतु अंग्रेज सीधे-सीधे युद्ध भी नहीं कर रहे थे। इस कारण ताईबाई के समक्ष दिक्कत भी आ रही थी।

अंततः ताईबाई ने नरसंहार रोकने के लिए मई, 1858 को अपने पति और पुत्र के साथ आत्मसमर्पण कर दिया। अंग्रेजों ने ताईबाई की जालौन की समस्त संपत्ति जब्त कर ली। राजद्रोह और विद्रोह का आरोप लगाकर उन्हें तथा उनके सहयोगियों को आजीवन कारावास की सजा सुना दी गई। ताईबाई की लोकप्रियता और शक्ति से घबराकर अंग्रेजों ने उन्हें बंदी जीवन बिताने के लिए जालौन से बहुत दूर मुंगेर बिहार भेज दिया। यहीं पर कैदी जीवन बिताते हुए उनकी मृत्यु सन् 1870 में हो गई। ताईबाई की मृत्यु के बाद भी अंग्रेज उनकी लोकप्रियता और शक्ति से घबराते रहे। इसका प्रमाण इस बात से मिलता है कि उनकी मृत्यु के बाद उनके कैदी बेटे को पढ़ने के लिए तो इलाहाबाद भेज दिया गया, किंतु उनके बंदी पति को जालौन में रहने की आज्ञा नहीं दी गई।

वर्तमान में ताईबाई को अंग्रेजी कोप के कारण कोई जानता भी नहीं है। एक छोटे से स्थान पर उन्होंने अपनी कार्यक्षमता और कुशल सैन्य संचालन से अक्टूबर, 1857 से मई, 1858 तक स्वतंत्र सरकार की स्थापना कर उसका संचालन किया। ताईबाई के द्वारा लगातार सात माह तक क्रांतिकारी सरकार के रूप में कार्य किया गया। यह दुस्साहस अंग्रेजों को नागवार गुजरा, इसी कारण से ताईबाई से संबंधित समस्त दस्तावेज, वस्तुओं, यहां तक कि जालौन स्थित उनके किले को सन् 1860 में जमींदोज करवा दिया। अंग्रेजी सरकार

की इस कायरतापूर्ण कार्यवाही के बाद भी इस वीर महिला की वीरता का वर्णन करते हुए तत्कालीन झांसी डिवीजन के एक अंग्रेज अधिकारी जे.डब्ल्यू. पिंकने ने लिखा भी था कि वर्ष 1858 के प्रारंभ होते-होते दबोह और कछवाधार के कुछ भागों को छोड़कर पूरा जालौन जिला ताई के अधिकार में आ गया था।

अंग्रेजों ने यथासंभव जालौन से ताईबाई से संबंधित सभी वस्तुओं, दस्तावेजों आदि को समूल नष्ट कर दिया था। इसके बाद भी उनकी छवि, लोकप्रियता भले ही रानी लक्ष्मीबाई जैसी न रही हो, किंतु जनपद जालौन के निवासियों के मन-मस्तिष्क में ताईबाई की छवि आज भी बसी हुई है।

बुंदेलखंड की अन्य वीरांगनाएं

◆ *रामनारायण शर्मा*

बुंदेलखंड भूमि कलम, कृपण एवं कला के लिए बहुश्रुत है। यहां के रजकणों में वीर-कलावती सन्नारियों के सुकर्मों ने राजनीति-रीति एवं सांस्कृतिक कीर्ति को प्रभावित कर एक दिशा प्रदान की है। इसीलिए बुंदेलखंड नारी स्वत्व, स्वाभिमान और शक्ति-सामर्थ्य के लिए अभिज्ञात है। यहां लोक-साहित्य भी नारी शौर्य और अस्मिता की अमर कीर्ति से परिपूर्ण है। यहां का इतिहास नारी के प्रन-पत व सत की रक्षा में प्राणोत्सर्ग की गाथाओं का साक्षी है, किंतु असंख्य वीरांगनाओं के नामों को इतिहास के शुष्क पृष्ठों में अनदेखा किया गया है, अतएव ऐसी वीरांगनाओं की वीरता-धीरता और कला की गौरव गाथा को संस्कृति के दर्पण से परिलक्षित कर इसकी आभा के आभास से इतिहास को परिचित कराया जा सके, यही हमारा संकल्प है।

लोधारानी : सन् 1196 ई. में कुतुबद्दीन ऐबक दिल्ली का सुल्तान था। इसी समय झांसी कमिश्नरी का वर्तमान जालौन जनपद का कालपी नगर अपने पौराणिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक व राजनीतिक महत्त्व के लिए प्रसिद्ध था। इसका राजा श्री चन्द्र लहरिया था। लोधारानी इसी राजा की रानी थी।

राजा चन्द्र लहरिया की पराजय का समाचार जब किले में पहुंचा तो रानी लोधा ने शत्रु से बदला लेने की ठानी। उसने किले की स्त्रियों को एकत्र कर और बचे रक्षकों को कालपी के गौरव की रक्षा के लिए तैयार किया। सब रण की तैयारी में युद्ध के अस्त्र-शस्त्र ले किले के मुख्य द्वार की रक्षा में डट गए। रानी लोधा रण-बांकुरों की भांति सज-संवरकर अपनी सेना के आगे आकर खड़ी हो गई। शत्रु सेना किले पर अधिपत्य करने तथा रानी लोधा को पकड़ने का जी-जान से प्रयास कर रही थी, किंतु उसे अनेक बार मुंह की खानी पड़ी थी। रानी लोधा अपने साथ बलिदानी नारियों की सेना लेकर किले से बाहर निकल पड़ी और शत्रु सेना को चीरती, तलवार से काटती जमुना तट के एक टीले पर पहुंच गई। शत्रु सेना ने रानी लोधा को घेर लिया। अपने संगी-साथियों की मृत्यु होते देख रानी लोधा ने सभी के साथ सूर्यकुंड पर आत्मदाह कर अपने सतीत्व व स्वाभिमान की रक्षा की थी।

मांडुला : तेरहवीं शताब्दी में बुंदेलखंड पवांया (करैरा) में प्रतिहार राजा पुण्यपाल पंवार का राज्य था और दिल्ली में अलाउद्दीन खिलजी सिंहासनारूढ़ था। राजा पुण्यपाल की रानी गढ़ कुंडार के बुंदेला राजा सोहनपाल की पुत्री थी। इनके पुत्र रतन सिंह व देव सिंह हुए। इस समय पथरीगढ़ (देवगढ़) का राजा ज्वाला सिंह था। इसके पुत्र पारत सिंह, जिसका वखान आल्हा में देखने को मिलता है, की पुत्रियों का विवाह मल्लयुद्ध में पराजित होने पर चंद्रावती का रतनसिंह एवं पद्मावती का विवाह देवी सिंह से हुआ था। रतन सिंह रतनगढ़ के राजा बने और इनकी पुत्री मांडुला राजकुंवरि के नाम से प्रसिद्ध हुई।

मांडुला अप्रतिम सुंदरी, साहसी व वीर थी। अस्त्र-शस्त्र संचालन में निपुण तथा आखेट करने में प्रसिद्ध थी। मांडुला की सुंदरता तथा रतनगढ़ की समृद्धि से दिल्लीपति अलाउद्दीन ईर्ष्या रखता था। मांडुला को हस्तगत करने की चाल चल उसने रतनगढ़ के राजा को कर अदायगी और अधीनता स्वीकार करने का फरमान भेजा, जिसे राजा ने अस्वीकार कर दिया था। इससे नाराज अलाउद्दीन खिलजी ने दबाव बनाया और अधीनता स्वीकार करने के साथ मांडुला का डोला सुल्तान की सेना में भेजने का हुकुम दिया। राजा रतनसिंह अपनी प्रजा व बहन की रक्षा के लिए संकल्पित था। अतएव उसने युद्ध का जवाब युद्ध से देने का ऐलान कर दिया। सारी प्रजा उसके साथ थी।

मांडुला ने अपने भाई राजा रतन सिंह को वचन दिया कि वह रतनगढ़ की रक्षा में अपना सर्वस्व योगदान देगी और रतनगढ़ के रजकणों में पंवारों के रक्त बीजों को अपनी समस्त शक्ति से नष्ट कर देगी। मांडुला की वीरता एवं संकल्प शक्ति को देखकर राजा गंगाराम व समस्त प्रजा अत्यधिक प्रसन्न हुई।

सन् 1303 ई. में अलाउद्दीन खिलजी ने दक्षिण विजय की कूच में रतनगढ़ को दंडित करने के मंसूबों के साथ लगभग 7 लाख सैनिकों को लेकर सिंध नदी के कछार में स्थित रतनगढ़ को चारों ओर से घेर लिया। उसने राजा को समर्पण करने और मांडुला का डोला देने को कहा अथवा युद्ध की विभीषिका में जलकर स्वाहा होने की बात रखी। राजा गंगाराम ने इसे ठुकरा कर युद्ध की चुनौती स्वीकार की थी। उसने रतनगढ़ पर तीनों ओर से भयंकर आक्रमण कर दिया।

असंख्य शत्रु सेना के समक्ष रतनगढ़ के वीर ठहर नहीं सके और राजा गंगाराम अपने वीर सेनानियों के साथ वीरगति को प्राप्त हुए।

रतनगढ़ की पराजय सुन मांडुला ने किले के नर-नारियों को एकत्रित कर अपने रतनगढ़ की माटी का ऋण चुकाने के लिए लाल जोड़ा पहनकर माथे पर तिलक और हाथ में तलवार लेकर मर-मिटने के लिए तैयार होने का आह्वान किया। शत्रु से अपने भाई का बदला लेने के मंसूबे से मांडुला किले से बाहर निकल शाही सेना पर टूट पड़ी। दीपावली के बाद भाई-दूज की भोर की बेला में बहनों ने अपने भाइयों के बलिदान का मोल चुकने के लिए आततायी शत्रु सेना में दहशत फैला दी। मांडुला अकेली समरांगण में जूझती रही। अंत में अपने वीरान किले की ओर देख, उसे प्रणाम कर सिंध की अजस्र जलराशि में समा गई। अलाउद्दीन अपनी इस हार से खिन्न चित्तौड़गढ़ की रानी पद्मावती को पाने के लिए हुए नर संहार की याद कर मायूस हुआ।

केसर दे : केसर दे राजा मान सिंह की पुत्री थी। केसर दे अनुपम सुंदरी और अस्त्र-शस्त्र संचालन में कुशल थी। मान सिंह गढ़कुंडार का स्वतंत्र राजा था। तेरहवीं सदी में चंदेलों के पतन के बाद वेत्रवती का समस्त भू-भाग खंगहारों के अधिपत्य में था। ये तलवार के धनी व वीर योद्धा थे। खूबसिंह खंगार के बाद लगभग एक सदी तक इनका राज्य रहा। मान सिंह इसी खंगार राज्य का सन् 1346-47 में राजा था। अपनी स्वतंत्र नीति से मान सिंह दिल्ली सुलतान मुहम्मद तुगलक की आंखों में खटकता था। उसने सबक सिखाने के मंसूबे से मानसिंह को दिल्ली दरबार की अधीनता स्वीकार करने का फरमान

जारी किया, जिसे राजा मान सिंह ने ठुकरा दिया। इस पर सुरा-सुंदरी के शौकीन सुलतान ने मान सिंह को अपनी सुंदर पुत्री का डोला दिल्ली हरम में भेजने का प्रस्ताव भेजा और ऐसा न करने पर कुंडारगढ़ की बरबादी की धमकी दी। मान सिंह ने पत्र में कहा कि लुटेरों और बर्बर सुलतानों की मंशा अपनी बेटी देकर क्षत्रिय कभी पूरी नहीं करते। उनकी तलवार ही इसका जवाब देगी। अपने पिता की वीरता एवं धीरता से केसर दे बहुत प्रसन्न हुई, क्योंकि इससे कुल-जाति व राज्य की मर्यादा की रक्षा जुड़ी थी। केसर दे ने कहा, "पिताजी लुटेरों की भुजाओं में इतनी शक्ति नहीं कि हमें भयभीत कर सकें। यदि उन्होंने ऐसा कुछ किया तो गढ़कुंडार उनकी कब्रगाह बनेगी। खंगहारों की बेटियों के खंग की धार का उन्हें अभी अनुमान नहीं है। गढ़कुंडार पर गिद्धवासिनी माता की कृपा है। एक क्षत्राणी के कर्तव्य का हमें भान है और खंगारों के सम्मान की रक्षा के लिए मैं सक्षम हूं।" केसर दे के विचारों से मानसिंह आश्वस्त तो हुआ, किंतु युद्ध में गढ़कुंडार की रक्षा से वह चिंतित था। कई दिनों तक भयंकर युद्ध चला और मानसिंह को वीरगति मिली।

अपने पिता की मृत्यु के समाचार और सुल्तान की सेना की दस्तक किले के फाटक पर सुन केसर दे ने समस्त नारी शक्ति को एकत्रित कर उन्हें कुंडारगढ़ की रक्षा का आह्वान किया। सभी नारियों, बच्चों, माताओं को अपने आत्मोत्सर्ग से सतीत्व की रक्षा की बात कही। केसर दे अपने राज्य-ध्वज का पूजन एवं मां दुर्गा को नमन कर जौहर की ज्वाला में समर्पित हो गई। नारियां जौहर की आग में कूद पड़ीं।

मथुरावली : 14वीं सदी का एरकच्छा (एरच) बेतवा का कछार क्षेत्र अपनी समृद्धि और वीरता की पहचान था। मथुरावली इसी क्षेत्र के गांव के एक परिवार में जन्मी और बड़ी हुई। उसकी सुडौल देहयष्टि, सौंदर्य की चर्चा से गांव व कुल प्रसिद्ध था। मथुरावली अस्त्र-शस्त्र के संचालन में भी पारंगत होकर अपने कुल की प्रतिष्ठा बन गई थी। वह राजपूतों की आन-बान-शान थी। यवनों की मनमानी और क्षेत्र में सुंदर नारियों का बलात अपहरण उन दिनों आम बात थी। ऐसे समय में मथुरावली के भाई उसे ससुराल से विदा कराकर घर ला रहे थे। डोला जाते देख तुर्क सिपाहियों ने उसे रोका। डोले के भीतर अनिंद्य सुंदरी को देख उन्होंने उसे अपने यवन सेनापति को भेंट करने की सोच बलात डोला लेकर वह किले में पहुंचे तो यवन राजा बहुत खुश हुआ।

की संपन्नता से ईर्ष्या रखता था और उसकी मान-मर्यादा को नष्ट करने को तत्पर था। बंदी मथुरावली शिविर में आग लगा देती है और जलते हुए घोषणा करती है कि उसने आत्मोत्सर्ग कर अपनी भूमि-कुल की रक्षा की है।

जारे मुगल के पानी भर लिआ
प्यासी मरे मथुरावली।
जौनो मुगल पानी गऔ
बंगले में दे लई आग
ठांड़ी जरैं मथुरावली।
अंग जरैं जैसे ताकड़ी
केस जरै जैसे घास
ठांड़ी जरै मथुरावली।
रोय चले बांके बलमा
विहँस चले राजा वीर (भाई)
ठांडी जरै मथुरावली।
राखी पगड़ी की बहना लाज
ठांड़ी जरै मथुरावली।

मणिमाला : सन् 1525 ई. में चंदेरी में खंगारों का राज्य था। मणिमाला इसी चंदेरी के रज-कणों की आभा बन महिमामंडित हो रही थी। मणिमाला में सौंदर्य के साथ वीरता और धीरता का अद्‌भुत समन्वय था। इसकी चर्चा दूर-दूर तक फैल गई थी। युवराज्ञी को पाने की लालसा मांडू व मालवा के सुकुमारों को उद्वेलित किए रहती। मणिमाला ने अपने प्रण की बात बताकर राजमाता से स्पष्ट कर दिया कि वह अपना जीवन साथी उसी को चुनेगी, जो अपने तीर से रस्सी में बंधी लौंग का भेदन कर सके। यह बात मालवा में पहुंची। मालवा का राजकुमार मेदनीराय मणिमाला के संग विवाह करने को उत्सुक हुआ। मणिमाला के स्वयंवर में वह इसी लालसा से उपस्थित हुआ। शर्त के अनुसार स्वयंवर में पधारे योद्धा अपने बाणों से 'लौंग भेंदन' कर असफल हो वापस हो गए। तभी मालवा के राजकुमार मेदनीराय ने उठकर स्वयंवर की शर्त के अनुसार रस्सी में बंधी लौंग का अपने बाण से भेदन कर दिया। राजमाता की अनुमति से मणिमाला ने मेदनीराय के गले में वरमाला डाल उसका वरण किया।

मालवा के सुलतान और चंदेरी के हिम्मत सिंह ने चंदेरी के विनाश का मंसूबा पाल रखा था। उसी समय खनवा के युद्ध में मिली विजय में बाबर को चंदेरी के विनाश का अवसर दिखाई दिया। हिम्मत बहादुर ने बाबर को चंदेरी और मणिमाला के सौंदर्य का समाचार देकर इन्हें हस्तगत करने को आमंत्रित किया। महत्त्वाकांक्षी बाबर यह सलाह मानकर एक विशाल सेना लेकर चंदरी पहुंचा और मेदनीराय को अपनी रानी मणिमाला को सौंप तथा उसकी अधीनता स्वीकार करने का फरमान भेजा। भयंकर संग्राम में असंख्य सेनानी हताहत हुए। मेदनीराय ने द्विगुणित शक्ति से मुगल सेना पर प्रहारकर उसे पीछे हटने के लिए विवश कर दिया। इससे घबराकर बाबर ने तोपों का प्रहार कर चंदेरी की सेना को हतप्रभ कर दिया। मेदनीराय जख्मी होकर दुर्ग में लौटा। मणिमाला के अथक प्रयासों के बावजूद चंदेरी का सूर्य अस्त हो गया। मणिमाला चंदेरी की रक्षा में जुट गई। गद्दार अहमद खां और हिम्मत सिंह मारे गए।

मणिमाला ने 1500 राजपूत रमणियों के माथे पर कुमकुम लगाया और एक-एक कर राजपूत स्त्रियों ने प्रांगण में बने अग्निकुंड में कूदकर अपने सौभाग्य की रक्षा की। उन सभी ने चंदेरी की मान-मर्यादा को विनष्ट नहीं होने दिया। सन् 1528 की 29 जनवरी की रात चंद्रगिरि दुर्ग से आग की लपटें उठकर चंदेरी के आसमान को रक्ताभ कर रही थीं, जिनमें कल के नए सूरज के उदय का आमंत्रण था।

लालकुंवरि सारन्धा : लाल कुंवरि राजा फतेहसिंह की वीर पुत्री थी, जिसके बलिदान की कहानी हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक प्रेमचंद ने 'सारन्धा' नाम से लिखी थी। लाल कुंवरि अपने पिता की स्वाभिमानी लाड़ली बेटी थी, जो अस्त्र-शस्त्र संचालन में निपुण थी। रणक्षेत्र में पीठ दिखाने वाले के प्रति वह कठोर थी। एक बार उसका भाई युद्ध में पीठ दिखाकर घर लौटा तो उसकी पत्नी उसके स्वागत के लिए द्वार पर पहुंची, किंतु लाल कुंवरि ने द्वार बंद कर दिया। सारन्धा ने उस समय वंश की लाज बचाने के विचार से अपने प्रिय भाई को युद्ध में पुनः भेज दिया था। उसकी यह दृढ़ता इस लोक-गीत में देखने को मिलती है—

बीरा वंश रखों लजायों
बीरों से हार मान लौट घरै आऔ।
रानी की आंख में खून उतर आऔ।

भोजी खों भेद वचन बान जो चलाओ।
हो तौ मौरो भरतार मार पेट में कटार
अरी करती आर-पार जैसेई घरै लौट आयौ।
ऐसे पति सौं तौ भली रांड है कहायौ।
बीरा बंस खों लजायौ।

लाल कुंवरि के ऐसे वचन सारे क्षेत्र में फैल गए और लोग उसकी प्रशंसा करते। समय के साथ लाल कुंवरि का विवाह चंपतराय से हो गया और वह महोबा की महारानी बन गई। इस समय मुगल बादशाह शाहजहां दिल्ली सम्राट था। वह चंपतराय की वीरता से ईर्ष्या रखता था। उसने महोबा राज्य पर कर अदायगी न करना सल्तनत का विरोध माना। अतः चंपतराय को पकड़ने और प्रताड़ित करने के लिए सेना भेजी, किंतु चंपतराय उसकी पकड़ में नहीं आए और स्वाभिमान से राज-काज चलाते रहे। उनके राजकाज में सारन्धा अपना पूर्ण योगदान देती थी। शाहजहां ने चंपतराय को बागी घोषित कर जीवित व मुर्दा पकड़ने का फरमान जारी किया, किंतु चंपतराय को मुगल सेना पकड़ नहीं सकी।

समय और सत्ता बदली। औरंगजेब ने सत्ता संभाली और उसने चंपतराय का क्षेत्र कुहारगढ़ कोंच परगना उससे छीनकर दतिया के शुभकरन को दे दिया था। चंपतराय वृद्ध हो गए थे और छापामार युद्ध करते-करते थक गए थे। रानी सारन्धा की कोख से छत्रसाल का बीहड़ों में ही जन्म हुआ। कुछ समय बाद चंपतराय अपनी रानी के साथ सन् 1662 ई. में बेरछा से जटवारा जा रहे थे तो शत्रु सैनिकों ने उन्हें देख उनका पीछा किया। चंपतराय और रानी सारन्धा की पालकी के साथ चल रहे उनके वफादार सैनिकों ने शत्रुओं का डटकर मुकाबला किया, परंतु बाद में पालकी और महाराज चंपतराय मुगल सेना से घिर गए। रानी सारन्धा अपने पति की रक्षा हेतु तलवार से लड़ती रही। वृद्ध चंपतराय रुग्णावस्था में शत्रु सैनिकों के घेरे को देख पकड़े जाने की अपेक्षा शहीद की मृत्यु वरण करने को तैयार हो गए, लेकिन रानी सारन्धा ने उन्हें धैर्य धराया। शत्रु सैनिक अत्यंत निकट आ गए तो राजा चंपतराय ने रानी सारन्धा से कहा कि वह उनके पेट में कटार भोंककर मुक्ति दिलाए। शत्रु के द्वारा अपने को पकड़े जाने की अपेक्षा मृत्यु को वरण करना चंपतराय ने श्रेयष्कर समझा। सारन्धा ने कटार पति के पेट में भोंक दी और उसकी मृत्यु के बाद उसी कटार से अपने जीवन का उत्सर्ग कर अमर हो गई। इस प्रकार लाल कुंवरि ने अपने

सत-पत की गाथा अपने बलिदान से रच दी थी।

विजय कुंवरि : बुंदेलखंड केसरी छत्रसाल की शक्ति की धमक पूरे बुंदेलखंड में शत्रु-हृदय को धक-धक करती रही। उन्हीं के पुत्र जगत राज ने देश-धर्म और स्वाभिमान की लड़ाई जारी रखी थी, जिसमें उनकी रानी विजय कुंवरि पूरे मनोयोग से उनका साथ देकर सत-पत का धर्म निभा रही थी। छत्रसाल के बाद शत्रुओं ने उनके पुत्र जगतराज पर दबाव बनाया और मोर्चाबंदी रची गई। इलाहाबाद के सूबेदार मुहम्मद खां बंगस ने अपनी पुरानी पराजय का बदला लेने की मंशा से सन् 1732 ई. में जैतपुर पर आक्रमण कर दिया। राजा जगतराज ने उसकी इस चुनौती को स्वीकार कर लिया। जगतराज अपने पिता छत्रसाल की तरह ही शक्तिमान, वीर-योद्धा थे। उन्होंने अप्रतिम वीरता के साथ युद्ध में शत्रु की सेना का संहार कर उसे तहस-नहस कर दिया। इसमें मुगल सेना का सेनापति दलेल खां मारा गया। तभी भागती हुई अपनी सेना को रोक बंगस स्वयं युद्ध क्षेत्र में आ डटा। भयंकर युद्ध हुआ। युद्ध करते हुए राजा जगतराज जख्मी हो मूर्छित हो गए।

रानी विजय कुंवरि को राजा जगतराज के घायल होने का जैसे ही समाचार मिला, वैसे ही जैतपुर से सैनिकों को लेकर वह युद्ध क्षेत्र पहुंची। विजय-भावनाओं के उबाल से शत्रु सेना गफलत में थी। ऐसे में रानी ने उन पर प्रबल प्रहार कर उन्हें भागने को विवश कर दिया। रानी युद्ध में जख्मी राजा जगतराज को स्वस्थ देख प्रसन्न हुई। दोनों ने बाद में मिल-जुलकार पुनः युद्ध प्रारंभ कर दिया। विजय रानी विजय कुंवरि के नाम घोषित हुई।

वीरवती : वीरवती एरच (झांसी) के समीपस्थ एक साधारण परिवार की पुत्री थी। वह अपने 12 भाइयों की इकलौती बहन थी। इसलिए सबकी लाड़ली थी। बेतवा के कछारों में उसने तलवार-तीर चलाना सीखा था। वह साहसी और बड़ी निर्भीक थी। उसका विवाह समीप के एक गांव में हुआ था। उसके बारह भाई उसे लिवाने उसकी ससुराल गए थे और पालकी में बिठाकर घर वापस आ रहे थे। ऐसे में घटित एक घटना में वीरवती ने अपनी कुल-मर्यादा की लाज बचाने में प्राणों का उत्सर्ग कर एक अमरगाथा रच दी थी।

इस समय आसकरन ग्वालियर का सूबेदार था और अब्दुल्ला कालपी एवं मांडेर का, हसन खां और ऐची खां एरच का सूबेदार था। एरच बुंदेलों का क्षेत्र रहा, किंतु इस सीमावर्ती क्षेत्र में स्थितियां बदलती रहती थीं। बुंदेलों की शक्ति

घूमते रहते और स्त्रियों का अपहरण कर प्रताड़ना में संलग्न रहते थे। वीरवती का डोला मुगल सिपाहियों ने रोका और उसमें बैठी सुंदर नारी को, उन्हें सुपुर्द करने को कहा। इस पर भाइयों ने विरोध किया। दोनों ओर से युद्ध शुरू हो गया। बारह भाई अपनी तलवार म्यान से निकाल मुगल सैनिकों का संहार करने लगे। धरती पर शवों के ढेर लग गए। मरते दम तक भाइयों ने अपनी बहन की रक्षा की थी। शत्रु के सिपाहियों को बहन के समीप पहुंचने नहीं दिया था–

जौलों चली सांस डोलई नो उछलत फिर बछैया।
हाय कोंस कचरी से कट गए बारह कुंवर कन्हैया

अंत समय आते देख जीवित भाइयों ने बहन से लड़ते-लड़ते विदा ली और बहन से कुल की लाज की रक्षा रखने का वचन ले लिया था। अपने भाइयों के बलिदान और कुल-मर्यादा की लाज रखने से वचनबद्ध वीरवती चंडी भवानी का स्मरण कर डोले से बाहर निकल रण-क्षेत्र में कूदकर उन्हें गाजर-मूली की तरह तलवार से काटने लगी। उसका यह रौद्र रूप देख मुगल सिपाही हतप्रभ रह गए। वीरवती के शौर्य के आगे हक्के-बक्के रह गए। फिर भयंकर युद्ध हुआ। तलवार के प्रहारों से क्षत-विक्षिप्त वीरवती का शरीर धरती पर गिर पड़ा।

गौरा देवी : वीरवर हरदौल के वंशजों की 'अष्टगढ़ी' जागीर में चिरगांव एक जागीर थी। सन् 1790 ई. में यहां के राजा गणेश जू बुंदेला थे। इसी के समीप ग्राम गिरारी में मदनपाल बुंदेला एक छोटा जागीरदार था। उसके सात पुत्रों में गोरा एक मात्र पुत्री थी। गौरा अप्रतिम सुंदरी व चतुर थी। उसके खून में वीर क्षत्रियों का रक्त-प्रवाहित हो रहा था।

कालपी व भांडेर में मुगल बादशाह का दखल था, जिनकी मनमानी से जनता त्रस्त थी। मदनपाल की जागीर वैसे तो ओरछा राज्यांतर्गत थी, किंतु मुगल सूबेदार इस पर अपनी धौंस जमाए रहते। मदनपाल ऐसे में दो राज्यों को कर देता, जिसे बाद में उसने बंद कर दिया था। ऐसे में मुगलों ने उस पर कर अदायगी का दबाव डाला और सुंदर गौरा को दिल्ली दरबार के हरम की शोभा बनाने का फरमान भेज दिया। इसे मदनपाल ने अस्वीकार कर दिया था। इससे क्रोधित रिसालदार सल्लू खां एक बड़ी सेना ले गिरारी पर आ धमका। उसने अपनी शर्तों का फरमान मदनपाल को भेजा और तुरंत अमल करने को कहा। इस अप्रत्याशित आक्रमण से मदनपाल के वीर पुत्र छत्रपाल ने अपने भाइयों के साथ पिता

मदनपाल से विचार-विनिमय कर बहन गौरा की रक्षा की दृष्टि से शत्रु का सामना पूरी शक्ति से करने की सलाह दी।

इस भयंकर युद्ध में गिरारी के वीरों ने मुगलों के छक्के छुड़ा दिए थे, किंतु मुट्ठीभर वीर कब तक विशाल सेना से लड़ सकते थे। छत्रपाल और उसके भाई लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त हुए। पिता का मूक बलिदान देख, मुगल सैनिकों से घिरी गौरा ने सशस्त्र संघर्ष किया। अंतिम क्षण में गिरारी को नमन कर बेतवा की अजस्र जलधारा में कूदकर उसने आत्मोसर्ग कर सत-पत की रक्षा की थी।

राजो रानी : सन् 1842 में बुंदेला-विद्रोह के प्रणेता राजा पारीछत की रानी राजो टमटम के जागीरदार बहादुर सिंह की पुत्री थी, जिसने बुंदेली संस्कृति और साहस को पहचाना था। राजा पारीछत के राज्यारोहण के समय कंपनी सरकार के नुमाइंदों को देख जैतपुर की रानी राजो के मन में उनकी कुटिलता के प्रति ईर्ष्या के भाव जाग्रत हो गए थे, जो अंत तक बने रहे। समय की चाल के साथ अंग्रेजों की क्रूर चालें भी उजागर हुईं। राजा पारीछत का 'बुंदेला' विद्रोह आपसी फूट के कारण विफल हो गया था, जिसने अंग्रेजों को राजा पारीछत के विरुद्ध खड़ा कर दिया था। अंग्रेजों के साथ अंग्रेजपरस्त चरखारी नरेश रतन सिंह भी था, जो जैतपुर का शत्रु था। रतन की कुचालों और अंग्रेजी मंसूबों के विरुद्ध राजा पारीछत ने पूरी शक्ति से लड़ाई लड़ी। वह प्रारंभ में विजयी रहे, किंतु बघौरा की अंतिम लड़ाई में वह पकड़े गए। कानपुर में बंदी बनाकर रखे गए। रानी राजो जैतपुर की पराजय से उत्तेजित होकर मन ही मन बदले की भावना से उत्प्रेरित हुई। कंपनी सरकार ने सन् 1849 ई. में उन्हें जैतपुर की रानी मानने से इंकार कर दिया। रानी अपनी मातृभूमि पर अंग्रेजी स्वामित्व को समाप्त करने का संकल्प ले उठ खड़ी हुई। रानी के संघर्ष में जैतपुर की प्रजा पूर्ण मनोयोग से शामिल थी। राजा पारीछत के साथ बिलगांव एवं बघौरा की लड़ाई से सब उत्प्रेरित थे।

कंपनी सरकार ने 7 सितंबर को कैप्टेन स्कार्ट की सेना को हुक्म दिया कि वह रानी राजो को जैतपुर से निष्कासित कर वहां कंपनी सरकार का झंडा फहरा दे। इस आदेशानुसार कैप्टेन स्कार्ट एक विशाल सेना के साथ जैतपुर पहुंचा। अत्याचारों का दौर शुरू हो गया था। रानी राजो ने अपनी सैन्य शक्ति को एकत्रित कर अंग्रेजी सेना का डटकर सामना किया। इसमें पंचम दौआ और दिमान देसपत ने अंग्रेजों के दांत खट्टे कर रानी को सुरक्षित निकाल जैतपुर से झोमर पहुंचा दिया था। बीच में ही रानी युद्ध में फंस गईं, किंतु वह विजयी

हुई, उसके पिता बहादुर सिंह वीरगति को प्राप्त हुए। इस लड़ाई ने भारत भर में चल रहे स्वतंत्रता संघर्ष की अग्नि को बुंदेलखंड में प्रज्वलित कर दिया था। 4 जून, 1857 को इस क्षेत्र में अंग्रेजी सेना द्वारा हस्तगत किलों पर स्वतंत्रता-परस्त सेनानियों ने आक्रमण किया। बानपुर के मर्दन सिंह, हिंडोरिया के किशोर सिंह, नाना पेशवा, लक्ष्मीबाई आदि ने अंग्रेजों के विरुद्ध बिगुल बजा दिया था। इसी समय रानी राजो ने विप्लवियों को साथ लेकर अंग्रेजों पर आक्रमण कर उनसे जैतपुर छीन लिया और अपने राज्य की पुनर्स्थापना की।

जैतपुर हस्तगत कर रानी राजो ने अपने सेनापति से विचार कर अन्य क्षेत्र जैतपुर राठ, पनवाड़ी, महोबा एवं कौधा पर विजय प्राप्त कर अपनी शक्ति द्विगुणित कर ली। रानी ने राजनीतिक सूझ-बूझ के साथ ओरछा की रानी लड़ई सरकार को इस स्थिति से अवगत कराने के उद्देश्य से एक पत्र भेजा।

> *'श्री रानी महारानी श्री रानी महेन्द्र महारानी जू देव ऐते श्री रानी श्री महारानी श्री रानी जू की बांच ने आपर आपका सब तरह भरोसा है और दुरस्ती हो जाबे ऐसी आशा है। इस तरफ के देश का हाल ई तरह कि छोटे-छोटे रहीसों ने अपनी-अपनी जगह जब्त कर ली है, रही यहां की रियासत मकान बस आप ही इजाजत से लगे हैं। बाकी हबाल प्रधान सब दल सिंह जाहिर करि हैं।*
>
> (मिती क्वार सुदी 13 सं. 1914 वि. मु. जैतपुर के.पी.टी.")

इस घटना से क्रोधित अंग्रेजों ने जैतपुर के शत्रु चरखारी नरेश को आगे कर जैतपुर पर आक्रमण कर दिया। इस युद्ध में रानी ने रतन सिंह को पराजित कर दिया, किंतु रज्जू जालिम सिंह, जो उनके बैनोता थे और चरखारी सेना के सेनापति थे, युद्ध क्षेत्र में खेत रहे। इससे रानी को दुःख हुआ और युद्ध समाप्ति के बाद वह ईशा नगर (खटोला) की गढ़ी में चली गईं। राजो रानी के शौर्य-गान से आज भी बुंदेलखंड झंकृत है।

शीला देवी : बुंदेलखंड का क्षेत्र आदिवासी बहुल है। चित्रकूट और बांदा उनके गढ़ हैं। यहां भी अंग्रेजों ने उनकी जर-जमीन और जोरू छीनकर उन्हें गुलामी का जीवन जीने को मजबूर कर दिया था। इससे उनमें जबरदस्त आक्रोश पैदा हुआ, जो सन् 1857 की जन-क्रांति के समय प्रचंड रूप में प्रगट हुआ। इस क्रांति का नेतृत्व आदिवासी नारी शीला देवी ने किया था।

शीला देवी बांदा जिले के आदिवासी क्षेत्र की धरती पुत्री थी। उसका विवाह बांदा में हुआ था। अतएव बांदा अब उसकी कर्म भूमि बन गई थी। 20 जून, 1857 ई. में बांदा क्रांति का केंद्र बन गया था। क्रांतिकारियों ने यहां अंग्रेजों के विरुद्ध क्रांति का शंखनाद कर उनके ठिकानों पर धावा बोल दिया था। अंग्रेजों के वध से घबराकर यहां का कलेक्टर मायने भागकर इलाहाबाद जा पहुंचा। क्षेत्र के मोदहा, महोबा में अंग्रेजी सत्ता समाप्त हो गई थी। बांदा विप्लवियों का केंद्र बन गया था, किंतु इलाहाबाद और कानपुर से अंग्रेजी सेना के पहुंचने के भय से लोग अनिश्चय का जीवन जी रहे थे। ऐसे में झांसी के निर्णायक युद्ध के बाद अंग्रेजों ने बांदा पर आक्रमण कर उस पर पुनः कब्जा कर लिया था। लोग भयभीत हो जंगलों में पलायन कर गए थे। तभी शीला देवी ने सौ नारियों की सेना बनाकर अंग्रेजों पर आक्रमण कर दिया और उन्हें मृत्यु के घाट उतार दिया। अचानक हमले से त्रस्त अंग्रेजों ने मिटलॉक के नेतृत्व में इस संघर्ष को दबाया। इसमें शीला देवी अपनी समस्त नारी सेनानियों के साथ लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त हुईं। इस वीरता का बखान तत्कालीन कवि गंगा सिंह ने इस प्रकार किया :

बांदा लूटो रात कें गुइयां।
शीला देवी लरीं दौर के संग में सौक मिहिरियां।
अंगरेजन ने करी लराई, मारे लोग लुगइयां।
गिरि गुसाईं तब दौरे हैं, लरन लगे भौं भइयां।
शीलादेवी को सिर काटो, अंगरेजन ने गुइयां।
भगी सहेली तब गांवन में लैके बाल मुनइयां।
गंगासिंह टेर के रै गये, भगौ इते ना रइयां।

इस प्रकार बुंदेलखंड की इस वीरप्रसवा माटी में अनेक वीरांगना नारियों का जन्म हुआ, जिनके बलिदान की अमर गाथाएं हमें अपने स्वाभिमान की रक्षा हेतु सदैव उत्प्रेरित करती रहेंगी।

महारानी गणेश कुंवरि

◆ *रामचरण हयारण 'मित्र'*

महाराज मधुकर शाह जिस प्रकार धर्म और कर्मपरायण थे, उसी प्रकार उनकी रानी गणेश कुंवरि (काशी नरेश अनुरुद्ध सिंह की पुत्री। जन्म संवत 1569 यानी सन् 1512 एवं मृत्यु सन् 1586) भी अनन्य भक्त थीं। वे राजा की प्रिय रानी थीं। परमविदुषी और वीणावादन में कुशल थीं। मधुकर शाह श्री जुगलकिशोर (श्रीकृष्ण) के उपासक थे और गणेश कुंवरि श्रीराम की भक्त थीं। (माता विजय कुंवरि से उन्हें भगवान राम की उपासना विरासत के रूप में प्राप्त हुई) एक बार हास्य में महाराज ने रानी से कह दिया कि ऐसा प्रतीत होता है कि आप साक्षात श्रीराम से लाड़-लड़ाती हो। रानी के हृदय में यह बात चुभ गई, फिर भी उन्होंने प्रेम-भाव से विनम्र शब्दों में महाराज को उत्तर दिया कि महाराज से मुझे जो प्रेरणा मिली है, उसको मैं सफल बनाने का प्रयत्न करूंगी, जिससे श्रीराम का साक्षात हो सके।

रानी की बात सुनकर महाराज विचार करने लगे कि रानी को मेरी बात कुछ गड़ गई है और वे पुनः हँसकर कहने लगे कि हमने तो आपसे विनोद में कहा था।

रानी विनम्र शब्दों में अनुनय करते हुए बोली कि महाराज आपके विनोदी शब्दों ने हमारे हृदय के पट खोल दिए हैं। इससे मुझे दो लाभ होंगे, एक तो पति की आज्ञा का पालन और दूसरा भगवान श्रीराम का दर्शन।

कालांतर में रानी ने अवध-यात्रा की तैयारी की और अयोध्या पहुंचकर श्रीराम के वात्सल्य भाव की साधना में रत हो गईं। उन्होंने श्रीराम से ओरछा चलने का आग्रह किया। स्व. श्री भगवानदास 'दास' ने इस घटना को इस प्रकार लिखा है :

राम राजा खौं लैन गई गनेश बाई,
धन्य पूरब पुन्य की कमाई।
करकैं चलीं प्रतिज्ञा मन में,
धरकैं ध्यान प्रभू चरनन में।
जौलो करौं नई भोजन में।
जौलों मंजु मूरत श्रीराम जू की नई पाई।
धन्य पूरब पुन्य की कमाई। राम राजा--

(मनोहर गीत गायन, पृ. 7)

इस घटना से संबंधित एक और प्राचीन पद भी इस जनपद में प्रचलित है। इस पद में संवत 1631 वि. में गणेश कुंवरि की अवध-यात्रा का और नामादास जी कृत 'भक्त-माल' में मधुकर शाह तथा गणेश कुंवरि के भक्ति प्रसंग एवं श्रीराम को अवध से ओरछा लाने का वर्णन मिलता है :

प्रणत हित करत सदा रघुराई,
सम्वत् सोलह सौ इकतिस में अवधपुरी को जाई।
श्री सरजू असनान करत में आन मिले रघुराई।
मधुकर शाह नरेश भक्त-भय-भक्त माल में गाई।
तिन की महारानी गणेश दे राम ओरछा ल्याई।
प्रणत हित करत सदा रघुराई।

रानी गणेश कुंवरि जब श्रीराम की साधना में रत थीं, तब अवध के पुजारी उनको समझाने लगे कि 'रानीजी, श्रीरामजी भी क्या किसी के साथ प्रयाण करते हैं, वह तो केवल भक्त की भावना के भूखे हैं। आपको तो उनकी अनन्य भक्ति, केवल उपासना करनी चाहिए, जो कि सच्चे भक्त के लक्षण हैं और इसी से मोक्ष की प्राप्ति संभव होती है, किंतु रानी अपने संकल्प पर दृढ़ रहीं।

कालांतर में, मधुकर शाह ने रानी को ओरछा पधारने का संदेश भेजा, किंतु वह नहीं आईं। एक दिन मधुकर शाह को अनुभूति हुई कि रानी अपने संकल्प को पूर्ण करके ही ओरछा लौटेंगी। इस कारण उन्होंने श्रीराम के लिए एक विशाल मंदिर की नींव डाली। यह निर्माण कार्य वि. संवत् 1614 में पूर्ण हुआ।

रानी गणेश कुंवरि को जब कई वर्षों तक साधना करने पर सफलता प्राप्त नहीं हुई,तब उन्होंने सरजू नदी में अपने शरीर को जल-मग्न करने का निश्चय किया। और एक दिन प्रातःकाल इसी भावना से उन्होंने सरजू के जल में प्रवेश किया। जब उनके शरीर का अर्ध-भाग डूबने लगा, तब श्रीराम उनकी गोदी में आ गए।

रानी आत्मविभोर हो उठीं और श्रीराम को गोदी में लिए हुए सरजूजी से बाहर निकलकर ओरछा चलने की तैयारी करने लगीं। यह देख राम हँसकर कहने लगे, 'मां कहां प्रयाण करने की सोच रही हो।' रानी ने वात्सल्य भाव से उत्तर दिया, 'ओरछा को'। श्रीराम वत्स की भांति हठ करके कहने लगे, 'मैं साथ अवश्य चलूंगा, किंतु मेरी कुछ बातें तुमको स्वीकार करनी होंगी।' रानी ने प्रसन्न मुद्रा में माता की भांति उत्तर दिया, 'कौन-कौन सी बातें?'

प्रथम, मैं तुम्हारे साथ में ही निवास करूंगा।
दूसरी, जिस नगर में मैं रहूंगा, वहां मेरा राज होगा।
तीसरी, पुष्य नक्षत्र में ही केवल यात्रा करूंगा।

श्रीराम की इन तीनों प्रतिज्ञाओं को रानी गणेश कुंवरि ने बड़े हर्ष के साथ स्वीकार कर लिया और पुष्य नक्षत्र के लगते ही अपनी यात्रा प्रारंभ कर दी।

रानी गणेश कुंवरि ने इस प्रकार अपनी साधना में सफल होकर अनेक साधु-संतों सहित श्रावण शुक्ल पंचमी सं. 1630 वि. को पुष्य नक्षत्र में अयोध्या से ओरछा हेतु प्रस्थान किया। 18 माह 27 दिन इस यात्रा में लगे थे। वि. संवत 1631, चैत्र शुक्ल 9, सोमवार को रानी गणेश कुंवरि अपने रनिवास ओरछा में पधारीं और श्रीराम की साधना में तन्मय हो गईं।

रानी गणेश कुंवरि श्रीराम को अवध से ओरछा लेकर आईं, इसका प्रमाण उसी समय के किसी कवि द्वारा रचित यह दोहा भी है :

राजा मधुकर शाह की, रानी कुंवरि गनेश।
अवधपुरी से ओरछा ल्याई अवध नरेश।

श्रीराम ने एक रात में मधुकर शाह को स्वप्न में कहा कि तुमने हमारे लिए

जो मंदिर निर्माण कराया है, उसमें श्री चतुर्भुजजी निवास करेंगे और यह प्रतिमा तुमको अनायास ही प्राप्त होगी। मैं अपनी माता के साथ महल ही में रहूंगा, अतएव अब ओरछा में तुम्हारा नहीं, मेरा राज होगा।

मधुकर शाह निद्रा भंग होने पर स्वप्न पर विचार करने लगे और नित्य कर्म से निवृत हो रानी के महल में पहुंचे।

महाराज ने बड़ी आतुरता से भाव विभोर होकर रात्रि के स्वप्न का प्रसंग रानी को सुनाया। रानी और महाराज दोनों हर्षित होकर स्वप्न पर विचार करने लगे। सबसे जटिल प्रश्न था राज्य-त्याग का। अंत में मधुकरशाह और रानी गणेश कुंवरि ने यह निश्चय किया कि आज से ओरछा में श्रीराम का राज्य होगा और हम सेवा रूप में उसका संचालन करेंगे।

उसी समय से ओरछा 'राम राज्य' के नाम से विख्यात हुआ और सभी वैधानिक कागजों पर तभी से राम-राज्य की मोहर लगती आई। यह मोहर सन् 1947 के पश्चात जब श्री वीरसिंह जूदेव द्वितीय ने स्वतंत्र भारत के प्रथम राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद को ओरछा राज्य का राज-कोष समर्पित किया, तब बंद हुई।

राम-राज्य का प्रमाण इस बात से सिद्ध होता है कि राजधानी ओरछा से टीकमगढ़ चली आई थी, जबकि राज्य ओरछा ही घोषित था और भारत में राज्यों का विलय होने पर भी राज्यों की जो व्यवस्था चल रही है, उसमें भी ओरछा राज्य को मान्यता प्राप्त है।

मधुकर शाह ने जिस प्रकार अपने प्राणों की बाजी लगाकर बुंदेलखंड भूमि और बुंदेली संस्कृति की रक्षा की, ठीक उसी प्रकार रानी गणेश कुंवरि ने भी अडिग तपश्चर्या द्वारा श्री राम को अवध से ओरछा लाकर अपनी अनन्य भक्ति का परिचय दिया है।

प्रवीण राय

◆ *साधना जैन*

जब-जब आचार्य कवि केशवदास का नाम लिया जाता है, तब-तब उदीयमान कवियों और कवयित्रियों के लिए पथ-प्रदर्शक का कार्य करने वाली कवि शिक्षा की उनकी पुस्तक 'कविप्रिया' का नाम भी लिया जाता है। 'कविप्रिया' के साथ ओरछा दरबार की राजनर्तकी प्रवीण राय की याद भी आती है। यह राय प्रवीण या प्रवीण राय नामक नृत्यांगना अमल कमल थी, कमनीय करों वाली थी, रमा और शारदा के समान शुचि रुचि रंजिता थी, मानो साक्षात् सरस्वती थी। हिन्दी के सभी इतिहासकारों ने और केशवदास के समीक्षकों ने तरुणवय वाली इस मेधावी नायिका के लिए केशवदास द्वारा 'कविप्रिया' की रचना का उल्लेख तो किया है, किंतु किसी ने यह नहीं बताया कि 'कविप्रिया' की शिक्षा ग्रहण करने के उपरांत राय प्रवीण की कवित्व मेधा में क्या इजाफा हुआ और उसने स्वयं किसी काव्य की रचना की या नहीं। उसकी कवित्व शक्ति के प्रमाण-स्वरूप इतिहासकारों और समीक्षकों ने दिल्लीपति बादशाह अकबर के साथ उसके काव्यात्मक संभाषण का उल्लेख किया है। यह भी कहा जाता है कि रामचंद्रिका में रामविवाह से संबद्ध

जितनी भी गालियां हैं, वे सब प्रवीण राय की ही लिखी हुई है, किंतु प्रवीण राय ने कोई स्वतंत्र, स्वकीय, मौलिक काव्यग्रंथ भी लिखा, इसका उल्लेख किसी ने नहीं किया है। यह संभव नहीं है कि इंद्रजीत के दरबार में निरंतर उपस्थित रहने वाली विदग्धा नर्तकी और केशवदास द्वारा प्रशिक्षिता संवेदना संपन्न शिष्या ने कुछ न लिखा हो। कुछ ऐसी प्राचीन पांडुलिपियां प्राप्त हुई हैं, जिनमें असंदिग्ध रूप से प्रमाणित हो जाता है कि प्रवीण राय अपने गुरु आचार्य केशवदास के ही नक्शे कदम पर चल रही थीं—काव्य का वही तेवर, वही शास्त्रीयता, वही चमत्कार प्रियता। उसके व्यक्तित्व के दूसरे पक्ष के संबंध में भी इतिहासकारों और समीक्षकों ने बड़ा भ्रम फैला रखा है। वह सुंदरी थी और नरेश की प्रियतमा थी। वह राजा इंद्रजीत सिंह की प्रियतमा होने के साथ-साथ कहीं आचार्य केशवदास की प्रियतमा भी तो नहीं थी, यह विवाद का विषय बना दिया गया है। 'हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास' (षष्ठ भाग) में डॉ. सत्यदेव चौधरी ने प्रवीण राय को केशवदास की प्रेयसी एवं शिष्या कहा है, जबकि उसे सामान्यतया अपने आश्रयदाता ओरछा नरेश राजा इंद्रजीत सिंह की प्रणयिनी माना जाता है। डॉ. संसार चंद्र ने केशवदास और राय प्रवीण के संबंधों में कल्मष की संभावना देखी है और केशवदास द्वारा प्रवीण की रूप प्रशंसा को चरम सीमा के आत्मपतन का निदर्शन और कामुकता का प्रत्यक्ष प्रमाण कहा है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने प्रवीण राय का नाम भी नहीं लिया है। यहां तक तो ठीक है, किंतु 'वह पातुरी थी। वह पातुरी थी तो पतिपरायणा कैसे हो सकती है? यह हमारे समीक्षकों के लिए चिंता का विषय है। केशवदास की काव्यशिक्षा का उनकी अद्वितीय शिष्या पर क्या प्रभाव पड़ा, वह स्वयं कैसी कवयित्री थी और अपने गुरु केशवदास से उसके संबंध कैसे थे, इन सबके पुनरीक्षण का समय आ गया है। प्रवीण राय के काव्य की कुछ पांडुलिपियों के उपलब्ध हो जाने पर यह और भी आवश्यक, उपयोगी और महत्त्वपूर्ण हो जाता है। प्रायः यह माना जाता है कि प्रवीण राय महाराज इंद्रजीत सिंह की प्रेयसी एवं महाकवि केशवदासजी की शिष्या थीं।[1] इनका विवरण ग्रियर्सन कृत 'हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास' पं. गौरी शंकर द्विवेदी कृत 'बुंदेल वैभव' प्रथम भाग, पं. राम नरेश त्रिपाठी कृत 'कविता कौमुदी' प्रथम भाग, शिव सिंह कृत 'शिव सरोज' आदि में उल्लिखित है।[2] किंतु प्राप्त विवरण बहुत ही सूक्ष्म तथा कवयित्री पर विशेष प्रकाश डालने वाले नहीं हैं। पं. गौरी शंकर द्विवेदी ने प्रवीण राय का जन्म और कविता काल

क्रमशः सन् 1573 और सन् 1603 माना है।[3] अंतस्साक्ष्य के आधार पर ये तिथियां ठीक मालूम पड़ती हैं। 'कविप्रिया' की रचना मुख्यतः प्रवीण राय को शिक्षा देने के लिए हुई थी।[4] ग्रंथ की समाप्ति केशव के स्वलिखित दोहे के अनुसार फाल्गुन सुदी पंचमी बुधवार वि. सं. 1658 (सन् 1601) को हुई थी।[5] ऐसी मान्यता है कि काव्य-कला में पारंगत होने के लिए कम से कम 30 वर्ष की आयु तो होनी चाहिए। अतः प्रवीण राय का जन्म सन् 1571 के लगभग माना जाना चाहिए। 'कविप्रिया' से शिक्षा प्राप्त कर वर्ष-दो-वर्ष उपरांत ही काव्य-कला मुखरित हुई होगी। अतः कविता काल भी सन् 1603 के ही लगभग मानना समीचीन प्रतीत होता है।

प्रकारांतर से भी प्रवीण राय का जन्म सन् 1573 एवं कविता काल सन् 1603 से ही मानना युक्तिसंगत प्रतीत होता है। महाराज इंद्रजीत सिंह का जन्म सन् 1563 तथा कविता काल सन् 1598 माना गया है। प्रवीण राय महाराज इंद्रजीत सिंह की प्रेयसी रही हैं।[6] अतः आयु में अवश्य ही छोटी रही होंगी। महाराज के दरबार में छह प्रसिद्ध वेश्याएं थीं।[7] किंतु महाराज की आसक्ति प्रमुख रूप से प्रवीण राय पर ही थी, अतः महाराज इंद्रजीत सिंह और प्रवीण राय की आयु में निश्चय ही आठ-दस वर्षों का अंतर रहा होगा अन्यथा उसका रूप-यौवन, हाव-भाव एवं कटाक्ष महाराज की सरसता को उत्तेजित न कर पाते और प्रवीण राय को 'प्रेयसी' का सम्मानित पद प्राप्त न हो पाता। इस प्रकार प्रवीण राय का जन्म सन् 1573 के लगभग ही मानना समीचीन है। लगभग बीस की आयु प्राप्त करने पर ही अर्थात् सन् 1593 के लगभग ही प्रवीण राय ने दरबार में अपना स्थान ग्रहण किया होगा तथा महाराज के प्रेम में अनुरक्त होकर तथा उनकी काव्य-कला से अनुप्राणित होकर ही प्रवीण राय में भी कविता का अंकुर फूटा होगा। महाराज का काव्य-काल सन् 1598 ई. है। अतः सन् 1598 के पश्चात ही प्रवीण राय के काव्य-प्रेम का अनुमान किया जा सकता है। महाराज के संसर्ग से उत्पन्न काव्य-कला की अभिरुचि को साकार रूप प्रदान करने के लिए ही महाराज ने महाकवि केशवदासजी को प्रवीण राय की शिक्षा के निमित्त आज्ञा प्रदान की होगी। वस्तुतः केशवदासजी ने प्रवीण राय को काव्य-कला में पारंगत करने के लिए ही सन् 1601 में 'कविप्रिया' की रचना की। इस रचना के उपरांत ही प्रवीण राय की काव्यकला मुखरित हुई होगी। इस प्रकार प्रवीण राय का कविता काल सन् 1603 के लगभग ही मानना अधिक युक्तिसंगत होता है।

प्रवीण राय वीरांगना होने के साथ ही साथ पंडित, वाक्पटु एवं पतिव्रता थीं। कहा जाता है कि अकबर ने प्रवीण राय की रूप प्रशंसा सुनकर, उसको अपने दरबार में उपस्थित होने की आज्ञा दी।[8] महाराज इंद्रजीत सिंह सोच-विचार में पड़ गए, किंतु जब प्रवीण राय को यह ज्ञात हुआ तो महाराज इंद्रजीत सिंह के सम्मुख उपस्थित होकर उसने यह सवैया पढ़ा :

आई हों बूझन मंत्र तुम्हें निज स्वासन सों सिगरी मति गोई।
देह तजौं की तजौं कुलकानि हिये न तजौं लजि है सब कोई।।
स्वारथ औ परमारथ को पथ चित्त विचारि कहौ तुम सोई।
जामे रहैं प्रभु की प्रभुता अरु मोर पतिव्रत भंग न होई।।[9]

महाराज इंद्रजीत सिंहजी ने प्रवीण को अकबर के दरबार में न भेजने का निश्चय किया। इससे अकबर रुष्ट हो गया और उसने महाराज पर एक करोड़ का जुर्माना कर दिया। केशवदासजी ने बीरबल की सहायता से जुर्माना माफ करा लिया तथा प्रवीण राय को अकबर के दरबार में उपस्थित कर दिया, किंतु उसके साथ कोई अभद्र व्यवहार नहीं होने दिया। अकबर के सम्मुख आने पर प्रवीण राय और सम्राट अकबर में निम्नलिखित प्रश्नोत्तर हुए–

सम्राट–युवन चलत तिय देह की, चटक न चलत केहि हेत।
प्रवीण–मन्मथ वारि मसाल को सैति सिहारो लेत।
सम्राट–ऊंचे ह्वै सुरवश कियै सम ह्वै नरवश कौन।
प्रवीण–अब पताल वश करने को ढरकि पयानो कीन्ह।[10]

कहा जाता है कि इसके पश्चात प्रवीण राय ने अकबर से इस प्रकार प्रार्थना की–

"विनती राय प्रवीन की, सुनिये साह सुजान।
जूठी पतरी भखत हैं, वारी वायस स्वान।।
अंग अनंग तहीं कछु संपु सु केहरि लंक गयदंहि घेरे।
भौंह कमान तहां मृगलोचन संजन क्यों न चुगै तिल मेरे।।
है कब राह तहीं उदै इन्दु सु कीर के बिम्बन चोंचन मेरे।
कोऊ न काहू सों रौस करै, सु डरै उर साह अकबर तेरे।।"[11]

उदार और चतुर अकबर ने प्रवीण की प्रार्थना स्वीकार कर ली और प्रवीण राय को सम्मान सहित महाराज इंद्रजीत सिंह के पास भेज दिया।

प्रवीण राय उत्कृष्ट कवयित्री थी, इसमें संदेह नहीं। सरोजकार का कथन है कि इसके कवि होने में कुछ संदेह नहीं। इसका बनाया हुआ ग्रंथ तो हमको नहीं मिला, केवल एक संग्रह मिला है, जिसमें इसके सैकड़ों कथित कवित्त बनाए हुए हैं।[12] ग्रियर्सन द्वारा उल्लिखित है—इसने कई लघु कविताएं रची हैं, जिनके लिए इसकी अच्छी प्रशंसा है।[13] पं. राम नरेश त्रिपाठी[14] और पं. गौरी शंकर द्विवेदी[15] भी प्रवीण राय कृत किसी ग्रंथ की चर्चा नहीं करते हैं, किंतु अब शोधकर्ताओं को ओरछा राजकवि एवं पुस्तकालयाध्यक्ष पं. बाल कृष्णदेव तैलंग के पास प्रवीण राय कृत 'नायिका-भेद' पर आधारित 'नाइका-भूषण' नामक ग्रंथ की खंडित प्रति तथा प्रवीण राय कृत 'प्रवीन-विनोद' देखने को मिले हैं। 'नाइका-भूषण' के केवल सत्रह छंद प्राप्त होते हैं और 'प्रवीन-विनोद' की मूल प्रति अप्राप्य है। केवल उसकी प्रतिलिपि पं. बालकृष्ण देवजी तैलंग के पास है।

'नाइका-भूषण' ग्रंथ में प्रवीण राय के स्वलिखित दोहे से ज्ञात होता है कि इस ग्रंथ का प्रणयन कवयित्री ने महाराज इंद्रजीत सिंह के आग्रह पर किया था।[16]

ग्रंथ में प्रत्येक छंद के प्रथम एवं द्वितीय चरण में नायिका का लक्षण एवं द्वितीय एवं चतुर्थ चरण में लक्ष्य प्रस्तुत किए गए हैं :

प्रथम तृतीय में नायिका-भूषण लक्षन जानि।
दूजे चौथे लच्छ कहि, क्रम सों कवित्त बखान।।[17]

हिन्दी के रीति एवं शृंगारिक काव्य को संस्कृत की जो परंपरा मिली, वह एकांत लौकिक रही है। उत्तरकालीन संस्कृत साहित्य में नायिकाओं के सूक्ष्म वर्गीकरण पर आधारित शृंगारिक चेष्टाओं को व्यक्त करने वाली परिपाटी प्रारंभ हो गई थी। इसी परिपाटी का प्रभाव विस्तार रीतिकालीन नायिका भेद साहित्य में प्रचुरता से मिलता है। प्रवीण राय कृत 'नाइका-भूषण' ग्रंथ में भी यह प्रभाव स्पष्ट झलकता है।

प्रवीण राय कृत दूसरा ग्रंथ 'प्रवीण-विनोद' स्फुट छंदों का संग्रह है। इस रचना में उत्कृष्ट शृंगार के साथ-साथ कहीं-कहीं वेदना की अनुभूति के भी संस्पर्श हैं।

प्रवीण राय की भाषा संस्कृत मिश्रित साहित्यिक ब्रजभाषा है। संस्कृत के तत्सम तथा तद्भव शब्दों के शुद्ध योग उनके भाषा संबंधी ज्ञान के परिचायक हैं। कदाचित् इसका श्रेय केशवदासजी को है, जिनके पांडित्यपूर्ण व्यक्तित्व की छत्रछाया में प्रवीण राय अपनी भावनाओं को काव्य-रूप में प्रस्तुत कर रही थीं। भाषा-प्रयोग में कहीं-कहीं बुंदेलखंड के छींटे (यथा—'गाने के दिना ते' आदि) तथा

उर्दू के शब्द (यथा—'नकीब', 'गुरूर' आदि) यत्र-तत्र परिलक्षित होते हैं। शब्द कौतुक की अभिरुचि उन्हें अपने गुरुदेव से प्राप्त हुई होगी।

कवयित्री ने अपने युग में प्रचलित मुख्य छंदों में ही काव्य रचना की है। दोहा, सोरठा, सवैया एवं कवित्त का प्रयोग उन्होंने प्रचुरता से किया है।

प्रवीण राय के काव्य में उनका मुखर तथा रसिक व्यक्तित्व बोलता-सा प्रतीत होता है। मुखर अनुभूतियों, सूक्ष्म निरीक्षण, कलात्मक भावाभिव्यंजना, वाक्विदग्धता एवं काव्य में व्यक्त जीवन अनुभवों के कारण प्रवीण राय को श्रेष्ठ मध्ययुगीन कवयित्री माना जा सकता है। वास्तव में विदग्धता और कवित्व उनके रक्त में प्रवाहित था। वे आखिर ओरछा दरबार की नृत्यांगना और कवयित्री मधुर अली की बेटी जो थीं।

संदर्भ

1. केशव ने 'कविप्रिया' में प्रवीण राय का वर्णन इस प्रकार किया है—

   रत्नाकर लालित सदा, परमानं दहि लीन।
   अमल कमल कमनीय कर, रमा कि, राय प्रवीन ॥ 58 ॥
   राय प्रवीन कि शारदा, सुचि रुचि रंजित अंग।
   वीणा पुस्तक धारिणी, राजहंस सुत संग ॥ 59 ॥

   —पृ.सं. 13-14।

2. ग्रियर्सन (अनु. कि. ला. गुप्त), पृ. सं. 153
   बुंदेल वैभव (प्रथम भाग), पं. गौरी शंकर द्विवेदी, पृ. सं. 247
   कविता कौमुदी (प्रथम भाग), पं. रा.न. त्रिपाठी, पृ. सं. 372

   —शिव सरोज, पृ.सं. 448।

3. बुंदेल-वैभव (प्रथम भाग), पं. गौरी शंकर द्विवेदी, पृं. सं. 247
   रमेश कुमार सिलाकारी अपने लेख 'ओरछा दरबार के कवि' में प्रवीण राय को लोहार की कन्या बतलाते हैं तथा जन्म वि.सं. 1625 एवं कविता काल वि.सं. 1655 में अनुमान करते हैं, किंतु शोधकर्ता को ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिला, जिसके आधार पर प्रवीण राय की कुल परंपरा का अनुमान लगाया जा सके।

   —विशाल भारत (दिसंबर, 1954), पृ.सं. 398-399

4. विषम वाहिनी अंग उर, वासुकि लसत प्रवीन।
   शिव संग सोहे सर्वदा, शिव के राय प्रवीन ॥ 60 ॥

सविता जू कविता दई, ताकहं परम प्रकास।
ताके काज कवि प्रिया, कीन्हीं केशवदास ॥ 61 ॥

—कविप्रिया, टीका ला. भगवानदीन, पृ. सं. 14-15

5. प्रगट पंचमी को भयो, कविप्रिया अवतार।
सोरह सैय्यरठावनो, फागुन सुदि बुधवार ॥ 4 ॥

—वही पृ. सं. 3

6. सत्या राय प्रवीन युत, सुरतरु सुरतरु गेह।
इंद्रजीत तासों बंधे, केशवदास सनेह ॥ 46 ॥

7. राय प्रवीन प्रवीन अति, नवरंग राय सुवेश।
अति विचित्र नयना निपुन, लोचन ललित सुदेश ॥ 43 ॥
सोहति सागर राग की, सानत रंग तरंग।
रंग राय रंग कलित मति, रंग भूरति अंग अंग ॥ 44 ॥

—कविप्रिया, टीका ला. भगवानदीन, पृ. सं. 9

8. शिव सिंह सरोज, पृ. सं. 448
9. मिश्रबंधु विनोद, पृ. सं. 346।
10. शिव सिंह सरोज, पृ. सं. 448
11. कविता कौमुदी (प्रथम भाग), रा.न. त्रिपाठी, पृ. सं. 373
12. शिव सिंह सरोज, पृ. सं. 448
13. ग्रियर्सन कृत 'हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास' (अनु. कि. ला. गुप्त), पृ. सं. 153।
14. कविता कौमुदी (प्रथम भाग), रा. न. त्रिपाठी, पृ. सं. 373
15. बुंदेल वैभव (प्रथम भाग), ले. गौरी शंकर द्विवेदी, पृ. सं. 249
16. राय प्रवीन प्रवीन कर जोरि जानि उपकार।
हुकुम इंद्रजीत भूप को तुरत लियो सिरधार ॥ 6 ॥

—नाइका-भूषण खंडित प्रति

17. नाइका भूषण खंडित प्रति, छंद सं. 9

रानी कमल कुंवरि

◆ *गंगाप्रसाद बरसैंया*

कमल कुंवरि सरीला राज्य की रानी थी। सरीला रियासत की स्थापना संवत् 1812 वि. के लगभग महाराज छत्रसाल के वंशज अमानसिंह ने की थी। कमल कुंवरि का जन्म उदगवां ग्राम में हुआ था। अनुमान से कवयित्री कमल कुंवरि का जन्मकाल संवत् 1900 वि. के लगभग स्थिर किया जा सकता है। रानी ने अपने ग्रंथों में आत्म परिचय देते हुए लिखा है :

विक्रम के वंश में पमार धारा नगरी के
शंकर सह प्रकट भये नीत के निधान हैं।
हिन्दूपत सुअन तासु कीरत विलंद छाई
तनय बहादुर सिंह जानियो दिमान है।
राधिका बिहारी की कृपा तैं हौं प्रगट भई
जन्मभूमि उदगुवां विशाल सुख दान है।
कमल कुंअरि नाम मेरो तात मात विदित
कियौ पालौ कर प्रेम लख्यौ पुत्र की समान है।

एक अन्य स्थान पर कवयित्री ने लिखा है :

जनमी विक्रम वंश में ब्याही वंश दिनेश।
सहर सरीले बसते हैं अनुरूध सिंह नरेश।।
हिन्दूपति उनके सुअन साध प्रजा पति पाल।
संभु उपासी जन विदित खल दुस्टन के साल।
उनके सुत जाहिर जगत समझौ तेज दिनेस।
बांचौ उलटो नाम गुन जनु दूजौ राकेस।।
छत्रसाल के वंस में उन सम भयो न कोय।
मेरे जानौ सो पति तरुनाई तज मोय।
बालापन में मात पित गए विस्न के धाम।
सास ससुर सिव लोक गए विधि की करनी वाम।।
तरुनाई में पत तजी मोको महा निरास।
तबहौं गुर सरनै भई छोड़ सबन की आस।।
जब गुर हेरे कर कृपा हित कुल गिरधर लाल।
मंत्र भेष कंठी दई छूटे दुःख के जाल।।

उपर्युक्त विवरण से रानी कमल कुंवरि के जीवन पर संक्षिप्त प्रकाश पड़ता है। संवत् 1899 वि. में हिन्दूपत को सरीला की जागीर मिली थी। कमल कुंवरि के द्वारा प्रणीत साहित्य का समय संवत् 1947 वि. है। इस आधार पर भी कवयित्री का काल निर्धारण संवत् 1900 वि. से संवत् 1950 वि. तक स्थिर होता है। कमल कुंवरि के साहित्य के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि उन्हें जीवन में अत्यधिक वेदना थी। संभवतः इसका कारण निःसंतान होना रहा है। उनके गुरु का नाम गिरधारी लाल था, जो राधावल्लभ संप्रदाय के एक महात्मा थे। रानी कमल कुंवरि इसी संप्रदाय में दीक्षित थीं। उनका अधिकांश साहित्य अपने आराध्य देव राधावल्ल्लभ, हित हरिवंश को समर्पित है। राधावल्लभ संप्रदाय का मंदिर आज भी सरीला में विद्यमान है।

साहित्य सर्जना : कमल कुंवरि ने अपने इष्टदेव की उपासना में आत्मविह्वल होकर जिन पदों को समय-समय पर लिखकर अपने आराध्य देव के चरणों में अर्पित किया, उन्हीं को संग्रहीत करके विषय के अनुरूप नाम दे दिया गया है। मुख्य रूप से उन्होंने बधाइयां लिखी हैं, जिनमें हित स्वामीजी की बधाई, लालजी की बधाई, श्री राधाजी की बधाई, श्रीकृष्ण की बधाई प्रमुख

हैं। इसके अतिरिक्त श्रीकृष्ण की वंशावली तथा जन्म कुंडली, श्री राधाजी की जन्मकुंडली, करुणा चौंतीसी तथा फुटकर छंद मिलते हैं। उनकी एक और कृति तुलसीचरित है। विद्वानों ने इस ग्रंथ का तुलसी साहित्य के अंतर्गत उल्लेख किया है।

रानी कमल कुंवरि ने अपने आंतरिक भावों को बड़ी ही सहजता के साथ सरल शब्दों में व्यक्त किया है। मीरा की भांति उनके पदों में विरहानुभूति है। उनमें तड़पन और वेदना नहीं है। सर्वत्र माधुर्य है। कमल कुंवरि के साहित्य ने बुंदेलखंड के नारी जगत को अधिक प्रभावित किया। आज भी सरीला और उसके आसपास के गांवों में ग्रामीण स्त्रियों के मुख से कमल कुंवरि की बधाइयां सुनने को मिल जाती हैं। अपने मूल ग्रंथों में कवयित्री ने पदों का रचनाकाल, स्थान आदि का निर्देश दे दिया है। लालजी की वंशावली के अंत में कवयित्री ने लिखा है, "श्रीलालजी महाराज की वंशावली सुभ संपूर्ण 'मंगलं ददात' " पुनः बधाई, "श्री लालजी महाराज की सुभ संपूरन सुभं मंगलं ददाति" कुल बधाई 70 आसौं की बनी मिती भादौ वदी 12 संवत् 1947 मुकाम रयासत सरीली श्री जी की निज मंदिर। 'दोहा' येक सहस नौ से वरस सैंतालिस की साल। मंगल दिन आनंद कौ हरिवासर सुविसाल। भादौ कृष्ण वरवानियै पूरन भई निरधार। कमल कुंवरि प्रभु तुम सरन बिकी लली के दुवार।" इसी प्रकार स्वामीजी की बधाई में उल्लेख मिलता है, "प्रति श्री स्वामी बधाई कुल यकतालीक आद अंत में है सुभ संपूरन सुंभं मंगलं ददाति मिती अस्वन कृष्न ॥ गुरवासर, येक सहस नौ सैबरस येकादसि गुरुवार। अस्वन कृष्ण वषानियै अपने प्रभु के दुवार। गुरवासर श्री गुर कृपा पूरी कर सुष पाय। गुर की जन्म बधाइयां कमल कुअर नै गाय। श्री वृंदावन वास की विनती करत पुकार। इसी खुली में दरस देव संकट सोच निवार। हरि गुर एक समान लख विनवत सांझ सकार। श्री वनवास हमेस देव सीत प्रसादी धार। अब परत राखैबनत है श्री हित गिरधर मोर। कमल कुंवर श्री वन बसै परसैं जुगल किशोर।"

कमल कुंवरि की सबसे छोटी रचना 'करुणा चौंतीसी' है। इसमें दैन्य निवेदन के साथ-साथ कवयित्री ने भक्ति की पूर्ण व्याख्या प्रस्तुत की है। गोस्वामी तुलसीदास कृत विनय पत्रिका का पूरा प्रभाव भक्ति की दृष्टि से इस पर पड़ा है। यद्यपि यह ग्रंथ कुंडलिया छंद में लिखा गया है, फिर भी महत्ता कम नहीं है। कवयित्री अपने इष्टदेव को अर्ज करती है–

अरजी दै कै सुनौ राधाकृष्ण मुरार।
तुमही नौ है मायकौ, तुमहीं नौ ससुरार।
तुमही नौ ससुरार, और नहिं कोउ सहाई।
राषौ लाज सवार त्राहि सरनागत आई।
कमल कुंअर जन तोर खलन मिल बांधी फरजी।
राधा कृष्ण मुराद सुनौ चित दै के अरजी।

पुनः वह कहती हैं :

गिरधारी राधा रमन श्री हित जी सुध लेय।
सहस कॉन दै स्याम रे जा अरजी चित देय।।
जा अरजी चित देव सुफल का आस सबेरी।
गेहि कुटम सब त्याग भई चरनन की चेरी।।
कमल कुंअर जन तोर दुवार तुम टेर पुकारी।
श्री हित राधा रमन वेग सुध लेय गिरधारी।।

'करुणा चौंतीसी' के अंत में कुछ पद मिलते हैं, जिनमें ग्रंथ रचनाकाल तथा भक्ति की भगवान के प्रति निष्ठा व्यक्त की गई है :

प्रथम बधाई लाल की पुन प्यारी की गाय।
करुना चौंतसी कही गुर गोविंद मनाय।।
येक सहस नौ सै बरस सैतालिस गुरवार।
भादौ सुद गनपत तिथि पूरी भई सुख सार।।
जाकै मुख से कैसहू निकसे राधा स्याम।
ताको पग की पावड़ी मेरे तन की चांम।।
प्रेम सहित जो गावही तन मन तापस वार।
कमल कुंअर की जोड़ कर पहुंचे सदा जुहार।।

मीरा के पदों की भांति कमल कुंवरि की बधाइयां हैं। उनकी बधाइयों में सरलता, गेयता है। प्रियाजी की बधाई का गायन कवयित्री ने इस ढंग से किया है कि पढ़कर पाठक मंत्रमुग्ध हो जाता है :

चलतु वृषभान गोप के दुवार।
जन्म लियौ मोहन हित स्यामा आनंद निष सुकुमार।।
गावति जुवति मुदित मिल मंगल उच्च मधुर धुन यार।
विविध कुसुम कोमल किसलय दल सोभित वंदन वार।

विदित वेद विधि विहित विप्रवर करि स्वरतन अचार।
मृदुल मृदंग मुरज भेरी उफ दिव दुंदुभि रव कार।।
मागद सूत बंदी चारन जस कहत पुकार पुकार।
हारक हीर चीर पाटंबर देत सम्हार सम्हार।।
चंदन लसत धेन तन मंडित चले जुग बाल सिंगार।
जै श्री हित हरिवंश दुग्ध, दधि छिरकत हरिद्रा गार।।
बधैंया बाजे राजदुवार।
घर-घर से वनिता सजि आई कर कर नवल सिंगारै।
दान मान सबहित के कीन्हें राजन परम उदारै।
कमल कुंअर मागत कर जोरे श्री वन वास सवारैं।

श्रीकृष्ण के जन्म अवसर की कुछ बधाइयां निम्न हैं :

मंगलमय रजनी जब आई।
पूजन छटी जसोधा रानी लालन कौ चौके ते आई।
पटभूषन सज बाहिर लयाई कुल की रीत सखिन करवाई।
जात कुटम सब निवत बुलाये पट रस चार प्रकार जिमाई।
पिहिरावन सबही को दीन्हीं लेत सबै जो जिहिमन भाई।
आरत कर टीकौ लालन कौ देत निछावर अत हुलसाई।
कमल कुंवर श्री वन कौ बसवौ मागत चरन कमल बलि जाई।।

एक और बधाई देखें :

ननदीया दुआरै अगरन आई।
कुरता टोपी चूरा हसुली भूषण सुभग लिआई।
कंचन थार जवीरा धरकैं हीरा लाल लगाई।
वेन पात्र जरकस मड़वायौ मौतिन कोर लगाई।
नाचत गावत महलन भीतर लालन गोद उठाई।
व्यास मिश्र पट भूषन दीन्हैं चरनन कौ सिरनाई।
देत असीस सदा चिरजीवैं भ्राता वर भौजाई।
नित नए बाजै आनंद बधाये वारौ गोद खिलाई।
कमल कुंअर तन मन सुख पायौ राखौ दुवार बसाई।

काव्यगत सौंदर्य विधान की दृष्टि से कमल कुंवरि के साहित्य की विवेचना यहां अभीष्ट नहीं, क्योंकि यह उनके साहित्य की संक्षिप्त जानकारी मात्र है। वैसे

शब्दों का चयन देखना हो तो निम्न छंद में देखा जा सकता है :

धर्मरीत प्रगट भई छूटे दुःख वास। अजी वाह वाह।
उलटे तरफलन करे सूखे सरवार।
उमग चले निरमल जल पंकज भये चार।
मेलें सुर फूलन की झोरी भर डार।
चन्द्र ने निसांत हनै अस्तुती उचार।
बनता सुर नाचै वर गावैं खुसियाल।
वेष धरै वनतन के अप्सरा निहाल।

— — —

भैरन की भन्न भन्न झिल्लिन की झन्न।
नूपुर धुन पंच सब्द तबलन की ठन्न।
ठाढे हैं वृत्तेस्वर देखते मिसर्र।
सारो सुवा मोर मैना उड़ गए सब फर्र।
भांड भीर जन्म-जन्म आई दरबार।
कमल कुंअर दासी चहे सेवा सिरकार।।

कमल कुंवरि के कुछ फुटकर छंद भी मिलते हैं, जिनसे प्रकट होता है कि उन्होंने ने जहां लोक धुन पर पदों और गीतों का सृजन किया, वहीं वह छंद लिखने में पूर्ण दक्ष थीं।

एक कविता देखिए–

जन्म बधाई लाल प्यारी की वरन कछू
लीला सुभ गाइयत पांवन सुध सार है।
सादर चतुरांनन सिव पुनपत न पार पावै
नेत नेत कहैं वेद भेदहू न पार है।
जड़मत मेरी भई चरनन की चेरी सदा
रसिकन की कृपा दृष्टि चरनन सिरधार है।
कमल कुंअर हित प्रसाद श्री गुर मनाय
भाषी श्री वन कौ वास जाचौं अर्जी बहु बार है।

रानी कमल कुंवरि के दोहे भक्ति रस से सराबोर हैं। यद्यपि दोहों की संख्या कम मिलती है, फिर भी प्राप्त दोहों में उनकी काव्य प्रतिभा का दर्शन होता है। वह अपने को पापिनियों की सिरताज कहती हैं–

पापिन की सिरताज हौं अधम अपावन कूर।
अपनी ओर निवाहियौ कृपा करो भरपूर।

वह अपनी इष्टदेवी से कहती है–

लख चूक सुत सै परे तो कछु नहिं तज देहि।
पौंछ पुचक लै गोद में करत मात पित नेहि।।

रानी कमल कुंवरि द्वारा प्रणीत साहित्य को विशेष रूप से भक्ति साहित्य की कोटि में रखा जा सकता है। यही कारण है कि उनके द्वारा रचित बधाइयां और पद आज भी बुंदेलखंड की ग्रामीण स्त्रियों के कंठ में बसे हैं। एक प्रकार से कमल कुंवरि बुंदेलखंड की मीरा हैं।

बुंदेली की महिला फागकार

◆ *क्षमाशंकर पाण्डेय*

बुंदेलखंड के लोकराग की अभिव्यक्ति है बुंदेली फाग। लोककंठ में रचे-बसे और रमे इस लोक राग को जितना नेह-छोह और दुलार मिला है, बुंदेली धरा का वह अनुपमेय है। फाग गायन और सृजन दोनों में इस भू-भाग ने अपूर्व उत्साह का प्रदर्शन किया है। सामान्यतया बुंदेली फाग गीत बुंदेलखंड में वसंतोत्सव, होलिकोत्सव या फागोत्सव पर गाए जाने वाले लोकगीत हैं। विद्वानों ने इन गीतों के सूत्र अपभ्रंश साहित्य में खोजे हैं। लोक रचनाकारों द्वारा रचित फागों को लोकगीत कहने में पारिभाषिक रूप में भले संकोच हो, पर उन्हें वृहत्तर लोक स्वीकृति मिली हुई है। फड़बाजी और दंगलों का रूप ग्रहण करने के कारण इस विधा में प्रभूत साहित्य रचा गया। ईसुरी, गंगाधर, खयालीराम, तांतीलाल, सूरस्याम प्रभृति असंख्य ज्ञात-अज्ञात रचनाकारों का इसकी समृद्धि में महत्त्वपूर्ण योगदान है। इस साहित्य में विषयवस्तु की विविधता के साथ ही हिन्दी की रीतिकालीन कविता की तमाम प्रवृत्तियां मिलती हैं। रसों में प्रायः रसराज शृंगार का रंग सबसे चटख है। प्रश्नोत्तर शैली, जो लोकगीतों की विशेषता है, यहां खूब मिलती है। इसका एक कारण

दरबारी साहित्य से प्रतिद्वंद्विता और बृहत लोकस्वीकृति प्राप्त करना भी हो सकता है, क्योंकि रीतिकालीन कविता का बहुलांश राजदरबारों में रचा गया था। आजीविका के लिए राजस्वीकृति प्राप्त करने की अभीप्सा भी फागों के रीतिकालीन रंग के पीछे मानी जा सकती है। रचनाजगत के सामान्य सच की तरह यहां भी पुरुष रचनाकारों की ही बहुलता है, पर ऐसा भी नहीं कि महिला स्वर का लोप हो। रीतिकालीन कृष्णभक्ति के प्रभाव में एकाधिक पुरुष रचनाकारों ने भी महिला नाम से फागें लिखी हैं। इनमें सूरस्याम तिवारी का नाम अग्रगण्य है, जिन्होंने चंद्रसखी के नाम से ब्रजलीला संबंधी फागें लिखी हैं। महिला कलम की दृष्टि से इने-गिने नाम ही बुंदेली फाग में मिलते हैं। इनमें से महारानी रूपकुंवर, फूलमती एवं हीराबाई उल्लेख्य हैं।

भौगोलिक दृष्टि से उक्त तीनों रचनाकार वर्तमान हमीरपुर जनपद की थाती हैं। हमीरपुर बुंदेलखंड की सीमा ''इत चंबल उत बेतवा, इत जमुना उत टोंस' के अंतर्गत ही आता है। इन तीनों रचनाकारों की एक सामान्य विशेषता यह है कि ये फागों के घोर शृंगार से ऊबकर फाग रचना के क्षेत्र में प्रवृत्त हुई थीं। इन तीनों रचनाकारों के बारे में डॉ. श्याम सुंदर बादल ने अपनी पुस्तक 'बुंदेली का फाग साहित्य' में चर्चा की है। पुरुष वर्चस्व के क्षेत्र में अपनी क्षीण-सी उपस्थिति दर्ज कराते हुए इन रचनकारों ने अपनी संभावनाओं का परिचय दिया है। यह अलग से शोध और सर्वेक्षण का विषय है कि कितनी महिला फाग रचनाकारों ने बुंदेली फागों की स्मृद्धि में अपना योग दिया है। संप्रति फूलमती, हीराबाई और रूपकुंवर तक ही इस आलेख की सीमा है। उल्लेख्य है कि शिक्षा एवं साक्षरता का अभाव तथा अवसरों की विरलता ने महिला रचनाकारों के योगदान को सीमित किया है। अतएवं महिला फागकारों की रचनाएं कम हैं। संकलन के रूप में केवल महारानी रूपकुंवर के ही एक संकलन की चर्चा मिलती है। फूलमती और हीराबाई तो सगी बहनें ही थीं। कृष्ण लीला और उनसे प्रणति निवेदन ही इन तीनों रचनाकारों का मूल कथ्य है। यदि इसके कारणों का अनुमान किया जाए तो विभिन्न अनुशासनों में जकड़ी, अभिव्यक्ति तक के लिए विवश इन रचनाकारों के पास समय की सीमा में भगवान के अतिरिक्त और कोई चारा न होना भी माना जा सकता है।

फूलमती महोबा नगर के सुप्रसिद्ध रईस पं. मुकुंदलाल तिवारी की सुपुत्री थीं। इनका जन्म सन् 1906 में हुआ था। परिवार के प्रोत्साहन, बड़ी बहन हीराबाई के निर्देशन एवं स्वयं की रचनात्मक रुचि ने इन्हें फागों के रचना जगत से जोड़ा।

पुरुषों की लिखी घोर शृंगारिक फागों को स्त्रियों के लिए अनुकूल न मानते हुए वे फाग-रचना के संसार में आईं और उनके गाने योग्य फागें लिखीं। इन फागों पर भक्तिकालीन कवियों की छाया प्रतीत होती है। इनका विवाह दारागंज, प्रयाग निवासी श्री नारायण त्रिवेदी के साथ हुआ था। प्रयाग के साहित्यिक माहौल ने भी इनकी रचनाओं के लिए खाद-पानी का काम किया। इनकी फागों का कोई संकलन नहीं मिलता। कुछ रचनाएं लोककंठ या छिटपुट संकलनों में ही मिलती हैं। फूलमती की फागों के कुछ उदाहरण निम्नवत हैं–

हमरे संकट काट मुरारी, करी न नेक अबारी।
द्रुपद सुता के कारन तुमने, वसन रूप लओ धारी।
पट शठ खैंचत निकसत नाहीं, गओ दुशासन हारी।
चरन सपर्स परम पद पावत, गौतम रिष की नारी।
गनका सबरी सब गत पाई, बैठ विमान सिधारी।
फूलमती सी अधम न कोनऊ, करियो सुरत हमारी।

– – –

ऊधो जबसे स्याम सिधारे, बरसत नैन हमारे।
अंजन थिर न रहत अंखियन में कर कपोल भए कारे।
उर की अंगिया कभउं न सुखत, बै रये नैन पनारे।
डूब रओ ब्रज फूलमती अब, काये न आन उबारे।

इन फागों पर भक्ति का चटख रंग तो है ही, भक्तिकालीन कवियों की स्पष्ट छाया भाव और भाषा पर देखी जा सकती है।

हीराबाई भी पं. मुकुंदलाल तिवारी की सुपुत्री थीं। इनका जन्म सन् 1902 में महोबा में हुआ था। विवाह के उपरांत ये बांदा के सरकारी वकील परमेश्वरी दयाल अवस्थी की धर्मपत्नी बनकर बांदा आ गई। स्त्री समाज की सांस्कृतिक अभिरुचियों से चिंतित हीरा ने विवाह के अवसर पर उनके द्वारा गाए जाने वाले अश्लील गीतों के विकल्प के रूप में गीत लिखे। संस्कार गीतों के रूप में उनके गीत बुंदेलखंड में गाए जाते हैं, बाद में ये फाग रचना की ओर प्रवृत्त हुईं। इसके पीछे भी घोर शृंगारिक गीतों का ही दबाव था। साथ ही साथ अभिव्यक्ति की बेचैनी भी उनसे फागें लिखवाती रही। अपनी अर्जी भगवान को सुनाना ही इनकी फागों का मूल स्वर है। भक्ति के आवरण में अपनी परतंत्रता और स्थिति को स्वर देती हीराबाई की फागें नए पाठ के लिए आमंत्रित करती हैं। भक्ति रस में पगी

रचनाओं का पुरुषों के संदर्भ में जो अर्थ है, वही स्त्रियों के संदर्भ में कदापि नहीं है। विखंडनवादी पाठ के समय में महिला रचनाकारों की फागें नए पाठ के लिए उकसाती हैं। हीराबाई की रचनाओं का भी कोई संकलन नहीं मिलता, पर लोककंठ में वे समाई हुई हैं। आवश्यकता इस बात की है कि उनको संकलित किया जाए। हीराबाई की कुछ फागें निम्नलिखित हैं–

हमरो संकट काट मुरारी, तुम्हरी है बलिहारी।
सुरपति कोप कियो ब्रज ऊपर, सब तुव पास पुकारी।
ब्रजवासिन तुम राख लियो है, गोवर्धन गिरधारी।
ज्यों ब्रज टेर सुनी जदुनन्दन, त्यों हीरा की बारी।

– – –

मोकों अब की बेर उबारो, नेक दया चित्त धारो।
तुम अनाथ के नाथ कहावत, दाता नाम तिहारो।
करम हीन मोहि सूझत नइयां, मोते कवन निकारो।
तीन लोक के तुम प्रतिपालक, कीकों लेउँ सहारो।
हीरा मीरा सबरी तारी, मो पै किरपा धारो।

– – –

ऐसो कब करिहौ गोपाला, जैसी सबरी बाला।
मनसा नाथ मनोरथ दाता, हो प्रभु दीन दयाला।
चरन कमल चित बसे निरंतर, रसना चरित रसाला।
लोचन सजल, प्रेम पुलकित तन, कर कंजन दलमाला।
हीरा तुमरी आस गही अब, मिलो वेग नंदलाला।

यदि ये पंक्तियां ब्रजभाषा में होतीं और चौकड़िया में न होतीं तो यह निर्णय करना मुश्किल होता कि ये भक्तिकाल के किसी भक्त रचनाकार की रचना है या हिन्दी के कालक्रम में आधुनिक काल की। मुझे बार-बार ये लगता है हिन्दी में विभिन्न उपभाषाओं में लिखी महिलाओं की भक्तिपरक रचनाओं का केवल आभासित होने वाला भक्तिपरक अर्थ ही नहीं है। इन रचनाओं को मध्यकाल में महिलाओं की सामाजिक स्थिति से जोड़कर अर्थ करने की आवश्यकता है। अपने समकालीन समय में विभिन्न अंकुशों, अनुशासनों में जकड़ी स्त्री के लिए भगवान को माध्यम बनाकर अभिव्यक्ति देना अत्यंत सहज था। भक्तिपरक रचनाओं में महिला कलम का समाजशास्त्रीय मूल्यांकन अभी शेष है।

बुंदेली फाग की महिला कलम के संदर्भ में तीसरा और सबसे महत्त्वपूर्ण नाम चरखारी की महारानी रूपकुंवर का है। यह बुंदेली फाग की लोक व्याप्ति का ही प्रमाण है कि उसने राजा से लेकर सामान्य जन, सबको समान रूप से प्रभावित किया। महारानी रूपकुंवर का जन्म 1876 में दतिया राज परिवार में हुआ था। चरखारी नरेश मलखान सिंह से विवाह के उपरांत ये म.प्र. छोड़कर उ.प्र. आईं। जीवन के संघर्ष और चरखारी की साहित्यिक परंपरा के परिणामस्वरूप वे साहित्य की ओर उन्मुख हुईं। शृंगार सागर के रचयिता मोहनलाल मिश्र चरखारी राजदरबार से ही संबद्ध थे। वैधव्य जीवन को संयम और धार्मिकता के साथ बिताने वाली महारानी रूपकुंवर ने फागों की रचना की। 1808 में इंडियन प्रेस, इलाहाबाद से उनकी एक पुस्तक 'भजनमाला' प्रकाशित हुई। इसमें उनकी फागें संकलित हैं। वस्तुतः बुंदेलखंड के लोकराग में उन्होंने भजन ही लिखे हैं। यह तथ्य थोड़ा आश्चर्यजनक अवश्य लगता है कि इन तीनों ही महिला फागकारों ने विषयवस्तु की दृष्टि से भक्तिपरक फागें ही लिखी हैं। यह भक्ति भी कृष्ण भक्ति ही है। कृष्ण चरित में अपना आश्रय ढूंढ़ती इन रचनाकारों ने हिन्दी के भक्तिकाल के बाद जो स्वर मुखरित किया है, वह खरा तो है ही, नए विमर्श और पाठ के लिए उकसाता भी है। महारानी रूपकुंवर ने सन् 1949 में इस संसार का परित्याग किया। रूपकुंवर की कुछ फागें निम्नांकित हैं–

खेलन फाग बिहारी, ब्रज में खेलन फाग बिहारी।
गोपी गोप विसाखा ललता, संग है राधा प्यारी।
अबीर गुलाल उड़ावत आवत, नाचत दै दै तारी।
एक ओर सब गोपि राधिका एक ओर गिरधारी।
सब गोपिन मिलि पकरि श्याम कों, राधे उढ़ाई सारी।
नख सिख लौं गहनो पहिरायो, कहै श्यामली नारी।
रानी रूपकुंवर सरनागत, हृदय वसहु मम प्यारी।
ब्रज में खेले श्याम री होरी, कोउ न निकसियो खोरी।
कंचन पिचक हिचक रंग सो भर, मारे तान मुख रोरी।
लाल गुलाल कुमकुमा भर भर, अरु अबीर की झोरी।
रंग मोरी सारी सरबोरी, आन मली मुख रोरी।
रूपकुंवर पत भोंत दास की, कबहुं नाथ नहि टोरी।

— — —

रसना राम को नाम नगीना, मन मुंदरी में दीना।
निराकार निर्वान से खोदो, ऐसी थान कहीं ना।
नेह दिवाल देह का दीपक, कबहुं न परत महीना।
रूपकुंवर की मान सिखावन, तन मन धन सब दीना।

उपर्युक्त उदाहरणों में अंतिम कृष्ण चरित से संबद्ध नहीं है। आशय यह कि रूपकुंवर ने फागों का छंद अपनाते हुए भी विषयवस्तु के रूप में घोर शृंगार का प्रयोग नहीं किया। शृंगार का प्रयोग कृष्ण को आश्रय बनाकर कृष्ण लीला के संदर्भ में ही किया गया है, पर वे ऐसी नहीं हैं, जिसे महिलाएं सार्वजनिक रूप से गा न सकें। वस्तुतः महिला फागकारों की चिंता पुरुषों से अलग ऐसी फागें लिखने की है, जिसके मूल में शृंगारिक कुंठाएं नहीं अपितु शिष्ट शृंगार या फिर भक्ति हो।

बुंदेली फाग की यह महिला कलम न केवल फाग रचना में अपना हस्तक्षेप करती है, बल्कि अपनी अलग पहचान भी कायम करती है। चूंकि उसके सामने स्वरूप और व्याकरण पुरुष रचनाकारों का ही है, इसलिए उनका मूल्यांकन उस निकष पर करने पर भले ही ये ओछी प्रतीत हों, पर भावनात्मक तीव्रता और विषयवस्तु के सम्यक् निर्वाह में ये कहीं भी कमजोर नहीं हैं। वस्तुतः बुंदेली फाग साहित्य, जिसमें महिलाएं प्रायः आलंबन या उद्दीपन बनकर प्रयुक्त होती रही हैं, उसमें उनका सृजनात्मक योगदान कितना है, यह अध्ययन का विषय है।

ध्रुपद गायिका असगरीबाई

◆ *गुणसागर 'सत्यार्थी'*

गायन में आवाज महत्त्वपूर्ण होती है और आवाज प्रकृतिदत्त हुआ करती है। व्यक्ति मनचाही आवाज स्वयं उत्पन्न नहीं कर सकता। प्रकृति से भाग्यवश आवाज मिल जाए, तो उसके रख-रखाव एवं स्थायित्व पर ध्यान दिया जाता है। संगीत की दुनिया में दो प्रकार की आवाजें श्रेष्ठ मानी गई हैं—एक, आवाज का दानेदार होना और दूसरा, आवाज में अनूठा खटका होना, जो स्वरों की बारीकी पर सहज मुड़कर रसाभास कराती है। स्व. कुंदनलाल सहगल, बेगम अख्तर, मुकेश जैसे अनेक गायकों ने अपनी दानेदार आवाज का ही जादू संगीत की दुनिया में बिखेरा है। भीमसेन जोशी, लता मंगेशकर जैसे गायकों ने अपनी खटकेदार आवाज से दुनिया को चमत्कृत किया है। इन दोनों प्रकार की आवाजों में यदि खनक हो, तब तो वह 'सोने पे सुहागा' वाली उक्ति को चरितार्थ कर देती है। बुंदेलखंड की प्रख्यात ध्रुपद गायिका पद्मश्री असगरी बाई के गायन की पहली विशेषता थी—दानेदार और बुलंद आवाज, जिसमें अनूठी खनक ने उससे परवान चढ़ा दिया था।

इस अनूठी आवाज को तो ईश्वरीय देन ही कहा जाएगा, परंतु संगीत के संस्कार असगरी को मां और मौसी से विरासत में मिले थे। मां नजीर बेगम और मौसी आबादी बेगम दोनों ही डेरेवाली पेशेवर गायिकाएं थीं। भक्तिकाल के संत कवियों का भक्ति-साहित्य तो उनके गायन की विषयवस्तु था ही, साथ में ओरछा राज्य की पूर्व महारानियों द्वारा विरचित भक्तिपूर्ण पद-भजनों का अनूठा संकलन भी उनकी गायिकी की खास पहचान थी। महारानी वृषभानु कुंवर जू तत्कालीन ओरछा नरेश महाराजा प्रताप सिंह जूदेव की महारानी थीं, जो भक्ति भाव से पद-भजनों की रचना के लिए बहु प्रसिद्ध रही हैं।

महारानी वृषभानु कुंवर जूदेव के लिखे दुर्लभ पद-भजन वे दोनों बहनें गाया करती थीं। एक बार श्रावण झूलों के अवसर पर उन्हें निकटवर्ती राज्य बीजापुर के राजप्रासाद स्थित श्रीराधा माधव मंदिर में गायन हेतु बलाया गया। वहां उन्होंने महारानी वृषभान कुंवर जू रचित झूला गीत गाया। महारानी जू 'राम प्रिया' उपनाम से लिखती थीं, झूला के बोल थे :

'रंग बरसै रंगीले झूलन में
चलौ री चलौ मिल देखन चलिये।
स्यामा स्याम किलोलन में। रंग बरसै...
हरी हरी भूम नए द्रुम पल्लव–
श्री सरजू के कूलन में। रंग बरसै...
सहचरि हरण झुलावत सब मिल–
गावत राग मलारन में। रंग बरसै...
'रामप्रिया' यहि वर मागत है–
बसौ सदा दृग कोरन में। रंग बरसै...

परंतु यह गायन बीच में ही टूट गया, पूरा न हो सका। गायिका नजीर बेगम प्रसव पीड़ा से छटपटाती हुई एकदम भागीं और उन्होंने एक बालिका को जन्म दिया। वही बालिका असगरीबाई के नाम से विख्यात हुई।

असगरीबाई बाल्यावस्था में शरारती बच्चों के साथ खेलती और संगीत के प्रति उनका लगाव नहीं था। उनकी मां नजीर बेगम और मौसी आबादी बेगम ओरछा राज्य की टीकमगढ़ राजधानी स्थित किले के राधा माधव मंदिर में भक्ति संगीत हेतु पदस्थ थीं। वे चाहती थीं कि उनकी बेटी भी आगे चलकर उनका स्थान ले और भगवान राधा-माधव मंदिर में गायन करे। उन्होंने गोहद निवासी प्रसिद्ध

सारंगी वादक उस्ताद जहूर खां साहब से बालिका असगरीबाई को गण्डा बंधवाकर उनकी शार्गिदी में सौंप दिया। उस्ताद ने असगरी को अपनी पुत्री के रूप में स्वीकार किया और संगीत की तालीम देना शुरू किया, परंतु असगरी को संगीत में रुचि थी ही नहीं। उस्ताद सिखाते, ''मत जा रे पथिकवा...' असगरी गाती, 'घेर लाओ पड़िया सुनकवा...' सुनका बरेदी उनके मोहल्ले में भैंसें चराने वाला था। असगरी आवारा बच्चों के साथ बुंदेलखंड के 'राई' नृत्य में गाई जाने वाली अश्लील फागें गाया करती थीं। ओरछा राज्य के महाराजा प्रताप सिंह जू देव जब 1930 में दिवंगत हुए तो गद्दी पर उनके सुपौत्र महाराजा वीर सिंह जू देव (द्वितीय) विराजे। उन्हें साहित्य और संगीत से बहुत लगाव था, उनके दरबार में कलकत्ता, बंबई, बनारस और लखनऊ की गायिकाएं आतीं और संगीत की महफिलें जुड़ती थीं। एक दिन उस्ताद जहूर खां साहब राज दरबार की महफिल सुनवाने असगरी को साथ लेकर चले गए। किसी नामचीन गायिका का गायन हो रहा था, चुलबुली और शरारती असगरी उत्साह से उठ-उठकर आगे बढ़ रही थीं तथा उस्ताद उन्हें हाथ पकड़कर पीछे कर रहे थे। यह सब महाराजा वीरसिंह जू देव ने देख लिया। वे बोले, 'आप क्यों रोक रहे हैं उस लड़की को? क्यों बेटा, तुम भी गाना चाहती हो? असगरी ने सिर हिलाकर कहा, हां। महाराज ने गाने की आज्ञा दे दी, परंतु तब असगरी को आता ही क्या था? सिवाय अश्लील फागों के, वही गाना शुरू कर दिया। यह घटना स्वयं असगरीबाई हँस-हँसकर सुनाया करती थीं कि उस समय मुझे उन फागों का मतलब तक नहीं मालूम था, अगर मालूम होता तो मैं वो गाती ही क्यों?

विजावर में असगरी का जन्म कब और किस सन्-संवत में हुआ, यह ठीक से नहीं मालूम, जितने मुंह उतने ही सन्-संवत बताए गए, परंतु महाराज वीरसिंह जूदेव 1930 में गद्दी पर आए और उनके दरबार में असगरी निरी अबोध और नाबालिग थी। उस नाबालिग बालिका ने जो फागें गाईं, उन फागों के बोल तो गौण हो गए और खनकती हुई दानेदार बुलंद आवाज ने मानो सबको हिप्नोटाइज ही कर लिया। महाराजा ने उस्ताद जहूर खां से कहा, ''हमारे यहां दूर-दूर से गायक-गायिकाएं आती हैं, हमारे अपने राज्य से भी ऐसा फनकार होना चाहिए, जो इन महफिलों में अपना रंग जमा सके। इस लड़की की आवाज में जादू है जादू, आप संगीत की दुनिया में इसे 'गजासाई' के रूप में ढालकर तैयार करे।' उल्लेखनीय है कि उस समय ओरछा राज्य का एक अपना चांदी का सिक्का चलता

था, जो 'गजासाई रुपया' के नाम से जाना जाता था और देशी सिक्कों में वह प्रथम स्थान पर चोखी चांदी के लिए प्रामाणिक और प्रसिद्ध था।

फिर क्या था, उस्ताद जहूर खां ने असगरी की तालीम पर विशेष ध्यान देना शुरू कर किया। वे टीकमगढ़ के नरैया मोहल्ले में रहते थे और असगरी अपनी मां और मौसी के साथ मोटे के मोहल्ले में। इन दोनों मोहल्लों के बीच लगभग एक किलोमीटर की दूरी थी। देर रात तक असगरी अपने घर में रियाज करती थीं। आवाज इतनी बुलंद थी कि उस्ताद अपनी छत पर बैठे ध्यानपूर्वक सुनते और गलती को पकड़ लेते थे। दूसरे दिन प्रातः जाकर समझा देते कि रात भी तुम गलत स्वर लगा रही थी अथवा अमुक गलती की थी। वैसे तो उस्ताद ने असगरी को संगीत की प्रायः हर विधा की तालीम दी थी, ठुमरी, दादरा, टप्पा, ख्याल... वगैरह, परंतु असगरी की दमदार बुलंद आवाज में ये सभी विधाएं उतनी सफल नहीं थी, जितनी होनी चाहिए थीं। इसलिए उन्होंने ध्रुपद अंग गायिकी पर विशेष बल दिया। ध्रुपद में संचारी भाव प्रदर्शित करना, लयकारी के चमत्कार, आड़ करना, व्याड़ करना और क्वाड़ करना तक उन्होंने असगरी को सिखलाया।

ध्रुपद अंग गायिकी में चार शैलियां हैं, जिन्हें 'बानी' कहा गया है। ये बानियां इस प्रकार हैं—1. गवरिहार बानी, 2. नवरिहार बानी, 3. खंडहार बानी और 4. डागुर बानी। खेदजनक स्थिति यह है कि आज भारत में केवल एकमात्र डागुर बानी गाई जा रही है। शेष तीन बानियों के गायक विलुप्त हो चुके हैं।

असगरीबाई को उनके गुरु उस्ताद जहूर खां ने कौन-सी बानी सिखाई? यह कहना कठिन है, परंतु उनकी ध्रुपद गायिकी आज की प्रचलित डागुरबानी से किंचित मेल नहीं खाती। डागुरबानी में जो गमकयुक्त आलापकारी होती है, वह तो असगरीजी ने कभी की ही नहीं। वे अति संक्षिप्त नोम-तोम का आलाप करके राग की तस्वीर प्रस्तुत करने के बाद ध्रुपद रचना का गायन प्रारंभ कर देतीं और फिर बंदिश में तरह-तरह से उपज करके लयकारी के चमत्कार प्रदर्शित कर जब सम पर परवाज की 'धा' पड़ती थी तो श्रोता सुनकर उछल पड़ते थे और फिर तालियों की गड़गड़ाहट गूंज उठती थी।

उस्ताद जहूर खां साहब ने ओरछेश महाराजा वीर सिंह जू देव (द्वितीय) के विशेष आग्रह पर असगरीबाई को ओरछा राज्य का सिक्का, 'गजासाई' तो बना ही दिया था। वे उस समय संगीत की प्रत्येक विधा में गाने की महारत प्राप्त कर चुकी थीं। अब बारी उस्ताद साहब की थी कि वे अपने द्वारा ढाले गए 'गजासाई'

को ले जाकर ओरछा राज दरबार में प्रस्तुत करें, परंतु ऐसा अवसर नहीं आ सका। भारत स्वतंत्र हो चुका था और देशी रियासतें समाप्त हो चुकी थीं। जब राजा-रजवाड़े ही समाप्त हो चुके थे तो भला वह गजासाई कौन से दरबार में प्रस्तुत किया जाता? अब असगरीबाई वे अश्लील फागें गानेवाली अबोध बालिका नहीं थीं, एक प्रतिभाशाली युवती थी। उन्होंने आगरा निवासी श्री चिम्मन लाल गुप्ता के साथ विवाह रचा लिया और संगीत का जो सफर अब तक तय किया था, उसे छोड़कर जीवन की नयी राह चुन ली। संगीत उनका इतिहास हो गया, जो धीरे-धीरे धूमिल होकर समाप्त हो चुका था, परंतु उन्होंने एवं श्री गुप्ताजी ने भी अपना धर्मांतरण नहीं किया। एक हिन्दू की मुसलमान पत्नी का अनूठा उदाहरण था। जाति-पांति, धर्म-संप्रदाय से ऊपर उठकर राष्ट्रीय एकता की दिशा में असगरीजी का यह दूसरा ही स्वरूप सम्मुख आया। घर में हिन्दू-त्योहार भी उसी हर्षोल्लास के साथ मनाए जाते थे और मुस्लिम त्योहार भी, परंतु विधाता से असगरीबाई का यह सुखमय गृहस्थ जीवन भी देखा नहीं गया। श्री चिम्मन लाल गुप्ता दिवंगत हो गए, असगरीबाई अपने पांच पुत्रों एवं तीन पुत्रियों को लेकर वैधव्य जीवन बिताने लगीं।

पुत्र पढ़-लिखकर कानपुर चले गए। वहां उन्हें जॉब मिल गई। पुत्रियों के विवाह हो गए, वे भी ससुराल चली गईं। पुत्रों ने चाहा कि उनकी माताजी उनके साथ कानपुर आकर बहुओं और नाती-पोतों के साथ रहे, परंतु असगरीजी ने टीकमगढ़ से बाहर जाना किसी स्थिति में स्वीकार नहीं किया। अब वे आर्थिक रूप से भी टूट चुकी थीं, एक बीड़ी बनाने वाली मजदूर बनकर मोटे के मोहल्ले टीकमगढ़ में पड़ी हुई थी। याद्दाश्त धूमिल हो गई थी, संगीत की दुनिया में मुड़कर जाने की इच्छुक तो थीं, परंतु संगीत की दुनिया तो अब इतनी पीछे छूट चुकी थी कि स्वयं असगरीबाई के शब्दों में, "अब मुझे कुछ भी याद नहीं, किसी बंदिश की स्थायी के बोल याद आते हैं तो किसी बंदिश के एकाध अंतरे के बोल।" फिर भी उनकी दानेदार खनकती हुई बुलंद आवाज में अब भी दम था। पद, भजन, लोकगीत वगैरह गाती तो थीं, परंतु अब वह भी उनसे सुनने वाला कोई न था।

बुंदेलखंड की अपनी एक मौलिक गायकी है—'लेद' इसका जन्म दतिया राज दरबार के कल्पनाशील कलाकारों के द्वारा हुआ था। ठेठ बुंदेली में बड़े ख्याल की भांति विलंबित लय में शुरू होती है और फिर उसके ठेके और लय बदलती

जाती है। ख्याल अंग गायकी के बाद ठुमरी अंग, फिर दादरा अंग और अंत में कहरवा के साथ शुद्ध लोक गीत के रूप में, उसका समापन होता है, परंतु स्वर-रचना वही रहती है। लय परिवर्तन में स्वर रचना में किंचित कोई परिवर्तन नहीं होता। 'लेद' के गायक प्रायः समाप्त हो चुके थे। असगरीबाई उसकी अंतिम कड़ी थीं। मैंने राजेंद्र प्रसादजी को 'लेद' की जानकारी दी। उन्होंने आकाशवाणी के पुरातत्व संग्रहालय हेतु असगरीजी की लेद का ध्वनि अंकन कर सुरक्षित कर लिया था। लेद के बोल थे–

'मैंने दूरई से लए पैचान,
ननदिया! आवे डगर में दो जने।
आगे के हैं ननदेऊ आ,
पीछे के बिरन तुमार ननदिया...'

नौगांव (छतरपुर) में पं. विष्णुनारायण भातखंडे के प्रधान शिष्य पं. श्रीकृष्ण नारायण रतंजंकर के शिष्य पं. ज्ञानसागर शर्मा उस समय की भारत में प्रथम महिला ध्रुपद गायिका डॉ. सुमति मुटाकर के गुरु भाई थे। उन्होंने असगरी के भीतर छिपी उस अनूठी ध्रुपद गायिकी को पुनर्जीवित करने में अथक परिश्रम किया। असगरीबाई आकाशवाणी छतरपुर की ध्रुपद गायन हेतु बी. हाई श्रेणी में स्थापित कलाकार हो गई।

मध्यप्रदेश के तत्कालीन संस्कृति सचिव श्री अशोक वाजपेयी ने असगरी को भोपाल में आयोजित प्रथम ध्रुपद समारोह में गायन हेतु आमंत्रित किया। विश्वविख्यात ध्रुपद गायक डागर बंधु, जिया फरीदउद्दीन डागर, दरभंगा घराने के ध्रुपद गायक पं. रामचतुर मलिक जैसे महान संगीत साधकों के बीच असगरी ने राग-तिलक कामोद में ध्रुपद गाया। ऐसा रंग जमा कि उस आयोजन में असगरी ही सर्वाधिक सराही गईं। यहीं से असगरीबाई का छूटा हुआ संगीत का सफर शुरू हुआ और वे आगे बढ़ती ही चली गईं। भोपाल के बाद सुरसिंगार परिषद मुंबई, दरभंगा, बनारस, इंदौर, दिल्ली, मैहर, ग्वालियर जैसे अनेक नगरों में असगरीबाई ने अपने दमदार गायन का परचम लहरा दिया।

ख्याल अंग गायिका डॉ. शन्नो खुराना के शब्द, 'वे जब भी किसी समारोह में दिल्ली आती थीं तो मेरे घर में ही रुकती थीं। इतनी सादा तबीयत कि पूरी जिंदगी का हाल सुनाने लगीं कि, 'कैसे उन्होंने सड़क पर बैठकर अचार बेचा, बीड़ी बनाई...खाने का भी कोई शौक नहीं, जब भी हम उनसे खाने के लिए किसी

खास चीज लाने की बात करते तो कहतीं, 'हमें बस पराठौ और अचार दे दो' जितनी बड़ी कलाकार; उतनी ही लाजवाब सादगी।

ऐसी सरल और सहृदय कलाकार जब अंधेरे से निकलकर प्रकाश में आईं तो संगीत जगत में एकदम छा गईं। पुरस्कार एवं अलंकरणों की वर्षा-सी होने लगी। सर्वप्रथम 6 दिसंबर, 1985 में उन्हें मध्य प्रदेश संस्कृति विभाग द्वारा 'तानसेन सम्मान' से अलंकृत किया गया। 1986 में भारत भवन में उन्हें 'शिखर सम्मान' से विभूषित किया गया था। मध्यप्रदेश शासन के संस्कृति विभाग की ओर से उन्हें मासिक वृत्ति भी शुरू की गई थी। संगीत नाटक अकादमी, नयी दिल्ली द्वारा भुवनेश्वर में उन्हें 1986-87 में संगीत नाटक अकादमी अवार्ड से नवाजा गया। 1985 से 1990 तक देश के अनेक छोटे-बड़े सम्मान व अलंकरण उन्हें प्राप्त हुए। 1988-89 में भारत सरकार द्वारा असगरीबाई को जब 'पद्मश्री' का अलंकरण मिला तो अन्यत्र मिले सम्मानों की भांति धनराशि न पाकर वह बहुत निराश हुईं।

1995 में इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र व कुछ अन्य संस्थाओं के सहयोग से उन पर एक वृत्तचित्र (फिल्म) भी बनाया गया था। उस फिल्म में असगरीबाई ने भावुक होकर आपबीती सुनाई है। उन्हें एक ही चिंता थी कि उनकी कठिन साधनापरक कला का कोई वारिस नहीं मिला। यद्यपि उन्होंने 1988 में महाराजा वीरसिंह जू देव (द्वितीय) के नाम से एक संगीत विद्यालय खोला था, जिसे आगे चलकर मध्य-प्रदेश संस्कृति विभाग ने गोद लेकर 'ध्रुपद केंद्र' बना दिया था, जिसमें गुरु-शिष्या परंपरा द्वारा असगरीजी को शिक्षण का दायित्व सौंपा था। वह ध्रुपद केंद्र कागजों में आज भी टीकमगढ़ में चल रहा है, परंतु असगरीजी की गायिकी का वारिस नहीं मिला।

क्या थी उनकी गायकी? क्या वे सचमुच ध्रुपद अंग गायिकी में महारत रखती थीं, यह प्रश्न उनके जीवनकाल में ही विवाद का विषय बन चुका था। आज ध्रुपद की डागरवानी ही प्रकाश में है। डागरवानी का एक परिवार बहरामखां का यत्र-तत्र सर्वत्र फैला हुआ है। वही आज ध्रुपद अंग गायिकी के शलाका पुरुष माने जाते हैं। उसी वंश के उन्नीसवीं पीढ़ी के उस्ताद फहीमउद्दीन डागर का कथन, "मैंने उन्हें दो-तीन बार सुना है, लेकिन कुछ खास नहीं लगा। ध्रुपद गाने की उनकी लियाकत को लेकर जैसा प्रचार किया गया, वह जमता नहीं है।" इन्हीं उस्ताद के भतीजे उस्ताद वासिफउद्दीन डागर लगभग यही बात

कहते हैं, "उनका ध्रुपद हमारे घराने से अलग है। सिर्फ ताल को ही ध्रुपद का सारा खेल मान लेने की बात हमें ठीक नहीं लगती।" इस प्रकार घराने वालों की नकारात्मक सोच के लिए क्या कहा जाए? असगरी ऐसी बातें सुनकर प्रायः एक ही बात कहा करती थीं, 'हमपेशा दुश्मन होगा।' जबकि उनके प्रशंसकों की भी कमी नहीं रही। कवि एवं कला समीक्षक श्री अशोक वाजपेयी के अनुसार, "उनके ध्रुपद में पारंपरिक या रूढ़ शैली से अलग बात थी, जो श्रोता को काफी प्रभावित करती थी।"

ख्याल अंग की प्रख्यात गायिका डॉ. शन्नो खुराना का कथन है, "असगरीजी के ध्रुपद गायन की शैली अनूठी है। भले ही वे आलाप को तरजीह नहीं देतीं, लेकिन वे अपनी बानी में सिद्धहस्त हैं। वे मात्राओं में इतनी पक्की हैं कि कई बार उन्हें गाते हुए देखकर चकित होना पड़ता है।" ध्रुपद गायिका डॉ. सुमति मुटाटकर का कथन है, "असगरीबाई के गायन में बुंदेली शैली का विशेष प्रभाव है। यह प्रभाव उनके ध्रुपद गायन में सहज ही उभरकर आ जाता है।" गायिका वेगम अख्तर की शिष्या शांति हीरानंद की राय है, "असगरीबाई ध्रुपद की गुणी गायिका रही हैं, इस पर भला किसे ऐतराज होगा। वे जैसा गाती रही हैं, हम वैसा गाने की कल्पना भी नहीं कर सकते।" इंदिरा संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़ की तत्कालीन उपकुलपति एवं संगीत मार्तंड पं. ओमकारनाथ ठाकुर की शिष्या प्रो. प्रेमलता शर्मा के अनुसार, "असगरीबाई का गायन एक ऐसे युग का परिचायक है, जो आज देखने-सुनने में नहीं आता, उनकी गायकी प्रिजर्व करके रखने की चीज है।" काशी निवासी कलाविद् डॉ. राम आनंद कृष्ण ने मुझे व्यक्तिगत पत्र लिखा, "असगरीबाई का आविष्कार करके तुमने संगीत जगत पर एहसान चढ़ा दिया है। उनके द्वारा वहां की स्थानीय बंदिशें सुनकर ऐसा लगा कि बस सुनते ही रहें। परंपरा चलती रहे और उनकी चीजें संरक्षित हो जाएं तो बड़ी बात हो।" इन सबके बाद मेरी व्यक्तिगत राय भी यही है कि उनकी जादुई दानेदार बुलंद आवाज में ध्रुपद-धमार तो सुहावना था ही, परंतु उससे भी अधिक मूल्यवान विशेषता वही रही, जिसकी ओर कलाविद् डॉ. रामआनंद कृष्ण ने संकेत किया है, 'स्थानीय बंदिशें'। स्थानीय बंदिशों में चाहे ठुमरी-दादरा अंग की गायिकी हो अथवा ध्रुपद-धमार या फिर लेद की गायिकी...। **यह सब मूल्यवान विरासत,** जिसे हम बुंदेलखंड की अस्मिता कहें, वह समाप्त हो गई है।

आकाशवाणी छतरपुर के अधिकारियों की हेकड़ी के कारण असगरीबाई की बहुआयामी गायिकी का सार तत्व सदा के लिए समाप्त हो गया। उनकी उतरती आयु में जब आवाज में कंपन आने लगा था, कुछ चीजें भोपाल के भारत भवन में, कुछ संगीत नाटक अकादेमी, नयी दिल्ली में और कुछ काशी विश्वविद्यालय के संगीत संकाय में ध्वनि अंकित हुईं जरूर, पर वह एक प्रकार से नहीं के बराबर ही हैं। देशी रियासतें समाप्त होने पर असगरीबाई ने यह मान लिया था कि अब कला और कलाकारों का युग समाप्त हो गया, इसलिए उन्होंने गायन छोड़ दिया। कदाचित यही कारण था कि लगभग ढाई-तीन दशक के अंतराल के पश्चात उन्हें संगीत की सुधि आई। इस अंतराल में उनके व्यक्तिगत जीवन में कितने उतार-चढ़ाव आए, रोजी-रोटी के लिए कितने और कैसे संघर्ष उन्हें झेलने पड़े कि जो आयु उनकी प्रतिभा प्रकाशित करने की थी, वह आटा, नमक, तेल, लकड़ी जुटाने के संघर्ष में व्यर्थ ही समाप्त हो गई।

असगरीबाई 9 अगस्त, 2006 को लंबी बीमारी के बाद जब दिवंगत हुईं तो 'पद्मश्री' से सम्मानित होने के कारण उन्हें पूर्ण राष्ट्रीय सम्मान के साथ सुपुर्द-ए-खाक किया गया।

लोकगायिका रामकली रैकवार

◆ *सुंदरम शांडिल्य*

बुंदेली लोक गायिका रामकली रैकवार की प्रसिद्धि सागर ही नहीं, समूचे बुंदेलखंड में है। इस अर्थ में, उन्हें बुंदेलखंड की कोकिला कहना अत्युक्ति नहीं है। रामकली का जन्म सागर शहर के पुरव्याऊ मुहल्ले के मछरयाई में सन् 1926 ई. में हुआ था। इनके पिता श्री मोहनलाल और माता श्रीमती शुकरानी देवी अत्यंत निर्धन थे। 25-26 वर्ष की उम्र में रामकली का विवाह सागर शहर के इतवारी टौरी निवासी पुरुषोत्तम रैकवार के साथ संपन्न हुआ, जो एक बीड़ी कारखाने में काम करते थे। रामकली भी घर-गृहस्थी संभालती हुई बीड़ी बनाने का काम करती थीं। वह स्वभाव की सरल, मिलनसार और हँसमुख महिला थीं। बड़ों का आदर-सम्मान व सत्कार करना उनके सहज संस्कार में था। उनका रंग-रूप अतिसाधारण था। उनके नाक-नक्श में भी कोई आकर्षण नहीं था। गहरा सांवला रंग, कद पांच फुट से तनिक अधिक और बदन इकहरा था। रामकली देखने में भले ही सामान्य थीं, किंतु उनके गायिका रूप का जबरदस्त आकर्षण सुनने वालों में अंतिम समय तक बना रहा।

रामकली का जीवन बड़ा ही संघर्षमय था। आर्थिक संकट के साथ ही दैवीय विपत्तियों से भी उन्हें जूझना पड़ा था। उनकी कई संतानों में केवल एक बेटी मुन्नी ही बची थी, जो उन्हीं के जीवन काल में 50 साल की अवस्था में दिवंगत हो गई। बेटी के परिवार का भरण-पोषण उन्होंने ही किया। दुर्भाग्यवश उनके दामाद का भी असामयिक निधन हो गया। एक साक्षात्कार में उनकी व्यथा इन शब्दों में प्रकट हुई है, "सारी जमा पूंजी लड़की-दामाद के इलाज में खर्च हो गई। न बुढ़ापे का सहारा है, न खुद का मकान।" वे जीवनपर्यंत किराये के मकान में रहीं। लड़की के बच्चे ही उनके बुढ़ापे का सहारा बने थे। दूसरा सहारा थे लोकगीत, जिन्हें वे घर का काम-काज करते, उठते-बैठते या बीड़ी बनाते गाती रहती थीं।

गीत गायन से रामकली का नाता बचपन से ही था। घर-परिवार में वे दादरे, सोहर, भजन आदि सुनती और गाती थीं, पर कायदे से गाने का शौक उन्हें वैवाहिक जीवन में प्रवेश के कई वर्षों के बाद शुरू हुआ। वे मधुर आवाज की धनी थीं। उनकी दिली ख्वाहिश थी रेडियो सिंगर बनने की और इस दिशा में उन्हें दो वर्ष से कुछ माह अधिक की ट्रेनिंग मिली दीनदयाल रैकवार से। इन्होंने रामकली को स्वर-ताल का पर्याप्त ज्ञान कराया। इस दिशा में रामकली को सागर के वरिष्ठ गीतकारों का भी प्रोत्साहन मिला। अंततः भोपाल आकाशवाणी में हुए स्वर परीक्षण में रामकली उत्तीर्ण हुईं। रामकली ढोल पर गाती थीं और हारमोनियम दीनदयाल रैकवार बजाते थे। समय के साथ ही रामकली रैकवार आकाशवाणी की मशहूर लोकगीत गायिका के रूप में चर्चित हुईं। भोपाल एवं छतरपुर आकाशवाणी केंद्र के कार्यक्रमों में उन्हें प्रायः आमंत्रित किया जाता था। सागर आकाशवाणी केंद्र से रामकली ने कभी गाने की इच्छा जताई थी, लेकिन वांछित प्रतिक्रिया न मिलने पर उन्हें निराशा हुई। उनका कहना था कि "एक तो उधर संगीत के लिए वादन आदि की व्यवस्था नहीं थी। इसलिए खुद की मंडली ले जाओ। उसका खर्च उठाना पड़ेगा। जिस पर पारिश्रमिक भी उतना नहीं मिल रहा था, जितना अन्य केंद्रों पर, तब मंडली के कलाकारों के खर्चे के अलावा उन्हें ले जाने और वापस लाने का खर्च उठाना हमारे बस का नहीं।"

बुंदेली माटी की दरारों से फूटे लोकभाषा के मधुर और लोकसंस्कृति के वाहक गीत कब रामकली के जेहन में समा गए, यह उन्हें खुद पता नहीं चला। उन्होंने अपनी गीत-गायन साधना को ऊंचाइयां दीं और अपनी एक गायन शैली विकसित की। वे समाज की सर्वमान्य लोक गायिका थीं, लेकिन आकाशवाणी

के मंच पर पहुंचकर वे लोकगीत गायकों में शिखर पर आसीन हुईं। 75 वर्ष की उम्र में भी वे 18-20 वर्ष की लड़की जैसा गाती थीं। इस बात के गवाह गीतकार हरगोविंद विश्व हैं, जो गीत-गायन के कार्यक्रमों में प्रायः उनके साथ होते थे।

रामकली बुंदेली लोकगीतों में गारी, स्वांग, बिलवारी, दिनवारी, सोहर, विवाहगीत, भजन, पर्वगीत, होरी, कार्तिक, साहुन (सावन) के गीत बमबुलिया, रसिया, ढिमरयाई, दादरे, हास-परिहास के गीत, देवी भक्ति गीत आदि क्या कुछ नहीं गाती थीं। विभिन्न मांगलिक अवसरों—विवाह, तीज-त्योहार, धार्मिक पर्व पर वे अपनी गायिकी से उपस्थित श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर लेती थीं। उन्हें सैकड़ों लोकगीत कंठस्थ थे। वे स्वयं भी लोकगीत रच लेती थीं। उनके द्वारा गाए हुए गीतों में सर्वाधिक प्रशंसित गीतों के चंद मुखड़े इस प्रकार हैं :

- उड़ जा उड़ जा रे सुआ गंगाराम खबरिया लैयो गोरी धन की
- गाड़ी वारे गाड़ी धीरे हांक के दचकन दूखे कमरिया
- जा देखो धरन गगरिया की जा देखो
- भोरे राम से करे ररियां जनकपुर की सखियां
- मोय लहर लहर लहर आबे पीर-इते मोरो कोऊ नैयां (सोहर)
- समदी बोलो तो पलका बिछाऊं के पालना
- जड़कौरे की अदब बहार कि मोरे पिया अब न पढ़ाई के मायके
- राजा कर ले शिकार गौरी तू हिरनिया सी हो रही।

उनके स्वरचित गीत की कुछ पंक्तियां हैं :

- हम सों बदी रही भोगमानी, कैं रात भर कम्मर पिरानी
- समझा-समझा हारी बलमां खों एक कहीं न मानें

वे स्वांग गीत भी बखूबी गाती थीं, जैसे :

- फिरकें मिलियो यार मन भर के देखो है नैयां
- जांदा ने बुलयाव जवानी के दिन थोरे हैं
- दरसन दे दो राम घर के मुकट सोने को
- का बन गए कसूर-पकर बुलाई थाने में
- हिलमिल कर ले किलोर जाने कब मर जाने।

रामकली से जुड़े संस्मरणों में एक खास प्रसंग गंजबासौदा के एक संगीत कार्यक्रम का है, जब रामकली सिर पर घूंघट डालकर गीत गा रही थीं। वैसे भी

वे घूंघट डालकर ही मंचों पर गाया करती थीं। इसका कारण शायद स्वयं के गहरे सांवले रंग को छिपाना रहा हो। उन्होंने गाना शुरू किया ही था कि श्रोताओं में से एक बोला, 'अरे चंदामुख तो दिखाव, घुंघटा काये डारे हो।' रामकली तपाक से बोलीं, 'काय घर के चंदा से का उकताने हों और एक ख्याल सुनाया–

- *का घर को चंदरमा हिरानो*
  गलिन में चंदा ढूंढ़न हो।
- *हाँसी करो नें मोंसो राजा*
  अबे तो तुम भौतऊ हो बारे।

फिर क्या ठहाकों से वातावरण गूंज उठा और रामकली ने अपने गायन से समा बांध दिया।

रामकली बाई अपनी गीत गायन-यात्रा में आगे चलकर पूर्णतः व्यावसायिक हो गई। घर-गृहस्थी चलाने की विवशता इसका प्रमुख कारण रही। वे काली एवं गणेश स्थापना, विवाह आदि अवसरों के साथ ही अन्य आमंत्रण पर भी पैसे के लिए गीत गाने लगीं। उन दिनों उनके गीत प्रायः मनोरंजक एवं अश्लील हुआ करते थे। सार्वजनिक मंच पर रामकली के गायन का अंतिम कार्यक्रम गढ़पहरा के पास मेहर (सागर) में संपन्न हुआ था। आकाशवाणी छतरपुर से उनके गीत गायन की अंतिम रिकार्डिंग 22 अगस्त, 2000 को हुई।

रामकली को सागर में आयोजित बुंदेली मेला में लोकगीत गायन के लिए प्रथम पुरस्कार मिला था। टीकमगढ़, छतरपुर आदि स्थानों पर भी रामकली को सम्मानित किया गया। वे युगलस्वरों में लोकगीत गायन पसंद नहीं करती थीं, किंतु एक बार खरगपुर के राजा के विशेष आग्रह पर रामकली ने युगल गीत के. खान तारबाबू (हरपालपुर) के साथ गाया था। राजा ने प्रसन्न होकर उन्हें सोने की चेन उपहार में दी। वह चेन रामकली ने यह कहकर वापस कर दी कि 'यह गरीबों की शोभा नहीं। इसे हम कहां रखेंगे। चोर-डकैत लूट लेंगे।' सागर के नवोदित कला संस्थान ने 22 जनवरी, 2003 को बुंदेली प्रतिभा सम्मान समारोह में रामकली रैकवार को सम्मानित किया था।

रामकली अपनी लोक गायन की विरासत को मुहल्ले की अनेक लड़कियों, महिलाओं को गायन सिखाकर सुरक्षित करना चाहती थीं। अपने नाती मनमोहन को भी उन्होंने गाना सिखाया। समय बदला और लोगों के दिल में उनकी कला

होता रुझान देखकर वे आहत थीं।

स्थानीय समाचारपत्र को दिए गए एक साक्षात्कार में उन्होंने कहा था, ''मनो जौन चाव से पेल कार्यक्रमों में बुलाओ जात, वो अब नईं। टीवी और बीसीआर के घर-घर पहुंचने से अब को आ सुन रओ हमाए लोकगीत...।'' बुढ़ापे की देहरी पार करते हुए उनका आत्मविश्वास डगमगा गया था। घर-गृहस्थी से भी ज्यादा फुरसत नहीं मिल पाती थी। उनकी एक बड़ी साध दूरदर्शन से लोकगीत गाने की अधूरी रह गई। इस संबंध में उनके निराशा-भरे शब्द थे, ''इसके लिए हमने प्रयास भी किए, लेकिन आजकल (1996) कोई काम आसानी से नहीं होता। बिना पैसे के कोई काम नहीं सधता।''

रामकली के पति की मृत्यु 28 जुलाई, 1999 से पहले ही हो चुकी थी। और अंततः 14 नवंबर, 2009 को बुंदेली की यह सशक्त और लोकप्रिय गायिका भी इस संसार से विदा हो गई। उनके सुरीले गायन की मिठास उन लोगों के दिलोदिमाग में आज भी भरी हुई है, जिन्होंने उन्हें आत्मीयता से सुना था।

संदर्भ

1. रामकली रैकवार के परिवार से प्राप्त जानकारी
2. दैनिक भास्कर 26 अक्टूबर, 1996 के सागर संस्करण में 'जिज्ञासा' कॉलम के अंतर्गत प्रकाशित समाचार
3. रामकली रैकवार को रेडियो सिंगर की ट्रेनिंग देने वाले बुजुर्ग दीनदयाल रैकवार
4. लोक गीतकार हरगोविंद विश्व से प्राप्त सामग्री

सुभान

◆ *अंबिका प्रसाद दिव्य*

सुभान पन्ना नरेश महाराज अमान सिंह के दरबार की एक नर्तकी थी। वह बहुत रूपवती थी। महाराज अमान सिंह के ही एक दरबारी कवि थे बोधा। बोधा भी एक रूपवान युवक थे। दैवयोग से दोनों में प्रेम हो गया। प्रेम किसे संकट में डालता नहीं आता? उनके प्रेम का पता किसी तरह महाराज अमान सिंह को लग गया। बोधा राज्य से निकाल दिए गए। उन्होंने अपने प्रवासकाल में सुभान के वियोग में 'विरह वारीश' नाम के ग्रंथ की रचना की। वियोग से पीड़ित होने पर उनके हृदय में जो भी मूक वेदनाएं उठीं, उनको उन्होंने बड़े मर्मस्पर्शी शब्दों में अभिव्यंजना दी। 'विरह वारीश' उनका एक अनूठा ग्रंथ बन गया। संवेदनशील हृदयों को अपनी ओर आकर्षित करने की उसमें अपूर्व क्षमता आप ही आ गई, क्योंकि मनुष्य की विरहजन्य दशाओं ने उसमें सच्ची अभिव्यक्ति पाई।

ग्रंथ के तैयार हो जाने पर बोधा के मन में उत्कंठा जागी कि वे किसी तरह उसे पन्ना जाकर महाराज अमान सिंह को सुनाएं। वे पन्ना पहुंचे और महाराज से अनुमति मांगी। वे दरबार में अमान सिंह के सामने बुलाए गए और उनका ग्रंथ सुनाया गया। उसको सुनकर महाराज अमान सिंह भाव विभोर हो उठे और

बोले, "कहो क्या चाहते हो?" इस पर बोधा के मुंह से निकल गया, 'सुभान अल्लाह' महाराज उनके संकेत को समझ गए। उन्होंने सुभान को दरबार में बुलाया, उसे वर-आभूषणों से अलंकृत कराकर बोधा को सौंप दिया। सच्चे प्रेम की विजय हुई। सारे राज्य में जहां लोग सोचते थे कि वे मौत के घाट उतारे जाएंगे, सब उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे। सारे राज्य में उनकी प्रतिष्ठा और बढ़ गई। वे एक व्यापक चर्चा का विषय बन गए। सच्चे प्रेम के प्रतीक। बोधा के कुछ छंद नीचे दिए जा रहे हैं। प्रेम के विषय में ये लिखते हैं :

अति रवीन मृगाल के तारहुंत,
तेहि अपर पवि दै आवनो है,
सुई बेधते द्वार सकी न तहां
परतीत को टाडौ लदावनो है
कवि बोधा अनीधनी ने जहुं ते,
चढके नहिं चित्त डिगावनो है,
यह प्रेम को पंथ कराल है जू
तलवार की धार पे धावनो है।

सुभान के रूप-लावण्य के विषय में जो उद्‌गार उनके निकले, उनमें से भी एक छंद नीचे दिया जा रहा है।

एक सुभान के आनन पै कुरबान जहां लगि रूप जहां कौ,
कैयो सत्कृत की पदवी लुटिये लखि कैं मुस्काहट ताकौ।
शोक जरा, गुजरा न जहां कवि, बोधा जहां उजरा न तहां को
जान मिले तो जहान मिले, नहिं जान मिले तो जहान कहां कौ।
उनकी विरह उद्वेलना कितनी गंभीर थी :
बिछुरे दरद न होत खर सूकर कूकरन कौ
हंस, मयूर, कपोत, सुधर नरम बिछुरन कठिन
बोधा सबै डाग ढुंढ़ियो फिर फिर धाय
जेहि मन ही मन चाहत, सो न लखाय।

सुभान भी बोधा के प्रति सच्ची निकली। उसके कारण 'विरह वारीश' जैसे उत्कृष्ट ग्रंथ की रचना हुई। वह वेश्या होते हुए भी एक समर्पित प्रेमिका थी। सुभान जितनी रूपवान थी, उतनी ही समझदार भी। उसका हृदय प्रेम से सरोकार रखता था। उसकी वाणी अत्यंत मधुर थी, उसकी गायिकी भी मधुर और सरस थी।

रानी बखत कुंवरि

◆ *उदय शंकर दुबे*

जिस प्रकार बुंदेलखंड की धरती ने बहुत से कवियों को उत्पन्न किया, उसी प्रकार इस धरती पर समय-समय पर कई कवयित्रियों ने जन्म लेकर अपनी भक्तिरस पूर्ण बानी से भगवत-अर्चन-वंदन तो किया ही, भक्तों के मन को भी आह्लादित किया। इन भक्त कवयित्रियों द्वारा रचित पद मंदिरों में सस्वर गाए जाते थे। दतिया की रानी बखत कुंवरि 'प्रिया सखी' द्वारा रचित पद आज भी वहां के मंदिरों में गाए जाते हैं। इनके पद भक्ति रस से सराबोर हैं।

रानी प्रिया सखी सन् 1790 ई. में वर्तमान थीं। इस समय दतिया के राजा शत्रुजीत (सन् 1762-1801 ई.) थे। उनकी एकमात्र रचना 'बानी' की हस्तलिखित प्रति दतिया के प्राचीन ग्रंथागार में सुरक्षित है। नागरी प्रचारिणी सभा काशी की सन् 1806 ई. की खोज विवरणिका में प्रिया सखी के इस ग्रंथ का विवरण मिलता है, जिससे ज्ञात होता है कि रानी हरिवंश संप्रदाय में दीक्षित थीं।

ना.प्रा. सभा वाराणसी की खोज विवरणिका से प्रिया सखी के बानी ग्रंथ का विवरण यथावत प्रस्तुत है—

a Rani of Datia (1790 A.D.) who was greatly devoted to the worship of Krishna. She is also known by the poetical name of Priya Sakhi (प्रिया सखी). The only work of her that has been discovered is—

(a) Bani (बानी) or songs deserving the Love of Radha and Krishna. The date of the manuscripts is 1791 A.D. which very nearly seems to be the date of the composition also.

संदर्भ (खोज विवरणिका, सन् 1906 ई. संख्या 8, पृ. 21, सं. श्यामसुंदर दास) प्रिया सखी रचित बानी ग्रंथ का संक्षिप्त विवरण

इस प्रकार है–

No. 8(a)—बानी by महारानी वखत कुंवरि— substance country made paper, Leade – 26, Size 5 × 4½ inches, lines – 7 on a page, Extent – 150 slokas, Appearnace – New, Character – Devnagri, Place of deposite – State Libirty dotice.

Beginning – श्री राधावल्लभो जयति। श्री हरिवंश चंद्रो जयति।। अथ प्रिया सखी जू कृत दो होरी जिष्यते।। जाती खग सषी में दोई होरी षेलें रंग महल में राधा वलभ रूप परसपर झेलैं।।1।। रूप परसपर झेलत होरी बेलत बेल नवैलै।। प्रेम पिचक पिम नैन भरे जिन रूप गुलाब सुमैरे।।2।। कुंदन तन पर केसरि फीकी स्याम गौर भए भैतो।। सुरत समर के सूर लरत दोई टूटंत हार हमेंहै।।3।। सनमुष रूष मुसव्यापात झपरि झुक्ति जाडिली वावहि पेलै।। प्रिया सषी हित यह छवि निरषसिुष की रसि सकेषै।।4।।

।।2।।

श्रीराधा वल्लभ भो जयति "श्री हरिवंश चंद्रो जयति।। अथ श्री महाराज कौमारि श्री महारानी वषत कुंअरि जू देव्य केई नाम महता कौं प्रिया सखी जू है तिनिकी आनी तौ बहुत है तामैं एकु पद लिष्यते।। राग कांक्षी।। प्रीतम हर हिय बसल हमारे ।। जोई कहूं सोई करत रैन दिन छिन पल होत न जिअ तै न्यारे।। जित सित तन मन रौम रौम में है ह्वै मेरे नैननि तारे।। अति सुंदर वर अंतर जामी प्रिया सखी हित प्राननि प्यारे।।1।। इतिमूल।।

इस पद पर 5 भाव के 5 टीका हैं–

1. सिद्धांत, 2, रस कौ अर्थ, 3. सणी को वचन सषी सौ, 4. श्रीलाल जू कौ बचन श्री हित सषी प्रिया सषी जू सौ, 5. वेष पलट

End—छैल छबीली राधा गोरी होरी बेल मचामेटे केसरि ढोरि गुलाल मांदि मुष अंजन दै हसि पिय गुल चामौ।। पीतांबर सौ हाथ बांधि करि कहि होरी कौं नाच नचायौ।। दिया सषी कौ भेष बनायौ प्रगनि महावर रंग रचायौ।।3।

अथ पांचऔ अर्थ लिष्यते।। वेस पलट है कहा कै। श्रीप्रिया जी के रूप कौ देखत-देखत प्रीतम रूप करै रस पीकै।। छवि कै।। यह जानत है। के हम प्रिया हैं।। में—पृ. 124

प्रीतम है।। सो श्री वाल जी वा समय मैं।। कहत है।" सषी सौ।। कै सुनो सषी प्रीतम हर दिल बसत हमारे कै हमारे प्रीतम हमारे हिये में बसंत है। यह बात प्रीतम के मुख्तार विंद की सषी सुति कै।। सब परसपर हँसती है। कै मे।। प्रीतम है।। कै ये प्रिया है।। अैसे मगन होइ रहे हैं। या भांति जनमस होई रहे हैं।। कै इस प्रिया है सब श्रीप्रिया जी कैसे गुम दिषागत है।। वाज नेचन में वैरगी है।। रूप की गरीब लता कैसी है।। इसनि वतरानि वैसी है। सो श्री प्रिया रूप होई कहत है।। जोई कहूं सोई करत रैन दिन छिन पाल होत न जिअ तै न्यारे 'दै जोई हम कटै हैं सोई रैन दिन करत हैं प्रीतम पद छिन जिअतै न्यारेनाही होत "जित तितै तन मन रौम रौम में है रहे मेरे नैननि तारे।। वाही भांति श्री राधा रूप होई कै।। प्रीतम फिरि बोले कै सुनौ सषी।। जितैं देषो तितै तन में मन में अरे प्रीतम तौ मेरे नैनानि के तारे होई रहे है।। अति सुंदर अंतरजामी प्रिया सषी हित प्राननि प्यारे।। कहर कै।। वाही रूप की बवरि मैं फिरि बोले।। कै सुनौ सषीआरी सुंदरहैं हमारे प्रीतम।। अंतरजामी है।। कै जो मैं मन में विचारौ सौ प्रीतम तुरत ही करत है।। तब प्रिया सषी नै यह सुष देषौ।। कै में प्रान प्यारे प्रीतम निचु श्री प्रिया जू को रूप ही होई रहे हैं।। तब नई श्री प्रिया जू सौ इसी सत्री अरू कही कै प्रिया जू तुम्हारे प्रीतम तौ तुम्हारे प्रातनि तै प्यार है।। तब यह सुष देषि कै श्री हित सषी जू और सषी हसी आनंद पतयौ।। प्रीतम कौ सुधि कराई।। कै आप तौ प्रीतम ही हौ।। तब सकुचे अरू कही कै मेरे मन की बातै आजु साषिनि नै सब जानौ।। इति श्री प्रिया सषी जू कोई एक पद ताके पाये अर्थ संपूर्ण संवत 1848 मार्ग वदि 13।।

संदर्भ (पृ. 125 हस्तलिखित हिन्दी द्वितीय नवीन संस्करण, ग्रंथों की खोज का विवरण-3 संवत 2055 वि. संपादक डॉ. श्याम सुंदर दास बी. ए। ना. प्र. सभा. वाराणसी।)

सभा की सन् 1906 ई. की खोज रिपोर्ट में प्रिया सखी की बानी की जिस प्रति का विवरण प्रस्तुत किया गया है, वह संवत 1848 वि. (सन् 1791 ई.) की प्रति रही है। इसके अतिरिक्त दतिया राजकीय पुस्तकालय में रानी बखत कुंवरि के पदों की एक और प्रति संवत 1857 वि. (सन् 1800 ई.) की सुरक्षित है, जिसे दुल्हैया रतन कुंवरि ने अपने पढ़ने के लिए तैयार किया था। इस प्रति से यह पता चलता है कि कदाचित दुल्हैया रतन कुंवरि स्वयं कविता करती रही हों। साथ ही राजकुमारियों का लिखने-पढ़ने की ओर भी ध्यान था, यह प्रति इसका प्रमाण है। इस प्रति की पुष्टि इस प्रकार है–

"श्री महाराज कोमार श्री महारानी रानी वषत कुंवरि जू देव की पोथी संपूर्ण समापते।। सुभ स्थाने दलीप नगरे माह मासे कृष्न पछे रविवासरे संवतु 1857।। लिवतंश्री महाराज कोमाद श्री दुल्हैया रतन कुंवर जूदेव जो वांचै सुनै ताकों श्री राधा वल्लभ सदा सहाइ रहै ।।श्री श्री श्री श्री श्री।।

रानी बखत कुंवरि 'प्रिया सखी' कृत पदों के वैशिष्ट्य का स्पष्ट प्रमाण है कि उसी समय में उनके एक-एक पदों की टीका प्रस्तुत की गई। 'प्रीतम हरहिय बसत हमारे।।' पद पर पांच भाव की पांच टीका एक साथ पढ़ने को मिलती हैं। कवयित्री ने स्वयं तो टीका नहीं लिखी होगी। तत्कालीन किसी रसिक पंडित ने प्रिया सखी के पदों की टीका की होगी। ऐसी कवयित्री का ग्रंथ आज भी बैठन में बंधा हुआ पड़ा है।

बुंदेलबाला

◆ *सुमन राजे*

गुजराती बाई 'बुंदेलबाला' (संवत 1840-1883 ई.) का विवाह प्रसिद्ध लेखक लाला भगवानदीन के साथ हुआ। श्रीमती बुंदेलबाला पर केवल लालाजी का प्रभाव पड़ा है। लालाजी जैसे शृंगार रस की बहुत सुंदर कविता करते थे, वैसे ही देश की वेदना अपनी पंक्तियों द्वारा प्रकट करने में सिद्धहस्त थे। साथ ही इतना और जान लेना आवश्यक है कि इस दंपती में से हर एक ने दूसरे को प्रभावित किया। बुंदेलबाला की राष्ट्रीय भावना एक नए अंदाज से सामने आई है। उन्होंने अपना प्रतीक भावी कर्णधार को चुना है और उसके माध्यम से मार्मिक रचनाएं दी हैं। समूचे भक्ति काव्य में 'बच्चा' उपेक्षित ही रहा है। बुंदेलबाला ने बच्चे से संवाद कायम करते हुए जो भारत वंदना की है, वह अनूठी है।

1

चाहिए ऐसे बालक

परशुराम श्रीराम भीम अर्जुन उद्दालक।
गौतम शंकर-सरिस धर्म सत के संचालक।

उत्साही दृढ़ जग प्रतिज्ञा के प्रतिपालक।
शारीरिक मस्तिष्क शक्ति-बल अरिगण-घालक।।
काज करै मन लाय, बनै शत्रुन-उर शालक।
अब भारत मातहिं चाहिए ऐसे बालक।।

2

दुर्बल अरु भयभीत सदा जो कहत पुकारी।
'अरे बाप! यह काज हमें सूझत अति भारी'।।
'मैं नाहीं कर सकत' शब्द मुख तें न उचारैं।
'हां करिहौं उद्योग' सहित उत्साह पुकारैं।
सत्य भाव से कहैं करैं अरु बनै न टालक।
अब भारत मातहिं चाहिए ऐसे बालक।।
जो करना है उसे करैं अपने निज हाथन।
देश-भलाई हेत करैं अभिलाषा लाखन।।
कठिन परिश्रम देखि न कबहूं मन ते हारैं।
भारी भार निहार न कबहूं कंधा डारैं।
करैं काज बनि कुल-कलंक कारिख प्रच्छालक।
अब भारत मातहिं चाहिए ऐसे बालक।।

3

देखि कठिन कर्तव्य उसे जू जू जनि जानैं।
अपना धर्म विचारि उसे अपना करि मानैं।
ऐसे बालक जबहि देश के मुखिया ह्वै हैं।
तब भारत के सकल दुःख दरिद्र नसैहैं।।
मिटिहै हिय को ताप और कटिहैं जंजालक।
अब भारत मातहिं चाहिए ऐसे बालक।।

2

माता और पुत्र की बातचीत

माता—

हे प्यारे कदापि तू इसको तुच्छ श्याम रेखा मत मान।
यह है शैल हिमाचल इसको भारत-भूमि-पिता पहिचान।।

नेह सति ज्यों पितु-पुत्री को सादर पालन करता है।
यह हिम-गिरि त्यों ही भारत-हित पितृ-भाव हिय धरता है।।
गंगा जमुना युगल रूप से प्रेम धार का देकर दान।
भारत-भूमि-रूप दुहिता का नेह सहित करना सम्मान।।
पुत्र—
यह जो वाम ओर नक्शे के रेखामय अतिशय अभिराम।
शोभामय सुंदर प्रवेश है मुझे बता दे उसका नाम।।
माता—
बेटा यह पंजाब देश है पुण्य-भूमि सुख-शांति-निवास।
सर्वप्रथम इस थल पर आकर किया आरियों ने निज वास।।
कहीं गान-ध्वनि, कहीं वेद-ध्वनि, कहीं महामंत्रों का नाद।
यज्ञ फूल से रहा सुवासित यह पंजाब सहित आह्लाद।।
इसी देश में बस के 'पोरस' ने रक्खा है भारत-मान।
जब सम्राट सिकंदर आकर किया चाहता था अपमान।
इससे नीचे देश पुत्र यह देश दृष्टि जो आता है।
सकल बालुकामय प्रदेश यह राजस्थान कहाता है।।
इसके प्रति गिरिवर पर बेटा अरु प्रत्येक नदी के तीर।
देश-मान हित करते आए आत्मविसर्जन क्षत्री वीर।
कोई ऐसा स्थान नहीं है जहां अमर चिन्हों के रूप।
वीर कहानी राजपूतों की लिखी न होवे अमर अनूप।।
क्षत्रिय-कुल-अवतंस वीरवर है 'प्रताप' जी का यह देश।
रानी, पदमावती, सती ने यहीं किया है नाम विशेष।।
क्षत्रियवंश-जाति को चाहिए करना इसको नित्य प्रणाम।
क्षत्रिय-दल का जग में इसे सदा रहेगा रोशन नाम।

3

सावधान

सावधान हे युवक उमंगो, सावधानता रखना खूब।
युवा समय के महा मनोहर विषयों में जाना मत डूब।।
सर्व काज करने के पहले पूछो अपने दिल से आप।

'इसका करना इस दुनिया में पुण्य मानते हैं या पाप'।।
जो उत्तर दिल देय तुम्हारा उसे समझ लो अच्छी भांति।
काज करो अनुसार उसी के नष्ट करो दुःखों की पांति।।
कभी भूल ऐसी मत करना अद्धी के लालच में आज।
देना पड़े कल्ह ही तुमको रत्नमाल सम निज कुल लाज।।
युवा समय के गर्म रक्त में, मत बोओ तुम ऐसा बीज।
वृद्ध समय के शीत रक्त में, फूलै चिंता फलै कुबीज।।
पश्चाताप कुरस नित टपकै बदनामी गुठली दृढ़ होय।
उंगली उठै वाट में चलते मुंह, भर बात न बूझै कोय।।
यौवन ऋतु वसंत में प्यारे कुसुम समूह देखि मत भूल।
दबा दबाकर युक्ति सहित रख निज उमंग के सुंदर फूल।।
सावधान! इनको विनष्ट कर फिर पीछे पछतावेगा।
वृद्ध वयस सम्मान सुगंधित फिर कैसे महकावेगा।।
परमेश्वर के न्याय तुला की डांड़ी जग में जाहिर है।
उसको ऊंच-नीच कछु, करना मानव-बल से बाहर है।।
अहंकार सर्वदा जगत में मुंह की खाता आया है।
नय नम्रता मान पाते हैं सबने यही बताया है।।
है प्रत्येक भव्यता के हित इस जग में निकृष्टता एक।
विषय रूप मिष्ठान मध्य हैं विषमय आसय-कीट अनेक।।
इंद्रिय-विषय-शिखर दूरहिं ते महा मनोरम लगते हैं।
निकट जाय जांचै समझौगे रूप हरामी ठगते हैं।।
है प्रत्येक ऊंच में नीचा, प्रति मिठास में कड़वा स्वाद।
प्रति कुकर्म में शर्म भरी है मर्म खोय मत हो बर्बाद।।
प्रकृति-नियम यह सदा सत्य है, कैसे इसे मिटाओगे।
जग में जैसा कर्म करोगे वैसा ही फल पाओगे।

वनमाला भवालकर

◆ *आलोक कुमार पांडेय*

अर्वाचीन संस्कृत साहित्य की लब्धप्रतिष्ठ कवयित्री वनमाला भवालकर का जन्म 8 फरवरी, 1914 को बंबई प्रांत के वेलगाम नगर में हुआ था, जो वर्तमान में कर्नाटक राज्य का हिस्सा है। इनके पिता एल.एस. लोकूर बंबई हाईकोर्ट के ख्यातिलब्ध न्यायाधीश थे। उनके मन में न्यायशास्त्र के अलावा संस्कृत भाषा के प्रति भी लगाव था। यही कारण रहा कि लोकूर महोदय ने अपनी पुत्री वनमाला को बाल्यावस्था से ही देववाणी की शिक्षा दी। वनमाला की मां श्रीमती लक्ष्मीबाई लोकूर उत्तम गृहिणी एवं पाक कला में प्रवीण थीं। वनमाला की प्रारंभिक शिक्षा कर्नाटक में संपन्न हुई। बाल्यकाल से ही उनमें दुनिया को जानने की तीव्र इच्छा और जिज्ञासा बलवती हुई। वे बीसवीं सदी के उस समय में हुईं, जो राष्ट्रीय एवं सामाजिक घटनाओं और स्वाधीनता की चेतना व संघर्ष की उत्तेजनाओं से भरा हुआ

इस अवधि में दिखाई देती है, वह बृहत्तर सांस्कृतिक नवजागरण का हिस्सा है। अपने समय की चेतना के साथ जुड़कर वनमाला अतीत से जो सार्थक मुठभेड़ करती हैं, उसके पीछे देश की सांस्कृतिक नवजागरण की अदम्य प्रेरणा है। मातृभाषा कन्नड़ होने के बावजूद वनमाला की शिक्षा मराठी माध्यम से हुई। मैट्रिक से लेकर एम.ए. तक की समस्त परीक्षाएं उन्होंने प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की थीं। विषय और बोध की विशिष्टता महज इनकी उपाधियों तक ही नहीं, बल्कि उनके व्यक्तित्व का अनिवार्य हिस्सा था। 1935 में डॉ. डी.आर. भवालकर के साथ परिणय सूत्र में बंधने के पूर्व वनमाला ने बंबई विश्वविद्यालय से संस्कृत में बी. ए. आनर्स की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की थी। विवाहोपरांत 1937 में कलकत्ता विश्वविद्यालय से प्राचीन भारतीय एवं संस्कृति विषय में एम.ए. की परीक्षा में उन्होंने प्रथम स्थान प्राप्त किया। उन्हें दो स्वर्ण पदक भी मिले। वनमाला के अन्तस् में विद्या अर्जन की लौ लहक उठी थी। 1952 में नागपुर विश्वविद्यालय से संस्कृत में प्रवीण्य सूची के साथ एम.ए. तथा 1961 में हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय से पीएचडी की उपाधि अर्जित की। समस्त शैक्षिक यात्रा में ज्ञान-तृष्णा यदि उनके लिए प्रेरणा वनी तो नारीत्व गरिमा एवं संघर्ष संकल्प उनका पाथेय रहा।

सागर विश्वविद्यालय की स्थापना 1946 में हुई। उन्हीं दिनों संस्कृत विभाग में डॉ. हरीसिंह गौर ने वनमाला भवालकर की व्याख्याता के रूप में नियुक्ति की। इस नाते उन्हें सागर विश्वविद्यालय की प्रथम महिला अध्यापक होने का गौरव प्राप्त हुआ। 1947 से 1952 तक अस्थायी रूप में तथा 1953 से 1976 तक स्थायी सेवा में रहकर वनमाला भवालकर ने एक आदर्श शिक्षिका होने का प्रतिमान रचा। उनकी कर्मठता, विद्वत्ता और संघर्षों ने डॉ. हरी सिंह गौर विश्वविद्यालय के आचार्यकुल को गौरवान्वित किया। वनमाला भवालकर का अध्यापन कार्य एवं सांस्कृतिक गतिविधियों का दायरा बहुत विस्तृत रहा है। सागर विश्वविद्यालय से जुड़ने के पहले इन्होंने गोखले मेमोरियल कालेज कलकत्ता तथा पूना के एस.पी. कालेज में एक-एक वर्ष का अध्यापन कार्य किया। सागर विश्वविद्यालय की अकादमिक संरचना में अपना अभूतपूर्व सहयोग देने के साथ ही उन्होंने विश्वविद्यालय की सांस्कृतिक गतिविधियों को

एक नयी ऊंचाई दी। प्रशासनिक दायित्वों के निर्वहन में भी इन्होंने कई मानक रचे। उसमें 22 वर्षों तक महिला छात्रावास की वार्डन के रूप में बेदाग कार्यकाल उल्लेखनीय है। अध्यापन के दौरान ही उन्होंने अनेक नाट्य प्रस्तुतियां देकर विश्वविद्यालय के सांस्कृतिक परिदृश्य में रंगमंचीय संभावनाओं की नींव रखी थीं। उनके पति भी विश्वविद्यालय में भौतिक विज्ञान के प्रोफेसर थे। वे कुशल तबला वादक भी थे। वनमाला को अनेक रंगमंचीय संकल्पनाओं में पति का भरपूर सहयोग मिला है। उनके द्वारा निर्देशित 'पार्वती परमेश्वरीयम' जैसे नाट्य प्रयोग के साक्षी सागर ही नहीं, भोपाल, इंदौर, उज्जैन आदि सांस्कृतिक नगर भी बनें। 'रामवनगमनम्', 'शाकुन्तलम्', 'दीपदान', जैसी अनेक नाट्य प्रस्तुतियां वनमाला के सफल निर्देशन में संपन्न हुईं और दर्शकों द्वारा अत्यंत सराही गईं। उनका हिन्दी नाटक 'उधार का पति' उत्तर भारत में अनेक सांस्कृतिक मंचों पर खेला गया और बहु प्रशंसित हुआ।

अपनी अकादमिक उपलब्धियों एवं सांस्कृतिक गतिविधियों के अलावा अनेक स्वयंसेवी संस्थाओं से जुड़कर वनमाला भवालकर ने सामाजिक सरोकारों को एक नया आयाम दिया। अपने पारिवारिक दायित्व निर्वहन में भी वे निरंतर सक्रिय बनी रहीं। नाटक के अलावा संगीत से भी उनका जुड़ाव रहा। संगीत के प्रति उनकी रागात्मकता का प्रमाण स्वयंरचित 'रामवनगमनम्' संगीतिका है, जिसमें 40 प्रकार के राग और 9 प्रकार की ताल प्रयुक्त हैं। 'वाल्मीकि रामायण' तथा 'कुमारसंभव' जैसे महान ग्रंथों को उन्होंने अपने गायन का उपजीव्य बनाया। उनकी अभिरुचि भारतीय शास्त्रीय संगीत में भी थी।

उन्होंने संस्कृत में पौराणिक कथाओं पर आधृत 'पाददंडः' एकांकी, 'रामवनगमनम्' संगीतिका, 'पार्वती परमेश्वरीयम्' संगीतिका, 'अन्नदेवता' बाल एकांकी, 'सीताहरणम' गीतनाट्य तथा संस्कृत में अनूदित नाट्य 'दीपदान' एकांकी एवं स्तोत्र साहित्य में 'श्री सत्यसाईं सदाचार संहिता', 'श्री सत्यसाईं राम रक्षास्तोत्रम्', 'श्री सत्यसाईं राम स्तोत्रमाला' आदि की रचना की। वनमाला भवालकर ने प्रासंगिक काव्य रचनाएं एवं कविताएं भी लिखीं, जिनमें प्रमुख काव्य 'चिंतामणि प्रशस्ति', 'प्रेमोपहारः', 'श्रीमतो रामजी उपाध्याय महोदयानाम्', 'कालिदास प्रशस्ति' है। उन्होंने लगभग 9 गद्य ग्रंथों का भी प्रणयन किया। पत्र-पत्रिकाओं में उनके अनेक लेख प्रकाशित हुए। मातृभाषा मराठी साहित्य में भी उन्होंने मराठी

लघुकथा 'बोल के डोले', 'वाशिंग बल', 'दोष कोणाचा', 'मुरल', 'दिव्याच्या प्रकाशांत' आदि तथा मराठी नाटक 'संसाराचा सारीपाट', 'आज चा संसार', 'चिंचोल्या चाकोरी तून', 'अभिशप्ता' एवं मराठी एकांकी 'कुबड़ी', 'इम्रन', 'चाचा बोनो', 'मुलींच जात', 'सीताहरण' आदि की रचना की। इसी तरह अंग्रेजी भाषा में 'वूमन इन द महाभारत', 'एमीनेंट वूमन इन द महाभारत' शीर्षक ग्रंथों का सृजन किया।

वनमाला भवालकर ने हिन्दी साहित्य में अनेक महत्त्वपूर्ण कृतियों की सर्जना की। 'महाभारत में नारी' (शोध ग्रंथ) 'उधार का पति', 'शकुंतला' 'बैसाखी' 'नया जमाना', 'डॉक्टर का पति', 'आत्महत्या' तथा 'तीन वरदान' आदि नाटक उनकी विशेष उल्लेखनीय कृतियां हैं। एकांकी, लघुकथाएं आदि भी वे लिखती रहीं। सामाजिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक विषयों पर भोपाल, नागपुर, जबलपुर, सागर आदि आकाशवाणी केंद्रों से उनकी कई वार्ताएं प्रसारित हुईं।

वनमाला भवालकर के लेखन का केंद्रीय विचार नारी-विमर्श तथा नव सामाजिक संदर्भ है। इसीलिए अनेक रचनाओं की कथावस्तु पौराणिक होते हुए भी उन्होंने उसकी व्याख्या आधुनिक संदर्भ में मौलिक ढंग से की है। पौराणिक मिथकों को समकालीन तथा आधुनिक शैली में प्रस्तुत करने की प्रतिभा भवालकर को जैसे सिद्ध थी। वनमाला का प्रकाशित पी-एच.डी. शोधग्रंथ 'महाभारत में नारी' भारतीय सामाजिक संरचना में स्त्री की उपस्थिति तथा जीवन का एक तार्किक एवं प्रामाणिक पाठ जैसा है। इसमें उन्होंने महाभारत से पूर्व काल की नारी संबंधी मान्यताओं के परिचय से लेकर महाभारतयुगीन नारी जीवन के लक्ष्य एवं उसके व्यक्तित्व, विकास की योजनाओं पर प्रकाश डाला है। डॉ. रामजी उपाध्याय ने लिखा है कि, ''प्राचीन भारत यदि कहीं नारी के प्रति अनुदार था तो यह विवेचन इस पुस्तक में नयी पद्धति से किया गया है।'' वस्तुतः इस शोध ग्रंथ में नारी संबंधी नैतिक मर्यादाओं एवं अपराध शोधन तथा उसके रहन-सहन में उचित-अनुचित विवेक पर गहन विश्लेषण प्रस्तुत है। कहना न होगा कि वनमाला भवालकर ने स्त्रियों के प्रति रूढ़ परंपराओं तथा शृंखला की कड़ियां तोड़कर मर्यादित ढंग से स्त्री समाज को अपनी रचनाओं में न केवल स्थान दिया, बल्कि सार्वजनिक तौर पर उसे अपनी बात कहने का साहस भी दिया। महान व्यक्तित्व और विशाल कृतित्व की धनी वनमाला

भवालकर संस्कृत, हिन्दी, मराठी, कन्नड़, जर्मन, अंग्रेजी आदि भाषाओं की ज्ञाता और इन भाषाओं में मौलिक एवं अनूदित कृतियों की सर्जक थीं।

समाज और साहित्य दोनों ही स्तर पर एक सशक्त महिला हस्ताक्षर के रूप में प्रतिष्ठित डॉ. वनमाला भवालकर शरीर के मोर्चे पर कैंसर जैसे असाध्य रोग से जूझते हुए 30 जुलाई, 2003 को हमेशा के लिए दुनिया को अलविदा कह गईं। उनके स्वप्नों और बेहतर समाज के निर्माण तथा प्रेरणादायी साहित्य सृजन की जिद को उनकी स्वनाम धन्य सुपुत्री डॉ. मीना पिंपालपुरे 'ताई' आज भी निभा रही हैं।

सहोद्राबाई राय

◆ *महेश तिवारी*

वीरप्रसू भूमि बुंदेलखंड की स्त्रियों ने देश के लिए जिस शौर्य, बलिदान और त्याग का परिचय दिया है, वह अद्वितीय है। रानी दुर्गावती, झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, झलकारीबाई, अवंतीबाई आदि की बलिदानी परंपरा में वीरांगना सहोद्राबाई राय एक महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं, जिन्होंने सन् 1955 के गोवा मुक्ति संग्राम में अपने सीने पर गोलियां खाकर गोवा को पुर्तगालियों के कब्जे से मुक्त कराया।

सहोद्राबाई राय का जन्म मध्यप्रदेश के दमोह जिले के पथरिया थानांतर्गत बोतराई गांव में 30 अप्रैल, 1919 को एक साधारण खंगार क्षत्रिय परिवार में श्री नीरेन सिंह के घर हुआ था। बचपन से ही वे साहसी और खतरों भरे खेलों में माहिर थी। अल्पवय में उनका विवाह सागर जिले के एक कस्बे कर्रापुर में हुआ, किंतु आकस्मिक ही उन पर वैधव्य का दारुण दुःख टूट पड़ा। यह वह समय था, जब एक महिला, खासकर विधवा का जीवनपथ पर अग्रसर होना दुष्कर था। जीवन-यापन के लिए उनके पास थोड़ी-सी किसानी थी, जिससे गुजर-बसर मुश्किल थी। उन्हें बीड़ी के कारखानों में झाल ढोने जैसा कष्टप्रद

काम भी करना पड़ा। सुडौल, बलिष्ठ शरीर की सहोद्रा ने दुःख के तमगों को गर्व के साथ पहना।

जीवन के 23-24 वर्ष के पड़ाव में ही सहोद्रा स्वतंत्रता आंदोलन में कूद पड़ीं। 1942 के आंदोलन में सत्याग्रह करते हुए वे जेल गईं। 1945 में नौआखली के भीषण हिन्दू-मुस्लिम दंगों में महात्मा गांधी के पथ पर चलकर उन्होंने सांप्रदायिक एकता के लिए काम किया। स्वतंत्रता आंदोलन में उनकी निर्भय और सक्रिय भागीदारी ने उन्हें अत्यंत लोकप्रिय बना दिया। 1947 में अंग्रेज भारत छोड़कर चले गए, लेकिन गोवा पुर्तगाल का उपनिवेश बना रहा। 1955 में जब गोवा मुक्ति आंदोलन प्रारंभ हुआ तो उसमें शामिल होने के लिए आंदोलनकारियों का जो जत्था सागर से रवाना हुआ, उसकी कमान सहोद्रा के हाथों में थी। 'भारत माता की जय, पुर्तगालियो वापस जाओ' के नारे लगाते हुए जत्था गोवा की सीमा की तरफ चला। पुर्तगालियों की सशस्त्र सेना मोर्चे पर डटी थी। हाथ में तिरंगा झंडा उठाए सहोद्रा निर्भय आगे चल रही थी कि सैनिकों ने गोलियों की बौछार कर दी। दो गोलियां उनके ध्वज थामे हाथों में लगीं, पर वे अपने प्राणों की परवाह न करते हुए, अविचलित बढ़ती गईं और ज्यों ही उन्होंने गोवा की धरती पर तिरंगा लहराया, एक गोली उनकी छाती को चीरती हुई निकल गई। देश में सर्वत्र उनके शहीद होने की खबर प्रसारित हो गई। उन्हें श्रद्धांजलि अर्पण करते हुए अनेक शोक सभाएं हुईं। अचानक उनके गंभीर रूप से घायल जीवित बचे होने की खबर आई और जनता में खुशी की लहर दौड़ गई।

गोवा स्वतंत्र हुआ। तत्कालीन प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू ने उन्हें 'वीरांगना' के सम्मान से नवाजा। वे पं. नेहरू की बेटी और इंदिराजी की अत्यंत दुलारी सहेली बनीं। 1957 में वे कांग्रेस के टिकट पर भारी मतों से जीतकर सागर संसदीय सीट से पहली बार सांसद बनीं। उन्हें निरंतर सांसद बनाए रखने के लिए पं. नेहरू की इच्छानुरूप क्षत्रिय खंगार जाति को सागर एवं दमोह जिले तथा होशंगाबाद, नरसिंहपुर तहसीलों में अनुसूचित जाति में शामिल किया गया। वे 1957 से 1962, 1962 से 1967 तक 1979 से 27 मार्च, 1981 में मृत्यु तक तीन बार क्रमश दूसरी, तीसरी एवं पांचवीं लोकसभा की सदस्य रहीं। इसके पूर्व सहोद्रा ने 1947 में लोकल बोर्ड, 1948 में जनपद सभा, हरिजन कल्याण बोर्ड तथा जबलपुर डिवीजन के अध्यापकों की नियुक्ति संबंधी समिति के सदस्य के

के पुनर्वास में उन्होंने महती भूमिका निभाई। दलित-पिछड़ों, महिलाओं तथा गरीबों को उनके अधिकार दिलाने में वे सदैव अग्रणी रहीं। व्यक्तिगत लाभ-लालच से दूर अपने क्षेत्र के विकास तथा जनता की समस्याएं दूर करने के लिए वे हमेशा तत्पर रहतीं। झूठे या गलत आश्वासन देना उनकी प्रवृत्ति में नहीं था। अपनी जनसुलभता, सहजता, स्नेह-दुलार एवं मीठी बुंदेली बोली के कारण वे बच्चों ही नहीं, बुजुर्गों की भी मौसी थीं। सहोद्रा जिस काम के लिए हां कह देतीं, उसे पूरा कराने में सारी शक्ति लगा देतीं। उनका सहन-सहन और खानपान बहुत ही सादा था। जिसने जो खिला दिया, प्रेम से खा लिया।

निस्संदेह, सहोद्राबाई राय बुंदेली स्त्री के अदम्य साहस, बलिदान, सेवा और कर्मठता की साक्षात प्रतिमा हैं, जिनका पुण्यस्मरण 30 अप्रैल को प्रतिवर्ष क्षत्रिय खंगार समाज 'शौर्य दिवस' के रूप में करता है।

• • •

ISBN 978-81-7138-262-0